समर्पण

गोलोकवासी

पूज्य पिता

श्रीबल्देवदास जी की स्मृति में

उनके पुत्र द्वारा

सादर

समर्पित

नम्र निवेदन

गोलोकवासी पूज्य पिताजी को कथा तथा भजन सुनने में अत्यधिक रुचि थी और प्रायः उन्होंने सभी पुराणों की कथा सुनी भी थी। नित्य ही घंटे आध घंटे वे भजन सुनते थे और इसके लिए भजनों के अनेक संग्रहग्रंथ भी एकत्र हो गए थे। सुनने तथा इन ग्रंथों के पढ़ने से इस ओर मेरी भी रुचि हो गई थी। यद्यपि मेरा परिवार नवद्वीप के श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में दीक्षित चला आता है पर मेरी माता वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थीं अतः उस संप्रदाय के संबंध में भी कुछ जानकारी थी। अष्टछाप के सुकवि-भक्तों के भजन-संग्रहों के अनुशीलन का भी अवसर बराबर मिलता था। हिंदी-सेवा का व्रत लेने पर इन कवियों की रचनाओं की प्राचीन हस्तलिखित तथा छपी प्रतियों के संग्रह करने का भी उत्साह हुआ और दैवयोग से नंददासजी की रचनाओं की दोनों प्रकार की अनेक प्रतियाँ मुझे प्राप्त हुईं, जिससे लगभग दस वर्ष के हुए कि इनकी रचनाओं के संपादन का विचार हुआ। यह कार्य आरंभ भी हुआ और पहिले इनके संबंध में कई लेख भी पत्रिकाओं में प्रकाशित कराए।

इसी बीच में प्रयाग विश्वविद्यालय ने नंददासजी की दो रचनाएँ अनेकार्थ मंजरी तथा मानमंजरी प्रकाशित कीं, जिनमें बहुत अशुद्धियाँ रह गई थीं। इस पर मैंने एक लेख हिंदुस्तानी एकेडेमी

प्रयाग की पत्रिका में प्रकाशित कराया जिससे वह संस्करण काट दिया गया और इसके अनंतर नंददासजी के समग्र ग्रंथ दो भागों में उसी विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुए। यह बड़े अध्यवसाय तथा छानबीन के साथ प्रस्तुत किया गया है और विद्वान संपादकों ने बड़े परिश्रम के साथ जहाँ जहाँ साधन प्राप्त हुए वहाँ से उन्हें एकत्र कर इसका संपादन किया है।

नंददास ग्रंथावली को प्रकाशित करने के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने वचन दिया था पर धनाभाव से वह बहुत दिनों तक प्रकाशित करने में असमर्थ रही। दो वर्ष हुए कि प्रांतीय सरकार ने सभा को दो सहस्र रुपए प्राचीन ग्रंथों को प्रकाशित करने के लिए दिए, जिससे इस ग्रंथ की छपाई में हाथ लगा दिया गया था परंतु अनेक विघ्नों के कारण इसकी छपाई में बहुत समय लग गया। अस्तु, इस प्रकार यह ग्रंथावली प्रकाशित हो गई। इसमें अभी अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं, जो आगे के संस्करणों में दूर की जायँगी।

विनीत
ब्रजरत्नदास

विषय-सूची

भूमिका

१. विषय-प्रवेश

सात शताब्दियाँ व्यतीत हो गई जब कि हिंदुओं के स्वातंत्र्य-सूर्य के अस्त होने के साथ साथ हिंदी साहित्येतिहास का वीर-गाथा-काल भी प्रायः समाप्त हो गया। मुसल्मानों के अस्थायी आक्रमणों के बाद उनके छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए और बाद को दिल्ली की सल्तनत जमी, जिससे भारतीय हिंदू राजवंशों की सत्ता उत्तरापथ मे प्रायः मिट सी गई। सं० १२६३ में दास वश का राज्य आरंभ हुआ और क्रमशः अनेक पठान राजवंशों के तीन सौ वर्षों तक राज्य करने के अनंतर मुगल राज्य वंश स्थापित हुआ, जिसका अंत अभी बड़े बलवे के समय हुआ है। इन प्रधान मुसल्मान राजवशों के सिवा और भी छोटे मोटे अनेक मुसल्मानी राज्य इतर स्थानों मे स्थापित होते तथा बिगड़ते रहे और इनके संपर्क का राजनीतिक स्थिति-परिवर्तन के साथ भारत के सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव की भारतीय भाषाओं पर भी पूरी पूरी छाप पड़ी है। जब हम अपने देश की रक्षा न कर सके और जब इन आगंतुक शत्रुओं ने धर्मांधता के कारण हमारे सामने ही हम लोगों के उपासना गृहों, देवमंदिरों तथा पाठशालाओं को यथाशक्ति नष्ट भ्रष्ट किया और हमारे पूज्य महात्माओं तथा ग्रंथों का अपमान किया और हम लोग सिवा देखते रहने के कुछ प्रतीकार भी न कर सके तब हम हिंदुओं के हृदय में हमारा आत्मगौरव, उत्साह

तथा शौर्य अंतर्हित सा हो रहा। जब हम साहस तथा वीरता के कार्य करने में अशक्त हो गए तब वीर-गाथाओं की रचना या श्रवण करना हमारे लिए संभव नहीं रह गया। ऐसी दशा में सर्व आशामय भगवान की सुररक्षिणी पर असुर-विनाशिनी शक्ति की ओर दृष्टि लगाकर अर्थात् सगुणोपासना कर हम अपने हृदय को सांत्वना देने की चेष्टा करने लगे। इन आगंतुकों की धर्मांधता, कट्टरपन तथा हठधर्मी यहाँ तक बढ़ी थी कि वे दूसरों को अपने अपने विचारानुसार अपने इष्टदेव की उपासना करने में पूरे बाधक बन बैठे। जरा जरा बहाने ढूंढकर वे मंदिर, अर्चन-पूजन, उत्सव आदि को भ्रष्ट करने में सदा प्रयत्न-शील रहे। इन कारणों से निर्गुण उपासना की ओर भी जनसाधारण की रुचि बढ़ी। शांति-प्रिय हिंदुओं ने, जिनमें यह गुण बलात् उत्कर्ष को पहुँचा दिया गया था और जो अपने परमेश्वर को समग्र सृष्टि का स्रष्टा समझते आ रहे थे, मुसल्मानों से मेल मिलाने के लिए राम-रहीम की एकता का भी प्रस्ताव किया तथा कुछ सहृदय मुसल्मानों ने इसमें योग भी दिया पर वह प्रयास भी अब तक व्यर्थ ही सा हुआ। इसमें भी सूक्ष्मतः वही एकेश्वरवाद चल रहा था जिसकी भयंकर लीला का उनको नित्य अनुभव हो रहा था। हिंदू जनता स्वातंत्र्य, राज्य, वैभव आदि सब कुछ खोकर भी अपनी संस्कृति, सभ्यता आदि खोना नहीं चाहती थी और न खो सकती थी इसलिये उसने इस परिस्थिति-परिवर्तन से ईश्वरोन्मुख प्रेम अर्थात् भक्ति का आश्रय लिया और राम-कृष्ण की भक्ति का ऐसा प्रवाह बहा कि उससे सारा देश तरंगित हो उठा।

बौद्धकालीन तथा उसके पूर्व के कर्मकांड का समय व्यतीत हो चुका था और उसकी ओर से भी जनता का चित्त हट गया था। गृहस्थ गार्हस्थ्य-धर्म त्याग कर विरक्ति तथा ज्ञानमार्ग की

ओर अग्रसर नहीं हो सकता था और वह उस उपासना की ओर आकृष्ट हो रहा था, जो गार्हस्थ्य धर्म निवाहते हुए पूरा हो सकता था। कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का, उसीकी जन्मभूमि से, निर्वासन कर दिया पर शंकर का अद्वैतवाद भी ज्ञान-प्रधान ही था। इनके दो शताब्दि अनंतर श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने विशिष्टाद्वैत मत का प्रवर्तन किया। इन्हींने पहिले पहिल ज्ञान तथा उपासना का सम्मिश्रण किया और परब्रह्म परमेश्वर के त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति में से विष्णु भगवान के अर्चन-पूजन का उपदेश दिया। इसके बाद वैष्णवों के दो प्रधान दल हो गए—एक में त्रेतावतार श्रीरामचंद्रजी की तथा दूसरे में द्वापरावतार श्रीकृष्णचंद्रजी की उपासना चलाई गई। प्रथम के आचार्य श्रीरामानंदजी थे, जो श्रीरामानुजाचार्य के संप्रदाय में हुए और दूसरे के श्रीविष्णुस्वामी, श्रीमध्वाचार्य तथा श्रीनिंबार्काचार्य हुए। विष्णुस्वामी के अंतर्गत श्रीवल्लभाचार्य तथा मध्वाचार्य के अंतर्गत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अलग अलग नवीन शाखाएँ चलाईं।

इस सगुण उपासना के साथ साथ नवीन परिस्थिति के अनुकूल निर्गुण उपासना की भी प्रथा चली। यह सामान्य भक्ति-मार्ग था और इसकी भी दो शाखाएँ फूट निकलीं। ये दोनों एकेश्वरवाद को लेकर चलीं और दोनों ही के परमेश्वर निराकार होते भी सर्वगुण-सम्पन्न माने गए। प्रतिमापूजन का इनमें बहिष्कार था, अतः वर्णव्यवस्था का इनमें किसी प्रकार का बंधन नहीं था। मूर्तिपूजा तथा जातिव्यवस्था इन दोनों पर इन पंथ-वालों ने खूब व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। कभी ये ब्रह्मज्ञान छाँटते थे और कभी सगुण-उपासना की झलक दिखला देते थे, कभी एकेश्वरवादी बनते और कभी अवतारों का वर्णन कर बैठते थे।

ये प्रचर्तकगण केवल सभी जाति के हिंदुओं ही को नहीं मुसल्मानों तक को अपने मत में लाने के लिए उसी ध्येय के उपयुक्त उपदेशमय मार्ग निकालना चाहते थे। इनमें एक में ब्रह्मज्ञान का प्राधान्य है और दूसरे में सूफी मतानुकूल अलौकिक प्रेम का।

प्रेम लौकिक (अर्थात् सांसारिक) तथा अलौकिक (अर्थात् दैवी, शुद्ध) दो प्रकार का होता है। सूफी इन्हीं दो को इश्क-मजाजी तथा इश्क हक़ीकी कहते हैं और दूसरे ही को लेकर उस पंथवालों ने काव्य-रचना की है। ईश्वर को माशूक अर्थात् प्रियतमा मानकर ये प्रेमीभक्त अर्थात् आशिकगण उसके विरह में उसकी याद जीवन भर करते रहते थे और मिलन होना ही उनका ध्येय रहता था। हिंदी साहित्य में इस प्रकार की प्रेम गाथाएँ विशेपकर मुसलमान सूफियों ने ही लिखी हैं और जिनमें प्रिय-मिलन की यह उत्सुकता तथा विह्वलता विशेष व्यापक रूप में व्यंजित की गई है, उसीका कवि इस प्रकार की रचना में अधिक सफल हुआ है। नंददासजी की एक रचना इसी प्रकार की एक प्रेमगाथा लेकर बनी है, जिसका उल्लेख आलोचना खंड में किया जायगा।

सगुण उपासना मार्ग की एक मुख्य शाखा श्रीकृष्ण की भक्ति की है, जिसके प्रधान आचार्यों का ऊपर उल्लेख हो चुका है। इन आचार्यों में श्रीविष्णुस्वामी के संप्रदाय के अंतर्गत श्री-वल्लभाचार्य का जन्म चंपारण्य में वैशाख कृष्ण एकादशी सं० १५३५ वि० को हुआ था और आषाढ़ शुक्ला तृतीया सं० १५८७ को काशी में इनका गोलोकवास हुआ। इन्होंने समग्र देश का पर्यटन कर अपने मत का प्रचार किया था। इन्होंने वृंदावन ही में अपनी मुख्य गद्दी स्थापित की थी, जो इनके उपास्यदेव श्रीकृष्ण की लीलाभूमि थी। इन्होंने वात्सल्य भाव से श्रीकृष्ण की उपासना

की थी अतः बालकृष्ण ही इनके उपास्यदेव थे। इनके प्रभाव से इनके शिष्य भक्त सुकवियों ने श्रीकृष्णलीला-संबंधी सहस्रों ऐसे अमृतमय मधुर पद कहे कि उनके श्रवण-पठन से जनसाधारण का हृदय आज भी भक्तिपूर्ण हो जाता है। इनके पुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी ने अपने पिता के चार तथा अपने चार शिष्य-सुकवियों को चुनकर अष्टछाप स्थापित किया था। सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास तथा कृष्णदास इनके पिता के और नंददास, गोविंददास, छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास इनके शिष्य थे।

नंददास की जीवनी

उक्त अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों की जीवनी के लिए जो साधन प्राप्त हैं वे साधारणतः सभी के लिए समान हैं और ये ऐसे हैं, जो जीवनी के लिए आवश्यक सभी बातों को निश्चय-पूर्वक स्पष्टतः नहीं बतला सकते। भक्तकवि नंददासजी के विषय में भी वही बात है पर कुछ अन्य साधन ऐसे और मिल गए हैं, जिनसे कुछ विशेष प्रकाश उनकी जीवनी पर पड़ने की आशा है। कवि ने स्वयं अपनी रचनाओं में अपने विषय में जो कुछ कहा है वह प्रायः नहीं के समान है और जनश्रुतियाँ तथा अन्य ग्रंथों में इनका जो उल्लेख हुआ है, उन्हीं सबको लेकर उनकी जीवनी की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है।

परलोक की चिंता में मग्न भारतीय कवियों की, विशेषतः भक्त कवियों की, यह प्रवृत्ति रही है कि वे नाम के भूखे न होने से अपने इस नश्वर जीवन के विषय में कभी कुछ न लिखते थे और जो कुछ कहीं लिखा मिल भी जाता है वह भी मानों इष्ट की भक्ति में भूलकर स्वतः लिख गया है। नंददासजी ने भी अपने विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा है और जो कुछ उनके

विषय में उनकी रचनाओं में मिलता है वह उनके इष्टदेव, गुरु, संप्रदाय, भक्त मित्र आदि ही के संबंध में है। यहाँ उनके ऐसे पदों तथा पदांशों को उद्धृत कर ऐसी ज्ञातव्य बातें संकलित की जाएँगी।

नंददासजी ने अपने दीक्षागुरु श्रीविट्ठलनाथजी के लिए कई पद कहे हैं, जिनमें उन्हें अधिकतर 'श्रीवल्लभ-सुत' तथा कहीं कहीं 'विट्ठलेश', 'विट्ठल-प्रभु' नामों से स्मरण किया है।

१. प्रात समैं श्रीवल्लभ सुत के बदन-कमल को दरसन कीजै।

२. श्रीवल्लभ-सुत के चरन भजौं।

....

नंददास प्रभु प्रगट भये दोउ श्रीविट्ठल गिरिधरन भजौं॥

३. जयति रुक्मिनीनाथ पद्मावती-प्रानपति
विप्रकुल-छत्र आनंदकारी।
............प्रगट अवतार गिरिराजधारी॥

४. भजौं श्रीवल्लभ-सुत के चरन।

५. श्रीलछमन घर बाजत आजु बधाई।
पूरन ब्रह्म प्रगटि पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुखदाई॥

६. प्रकटित सकल सृष्टि आधार।
श्रीमद्वल्लभ-राजकुमार॥

७. 'नंददास' प्रभु पद्गुन संपन श्रीविठलेश बरौं।

इस प्रकार के इतने ही पद मिले हैं, जिनमें नंददासजी ने अपने गुरु की स्तुति की है और इनमें एक गुरु के पिता श्रीवल्लभाचार्य के जन्म पर कहा गया है। प्रसिद्ध रासपंचाध्यायी के आरंभ में श्रीशुकदेवजी की १४ रोलाओं में वंदना है पर गोस्वामी विट्ठलनाथजी की वंदना नहीं है। अन्य दो रचनाओं में केवल गुरु शब्द आया है, नाम नहीं है।

१. श्रीगुरु चरन सरोज मनावौं। गिरि गोबर्धन लीला गावौं॥
(गोवर्द्धन लीला)

२. श्रीगुरुचरण-प्रताप सदा आनंद बढ़ै उर।
(रुक्मिणी मंगल)

अन्य रचनाओं में श्रीकृष्णस्तव से मंगलाचरण किया गया है या मंगल पद का अभाव ही है। तात्पर्य इतना ही है कि नंददासजी लक्ष्मणभट्ट के पुत्र श्रीवल्लभाचार्य, उनके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी तथा पौत्र श्रीगिरिधरजी में पूर्ण भक्ति रखते थे और दीक्षा लेने के बाद सदा उनकी सेवा में रहते थे। आश्चर्य तो यह है कि अपनी प्रबंध रचनाओं में इन्होंने अपने गुरु का स्तवन नहीं किया है। क्या ये दीक्षा लेने के पहिले की रचनाएँ हैं?

नंददासजी ने चार पदों में यमुनाजी की स्तुति की है और एक पद में गंगाजी का माहात्म्य साधारणतः वर्णन किया है। श्रीयमुनाजी उनके इष्टदेव श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रिय थीं अतः उनकी विशेष प्रकार से स्तुति की है। आज भी श्रीनाथजी के चित्रपट के साथ सभी भक्त श्रीयमुनाजी का भी चित्र दर्शनार्थ लेते हैं। उन्हीं इष्टदेव की लीलाभूमि होने के कारण नंददासजी ने गोवर्द्धन पर्वत, गोकुल, वृंदावन, नंदग्राम तथा व्रज और मथुरा नगर का बराबर पदों में वर्णन किया है। नंददासजी ने दो पदों में राम-कृष्ण का एक साथ स्तवन कर प्रगट किया है कि वास्तव में दोनों एक हैं और लीलों के लिए ही इन्होंने भिन्न भिन्न अवतार धारण किया था। हो सकता है कि अपने रामभक्त भाई के कारण प्रभावान्वित होकर ऐसा किया हो। कई पदों में हनुमानजी का भी स्मरण किया है।

नंददासजी ने अपनी कई रचनाओं के आरंभ में इस प्रकार लिखा है कि मानों वह अपने किसी मित्र की आज्ञा से या

उसका प्रिय करने के लिए रचना करने बैठे थे। देखिए—

१. परम रसिक इक मीत मोहिं तिन आज्ञा दीन्हीं।
तातें मैं यह कथा यथामति भाषा कीन्हीं॥
(रास पंचाध्यायी रो० १६)

२. एक मीत हम सों अस गुन्यो। मैं नाइका-भेद नहिं सुन्यो॥
....
तासों 'नंद' कहत तब ऊतरु। मूरख जन मन मोहित दूतरु॥
(रसमंजरी)

३. परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्णचरित्र सुन्यो सो चहै॥
(दशम स्कंध भाषा)

अनेकार्थ तथा नाममाला तो उन लोगों के लिए बनाया है, जो उचरि संकत नहिं संस्कृत अर्थ ज्ञान असमर्थ।. (अनेकार्थ)
उचरि सकत नहिं संस्कृत जान्यो चाहत नाम। (नाममाला)
और इनमें उस मित्र को गिन लेना उचित नहीं ज्ञात होता। नंददासजी के यह मित्र कौन थे, जो रसिक थे और थे कृष्णलीला तथा नायिका भेद के जिज्ञासु। इनके मित्र कम न थे पर प्रायः सभी विद्वान् सुकवि तथा भक्त थे। भक्तों में सत्संग होता ही है और एक दूसरे से वे विचार विनिमय करते ही हैं पर किसी विषय को समझाने के लिए ग्रंथ रचना करने को अपने से अधिक विद्वान तथा सुयोग्य व्यक्ति ही से प्रार्थना की जाती है। नंददासजी की एक मित्र स्त्रीभक्त रूपमंजरी का उल्लेख वार्ता में आया है, जिससे यह बराबर मिला करते थे और जिसके नाम पर कहा जाता है कि इन्होंने एक प्रबंध काव्य भी रचा है। उसमें की एक पात्री इंदुमती यही नंददासजी कहे जाते हैं। अतः कहा जा सकता है कि यही रूपमंजरी नंददासजी की रसिक मित्र हैं, जिनके लिए इन्होंने कई रचनाएँ लिखी हैं।

नंददासजी की रचनाओं से केवल उपर्युक्त बातों का पता लगता है और यह भी निर्विवाद रूप से ज्ञात होता है कि यह श्रीकृष्ण के भक्त थे। अब दूसरे लेखकों की रचनाओं से नंददासजी की जीवनी-संबंधी वृत्तांत पर विचार किया जाएगा।

प्रथम तथा प्राचीनतम जिस ग्रंथ में नंददासजी का उल्लेख हुआ है वह श्रीनारायणदास प्रसिद्ध नाम नाभादासजी का भक्तमाल है, जो भक्त-संप्रदाय में अत्यंत आदर के साथ देखा जाता है और साहित्य के इतिहास के लिए एक प्रामाणिक ग्रंथ है। नाभादासजी जयपुर के अंतर्गत गलतानिवासी अग्रदासजी के शिष्य थे और इनका रचनाकाल सं० १६४० और सं० १६८० के बीच में रहा है। भक्तमाल में दो नंददास का उल्लेख है, जिनमें एक के विषय में केवल एक पंक्ति इस प्रकार दी गई है—

नाभा ज्यों नंददास मुई एक बच्छ जिवाई।

प्रियादासजी ने इसपर एक कवित्त में टीका की है, जिससे ज्ञात होता है कि यह बरेली निवासी एक भक्त थे और खेती करते हुए साधु-सेवा में लगे रहते थे। किसी दुष्ट ने बछवा मारकर इनके द्वार पर सुला दिया था, जिसे इन्होंने जिला दिया। यह अष्टछाप के सुकवि नंददासजी नहीं हो सकते क्योंकि इसमें इनका स्थान दूसरा दिया है, यह व्यवसायी कहे गए हैं और इनके कवि होने का संकेत तक नहीं है। दूसरे नंददासजी के विषय में निम्नलिखित छप्पय दिया गया है—

लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में आगर।
सरस उक्ति रस जुक्ति भक्ति रस गान उजागर॥
प्रचुर पयधि लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संवलित भक्त-पद-रेनु-उपासी॥

श्रीचंद्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम पद में पगे।
श्रीनंददास आनंदनिधि रसिक सु प्रभु हित रँग मगे।।

इस छप्पय पर प्रियादासजी की टीका में कुछ नहीं लिखा गया है, जिसका नाम भक्तिरसबोधिनी है और जो कवित्तों में लिखी गई है। यह सं० १७६६ में भक्तमाल की रचना के सौ वर्ष बाद लिखी गई थी। प्रियादासजी को स्यात् कोई नई बात ऐसी ज्ञात नहीं हो सकी थी कि वे उसको टीका में स्थान देते, अतः वे मौन रह गए। उक्त छप्पय की प्रथम दो पंक्तियों से यह ज्ञात होता है कि नंददासजी ने कृष्णलीला के पद तथा रस-रीति पर ग्रंथ लिखे हैं। इनकी रचनाओं को देखने से यह बहुत ठीक ज्ञात होता है। रसमंजरी तथा विरहमंजरी रीतिग्रंथों के अंतर्गत ही आ सकते हैं और अनेकार्थ तथा नाममाला कोपसंबधी हैं। रूपमंजरी आख्यानक रूप में होते भी कृष्णभक्ति से पूर्ण है तथा अन्य सभी रचनाएँ कृष्णलीला-संबंधी हैं। इनकी कविता में उक्तियों का सारस्य तथा भक्ति रस की पूर्णता होना प्रसिद्ध ही है।

इसके बाद की तीन पंक्तियों से पता लगता है कि यह रामपुर के निवासी थे, शुक्ल या सु-कुल वंश में उत्पन्न हुए थे, भक्तों की सेवा करते थे, चंद्रहास-अग्रज-सुहृद थे तथा परम प्रेमपथ के पथिक थे। रामपुर स्थान के विषय में सूकरक्षेत्र माहात्म्य, रत्नावली चरित आदि से मालूम होता है कि यह एटा जिला के अंतर्गत सोरों गाँव के पास है, जिसे अब श्यामपुर कहते हैं और यह भी कहा जाता है कि यह नाम-परिवर्तन नंददासजी के कृष्णभक्त हो जाने के कारण हुआ है। इस विषय पर आगे उक्त पुस्तकों पर विचार करते समय और कुछ विवेचन किया जायगा। सुकुल से अच्छे कुल का तथा शुक्ल आस्पदयुक्त ब्राह्मण होना दोनों अर्थ लिया जा सकता है पर द्वितीय अर्थ लेना ही विशेष-

समीचीन है। भक्त के लिए अच्छे कुल का होना न होना इतने महत्व का न था कि नाभाजी को उसे लिखना आवश्यक होता पर निवासस्थान का उल्लेख करते हुए जाति का लिख देना ही विशेष स्वाभाविक है। अन्य भक्तो के विषय में भी कहीं अन्यत्र उनके अच्छे कुल के होने का वर्णन नहीं किया गया है यद्यपि बहुत से भक्त सुवशजात थे। श्रीचद्रहास-अग्रज-सुहृद के कई अर्थ हो सकते हैं—

१. चद्रहास के बड़े भाई के मित्र
२. चद्रहास के प्रिय बड़े भाई
३ चद्रहास जिसके प्रिय बडे भाई थे

अंतिम दो से नददास तथा चद्रहास का भाई भाई होना स्पष्ट है, चाहे उनमें से कोई भी बडा रहा हो और यही अर्थ लेना युक्तियुक्त है। उस समय चद्रहास नाम का कोई ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति और उसपर नददासजी से बढकर प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं पाया जाता, जिसका उल्लेख कर नददासजी का परिचय दिया जा सके। राजनीतिक या साहित्यिक इतिहासों या भक्त शृखला किसी मे तत्कालीन किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का यह नाम नहीं मिलता। स्वभावत किसी विशिष्ट पुरुष से सबध बतलाकर परिचय देने की प्रथा अवश्य है पर चद्रहास के ऐसा पुरुष होने का कहीं कुछ पता नहीं है इसलिए भाई भाई का सबध बतलाना ही ठीक ज्ञात होता है। अन्य साधनो से इसका कहाँतक समर्थन होता है, यह बाद को देखा जायगा।

ध्रुवदासजी के बयालीस ग्रथ प्रसिद्ध हैं, जिनमे एक भक्त-नामावली है। इनका रचनाकाल सोलहवीं विक्रमीय शताब्दी का अंतिम भाग है। इनकी तीन रचनाओं मे रचना का समय दिया है, जो स० १६९३, स० १६८६ तथा स० १६९८ वि० है। भक्त-

आते। होते-होते यह बात सारे नगर में प्रसिद्ध हो गई। उस स्त्री के घरवालों ने बहुत कुछ रोका-टोका, पर नंददास ने जब एक न माना तब उन लोगों ने उस स्थान को छोड़कर श्रीगोकुल में चलकर रहना ही ठीक किया और वे ग्राम छोड़कर चल दिए। नंददास भी पता लगाकर गोकुल की ओर चल पड़े और उन लोगों से दूर-दूर पीछे लगे चले। जमुनाजी के तट पर पहुँच वे तो नावपर पार उतरकर श्रीगोकुल में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के पास पहुँच गए पर नंददासजी इसी पार बैठ रह गए। श्री गोसाँईजीने कहा कि उस ब्राह्मण को तुम लोग उस पार क्यों छोड़ आए हो? यह सुन वे बड़े लज्जित हुए। तब श्रीगुँसाईजी ने अपने एक सेवक को भेजकर नंददासजी को बुलवाया। नंददासजी की आँखें श्रीगुसाँईजी के दर्शन करते ही खुल गईं और उन्होंने चरणों पर गिरकर दंडवत किया। श्रीगुसाईंजी ने श्रीयमुना स्नान कराकर इन्हें इष्ट मंत्र दिया। इसके अनंतर यह महाप्रसाद लेने जो बैठे, तो लीला का जो अनुभव हुआ, तो सारी रात बैठे रह गए, पत्तल से न उठे। सवेरे श्री गुसांईजी ने आकर कहा—'नंददास, उठो, दर्शन का समय हुआ।' तब उठे और श्री गुसांईजी की वंदना की ('प्रात समय श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजिए नाम' आदि)। तब से यह दर्शन का आनन्द लेने और भगवद्गुणानुवाद में लगे रहते। तुलसीदासजी ने जब यह समाचार सुनकर नंददासजी को काशी से पत्र लिखा तब इन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्या करूँ, श्रीरामचंद्रजी तो एक पत्नीव्रत हैं और श्रीकृष्ण अनंत पत्नियों के स्वामी हैं, अब तो सर्वस्व उनके अर्पण कर चुका। नंददासजी समग्र दशम भागवत की लीला छन्दोबद्ध भाषा में कर रहे थे। उसे देख मथुरा के कथा कहनेवाले ब्राह्मणों ने आकर श्री गोसाईंजी से विनती की कि इस ग्रंथ के बन जाने से

हम लोगों की जीविका मारी जायगी, तब श्रीगुसांईजी की आज्ञा से इन्होंने भागवत की भाषा नहीं की। जब तुलसीदासजी वृंदावन गए, तब नंददास उनसे आकर मिले। तुलसीदासजी ने इनसे कहा कि हमारे संग चलो, पर यह नहीं गए। इसके अनतर यह तुलसीदासजी को श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन को लिवा ले गए पर इन्होंने सिर नहीं झुकाया, तब नंददासजी ने दोहा पढ़ा—

आज की सोभा कहा कहूँ भले विराजे नाथ।
तुलसी मस्तक तब नमे धनुप बाण लीओ हाथ॥

यह सुनकर श्री गोवर्धननाथजी ने श्रीरामचंद्र का रूप धरकर दर्शन दिया। इसके अनंतर जब तुलसीदासजी भाई के साथ गोस्वामी विट्ठलनाथजी के पास गए तब वहाँ भी उन्होंने सिर नहीं झुकाया इसपर नंददासजी के कहने से गोस्वामीजी ने अपने पुत्र श्री रघुनाथलालजी तथा पुत्रवधू श्री जानकी वहू को आज्ञा दी कि तुलसीदास को श्री सीताराम का दर्शन दो। इसपर तुलसीदास को वैसा ही दर्शन मिला तब उन्होंने प्रसन्न होकर एक पद कहा, जिसका टेक इस प्रकार है—

बरनौं आवधि गोकुलग्राम।

उक्त सारांश से नंददास के विषय में इतना पता लगता है कि

१—यह तुलसीदास के भाई तथा ब्राह्मण थे। वार्ता के पाठांतर में इनका सनाढ्य ब्राह्मण होना लिखा है।

२—गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी से दीक्षा लेने के पहिले यह सौंदर्योपासक तथा लंपट थे पर बाद को अनन्य कृष्णभक्त हो गए।

३—दीक्षा के बाद सदा व्रजमंडल में रहे पर पहिले कहाँ रहते थे इसका पता नहीं है। अवश्य ही उनका स्थान अन्यत्र था।

४—भागवत दशम स्कंध का भाषानुवाद लिखते थे पर गुरु की आज्ञा से लिखना बंद कर दिया।

नामावली के दोहे सं० ७७-७९ पर नंददासजी का इस प्रकार उल्लेख है—

> नंददास जो कछु कह्यो राग-रंग सों पागि।
> अच्छर सरस सनेहमय सुनत स्रवन उठ जागि॥
> रमन दसा अद्भुत हुती करत कवित सुढार।
> बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जलधार॥
> बावरो सो रस में फिरै खोजत नेह की बात।
> आछे रस के वचन सुनि वेगि विवस है जात॥

उक्त दोहों से अवश्य ही उनकी जीवनी पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता, पर थोड़े शब्दों में एक भक्त कवि ने नंददासजी की काव्यकला, सहृदयता, प्रेम, भक्ति, रसिकता, तल्लीनता आदि पर पूरा प्रकाश डाल दिया है। साथ ही यह भी निश्चय रूप से बतला दिया है कि उनके समय तक अर्थात् आज से तीन सौ वर्ष पहिले ही नंददासजी अपनी भक्ति तथा काव्य के लिए इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि उनका नाम इतने आदर से उक्त नामावली में ग्रथित किया गया।

व्रजभाषा में वल्लभ संप्रदाय की बीसों वार्ताएँ मिलती हैं, जिनमें दो 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' विशेष विशद और प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रथम में वल्लभाचार्य के शिष्यों का और द्वितीय में विट्ठलनाथजी के शिष्यों का विवरण है पर है सभी उनके गुरु के प्रति भक्ति की गाथा और साथ-साथ में कुछ गोविंद के प्रति भी। इस कारण नंददासजी का उल्लेख द्वितीय ग्रंथ में मिलता है। ये दोनों ग्रंथ विट्ठलनाथजी के लिखे हैं या नहीं, इसमें संदेह है पर यह निर्विवाद मान लेना चाहिए कि उनके लिखे हुए न होते भी उनसे सुनी हुई बातों को किसीने बाद में लिख डाला है और यही कारण है कि

लेखक ने अपने गुरु के नाम का बराबर आदर के साथ उल्लेख किया है तथा कई स्थलों पर यह स्पष्टतः झलकता है कि कोई किसी से सुनी हुई बात लिख रहा है। प्रथम द्वितीय से प्राचीनतर है क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती भक्तों का विवरण है। विट्ठलनाथजी का निधन सं० १६४४ में हुआ था अतः ये रचनाएँ उसी के आस-पास में प्रणीत हुई होगी। इनकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त नहीं हुई हैं, जिनसे इनके रचनाकाल का समय निश्चित किया जा सके और न इसके निश्चय करने के लिए इस भूमिका में काफी स्थान है। प्रथम की दो खंडित हस्तलिखित प्रतियाँ मेरे संग्रह में हैं पर उनमे लिपिकाल नहीं दिया है। ये ग्रंथ जिस किसीने लिखे हों पर उसने उन भक्तों के प्रचलित तथा प्रख्यात वार्ताओं ही का समकालीन लोगों से तथा जन-श्रुति से सुनकर सकलित किया है और ये दो तीन शताब्दी से कम प्राचीन भी नहीं ज्ञात होतीं अतः कम से कम इनमें दी हुई वार्ताओं की शुद्धता में कोई शंका नहीं पड़ती।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के डाकोर संस्करण के पृ० २८३५ पर नददासजी का विवरण दिया है जिसका सारांश इस प्रकार है :—

नददासजी तुलसीदास के छोटे भाई थे। यह अत्यत विषया-सक्त थे और नाच तमाशे में अवश्य पहुँचते थे। एक समय कुछ लोग श्रीरणछोड़जी के दर्शन को द्वारिका चले तब यह भी तुलसीदासजी की आज्ञा न मानकर यात्रा को चल दिए। यह मथुराजी सीधे पहुँच गए पर जिन लोगों के साथ यह वहाँ गए थे उनको छोड़कर अकेले आगे बढ़े, परन्तु रास्ता भूलकर सिंध नद में जा पहुँचे। वहाँ एक क्षत्री की बहू का रूप देखकर ये उसपर मोहित हो गए। यह नित्य वहाँ जाते और उसे देखकर चले

५—नंददासजी गायक तथा कवि थे।

६—तुलसीदासजी काशी से इनसे मिलने को व्रज आए और इन्हें अपने साथ लिवा जाना चाहा पर यह नहीं गए।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के पृ० ३५८-७ पर रूपमंजरी की वार्ता दी हुई है, जिसका सारांश इसी भूमिका में आगे रूपमंजरी रचना के विवेचन में दिया गया है। उससे ज्ञात होता है कि नंददासजी से रूपमंजरी से मित्रता थी और प्रायः उन दोनों का सत्संग रहा करता था। नंददासजी की मृत्यु अकबर के समय में हुई थी, जिसकी मृत्यु सं० १६६२ में हुई। गोस्वामीजी ने इनके तथा रूपमंजरी के देहत्याग की प्रशंसा की थी और उनका देहावसान सं० १६६६ में हुआ था अतः नंददासजी की मृत्यु सं० १६६० के पहिले होना निश्चित है।

'श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्राकट्य वार्ता' में अष्टछाप के कुल कवियों का नाम देकर लिखा गया है कि इन सभी भक्तों ने श्रीनाथजी के सम्मुख कीर्तन किए थे। नंददासजी की श्रीनाथजी की सेविका रूपमंजरी के साथ मित्रता थी और उसीके लिए रसमंजरी की रचना करने का भी उल्लेख है। नंददास कृत रूपमंजरी काव्य की नायिका रूपमंजरी यही इनकी मित्रिणी है और उसकी सहचरी इंदुमती स्वयं नंददास हैं। इस उल्लेख से नंददासजी के 'रसिक मित्र' का कुछ परिचय मिल जाता है।

इधर ही कुछ ऐसी रचनाएँ मिली हैं, जिनसे तुलसीदास तथा नंददासजी की जीवनी पर विशेष प्रकाश पड़ता है। रचनाकाल के विचार से इनमें रत्नावली-दोहा-संग्रह प्रथम है, जिसमें रत्नावली के बनाए हुए १११ दोहे संगृहीत हैं। यह तुलसीदासजी की पत्नी थीं ऐसा दोहों से ज्ञात होता है। यह सोरों में अन्य कई रचनाओं रत्नावली चरित, शूकरक्षेत्र माहात्म्य आदि के साथ

पं० गोविदवल्लभ पंत के पास सुरक्षित है। इस दोहा संग्रह की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल सं० १८७५ है। इसके कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं—

> जासु दलहि लहि हरपि हरि हरत भगत भव रोग।
> तासु दास पद दासि है 'रतन' लहत कत सोग॥
> वैस बारही कर गह्यौ सोरहिं गौन कराय।
> सत्ताइस लागत करी नाथ 'रतन' असहाय॥
> सागर कर रस ससि 'रतन' संवत मो दुखदाय।
> पिय-वियोग जननी मरन करन न भूल्यो जाय॥
> मोइ दीनों संदेश पिय अनुज नंद के हाथ।
> 'रतन' समुझि जनि पृथक मोइ सुमिरत श्रीरघुनाथ॥

तात्पर्य इतना निकला कि जिसके पत्र को लेकर प्रसन्न हो हरि भगवान भक्त के सांसारिक कष्ट दूर करते हैं उसके दास (तुलसीदास) की दासी रत्नावली है। इसका विवाह बारह वर्ष की अवस्था में, द्विरागमन सोलह में तथा त्याग सत्ताइसवाँ वर्ष लगते ही हुआ था। अंतिम घटना सं० १६२७ की है, जिस वर्ष में रत्नावली की माता की भी मृत्यु हुई थी। इसके पति ने अपने छोटे भाई नंद (या छोटे भाई के पुत्र) के हाथ संदेश भेजा था कि हे रत्नावली मुझे अपने से अलग मत समझ, हम रघुनाथ का स्मरण कर रहे हैं (या पाठांतर से जो तू रघुनाथ का स्मरण करती है)।

जिस प्रकार तुलसीदासजी की यौवनकाल में स्त्री के प्रति आसक्ति प्रसिद्ध है प्रायः उसी प्रकार नंददासजी की भी विपयासक्ति थी और दोनों ही अपने इष्टदेव के प्रति झुकते ही सांसारिक माया-मोह से एकदम विरक्त हो पड़े। यह हो सकता है कि

तुलसीदासजी पहिले और नंददासजी बाद को विरक्त हुए हों। नंददासजी का सोरों से काशी तुलसीदास से मिलने जाना और तुलसीदास का नंददास से मिलने व्रजमंडल जाना दो सौ वैष्णवन की वार्ता से स्पष्ट है। हो सकता है कि काशी से लौटती समय तुलसीदासजी ने अपनी पत्नी को नंददासजी के द्वारा संदेश भेजा हो और रत्नावली ने स्नेह के कारण नंददास का दोहे में केवल 'नंद' से स्मरण किया हो। उक्त उद्धरण से रत्नावली का जन्म संवत् १६०० आता है और इसीके आसपास या विशेषकर कुछ पहिले ही नंददासजी का जन्मकाल होना चाहिए।

अब तक ऊपर लिखे गए किसी भी साधनग्रंथ में नंददासजी के किसी संतान के होने का उल्लेख नहीं मिला है। इधर हाल में सूकरक्षेत्र माहात्म्य नामक एक रचना नंददासजी के पुत्र कृष्णदासकृत मिली है। इन नंददासात्मज कृष्णदास निर्मित एक ज्योतिषग्रंथ 'वर्षफल' भी प्राप्त हुआ है और उक्त भट्टजी के पास रामचरितमानस के बाल, अयोध्या तथा अरण्य कांडों की जो हस्तलिखित खंडित प्रतियाँ हैं वे इन्हीं कृष्णदास के लिए लिखी गई थीं। अब इन तीनों के उद्धरणों से विवेचन किया जाय कि यह नंददास कौन हैं? सूकरक्षेत्र माहात्म्य में कुछ दोहे इस प्रकार हैं, जो सं० १८७० की लिखी हस्तलिखित प्रति से उद्धृत किए जा रहे हैं। रचनाकाल सं० १६७० है।

वंदहुँ तुलसीदास पितु-भ्रात भावा पद-जलज।
जिन निज बुद्धि विलास रामचरितमानस रच्यो॥
सानुज श्रीनँददास पितु की बंदहुँ चरन-रज।
कीनो सुजस प्रकास रासपंचअध्यायि मनि॥
बंदहुँ कृपा निकेत पितुगुरु श्रीनरसिंह पद।
बंदहु शिष्य समेत बल्लभ आचारज सुपद॥

बंदहुँ कमला मात बंदहुँ पद रत्नावली।
जासु चरन-जलजात सुमिरि लहहिं तिय सुरथली॥
सुकुल बंस द्विज-मूल पितरन पद सरसिज नमहुँ।
रहहिं सदा अनुकूल कृष्णदास निज अंस गनि॥

इस ग्रंथ की रचना का समय इस प्रकार दिया है—

सोरह सौ सत्तर प्रमित संवत सित दल माँह।
कृष्णदास पूरन करयो चैत्र महात्म वराह॥

ग्रंथ के अंतिम भाग में वंशावली दस दोहों में दी गई है—

खेत वराह समीप सुचि, गाम रामपुर एक।
तहँ पंडित मंडित बसत, सुकुल वश सविवेक॥
पंडित नारायन सुकुल, तासु पुरुष परधान।
धारयो सत्य सनाढ्य पद, ह्व तप-वेद-निधान॥
शस्त्रशास्त्र विद्या कुशल, भे गुरु द्रोन समान।
ब्रह्मरंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्वान॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्तपिता अनुहारि।
पंडित श्रीधर, शेषधर, सनक, सनातन चारि॥
भये सनातन देव-सुत, पंडित परमानंद।
व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चिदानंद॥
तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परबीन।
लघु सुत जीवाराम भे, पंडित धरम धुरीन॥
पुत्र आत्माराम के, पंडित तुलसीदास।
तिमि सुत जीवाराम के, नंददास, चँदहास॥
मथि मथि वेद पुरान सब, काव्यशास्त्र इतिहास।
रामचरितमानस रच्यो, पंडित तुलसीदास॥
वल्लभ-सुत-वल्लभ भये, तासु अनुज नँददास।
धरि वल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास॥

नंददास सुत हौं भयो, कृष्णदास मतिमंद।
चंद्रहास बुध सुत अहै, चिरजीवी ब्रजचंद॥

उक्त उद्धरणों का सार इतना हुआ कि शूकर क्षेत्र के पास रामपुर ग्राम में शुक्ल वंश के नारायण पंडित ने सनाढ्य पद धारण किया, जिनके चार पुत्र श्रीधर, शेषधर, सनक तथा सनातन थे। सनातन के पुत्र परमानंद, उनके सच्चिदानंद और इनके दो पुत्र आत्माराम तथा जीवाराम थे। आत्माराम के पुत्र रामचरितमानसकार तुलसीदास हुए और जीवाराम के रास पचाध्यायी के रचयिता नंददास तथा चंद्रहास दो पुत्र हुए। नंददास के पुत्र कृष्णदास, और चंद्रहास के पुत्र ब्रजचंद हुए। नंददास की स्त्री का नाम कमला था और तुलसीदास की स्त्री का नाम रत्नावली था। नंददासजी के श्रीनृसिंह गुरु थे और वल्लभाचार्यजी दीक्षागुरु थे। नंददासजी ने अपने ग्राम रामपुर का श्यामपुर नाम कर दिया था, जो अब इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह वल्लभ संप्रदाय के थे और कृष्णदास भी उसी सम्प्रदाय के थे क्योंकि इन्होंने भी उनकी वंदना की है। कृष्णदास कृत 'वर्षफल' ज्योतिषग्रंथ है, जिसका निर्माण सं० १६५७ में हुआ था। इसके अंत में कुछ दोहे हैं, जिनसे नंददास की जीवनी से संबंध है।

तात अनुज चँदहास बुध, वर निरदेसहि धारि।
लिख्यो जथामति वर्षफल, बालबोध संचारि॥

कवित्त

कीरति की मूरति जहाँ राजै अगोरथ की,
तीरथ वराह भूमि वेदनु जे गाई है।
जाई ग्राम रामपुर स्यामपुर कीनो तात,
स्यामायन स्यामपुर बसि सुखदाई है॥

सुकुल विप्र वंस मे बिग्य तहाँ जीवाराम,
तासु पुत्र नंददास कीरति कवि पाई है ॥
ता सुत हौं कृष्णदास वर्षफल भाषा रच्यो,
चूक होइ सोधें मम जानि लघुताई है ॥
सोरह सौ सत्तावनि, विक्रम के वर्ष माँझि,
भई अति कोप दृष्टि बिस्व के विधाता की।
बीतत असाढ़ बाढ़ लाई बड़ देव धुनि,
बूड़ी जल जन्मभूमि रत्नावलि माता की।
नारी नर बूड़े कछु सेसे बड भाग रहे,
चिन्ह मिटे बदरी के दुखद कथा ताकी।
आजु नभ कृष्णमास तेरस शनि कृष्णदास,
वर्षफल पूर्यो भई दया बोध दाता की ॥

पुष्पिका—इति श्रीकृष्णदास विरचितम् भाषा वर्षफलम् सम्पूर्णम् ॥ संवत् १८७२ मार्गसिर कृष्णा त्रतियां गुरुवासरे, सहसवान नगरे शुभम्, शुभम्, शुभम्।

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि कृष्णदास ने पिता के छोटे भाई चंद्रहास की आज्ञा से यह वर्षफल ग्रंथ बनाया है। गंगाजी के तटस्थ शूकरक्षेत्र में रामपुर ग्राम को इनके पिता ने श्यामपुर कर दिया, जहाँ इन लोगों का निवासस्थान था। शुक्ल ब्राह्मण जीवाराम के पुत्र कवि नंददास हुए, जिनके पुत्र कृष्णदास हुए। विक्रमीय स० १६५७ में रत्नावली माता की जन्मभूमि बदरी ग्राम आषाढ़ बीतते बीतते बाढ़ आ जाने से जलमग्न हो गया और इसी वर्ष के कृष्ण तेरस शनिवार को यह रचना पूरी हुई। इसमें रत्नावली नाम के साथ माता शब्द रखने से कुछ लोग चिहुँकेंगे पर यह केवल आदरार्थ ही नहीं आया है प्रत्युत् प्रायः लोग ताई चाची न कहकर बडी माँ, छोटी माँ इत्यादि कहते भी हैं। वास्तव

में वे सभी माता की श्रेणी ही में हैं और अन्य उद्धरणों से यह ज्ञात हो चुका है कि कृष्णदास की माता का नाम कमला है और उनके ताऊ तथा ताई का नाम तुलसीदास तथा रत्नावली है।

रामचरितमानस् की एक प्राचीन खंडित हस्तलिखित प्रति का ऊपर उल्लेख हो चुका है, जो सं० १६४३ वि० की लिखी हुई है। दो कांडों की पुष्पिकाएँ नष्ट नहीं हुई हैं और उनके आवश्यक अंश नीचे दिए जाते हैं।

१. श्रीतुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास ,काशीजी मध्ये सं० १६४३ आषाढ़ शुक्ल ४ शुक्र इति।

२. संवत् १६४३ शाके १५०८..........नंददास पुत्र कृष्णदास हेत लिपी रघुनाथदास ने काशीपुरी में।

इनसे नंददास के पुत्र कृष्णदास का होना तुलसीदास तथा नंददास के समय ही में लिखे लेख से समर्थित होता है यदि ये सत्य हों। साथ ही यह कृष्णदास का सोरों निवासी होना भी वतलाता है। यदि उक्त प्रतियाँ वास्तव में सच्ची हैं तो दो बातें निश्चित होती हैं। एक तो रामचरितमानस का संवत् १६४३ के पूर्व ही समाप्त हो जाना तथा दूसरे गोस्वामीजी की मूल प्रति से इनकी प्रतिलिपि का होना। मानस का 'संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।' के अनुसार आरंभ सं० १६३१ में हुआ था पर समाप्ति कब हुई इसका उल्लेख नहीं हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि यह एक प्रकार मानस की प्राप्त प्रतियों में प्राचीनतम है पर इसकी ओर मानस के प्रेमियों की दृष्टि अब तक नहीं गई नहीं तो इसके विषय में भी विशेष छानवीन हो चुकी होती।

रत्नावली-चरित एटा जिले के सोरों ग्राम के निवासी मुरली-

धर चतुर्वेदी कृत है, जिसकी रचना सं० १८२९ में हुई थी। यह पद्य में है और इनकी एक अन्य रचना बारहसेनी जातिवृक्ष भी है। जंगनामा के रचयिता कवि मुरलीधर अथवा श्रीधर से यह भिन्न हैं, जो प्रयागनिवासी तथा पूर्ववर्ती थे। रत्नावली चरित की प्राप्त प्रति का लिपिकाल सं० १८६४ है। मूल तथा प्रतिलिपि दोनों ही उक्त भट्टजी के पास हैं। यह रचना चरितनायिका के प्रायः दो सौ वर्ष बाद जनश्रुति के आधार पर लिखी गई है, जैसा कि रचयिता स्वयं कहता है।

साध्वी रत्नावलि कहानि। बिरधन मुख जस परी जानि।
दुज मुरलीधर चतुरबेद। लिखि प्रगटो जगहित सभेद॥

इस चरित में विशेषतः तुलसीदास तथा रत्नावली के चरित्रों का तथा गोस्वामीजी के वैराग्य लेने ही तक का वर्णन है और नंददासजी का कहीं कहीं प्रसंगवश उल्लेख हो गया है। जैसे विवाह के प्रसंग में रत्नावली के पिता जब वर की खोज में निकले तब किसीने कहा—

तबै मीत एक दई आस। गुरु नृसिंह के जाहु पास॥
स्मारत वैष्णव सो पुनीत। अखिल वेद आगम अधीत॥
चक्रतीर्थ ढिग पाठशाल। तहीं पढ़ावत विपुल बाल॥
तहाँ रामपुर क सनाढ्य। सुकुल वंश घर द्वै गुनाढ्य॥
तुलसिदास अरु नंददास। पढ़त करत विद्या विलास॥
एक पितामह पौत्र दोउ। चंद्रहास लघु अपर सोउ॥
तुलसी आत्माराम पूत। उदर हुलासी के प्रसूत॥
गए दोउ ते अमरलोक। दादी पोतहि करि ससोक॥
....

नंददास अरु चंद्रहास। रहहिं रामपुर मातु पास॥
दंपति बिच बाराह धाम। लहत मोद आठोहु याम॥

उक्त उद्धरण से ज्ञात होता है कि एक पितामह के तुलसीदास, नंददास तथा चंद्रहास पौत्र थे और अंतिम सबसे छोटे थे। तुलसीदास आत्माराम तथा हुलासो के पुत्र थे और उनके मरने पर दादी के पास बाराह धाम में रहते थे। नंददास और चंद्रहास रामपुर में माता के पास रहते थे। ये सब भाई सोरों में चक्रतीर्थ के पास स्थित स्मार्त वैष्णव वेदपाठी गुरु नृसिंह की पाठशाला में पढ़ते थे। नंददास आदि शुक्ल आस्पद धारी सनाढ्य ब्राह्मण तथा रामपुर के निवासी थे। रत्नावली पति-वियोग काल में कभी रामपुर में और कभी बदरिका ग्राम में रहती हुई सं० १६५१ में स्वर्ग सिधारीं—

कबहुँ रामपुर बसति जाइ। कबहुँ बदरिका रहति आइ॥
भू सर रस भू बरस पूरि। सुरग गई लहि सुजस भूरि॥

साथ साथ पढ़ने के उक्त उल्लेख से यह भी ज्ञात होता है कि तुलसीदास तथा नंददास की अवस्थाओं में दो चार या बहुत कर सात आठ साल की विभिन्नता हो सकती है। उक्त सभी विवेचन से नंददास की जीवनी की जो रूपरेखा तैयार होती है वह निम्न प्रकार से है—

जन्म—सं० १६०० के आसपास (रत्नावली के प्राय: समवयस्क)
माता-पिता—पिता आत्माराम और माता कमला।
जाति—ब्राह्मण, सनाढ्य, शुक्ल।
भाई—तुलसीदास चचेरे बड़े भाई व चंद्रहास छोटे सहोदर।
संतान—कृष्णदास पुत्र।
गुरु—शिक्षा गुरु स्मार्त वैष्णव वेदज्ञ ब्राह्मण नृसिंहजी।
दीक्षा गुरु गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी।
जन्मस्थान—एटा जिला के अंतर्गत सोरों के पास रामपुर ग्राम, जो अब श्यामपुर कहलाता है।

निवासस्थान—व्रजमंडल।
मित्र—रूपमंजरी, वैष्णवी श्रीकृष्ण की उपासिका।
स्वभाव—दीक्षा लेने के पहिले विषयासक्त थे पर बाद को अनन्य कृष्णभक्त हो गए। सहृदय भावुक कवि थे।
मृत्यु—सं० १६६२ के पहिले इनकी मृत्यु।

श्रीवृंदावन-निवासी प्राणेश कवि ने 'अष्टसखामृत' नामक काव्य-ग्रंथ में श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ-जी के अष्टछाप के भक्तकवियों की महिमा का वर्णन किया है, जिसकी एक हस्तलिखित प्रति गोकुल में प्राप्त हुई है। यह प्रति-लिपि सं० १८६५ के चैत्र शुक्ला ५ शुक्रवार को समाप्त हुई थी। इसमें नंददासजी के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह नीचे दिया जाता है।

राम-भगत तुलसी-अनुज नंददास व्रज ख्यात।
द्विज सनौढ़िया सुकुल कवि कृष्ण भगत अवदात॥
नंददास विट्ठल-कृपा बहु बित वैभव पाय।
सरच्यौ सब परमार्थ हित श्रीहरि भक्ति बढ़ाय॥
करयौ राम तें स्याम निज बदलि इष्ट अरु गाम।
रच्यौ स्याम सर बाछल हरि बलदाऊ धाम॥
सौंपि अनुज चँदहास कर सुत दारा धन धाम।
आए सूकर खेत तजि व्रज बसि सेयौ स्याम॥
नंददास मुख-माधुरी बोलनि प्रान अनूप।
सुर नर मुनि की का चली जिन मोहे व्रजभूप॥
बाँचत श्रीमद्भागवत विविध भाँति अरथाय।
बैन सुधारस जनु सने देत भक्ति उमगाय॥
कृष्ण राम के रूप भए नंददास मन आनि।
लखि तुलसी मन चलि रहे प्रान जोरि जुग पानि॥

रामायन भापा विरचि भ्राता करी प्रकास।
देखि रची श्रीभागवत भापा श्री नँददास॥
जब बरनत गोपी-विरह नंददास पद गाइ।
स्रवत नैन निरक्षर वनत कृष्ण प्रेम पुलकाइ॥
प्रान सनेही स्याम के नंददास बड़ भाग।
प्रति छन हरि सेवा निरत, पुष्टि पंथ अनुराग॥

उक्त उद्धरण से तुलसीदास, नंददास तथा चद्रहास का भाई और सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण होना समर्थित होता है। नंददासजी अपनी संपत्ति, स्त्री तथा पुत्र को अपने भाई चंद्रहास को सौंपकर शूकरक्षेत्र से व्रज चले आए और यहाँ भागवत भापा बनाया। नंददासजी का मन रखने के लिए श्रीकृष्ण ने तुलसीदासजी को रामजी का रूप दिखलाया। नंददासजी के विरह के पद बड़े मर्मस्पर्शी थे और यह हरिभक्ति के अनन्य अनुरागी थे।

तात्पर्य यह कि इस ग्रंथ से प्राप्त विवरण यद्यपि कोई नया प्रकाश नंददासजी की जीवनी पर नहीं डालता पर अन्य साधनों से प्राप्त सामग्री की कई बातों का समर्थन अवश्य करता है।

वेनी माधवकृत मूल गोसाईं चरित में नंददासजी का कुछ उल्लेख इस प्रकार है। सं० १६८९ के मार्गशीर्ष में गोस्वामी तुलसीदासजी वृंदावन आए और नाभाजी के पास गए, जो ब्राह्मण संत थे। इनके साथ मदनमोहनजी के मंदिर में गए, जहाँ श्रीकृष्ण मूर्ति ने धनुषबाण हाथ में ले लिया। इस लीला की बरसाने में बड़ी प्रसिद्धि हुई। दक्षिण से श्रीरामचंद्रजी की एक मूर्ति अयोध्या जा रही थी और यहीं यमुनातट पर ले जानेवाले विश्राम के लिए ठहर गए। उस मूर्ति को देखकर उदय ब्राह्मण रीझ गए और गोसाईंजी से प्रार्थना की कि यह यहीं स्थापित की जाय। इस पर गोसाईंजी के प्रताप से मूर्ति हिली नहीं तब

'जिजिमा' (न) ने वहीं स्थापित कर दिया और कौशल्यानंदन नाम रखा। इसी समय नंददासजी कनौजिया इनसे आकर मिले, जो सेस सनातन के शिष्य होने के नाते गोस्वामीजी के गुरुभाई हुए। यहीं हितजी के पुत्र गोपीनाथ से अवध की महिमा कहकर तथा हलवाई के घर श्रीबालकृष्ण को दिखलाकर चित्रकूट चले गए। (हिंदुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित गो० तुलसी० पृ० २४१–२)

उक्त चरित के नाभाजी प्रसिद्ध भक्तमाल के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि वह जन्मांध, निम्नवर्ण के तथा जयपुर के अंतर्गत गलता के निवासी थे। इनका भक्तमाल भी प्रायः सं० १६६० में लिखा गया था। मूर्ति के धनुषबाण धारण करने की दंतकथा नंददासजी के साथ दर्शन करते समय घटित हुई अन्यत्र बतलाई गई है और इसमें नाभाजी के साथ। स्यात् इसीलिए वह इसमें विप्र संत बतलाए गए हों, क्योंकि हरिजन का मंदिर में जाना लिखना अनुचित ज्ञात हुआ। यह गोसाईं चरित विश्वसनीय ग्रंथ नहीं है, अतः इसपर विशेष विचार करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

सुंदरदास श्रीवास्तव्य कायस्थ खरे दूलहराम के पुत्र थे, जो कमरुद्दीन खाँ वज़ीर के नायब राय भोगचंद के पुत्र थे। दूलहराम के बड़े भाई राय नौनिद्धराम भी उसी पद पर रहे। दूलहराम तथा सुंदरदास दोनों बंगाल आए और अंतिम मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ दीवान हो गया। यह मथुरानिवासी थे पर यहीं इन्होंने अपने परिवार को बुला लिया। आठ वर्ष दीवान रहने के अनंतर इन्होंने छुट्टी ले ली और तीर्थयात्रा करते हुए काशी आकर यहीं बस गए। इन्होंने श्रीकृष्णलीला तथा संतों की वंदना पर बहुत से पद कहे हैं। साथ-साथ प्रत्येक भक्त के एक-एक या दो पद भी

संगृहीत किए हैं। इनका समय विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दि का पूर्वार्द्ध है। मीराबाई के बाद नंददासजी की वंदना इस प्रकार लिखी है—

श्रीनंददास को करौं प्रनाम। पंचाध्या जिनका सरनाम॥
अतिहि भक्ति श्री प्रेम तें गायो। मूरतिवंत रासि दिखरायो॥
इक इक चौपाई मनो सागर। प्रेम प्रीति के आगर नागर॥
तिन सों चहौं बास वृंदावन। झूलि रहैं ताही रस में मन॥

रचनाएँ

नंददास के जीवनचरित्र लिखने में जिन मुख्य साधनों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमें उनकी रचनाओं में केवल रासपंचाध्यायी तथा भाषा भागवत का नाम आया है, अन्य किसी रचना का नाम नहीं मिलता। गार्सिन द तासी ने अपने ग्रंथ 'इस्तवार द ला लितरेत्योर इंदीन' में नंददास के चौदह ग्रंथों का नाम दिया है—

१. अनेकार्थमंजरी	२. नाममाला	३. दशमस्कंध
४. पंचाध्यायी	५. भँवरगीत	६. मानमंजरी
७. रासमंजरी	८. रसमंजरी	९. रूपमंजरी
१०. जोगलीला	११. रुक्मिणीमंगल	१२. सुदामाचरित
१३. प्रबोधचंद्रोदय	१४. गोवर्धनलीला	

इनमें २ तथा ६ एक ही रचना है, केवल नाम-भेद से दो मान लिए गए हैं। रासमंजरी भूल से विरहमंजरी के लिए लिखा गया है, ऐसा ज्ञात होता है पर यदि ऐसा नहीं है तो रसमंजरी ही का दुबारा नाम लिख गया है। तासी लिखता है कि 'डाक्टर स्प्रेंजर के पुस्तकालय में उसने इन चौदह ग्रंथों का संग्रह स्वयं देखा था, जो ५७६ पृष्ठों में था और जिसे करीमुद्दीन

ने संगृहीत किया था। रास पंचाध्यायी का कलकत्ते का छपा तथा मदनपाल द्वारा संपादित ५४ पृष्ठों का संस्करण और अनेकार्थ-मंजरी तथा नाममाला दोनों के दो संयुक्त संस्करण देखे थे, जिनमें एक सन् १८१४ ई० में खिदिरपुर से और दूसरा हीराचंद द्वारा संपादित व्रजभाषा काव्यसंग्रह के अंतर्गत सन् १८६५ ई० में वंबई से प्रकाशित हुआ था।' (इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदीन द्वितीय संस्करण भाग २ पृ० ४४५-७)

शिवसिंह सरोज में नंददासजी की निम्नलिखित सात रचनाओं का उल्लेख है—

१. नाममाला	२. अनेकार्थ	३. पंचाध्यायी
४. रुक्मिणीमंगल	५. दशम स्कंध	६. दानलीला
७. मानलीला		

इनमें अंतिम दो तासी के लिखे हुए ग्रंथो से भिन्न नई रचनाओं के नाम आए हैं। डा० सर जॉर्ज ग्रिअर्सन ने अपने ग्रंथ 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान' में इन्हीं सात नामों को दुहराया है। बा० राधाकृष्णदास ने स्वसंपादित भक्त-नामावली के परिशिष्ट में इन्हीं ग्रंथों का उल्लेख किया है। इसके अनंतर काशी नागरीप्रचारिणी सभा की खोज की रिपोर्टों में नंददासजी की रचनाओं की सूचना मिलती है। यह खोज-कार्य सन् १९०० ई० से आरंभ हुआ है और अबतक चला जा रहा है। प्रथम वर्ष की रिपोर्ट में इनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं है। आगे की रिपोर्टों में सूचित रचनाओं का क्रम से नाम दिया जाता है—

१. सन् १९०१ ई० की वार्षिक रिपोर्ट—१. भागवत दशम स्कंध (सं० ११)
२. रास पंचाध्यायी (सं० ६९)

२. सन् १९०२ की वार्षिक रिपोर्ट—१. अनेकार्थमंजरी (सं० ५८)
२. विरहमंजरी (सं० ७०)
३. " १९०३ " " —१. अनेकार्थ नाममाला (सं० १४३)
४. " १९०६-८ की त्रैवार्षिक " —१. रासपंचाध्यायी
२. भागवत दशम स्कंध
३. नामचिंतामणिमाला
४. जोगलीला ५. स्यामसगाई
(सं० २०० ए—२०० ई)
५. " १९०९-११ " " —१. नासिकेतुपुराण गद्य
२. नाममाला-मानमंजरी
३. नाममाला ४. अनेकार्थमंजरी
५. रसमंजरी ६. विरहमंजरी
(सं० २०८ ए—२०८ एफ)
६. " १९१२-१४ " " —१. रुक्मिणीमंगल (सं० १२०)
७. " १९१७-१९, " " —१. नाममाला २. पंचाध्यायी
३. स्यामसगाई
(सं० ११९ ए—११९ सी)
८. " १९२०-२२ " " —१. नाममाला (दो प्रति)
२. नाममंजरी ३. अनेकार्थभाषा
४. भ्रमरगीत
(सं० ११३ ए—११३ एफ)

इस प्रकार सन् १९२२ ई० तक की प्रकाशित रिपोर्टों में, जिनमें सन् १९१५-१६ की रिपोर्ट अभी छपी नहीं है, कुल चौदह रचनाओं का उल्लेख हुआ है। इसके बाद की अप्रकाशित रिपोर्टों में निम्नलिखित तीन रचनाओं का उल्लेख है—

१. फूलमंजरी　२. रानी मंगो　३. कृष्णमंगल

मिश्रबंधु विनोद के नए संस्करण में तीन नई रचनाओं का उल्लेख हुआ है, जिनके नाम हैं—

१. ज्ञानमंजरी　२. हितोपदेश　३. विज्ञानार्थप्रकाशिका (गद्य)

इनमे अंतिम गद्य-ग्रंथ है तथा किसी संस्कृत ग्रंथ की टीका है, जिसे मिश्रबंधु ने छत्रपुर मे स्वयं देखा है। प्रथम दो के विषय में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है कि ये नाम कहाँ से प्राप्त हुए हैं। मिश्रबंधुविनोद का आधार प्रधानतया सभा की खोज की रिपोर्टें ही हैं। कॉंकरौली के श्रीद्वारिकेश पुस्तकालय मे 'रास-लीला' की एक हस्तलिखित प्रति का होना कहा जाता है, जो नंददास की कृति बतलाई जाती है। इनके सिवा नंददासजी की कृति के रूप मे 'बाँसुरीलीला' तथा 'अर्धचंद्रोदय' नाम की दो और पुस्तकें कही जाती हैं। 'सिद्धांतपंचाध्यायी' की एक हस्तलिखित प्रति हमारे संग्रह मे है, जिसका उल्लेख स्व० प० रामचंद्रजी शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास के परिवर्द्धित संस्करण में किया है।

इस प्रकार देखा जाता है कि निम्नलिखित रचनाएँ अवश्य ही नददास कृत हैं जो उनके नाम से बराबर प्रसिद्ध रही हैं, जिनमें उनका छाप है, भाषा, वर्णन-शैली आदि से उन्हीं की ज्ञात होती हैं तथा जिनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी प्राप्त हैं।

१. रासपंचाध्यायी　२. भागवत दशम स्कंध　३. भ्रमरगीत
४. रूपमंजरी　५. रसमंजरी　६. विरहमंजरी
७. अनेकार्थमंजरी　८. नाममंजरी　९. रुक्मिणीमंगल
१०. श्यामसगाई　११. सिद्धांत पंचाध्यायी

सुदामाचरित, जोगलीला तथा गोवर्द्धनलीला तीनों का उल्लेख तासी ने आज से सत्तर वर्ष पूर्व नंददास की रचनाओं में किया

है और उन सभी रचनाओं की एक एक या दो दो प्रतियाँ प्राप्त हैं। इनमें प्रथम कवि की आरंभिक रचना ज्ञात होती है क्योंकि भाषा, काव्य-कला आदि की दृष्टि से यह बहुत शिथिल बन पड़ी है। गोवर्द्धनलीला नंददासजीकृत भागवत दशम स्कंध के २४-२५वें अध्यायों से लेकर तथा कुछ पंक्तियाँ जोड़कर स्वतंत्र रचना बना दी गई ज्ञात होती है। इस कारण नंददास की रचनाओं के जिस संग्रह में भागवत दशम स्कंध भी हो उसमें इसके अलग देने की आवश्यकता ही नहीं है। सुदामाचरित की कथा श्रीकृष्ण के मथुरा जाने के बाद की है और दंतकथा के अनुसार रासलीला के अध्यायों के बाद का भागवत का अनुवाद नष्ट कर दिया गया था इसलिए हो सकता है कि उसी नष्ट हुए अनुवाद का यह अंश हो। इसके अंत में लिखा भी है—

चरित स्याम को इहि है ऐसो। बरन्यौ 'नंद' जथामति जैसो॥
दसमसकंध बिमल सुख बानी। सुनत परीछित अति रति मानी॥

जोगलीला के कवि नंददास हैं या नहीं इसमें संदेह हो है। सभा की सन् १९०६-८ की रिपोर्ट सं० २०० डी पर इसे नंददास कृत लिखा गया है पर उसमें ग्रंथ के उद्धरण नहीं दिए हैं, जिनसे मिलान किया जा सके अतः यह उल्लेख उसी प्रकार अविश्वास्य है, जिस प्रकार नासिकेतुपुराण तथा गंगादास कृत नाममाला को नंददासकृत-लिखना। सभा के संग्रह की हस्तलिखित प्रति में नंददासजी की छाप पूरी रचना में कहीं नहीं है और केवल अंत में पुष्पिका इस प्रकार है—'इति श्रीनंददास कृत जोगलीला संपूर्ण'। उसके प्रथम तथा अंतिम पद इस प्रकार हैं—

एक समैं मन मित्र मोहि- अग्या यह दीनी।
याही तें मति। उकवि जोगलीला तब कीनी॥

शुक सनकादिक सारदा नारद सेस महेस।
देहु बुद्धि बर उदै उर अच्छर उकति बिसेस॥
यहै विनती अहै॥ १॥

कपट रूप करि किते भाँति कहुँ भेस बनावै।
गोपी गोप गोपाल कौं नित ख्याल खिलावै॥
रूप-सिरोमनि राधिका रसिक-सिरोमनि स्याम।
नित्य बसौ उर मैं सदाँ करि संकेत सधाम॥
स्याम-स्यामा सहित॥ ६२॥

'नित्य बसौ उर' का पाठांतर 'निपट बसौ उर' तथा 'बसत उदै उर' भी मिलता है और इसपर यह तर्क किया गया है कि 'उदय' कवि की छाप है। प्रथम पद के 'देहु बुद्धि बर उदै उर' में श्लेष से दो अर्थ निकलते हैं पर अंतिम पद के 'बसत ? (बसौ) उदै उर मे सदा' से एक ही अर्थ ध्वनित हो पाता है अर्थात् 'उदय' कवि का छाप है। जिन प्रतियों का प्रयाग वि० वि० के संस्करण मे उल्लेख हुआ है, उनमें किसी का लिपिकाल नहीं दिया गया है। खोज के सन् १६०० ई० की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट में जोगलीला की एक हस्तलिखित प्रति का संख्या ६८ पर उल्लेख है जिसका लि० का० सं० १९०४ है और कवि उदय कृत माना गया है। इधर सन् १९०१ ई० की खोज में उदय की प्रायः २०-२५ छोटी-छोटी रचनाओं का पता चला है, जिनमें जोगलीला के समान अन्य अनेक लीलाएँ हैं। उद्धरणों के मिलाने से ज्ञात होता है कि सब एक ही कवि की रचनाएँ हैं।

जोगलीला की एक प्रति मे, जो हमारे संग्रह में मौजूद है, अंतिम पद के स्थान पर दूसरा ही पद मिलता है, जो नीचे पुष्पिका सहित दिया जाता है—

अधिकार रखनेवाले के कभी योग्य नहीं है। यह कृति इनकी न हो सकती।

रासलीला तथा दानलीला भी नंददासजी की कही जाती पर इनकी दो एक के सिवा अधिक प्रतियाँ नहीं मिलती हैं। पूर दानलीला तथा रासलीला का आदि और अंत से दो उद्धरण प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' में उद्धृत कि गया है पर उनमें नंददास के प्रामाणिक ग्रंथों का सा काव्य-कौश भाषा-सौष्ठव तथा सारल्य नाम को भी नहीं है वरन् भाषा शैथिल्य, भावहीनता, नीरसता ही अधिक है। ये सुप्रसि नंददास की कृतियाँ नहीं ज्ञात होतीं। राजनीति हितोपदेश संबंध में भी यही कहा जाएगा। भक्तकवि नंददासजी ने सिव अपने इष्टदेव के कीर्तन के और कुछ नहीं लिखा है। जो प्रति इसकी मिली है वह बहुत आधुनिक है और किसी अन्य स्वामी नंददास की कृति है।

फूलमंजरी की जो प्रति हमारे संग्रह में है, उसका लिपिकाल सं० १७९३ वि० है और यह नंददास की अन्य कृतियों के बीच में लिखी गई है पर इसमें आदि या अंत में कहीं नंददासजी का नाम नहीं आया है। रामहरिजी ने, जो इस संग्रह के तैयार करानेवाले थे तथा नंददासजी की रचनाओं के प्रेमी थे, इसे नंददासजी कृत न मानकर ही उनका इसमें उल्लेख नहीं कराया है और न वे इसके रचयिता का नाम ही जानते थे, नहीं तो उसका अवश्य नाम देते। इसमें ३१ दोहे हैं पर डा० याज्ञिक की प्रति में ३२वाँ दोहा अधिक है और उसमें कवि की छाप भी है। दोहा इस प्रकार है—

पहोपबंध धरि ग्रंथ है कह्यो पहोपन नाम।
परसोतम याको भजै लै लै पहोपन नाम॥

सभा की खोज की सन् १९२६-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में ३१ ही दोहे हैं, छापवाला दोहा नहीं है पर पुष्पिका में—इति श्री फूलमंजरी नंददास किरत संपूर्ण समाप्तं—दिया है। ऐसी अवस्था में इसे नंददासजी कृत न मानना ही उचित है।

रानी मंगौ भूल से सभा की सन् १९२९-३१ की रिपोर्ट में नंददास कृत लिख ली गई है, क्योंकि जो अंत का उद्धरण दिया गया है वह अनर्गल-सा ज्ञात होता है। उसमें किसी दानलीला की चौपाई की चार पंक्तियाँ मिल गई हैं। पत्राकार पुस्तकों के पत्रों के आगे पीछे हो जाने से और उसपर विचार न करने से ऐसी भूल हो जाती है पर इस असावधानी का फल बहुत बुरा होता है, जिससे अकारण ही रानी मंगौ नंददासजी के गले मढ़ दी गई। कृष्णमंगल नंददासजी के छाप सहित बीस पंक्तियों का एक पत्र मात्र है। इस प्रकार निश्चय होता है कि सुप्रसिद्ध नंददासजी के केवल तेरह ग्रंथ हैं, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। इनके सिवा इनके स्फुट गेय पदों का संग्रह पदावली के नाम से अंत में दिया गया है।

१ रास पंचाध्यायी

यह नंददासजी की सर्वश्रेष्ठ तथा प्रसिद्धतम रचना है और अब तक इसके कई संस्करण हो चुके हैं। इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बहुत मिलती हैं। काशी नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में भी बहुत सी प्रतियों का उल्लेख है पर ग्रंथ के उदाहरण एकाध ही में दिए गए हैं। प्रकाशित प्रतियों में सबसे प्राचीन सं० १८८५ की कलकत्ता टाइप में छपी हुई रास पंचाध्यायी है, जिसके प्रथम चार अध्यायों में २४६ रोले हैं तथा अंतिम में ५३ रोले तक हैं। प्रति अपूर्ण है पर इस प्रकार देखा

रिद्धि सिद्धि नव निद्धि बाढ़ें गृह भारी।
महा मंगल कूँ देत सदा चित आनंदकारी॥
जो कोई सीखें, सुनें लीला जोग प्रकास।
भक्ति मुक्ति ताकों मिले निश्चे केसोदास॥
जाय जम-त्रास मिटि॥ ९४॥

इति श्री जोगलीला केसोदास कृतं संपूर्णम्। मिती दुतिय ज्येष्ठ व० ३० मंगलवार सं० १८३५॥

जोगलीला का प्रथम पद मंगलाचरण के रूप में है और उसमें शुक सनकादिक का नाम आना चिंत्य नहीं है क्योंकि ये सभी भक्त-श्रेष्ठ हैं। वैष्णव संप्रदाय के विषय में संक्षेप में इस भूमिका में लिखा गया है, जिसके देखने से ज्ञात हो जायगा कि शिवजी तथा सनकादिक दो वैष्णव संप्रदायों के दैवी आचार्य हैं, जिनके लौकिक आचार्य मध्वाचार्य तथा निंबादित्य हुए हैं और प्रथम के अंतर्गत वल्लभ संप्रदाय है। शुकदेवजी, नारदजी आदि परम वैष्णव हैं अतः इनके नामों का मंगलाचरण में आना चिंत्य नहीं है प्रत्युत उचित है क्योंकि कवि कृष्णलीला का वर्णन करने के लिए ही उन परम भक्तों का स्मरण कर रहा है तथा सहायता का इच्छुक है। यह रचना उदय की हो या केशोदास की हो इसपर तर्क करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है पर नंददास की नहीं है, ऐसा प्रायः निश्चित रूप से कहा जा सकता है। यद्यपि यह रचना नंददासजी के भ्रमरगीत के अनुकरण पर बनी है पर भ्रमरगीत में अनुरागमयी विरहविधुरा गोपियों की जो कातरोक्तियाँ हैं वे करुण रस से ओत-प्रोत हैं और इसी कारण वे अधिक मर्मस्पर्शी हो गई हैं। जोगलीला में यह बात नहीं है। इसमें मिलन के पहिले की अनुरागावस्था का लीलामय प्रेमालाप मात्र है, शुद्ध क्रीड़ा सा है। माता के सामने श्रीराधिकाजी का जोगिन

बनकर एक ज्ञात या अज्ञात योगी से इस प्रकार वादविवाद करना, क्या लड़ना झगड़ना कहें, अनुचित ज्ञात होता है और नंददासजी से उत्कृष्ट भक्त-कवि के योग्य नहीं हो सकता।

नासिकेतपुराण नामक गद्यग्रंथ को खोज की रिपोर्ट में नंददास कृत न मानते हुए भी उन्हींके नाम से वह लिखा गया है। प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' के परिशिष्ट १ (ड) में इस ग्रंथ की तीन प्रतियों से उद्धरण दिए गए हैं, जिनमें दो का लिपिकाल सं० १७६५ तथा सं० १८५५ है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को इधर एक हस्तलिखित प्रति इस ग्रंथ को प्राप्त हुई है, जो सं० १८८८ वि० की लिखी हुई है। आरंभ तथा अंत में नंददासजी का कहीं रचयिता के नाम से उल्लेख नहीं है। ग्रंथ के भीतर पाठ में उनका कई बार उल्लेख हुआ है, जो इस प्रकार है। आरंभ में—

१. नंददासजी आपणा सिखा नै कहतु है।
२. सु अबै स्वामी नंददासजी आपणा मित्रा ने
भाषा करि कहतु है।
सिखु पूछतु है गुसाईं जु मेरे अभिलाषा
नासकेतु पुराण सुणिबे की यच्छया वहोतु है।
......अब नंददासजी कहतु हैं॥

अंत में—
स्वामी नंददास आपणा मित्रा नै
भाषा करि सुणाइछै सु या कथा महा अमृतु है।

उक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि किसी गोस्वामी नंददासजी ने नासिकेतुपुराण भाषा में अपने शिष्य या मित्र को सुनाया था, जिसे किसी तीसरे व्यक्ति ने पुस्तक का रूप दिया है। इसकी

जाता है कि इस संस्करण में तीन सौ से अधिक रोले हैं। इसमें भूमिका आदि कुछ नहीं है, जिससे इसके आधार का कुछ पता चले। इसके अनंतर सं० १९३५ (सन् १८७८-९ ई०) की हरिश्चंद्र चंद्रिका में भारतेंदु बा० हरिश्चंद्र ने इसे प्रकाशित किया। इसमें भी आरंभ में कोई लेख नहीं है, जिससे ज्ञात हो सके कि किन साधनों के आधार पर इसका संपादन किया गया है। इसका शीर्षक केवल पंचाध्यायी रखा गया है और अध्यायों में भी यह विभक्त नहीं है। इसमें २८४ रोले संगृहीत हैं। इसके पचीस वर्ष बाद काशी नागरीप्रचारिणी सभा से बा० राधाकृष्णदास के संपादन में इसका एक संस्करण निकला, जिस कार्य में बा० जगन्नाथदासजी रत्नाकर की सहायता पाने का भी उल्लेख हुआ है। इसका नाम रासपंचाध्यायी है और यह श्रीमद्भागवत के अनुसार पाँच अध्यायों में विभाजित भी है। इसमें ३२७ रोले हैं अर्थात् चंद्रिका में प्रकाशित पंचाध्यायी से ४३ रोले अधिक हैं। बा० राधाकृष्णदास ने लिखा है कि चंद्रिका तथा मथुरावाली लीथो की प्रति ही उनके संपादन-कार्य की आधार हैं तथा 'दोनों को मिलाने से पाठभेद बहुत निकला तथा कुछ पद ऐसे मिले जो चंद्रिका में न थे और कुछ ऐसे जो मथुरावाली में नहीं।' इनके सिवा उनके पास बा० कार्तिकप्रसाद खत्री तथा गोस्वामी किशोरी लाल की दो प्रतियाँ भी थीं, जिनमें एक अत्यंत अशुद्ध थी तथा दूसरी में केवल प्रथम अध्याय मात्र था। संपादन के विषय में यह लिखते हैं कि—

'चंद्रिका की प्रति के अतिरिक्त सब प्रतियों में स्थान स्थान पर कुछ दोहे भी दिए हैं और पाँचो अध्याय भी लगाया है। अध्याय मैंने भी लगा दिया है और मूल श्रीमद्भागवत में जो नाम उन अध्यायों का लिखा है वह भी फुटनोट में लिख दिया है, परंतु

दोहों को मूल में न रखकर नोट में दिया है क्योंकि यह स्पष्ट जान पड़ता है कि ये दोहे कदापि नंददासजी के नहीं हैं क्योंकि कहाँ तो वह कविता और कहाँ ये भद्दे दोहे। दूसरे श्रीमद्भागवत में कहीं श्रीमती राधिकाजी का नाम नहीं आया है। और ऐसे ही नंददासजी ने भी इसको बचाया है, परंतु दोहेवाले ने इस बारीकी को न समझकर एक दोहे में भद्दी तरह पर नाम दे दिया है जिसे पाठकगण स्वयं जाँच सकते हैं। पदों के क्रम का भी बहुत कुछ उलट पलट है, मैंने प्रायः चंद्रिका का क्रम और पाठ ही प्रधान रक्खा है। हाँ कोई-कोई पाठान्तर मुझे दूसरी प्रतियों का विशेष अच्छा जान पड़ा है तो उनको प्रधान कर दिया है।'

सभा की प्रति के प्रकाशन के एक वर्ष बाद बा० बालमुकुंद गुप्त ने 'रास पंचाध्यायी तथा भँवरगीत' प्रकाशित किया, जिसके संपादन के लिए चंद्रिका, मथुरा की लीथो की प्रति तथा सं० १८९४ की छपी प्रति को आधार बतलाया गया है। उसमें प्रथम दो बा० राधाकृष्णदास के भी आधार थे। इसमें पदसंख्या ३२२ है अर्थात् बा० राधाकृष्णदास की प्रति से ५ रोला कम हैं। इसके चौदह वर्ष बाद बा० ब्रजमोहनलाल विशारद का संस्करण निकला, जिसके आधार बा० राधाकृष्णदास तथा बा० बालमुकुंद गुप्त के संस्करण मात्र हैं। इसके अनंतर जो संस्करण निकले, वे सब इन्हींके आधार पर प्रकाशित हुए हैं। पं० जवाहिरलालजी चतुर्वेदी द्वारा संपादित नंददासजी के ग्रंथों की अप्रकाशित प्रति में रास पंचाध्यायी में ३२९ रोले दिए गए हैं। सन् १९३६ में लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारागंज प्रयाग से प्रकाशित रासपंचाध्यायी में ३१३ रोले हैं, जिसका संपादन पं० जवाहिरलालजी चतुर्वेदी ने किया है, ऐसा उल्लेख उसमें है।

उक्त प्रकाशित सात आठ प्रतियों के साथ जिन छ हस्तलिखित

सं०	प्रति-विवरण	लिपि या प्रकाशन काल	पद. सं०	अध्याय है या, नहीं	नाम	विशेष
१.	हस्तलिखित, निजी	सं० १७९३	२०९	नहीं	भाषा पंचाध्यायी	
२.	,, ,,	नहीं है	२११	,,	पंचाध्यायी भाषा	
३	,, ब्रजभूषणदास	सं० १८२१ पौष शु० ७ बुध	२०७	,,	पंचाध्यायी रासलीला	पत्राकार
४.	,, वराहमिहिराचार्य पुस्त० पटना	नहीं	२०६	,,	पंचाध्यायी	
५.	,, मुरारीलाल केडिया	१७५७ मार्गशीर्ष शु० १ शनी	२१५	है	पंचाध्यायी	
६.	हस्तलिखित प्र० आर्यभाषा पुस्तकालय काशी	सं० १८७१	२११			
७.	छापा, चंद्रिका	सन् १८७८ सं० १९३५	२८४	नहीं	,,	
८.	,, राधाकृष्णदास	सं० १९६०	३२७	है	रासपंचाध्यायी	
९.	,, बालमुकुंद गुप्त	,, १९६१	३२२	,,	,,	
१०.	,, मनमोहनलाल	,, १९७५	३२७	,,	,,	
११.	,, कलकत्ता टाइप	,, १८०५	१०० के ऊपर	,,	,,	सटिप्पणी

प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथ का संपादन हुआ है उन सबका विवरण नीचे तालिका रूप में देकर देखा जायगा कि वास्तव में नंददास कृत कितने रोले थे और प्राचीन प्रतियों में मिलते थे।

इस प्रकार देखा जाता है कि उक्त हस्तलिखित प्रतियों में, जो ढाई सौ वर्ष से डेढ़ सौ वर्ष प्राचीन हैं, २०६ से २१५ तक रोले हैं पर प्रकाशित प्रतियों में इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। इनमें २८४ से ३२७ तक रोले हैं अर्थात् एक सौ से अधिक रोले बढ़ गए हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नंददास' में रास-पंचाध्यायी के संपादन कार्य में जिन प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है, उनमें क को विशेष प्राचीन माना गया है और इसमें तथा ट प्रति में, जो भरतपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित है, क्रमशः २१२ तथा २११ रोले हैं। पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी की पंचाध्यायी के विषय में उक्त ग्रंथ में लिखा गया है कि यह इसी विक्रमीय बीसवीं शताब्दि की है, २०८ रोले हैं तथा क प्रति से मिलता हुआ इसका पाठ है। इस प्रकार निश्चित रूप से यह ज्ञात हो जाता है कि मूलतः रास पंचाध्यायी में २१५ से अधिक रोले नहीं थे। उन आधुनिक हस्तलिखित प्रतियों पर भी विश्वास न करना चाहिए, जिनमें अधिक रोले हैं क्योंकि वे प्रकाशित प्रतियों की प्रतिलिपियाँ हो सकती हैं और उनमें प्रक्षेप की भी प्रतिलिपि सम्मिलित होगी।

नंददासजी की केवल चार रचनाओं को प्रकाशन का अवसर मिला है और इनमें केवल एक भ्रमरगीत ही ऐसी रचना है, जिसमें एक भी पद किसी संस्करण में अधिक या कम नहीं मिले। अन्य तीनों में काफी प्रक्षिप्त अंश मिलते हैं। अनेकार्थ-मंजरी तथा नाममणि मंजरी में क्षेपक अंश काफी है और इसका आगे उल्लेख किया गया है। ऐसी अवस्था में इनके सबसे प्रसिद्ध

ग्रंथ में इनके भक्तों ने क्षेपक न मिलाया हो यह हो नहीं सकता। छ हस्तलिखित प्रतियाँ भी इसका समर्थन करती हैं क्योंकि यदि ये १२० पद वास्तव में नंददासजी के होते तो अवश्य ही किसी न किसी प्राचीन प्रति में मिलते। अतः वे ही पद नंददासजी कृत मान्य हैं जो उक्त सभी हस्तलिखित प्रतियों में हैं। एक बात और है। हस्तलिखित प्रति ख में पाँचों मंजरियाँ भी हैं, जिनमें दो में अर्थात् अनेकार्थ तथा नाममंजरी में रामहरिजी ने अपने रचे दोहों को मिलाने का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है और नंददासजी की रचना में कितने दोहे थे इसका भी उल्लेख किया है। यदि उनकी लिखी पंचाध्यायी में प्रक्षिप्त अंश होते या किए गए होते तो उसका भी वह अवश्य उल्लेख करते पर उनका न कुछ लिखना यही कहता है कि उस समय तक प्राप्त पंचाध्यायी में क्षेपक अंश नहीं था। उक्त कारणों से उल्लिखित हस्तलिखित प्रतियों में प्राप्त पदों के सिवा जो पद मिले हैं वे परिशिष्ट में प्रक्षेप मानकर दे दिए गए हैं।

इसके नाम के विषय में भी कुछ संशय रहा है। उक्त पाँच हस्तलिखित प्रतियों, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के खोज-विवरण में प्राप्त तीन हस्तलिखित प्रतियों तथा चंद्रिका में केवल पचाध्यायी नाम दिया है। किसी में पंचाध्यायी के बाद तथा किसी में पहिले 'भाषा' शब्द दिया है और किसीमें पंचाध्यायी के बाद रासक्रीड़ा लिखा है। कलकत्ता-संस्करण तथा चंद्रिका के बाद के प्रकाशित सभी संस्करणों मे रासपंचाध्यायी नाम दिया है और यही नाम हिन्दी साहित्य के इतिहासों मे भी पाया जाता है। यही नाम प्रसिद्ध हो गया है और ग्रंथ के आशय को भी विशिष्टरूप से प्रकट करता है अतः यही नाम रखा गया है।

यद्यपि इसके नाम के अनुसार इस रचना को पाँच अध्यायों

में आरंभ ही से विभक्त रखना चाहिए था पर प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों में ऐसा नहीं मिलता। कलकत्ता-संस्करण तथा बा० राधाकृष्णदास की संपादित प्रति में श्रीमद्भागवत के अनुसार यह पाँच अध्यायों में विभक्त है, जो ठीक भी है और उनके रखने से लाभ ही है, हानि नहीं। इस कारण ये अध्याय उसी प्रकार रखे गए हैं।

मूलग्रंथ श्रीमद्भागवत में भी २९-३३ तक पाँच अध्याय रासलीला के हैं और श्रीनंददासजी ने उसी का यह अनुवाद किया है अतः उस दशा में भी पाँच अध्याय रहने चाहिए।

२ सिद्धांत पंचाध्यायी

यह रचना अभी हाल ही में मिली है और इसका कथानक वही है, जो रास पंचाध्यायी का है। इसमें कुछ कुछ सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए चले हैं अतः इसका ऐसा नामकरण किया है। आरंभ में २० रोलाओं में परम शक्तिमान परमब्रह्म की स्तुति करते हुये भक्तों पर कृपा रखने के कारण उनका सगुण रूप में वृंदावन में अवतीर्ण होना कहा गया है।

इसके अनंतर शरद निशि तथा पूर्ण चंद्र की शोभा वर्णन करते हुए 'शब्द-ब्रह्ममय वंशी' द्वारा गोपियों को महारास का निमंत्रण दिया गया है। इन सब ने वेदादि द्वारा कथित सभी कर्म धर्म का परित्याग कर एकमात्र उन्हीं हरिभगवान की शरण ली और सांसारिक किसी प्रकार के प्रेम-स्नेह का ध्यान न कर उन्हीं की लीला में अपने को समर्पित कर दिया। विद्वानों के ज्ञान-मार्ग से, जिसमें बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती तथा इसलिए ज्ञान ही सर्वस्व है, गोपियों ने अपना विभिन्न मार्ग प्रगट किया। इस मार्ग को परम ब्रह्मज्ञानी शुकदेवजी, नारदजी, उद्धवजी

यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिवजी ने भी अपनाया। यही कारण है कि भक्तिमार्ग की गुरु येही गोपियाँ मानी गई हैं। यही नंददासजी ने कहा है कि 'नाहिन कछु शृंगार कथा इहि पंचाध्यायी।' यह तो भक्तिमार्ग का सिद्धांत रोचक ढंग से सरल तथा सरस भाषा में बतलाता है। ४४वें रोला में व्रज-युवतियों के वन में पहुँचने पर इसका वर्णन आरंभ होता है। नंददासजी कहते हैं कि रास-पंचाध्यायी में गोपियों के आनेपर 'अनाकृष्ट मन' श्रीकृष्णजी ने जो उपदेश दिया था वह केवल उनके उत्तर द्वारा उनकी भक्ति, शुद्ध प्रेम, को संसार पर प्रगट करने के लिए कहा था। इसके अनंतर श्रीकृष्णजी क्यों छिप गए तथा फिर प्रगट हुये और क्यों रासलीला दिखलाया, इन सबकी कुछ कुछ व्याख्या करते गए हैं। इन्हीं व्याख्याओं की प्रधानता के कारण तथा संक्षेप में लीला कहने से इसका यह नामकरण किया गया है। इस पर विशेष आलोचना में लिखा जायगा।

इस रचना में कुल १३८ रोला हैं, जिनमें प्रायः १०० सिद्धांत-विषयक तथा बाकी लीला संबंधी हैं। यह रचना नंददासजी की सर्वोत्तम रचनाओं में से है और यह हिंदी-साहित्य की एक निधि है।

३–४ अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी

नंददासजी कृत पाँच मंजरियाँ प्रसिद्ध हैं और इन पाँचों का एक संग्रह स्यात् अहमदाबाद से बहुत दिन हुए प्रकाशित भी हुआ था पर देखने में नहीं आया। इनमें रसमंजरी, विरहमंजरी तथा रूपमंजरी के नामों में विभिन्नताएँ नहीं मिलतीं पर अनेकार्थ-मंजरी तथा मानमंजरी के नामों में विशेष गड़बड़ी मची है। अनेकार्थध्वनिमंजरी, अनेकार्थमाला, नाममाला, नाममणिमंजरी,

नाममंजरी आदि अनेक नामकरण हो गए हैं, यहाँ तक कि दोनों को मिलाकर एक नाम अनेकार्थ नाममाला भी बन गया है। इस प्रकार नामों की गड़बड़ी के साथ साथ इन दोनों की पदसंख्या में भी बहुत विभिन्नता आ गई है। दोहों में निर्मित होने तथा केवल शब्दार्थ-संग्रहमात्र करना ही कार्य होने से प्रक्षिप्त अंशों को जोड़ देने की सुविधा अधिक थी और यही कारण है कि कोषों की सहायता से कुछ दोहे गढ़कर प्रायः लोगों ने मिला दिए हैं, जिन्हें अलग करना सुकर कार्य नहीं रह गया है।

सं० १८३५ वि० की हस्तलिखित प्रति में, जिसे रामहरीजी ने प्रस्तुत कराया था, इन दोनों मंजरियों के अंत में कुछ दोहे दिए गए हैं, जो विचारणीय हैं। दोहे इस प्रकार हैं—

अनेकार्थ मंजरी—बीस ऊपरें एक सौ नंददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि कीनें हैं जु नवीन॥
श्रीमन् श्रीनँददास जू रसमद आनँदकंद।
रामहरी की डीठता छमियो हो जगबंद॥
कोश मेदिनी आदि औ कछू शब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि बिच संधि दिय बाँचौ जा चित भाइ॥

मानमंजरी—दो सत पैंसठ ऊपरे दोहा श्रीनँददास।
रामहरी बाकी किए कोष धनंजय तास॥
संतन को बानी बड़ी रामहरी मतिमंद।
अपुने समुझन कों लिखे बन तें बिच दिए संद॥

इस हस्तलिखित प्रति में पाँचों मंजरियाँ एक साथ दी हुई हैं और प्रायः एक ही समय की लिखी हुई हैं। अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी के प्रक्षिप्त अंशों का तो उल्लेख हुआ है पर अन्य तीन के संबंध में किसी प्रकार के क्षेपक की सूचना नहीं दी गई है। पूर्वोक्त उल्लेखों से यह तो स्पष्ट है कि प्रायः पौने दो सौ वर्ष

पहिले उक्त दोनों मजरियों में कितने दोहों का होना प्रसिद्ध था या कितने दोहे उस समय तक प्राप्त थे। रामहरीजी के पूर्व या उनके समय तक भी इन दोनों में कुछ प्रक्षिप्त अश मिल चुके थे या नहीं, इसे निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता पर तब भी उन दोहों को देखने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि इनमें प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं। रामहरिजी नददास की कविता के प्रेमी थे और स्वय कवि थे। यदि प्रक्षिप्त अश उन्हें ज्ञात होते तो अवश्य लिखते। इस प्रकार यह निश्चित सा है कि अनेकार्थ में १२० तथा मानमजरी में २६५ दोहे नददासजी के हैं और इनसे अधिक जो मिलते हैं वे दूसरों के हैं, जो इस प्रकार मिला दिए गए हैं कि उन्हें छाँटना कठिन कार्य हो गया है।

रामहरिजी की रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२९-३१ की खोज की रिपोर्ट में हुआ है, जिनमें दो रचनाएँ मौलिक हैं तथा [illegible] मात्र हैं। मौलिक रचनाएँ लघनामावली तथा लघुशा[illegible] की हैं और [illegible]

१. अनेकार्थ और नाममाला—बनारस लाइट प्रेस से सं० १९२९ में पुनः प्रकाशित। प्रथम पुस्तक में १५६ और द्वितीय में २६७ दोहे हैं।

२. अनेकार्थ और नाममाला—हरिप्रकाश यंत्रालय द्वारा अमीरसिंहजी की आज्ञा से संशोधित होकर सं० १९३३ में प्रकाशित। प्रथम में १५४ और द्वितीय में २७७ दोहे हैं।

३. अनेकार्थ-नाममाला—लीथो का छापा, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय में सं० ११ पर सुरक्षित है। प्रकाशक, स्थान तथा समय कुछ नहीं दिया है। प्रथम में १५२ और द्वितीय में २६७ दोहे हैं।

४. अनेकार्थ-नाममाला—भारतजीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित। प्रथम में १५४ और द्वितीय में २७८ दोहे हैं।

इन छपी प्रतियों के सिवा हमारे संग्रह में तीन मानमंजरी की व एक अनेकार्थमंजरी की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. 'मानमंजरी'—लिपिकाल सं० १६२५। दोहा संख्या २३८। मंगलाचरण के ४ दोहों के अनंतर 'मान' शब्द से पुस्तक का आरंभ है और अंत 'माला' तथा 'जमल' से है।

२. 'मानमंजरी'—प्रति का अंतिम पृष्ठ नहीं है। २५८ वाँ दोहा माला पर है। प्रति काफी पुरानी है और पाठ शुद्ध है।

३. 'मानमंजरी' नाममाला—लिपिकाल सं० १८३५ है। पद-संख्या ३२५ है। पाठ शुद्ध है।

४. अनेकार्थध्वनिमंजरी'—पद-संख्या १३८ है और लिपिकाल सं० १८३५ के आसपास है।

इनके सिवा काशी नागरी प्रचारिणी सभा को तीन हस्त-

पहिले उक्त दोनों मंजरियों में कितने दोहों का होना प्रसिद्ध था या कितने दोहे उस समय तक प्राप्त थे। रामहरीजी के पूर्व या उनके समय तक भी इन दोनों में कुछ प्रक्षिप्त अंश मिल चुके थे या नहीं, इसे निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता पर तब भी उन दोहों को देखने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें प्रक्षिप्त अंश नहीं हैं। रामहरिजी नंददास की कविता के प्रेमी थे और स्वयं कवि थे। यदि प्रक्षिप्त अंश उन्हें ज्ञात होते तो अवश्य लिखते। इस प्रकार यह निश्चित सा है कि अनेकार्थ में १२० तथा मानमंजरी में २६५ दोहे नंददासजी के हैं और इनसे अधिक जो मिलते हैं वे दूसरों के हैं, जो इस प्रकार मिला दिए गए हैं कि उन्हें छाँटना कठिन कार्य हो गया है।

रामहरिजी की रचनाओं का उल्लेख काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२९-३१ की खोज की रिपोर्ट में हुआ है, जिनमें दो उनकी मौलिक हैं तथा अन्य संग्रह मात्र हैं। मौलिक रचनाएँ लघुनामावली तथा लघुशब्दावली दोनों ही स० १८३४ की हैं और ये दोनों अनेकार्थी तथा पर्यायवाची शब्दों पर रचे गए हैं। हो सकता है कि इसी के एक वर्ष बाद अनेकार्थमंजरी तथा मान-मंजरी की प्रतिलिपि कराते समय इन अपनी रचनाओं का उनमें समावेश करा दिया हो। नंददासजी की रचनाओं से वे कितने परिचित थे, यह निम्नलिखित दोहों से ज्ञात होता है—

वृंदावन जमुना पुलिन, राधाकृष्ण बिहार।
नंददास सत कविन की बानी करै अहार॥
नंददास नामावली अमरकोश के नाम।
इन तें जे बितरक्क औ लिखे हेत घनस्याम॥

अनेकार्थमंजरी तथा मानमजरी की सम्मिलित चार छपी हुई प्रतियाँ प्राप्त हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. अनेकार्थ और नाममाला—बनारस लाइट प्रेस से सं० १९२९ में पुनः प्रकाशित। प्रथम पुस्तक में १५६ और, द्वितीय में २६७ दोहे हैं।

२. अनेकार्थ और नाममाला—हरिप्रकाश यंत्रालय द्वारा अमीरसिंहजी की आज्ञा से संशोधित होकर सं० १९३३ में प्रकाशित। प्रथम में १५४ और द्वितीय मे २७७ दोहे हैं।

३. अनेकार्थ-नाममाला—लीथो का छापा, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय में सं० ११ पर सुरक्षित है। प्रकाशक, स्थान तथा समय कुछ नहीं दिया है। प्रथम में १५२ और द्वितीय में २६७ दोहे हैं।

४. अनेकार्थ-नाममाला—भारतजीवन' प्रेस, काशी से प्रकाशित। प्रथम में १५४ और द्वितीय में २७८ दोहे हैं।

इन छपी प्रतियों के सिवा हमारे संग्रह में तीन मानमंजरी की व एक अनेकार्थमंजरी की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. 'मानमंजरी'—लिपिकाल सं० १६२५। दोहा संख्या २३८। मंगलाचरण के ४ दोहों के अनंतर 'मान' शब्द से पुस्तक का आरंभ है और अंत 'माला' तथा 'जमल' से है।

२. 'मानमंजरी'—प्रति का अंतिम पृष्ठ नहीं है। २५८ वाँ दोहा माला पर है। प्रति काफी पुरानी है और पाठ शुद्ध है।

३. 'मानमंजरी' नाममाला—लिपिकाल सं० १८३५ है। पद-संख्या ३२५ है। पाठ शुद्ध है।

४. अनेकार्थध्वनिमंजरी'—पद-संख्या १३८ है और लिपिकाल सं० १८३५ के आसपास है।

इनके सिवा काशी नागरी प्रचारिणी सभा को तीन हस्त-

लिखित प्रतियाँ अनेकार्थमंजरी की मिली हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. संख्या ६४ स० (पुस्तकालय की सूची की), दोहा सं० १५३। इसमें दोहा संख्या १२१ 'रस' पर और १५२ 'स्नेह' पर हैं, बीच में ३१ दोहे प्रक्षिप्त हैं और १ दोहा ग्रंथ-माहात्म्य पर है।

२. संख्या ६४ ग (पुस्तकालय-सूची), लिपिकाल सं० १८७७, दोहा सं० १४८। अंतिम दोहा ग्रंथ-माहात्म्य पर है। छापवाले दोहे की संख्या ११८ है। सारंग पर अन्य में चार दोहे हैं पर इसमें केवल एक है।

३. संख्या ६४ च (पुस्तकालय-सूची), दोहा संख्या १०४ अपूर्ण। इसका नाम 'भाषानेकार्थ' दिया है।

याज्ञिक संग्रह में जो अब सभा को मिल गई है, अनेकार्थ-मंजरी की तीन प्रतियाँ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. सूची संख्या १७७।१४ की प्रति आरंभ में खंडित है। कुल १२१ दोहे इसमें हैं पर लिपिकाल नहीं दिया गया है।

२. सूची संख्या १७६।१४ की प्रति में ११८ दोहे हैं। यह पूर्ण है पर लिपिकाल इसमें भी नहीं दिया है।

३. सूची संख्या २९४।१४ की प्रति सं० १८१८ की है और पूर्ण है। इसमें ११७ दोहे हैं और भरतपुर में लिखी गई है।

अनेकार्थमंजरी की ऊपर लिखी चार छपी प्रतियों में १२१ वें दोहे में नंददास की छाप दी हुई है और मंगलाचरण के चार दोहों में तीसरे में भी छाप है। दोहे इस प्रकार हैं—

> उचरि सकत नहिं संस्कृत अर्थ ज्ञान असमर्थ।
> तिन हित 'नंद' सुमति जथा भाषा कियो सुअर्थ ॥
> तेल सनेह, सनेह घृत, बहुरो प्रेम सनेहु।
> सो निज चरनन गिरिधरन नंददास कहँ देहु ॥

हस्तलिखित प्रतियों में एक को छोड़ कर सभी में मंगलाचरण के केवल तीन दोहे हैं और इस प्रकार इस रचना में १२० दोहों के होने का हिसाब ठीक बैठ जाता है। चारों छपी प्रतियों में इस छाप के बाद तेंतीस दोहे हैं, जो अवश्य ही औरों की रचनाएँ हैं। सभा की खोज की रिपोर्टों में अनेकार्थमंजरी की जिन हस्त-लिखित प्रतियों का उल्लेख है, उनमें भी १२२, १२० तथा ११६ दोहे हैं। इसी प्रकार मानमंजरी की उक्त चार प्रतियों में किसी में मंगलाचरण के दो किसीमें तीन या चार दोहे हैं और दूसरे में नंददासजी की छाप है। अंत में 'जुगल' नाम के दोहे में छाप है, जो छपी प्रतियों में दो में २७६ वीं तथा २७७ वीं और दो प्रतियों में २६७ वीं संख्या पर है। दोहे इस प्रकार हैं—

उचरि सकत नहिं संस्कृत जान्यो चाहत नाम।
तिन हित 'नंद' सुमति तथा रचत नाम को दाम॥
जमल, जुगल, जुग, द्वंद्व, द्वै, उभय, मिथुन, बिबि, बीय।
जुगलकिशोर सदा बसौ 'नंददास' के हीय॥

सभा की खोज की रिपोर्टों में मानमंजरी की जिन हस्त-लिखित प्रतियों का उल्लेख है उनमें २५८, २८४, ३०१, ३०७ तथा २६८ दोहे हैं। ऊपर की विवेचना के अनंतर दोनों रचनाओं की दोहा-संख्या एक प्रकार निश्चित हो जाने पर अब प्रक्षिप्त अंश को छाँटना आवश्यक हुआ क्योंकि प्रायः सभी में दो चार से लेकर पचास साठ तक दोहे अधिक हैं और इसके लिए कुल दोहों की प्रतीकानुक्रमणिका तालिका रूप में तैयार की गई। इसके अनंतर दोनों रचनाओं की प्राप्त चारों छपी प्रतियों तथा अने-कार्थ की चार और मानमंजरी की तीन हस्तलिखित प्रतियों से प्रत्येक दोहा की संख्याएँ उनमें भरी गईं। इस प्रकार रामहरीजी के बनाए हुए दोहे उन्हीं की लिखी हुई संख्या के अनुसार, स्वतः

अलग हो गए क्योंकि वे किसी भी अन्य प्रति में नहीं मिले। अनेकार्थमंजरी में ५५ और नाममाला में ६० दोहे रामहरिजी के पृथक् हो गए, जो क परिशिष्टों में दे दिए गए हैं। रामहरिजी के सिवा जिन अन्य सज्जनों ने अपनी कविता अनेकार्थ में जोड़ी है उन सब ने उन्हें प्रायः नंददासजी के छापवाले दोहे के उपरांत ही रखा है इससे वे अलग ही हैं और ख परिशिष्ट में दिए गए हैं। मानमजरी में जितने दोहे नंददासजी कृत रामहरिजी ने दिए हैं, उन्हें अलग करने पर जो दोहे बचे वे भी अन्य कृत माने गए और उसके परिशिष्ट ख में दिए गए हैं। इस प्रकार नददासजी कृत अनेकार्थमंजरी तथा मानमंजरी में उतने ही दोहे विश्वस्त रूप से उन्हींके बनाए हुए मान कर रखे गए, जो सं० १८३५ वि० तक उनके कहे गए हैं। अधिकतर यही आशा तथा विश्वास है कि वे सब नददासजी ही की रचनाएँ हैं। मानमजरी की इससे एक प्राचीनतर सं० १७२५ की लिखी प्रति का हवाला दिया जाता है, जिसमें २८३ दोहे हैं अर्थात् १८ दोहे अधिक हैं। इनमें कुछ दोहे ऐसे शब्दों पर हैं, जिनका अन्य किसी भी प्रति में उल्लेख नहीं है और कुछ दोहे बीच में अर्थात् एक दोहे को तोड़ कर दो दोहे बना कर दिए गए हैं। जैसे—

सदन, सद्म, आराम, गृह, आलय, निलय स्थान।
भवन भूप वृषभानु के गई सहचरी त्यान॥

क्षेपककार महाशय ने इस पर यों कृपा की—

सदन, सद्म, आराम, गृह, गेह, वेश्म, संकेत।
लैमधिष्ट पद, आस्पद, आलय, निलय, निकेत॥
मंदिर, मंडप, आयतन, बसति नीक अस्थान।
भवन भूप वृषभानु के गई सहचरी त्यान॥

ऐसे क्षेपक प्राचीन प्रतियों के मिलान करने ही पर छाँटे जा सकते हैं। नाममाला की जो तीन हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा में हैं, उनका विवरण देखने से ज्ञात होता है कि इनमें भी २५९, २७२ तथा १६८ दोहे हैं। विवरण नीचे दिया जाता है—

१. पुस्तकालय की सूची की संख्या ६४ की प्रति सं० १९०६ की लिखी है, इसका नाम 'नाममाला' दिया है। इसमें २५९ दोहे हैं पर भूल से सं० ६६ के बाद पुनः सं० ६० लिख गया है। अंतिम दोहा माला पर है और इसके पहले का छाप का है।

२. पुस्तकालय सूची की संख्या ६४ घ की प्रति सं० १८७५ की लिखी है। इसका प्रथम पृष्ठ नहीं है। इसका नाम 'नामावली' दिया हुआ है। इसमें २७२ दोहे हैं और अंतिम छापवाला है।

३. पुस्तकालय सूची की सं० ३९३ की प्रति सं० १८५५ की लिखी हुई है और पूर्ण है। इसमें कुल १६८ दोहे हैं। अंतिम दोहे मुगल और माला पर हैं।

याज्ञिक-संग्रह में भी नाममाला की छ प्रतियाँ हैं, जिनका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. सूची संख्या १७५।१४ की प्रति में कुँआर बदी ५ सं० १८७६ लिपिकाल है। इसमें २६८ दोहे हैं और लाल रोशनाई में मानमंजरी नाम दिया है, जिसे काटकर किसीने ऊपर नाममाला नाम लिख दिया है। प्रति पत्राकार बड़े अक्षरों में है। पाठ विशेष शुद्ध नहीं है। कहीं कहीं जैसे 'खड्ग' नाम के खड्ग का दोहा भूल से नहीं लिखा गया है और आगे 'दिशा' का उसके स्थान पर लिख गया है। यही दोबारा पुनः दिया गया है। आरंभ में दो चार दोहे प्रक्षिप्त हैं पर उसके बाद नहीं हैं।

२. सूची संख्या २९४।१४ की प्रति भरतपुर में सं० १८१८

में लिखी गई है। इसमें २६६ दोहे हैं और मानमंजरी नाम दिया गया है।

३. सूची संख्या १७४।१४ की प्रति सं० १८१९ की है। इसमें २८४ दोहे हैं परंतु यह साधारण कागज पर लिखा है, मसि भी साधारण फीकी है। संवत् के आगे साके सालिवन लिखा है। प्रति प्राचीन नहीं ज्ञात होती।

४. सूची संख्या ११।१४ की प्रति सं० १९३५ की लिखी ज्ञात होती है। इसमें २५७ दोहे हैं।

५. सूची संख्या ७६६।१४ की प्रति सं० १७२५ की लिखी है पर यह शक संवत ज्ञात होता है क्योंकि प्रति इतनी प्राचीन नहीं है। इसमें २८५ दोहे हैं और नाममाला नाम है।

६. सूची संख्या ७६९।१४ की प्रति सं० १९०५ की है और उर्दू लिपि में है। इसमें २६९ दोहे हैं और नाममंजरी नाम है।

इस प्रकार देखा जाता है कि एक सुकवि, साहित्य प्रेमी तथा विशेष रूप से नंददासजी की कविता के प्रेमी रामहरिजी की पौने दो सौ वर्ष प्राचीन प्रति में स्पष्ट उल्लेख है कि मानमंजरी में २६५ दोहे हैं और प्राय. अधिकतर हस्तलिखित तथा छपी प्रतियाँ इसीका अनुमोदन करती हैं। ऐसी अवस्था में इसीके अनुसार इस ग्रंथ का पाठ लेना युक्तिसंगत है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। नंददासजी भक्त-कवि थे अतः इन्होंने जो कुछ लिखा है, सभी में हरि-कीर्तन ही उनका ध्येय था। इनके हर दोहे में देखा जायगा कि हरि, गोविंद, कृष्ण का उल्लेख मिलता है पर क्षेपककारों में यह भक्ति न थी और वे केवल कोष-रूप में दोहे बनाने में व्यस्त रहे और अपने आदर्श के सूक्ष्म ध्येय को नहीं पहचान सके। रामहरिजी ने कुछ अंशों तक अपने दोहों में इस पर ध्यान रक्खा है पर वह भी सफल

नहीं हो सके। नंददासजी ने कहीं-कहीं ऐसा भी किया है कि जब एक दोहे में शब्दों के आधिक्य के कारण नामकीर्तन का स्थानाभाव देखा तब एक दोहा और केवल उसी अभाव की पूर्ति के लिए जोड़ दिया है, जैसे—

नीलकंठ, केकी, बरहि, शिखी, शिखंडी होय।
शिवसुत वाहन, अहिभषी, मोर, कलापी, सोय ॥
नटत मयूर अदान चढ़ि अतिहि भरे आनंद।
निसि दिन उनए रहत हैं, नवनीरद नँदनंद ॥

नाममाला का एक नाम मानमंजरी भी है और ऐसा क्यों नाम रखा गया है इसका भी एक रहस्य है, जो इस रचना में गुप्त रूप से रखा गया है। इसे तीसरा दोहा कुछ स्पष्ट करता है, जो इस प्रकार है—

गूँथनि नाना नाम को अमरकोष के भाय।
मानवती के मान पर मिले अर्थ सब आय ॥

अर्थात् अनेक नामों को कोष रूप मे गूँथते हुए भी सबका अर्थ मानिनी के मान पर घट जाता है। प्रथम शब्द 'मान' ही कवि ने इसी कारण रखा है और मंगल रूप में कहता है कि—

मान राधिका कुँवरि को सबको करु कल्यान ॥५॥

अब प्रत्येक शब्द के दोहे की द्वितीय अर्द्धाली या जिस शब्द के दो या अधिक दोहे हैं, उनके अंतिम दोहे को लेने से मान लीला का पूरा वर्णन आ जाता है। राधिकाजी के मान करने पर

अली कुँआरि वृषभानु की चली मनावन ताहि ॥६॥
मति सों मति करते चली भली बिचच्छन तीय ॥७॥
....
भवन भूप वृषभानु के गई सहचरी ग्यान ॥१०॥

वृषभानु का ऐश्वर्य वर्णन करने पर

चित मे सोचत सहचरी भीतर कैसे जाउँ ॥३६॥

लोपाजन दृग दै चली ताहि न देखै कोय ॥३७॥

और भी ऐश्वर्य देखती, सकुचाती वह वहाँ पहुँची, जहाँ श्रीराधिकाजी

दुग्ध फेन सी सेज पर बैठीं तिय कमनीय ॥४७॥

वहाँ राधाजी का सौंदर्य, मान देखते हुए वह

पानी नैन पखारिकै अजन हाथै लीन।

प्रगट भई पिय की सखी निपट सुसकित दीन ॥७४॥

राधाजी इसका देख कर क्रुद्ध हो गईं, जिससे यह डर गई और तब राधाजी ने पूछा—

कित डोलत है कुशल कहु पूछति कुँवरि सुजान ॥८१॥

इस पर वह सखी राधाजी की प्रशसा करते, श्रीकृष्ण का प्रेम तथा ऐश्वर्य वर्णन करते और उनका ईश्वरत्व प्रगट करते हुए मान त्यागने की प्रार्थना करती है। इस पर राधाजी उन्हें कपटी कहती हैं तब वह उत्तर देती है—

पाप महावन दहन-दव जाको रचक नाम।

ताकौं तू कपटी कहत कहा कहौं तोहि भाम ॥१२९॥

इस प्रकार वह सखी उन्हें समझाती है तथा उपालभ देती है—

काली अहि गजन समै मैं रासी गहि बाँहि।

नँद-नदन पिय-प्रेम वस परत हुती दह माँहि ॥१६८॥

इस पर भी राधाजी नहीं मानतीं और कहती हैं

मद पीयें ज्यो बकत कोउ कहा बकत है दूति ॥१८३॥

इस पर जब सखी टेढ़ी मेढ़ी कहती हुई जाने की आज्ञा माँगती है।

तब प्रिय सहचरि तन चितै मुसकी कुँवरि तनाक ॥२०६॥

अंत में

सौध हर्म्य प्रासाद तें चली जु तिय गति मंद।
महल धौरहर तें मनों अवनी उतरत चंद ॥२१२॥

मार्ग में चलते हुए अनेक वृक्ष पुष्प आदि को लेकर व्यंग्य करती हुई सखी उसे संकेत स्थान पर ले जाती है तथा

यों राधा-माधव मिले परम प्रेम हरषाइ ॥२६१॥
जुगल-किशोर सदा बसौ 'नंददास' के हीय ॥२६३॥

यही मानमंजरी 'इस नाममाला में गूँथी गई है। प्रक्षिप्त अंश के दोहे इस रहस्य रचना से स्वभावतः अलग पड़ गए हैं।

५—रूप मंजरी

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के पृ० ३८५-७ पर लिखा है कि 'हिन्दू राजा की पुत्री रूपमंजरी अकबर को ब्याही दासी' थी पर उसका स्पर्श नहीं करती थी। उसका प्रण था कि यदि वह उसे छुएगा तो वह प्राण दे देगी। यह अत्यंत सुंदरी थी, इससे अकबर उसे देखकर संतुष्ट रहता था। रूपमंजरी गुटका मुख में रखकर नित्य नंददास के पास जाती थी। इस प्रकार कई वर्ष बीते। एक दिन अकबर के सामने किसी ने गाया—

देखो देखो री नागर नट, निरतत कलिंदी तट।
'नंददास' गावे तहाँ निपट निकट।

अकबर ने पूछा कि क्या वह परमेश्वर के इतने पास बैठ कर गाता है। किसीने कहा कि वह जीवित हैं, उन्हीं से पूछा जाय। अकबर सकुटुंब इसपर ब्रज आया और बीरबल को उनके पास भेजा। इन्होंने दो दिन बाद आने का वचन दिया। दूसरे दिन यह रूपमंजरी के डेरे के पास स्थित कुंड में स्नान को गए तब श्रीगोवर्धननाथजी को प्रत्यक्ष रूपमंजरी के यहाँ भोग लगाते देखा।

यह एक वृक्ष की ओट से दर्शन करने लगे। श्रीठाकुरजी के कहने पर रूपमंजरी ने इन्हें बुलवाया और इन्होंने आज्ञा पाकर महाप्रसाद लिया। नंददासजी यहाँ से विदा होकर दूसरे दिन अकबर के पास गए और उसके वही प्रश्न पूछने पर कुछ रहस्य उद्‌घाटन करने के बदले शरीर त्याग दिया। अकबर उदास होकर रूपमंजरी के पास गया और उससे यह वृत्तांत कहा। वह भी नंददास के विरह से निष्प्राण-शरीर होकर गिर गई।'

नंददास कृत रूपमंजरी की घटनावली इस प्रकार है कि निर्भयपूर के राजा धर्मधीर के एक अतीव सुंदरी राजकुमारी रूपमंजरी थी। विवाहयोग्य होने पर माता-पिता ने उसके उपयुक्त वर से उसका विवाह कर देना चाहा पर ब्राह्मण ने लोभ से इसका उल्टा कर दिया। इस कारण जब राजकुमारी युवती हुई तब उसने श्रीकृष्ण भगवान से प्रीति की। उसकी सखी इंदुमती उसकी सहायिका हुई और उसकी स्तुति से राजकुमारी को एक बार स्वप्न में भगवान के दर्शन हुए। इसके अनंतर विरह आरंभ हुआ और नंददासजी ने बारहमासा कह डाला। अंत में इसका अनन्य प्रेम देखकर भगवान ने इसे अपना लिया। इसके साथ-साथ सखी इंदुमती का निस्तार हो गया। कहते हैं—

जदपि अगम तें अगम अति, निगम कहत है जाहि।
तदपि रंगीले प्रेम तें निपट निकट प्रभु आहि॥

उक्त दोनों कथाओं का मिलान करने से स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि वे दोनों 'निपट निकट' क्या हैं, एक ही हैं। वार्ता की रूपमंजरी ही इस आख्यानक काव्य की नायिका है, नंददास सहचरी हैं, अकबररूपी अपने अयोग्य पति को त्यागकर वह नंददास के यहाँ श्रीकृष्ण भगवान से मिलने नित्य आती थी। नंददासजी वहाँ 'निपट-निकट' गायन करते थे। अकबर के इसी

रहस्य की जिज्ञासा करने पर नंददास तथा रूपमंजरी दोनों ने कुछ न कहकर शरीर त्याग दिया था।

इस ग्रंथ का पाठ सं० १८३५ की निजी प्रति के आधार पर विशेष रूप से रखा गया।

६—रसमंजरी

नंददासजी ने इस रचना में अपने एक मित्र के कथन पर नायक-नायिका भेद का विशद वर्णन किया है मे और अति संक्षेप मे हाव भाव आदि पर भी कुछ लिखा है। इस ग्रंथ के कारण यद्यपि यह रीतिकाल के आरंभिक कवियों में परिगणित किए जा सकते हैं पर प्रधानतः यह भक्तिकाल ही के कवि हैं। इस ग्रंथ के विशेष परिचित न होने के कारण हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इन्हें कृपाराम, मोहनलाल मिश्र, करणेश, बलभद्र आदि के साथ अपने ग्रंथों में स्थान नहीं दिया है। रहीम के 'बरवै' का नायिका भेद के उदाहरणों का संग्रहमात्र होते हुए भी उल्लेख है पर नंददासजी के, जिन्होंने लक्षणों ही पर अधिक ध्यान दिया है, कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। ऐसा केवल इस ग्रंथ के अप्राप्य होने ही के कारण हुआ है।

मित्र के अनुरोध पर नायका-भेद लिखते हुए नंददासजी कहते हैं कि प्रेम तत्त्व की पहिचान के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है। इन भेदों को न जानने से इन सबके होते हुए भी वह अंधे के हाथ में रखे हुए अमूल्य रत्न के समान है। इसी कारण वह विस्तार के साथ इस विषय पर लिखते हैं। २४ दोहे तथा चौपाई तक इस ग्रंथ रचना का कारण कहकर वह ग्रंथ आरंभ करते हैं। धर्म के अनुसार पहिले तीन भेद—स्वकीया, परकीया तथा सामान्या किए हैं। फिर प्रत्येक के अवस्थानुसार मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा तीन भेद

माना है। मुग्धा के नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा और ज्ञातयौवना तथा अज्ञातयौवना भेद किए हैं। अब इतने भेदों का पूरा लक्षण देने के बाद धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेद मध्या तथा प्रौढ़ा में बतलाए गए हैं। मुग्धा में, इतना मात्र कह दिया गया है कि, वे स्पष्ट नहीं होते। व्यापार के अनुसार आठ भेदों में से केवल तीन के लक्षण दिए हैं। इसके अनंतर प्रोषित पतिका आदि नौ भेदों को मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा तीनों पर घटाते हुए लक्षण दिए हैं। इस प्रकार नायिका भेद समाप्त कर नायक के चार भेद धृष्ट, शठ, दक्षिण तथा अनुकूल के लक्षण बतलाए गए हैं। तब हाव, भाव, हेला तथा रति का लक्षण देकर ग्रंथ समाप्त किया गया है। यह पूरा ग्रंथ दोहे चौपाइयों में है।

इसका पाठ निजी दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर निश्चित किया गया है। भरतपुर की लिखी सं० १८१८ की प्रति का पाठ शुद्ध नहीं है और रूपमंजरी के कई दोहे आदि इसमें मिल गए हैं।

७—विरहमंजरी

भगवान श्रीकृष्णचंद्र के वृंदावन से मथुरा चले जाने पर विरह-विधुरा गोपियों द्वारा चंद्र को संबोधन कर नंददासजी ने विरह का वर्णन किया है। आरंभ में विरह चार प्रकार का बतलाया गया है—प्रत्यक्ष, पलकांतर, वनांतर और देशांतर। प्रत्यक्ष वह है कि प्रिय के पास रहते भी प्रेमाधिक्य से भ्रम के कारण सखी से पूछ बैठना कि प्यारे कहाँ हैं? प्रिय को देखने में पलकों के गिरने से जो बाधा पड़ती है, वह पलकांतर है। जब कृष्णजी के गोचारण के लिये वन में चले जाने से वनांतर विरह होता था तब मथुरा तथा द्वारिका चले जाने पर देशांतर विरह हुआ था। इसके अनंतर बारहमासा कहा गया है। इस मंजरी में चंद्र को

दूत बनाकर गोपियों ने अपनी विरह कथा कही और उनसे प्रार्थना की कि द्वारिका में श्रीकृष्ण के पास जाकर यह वृत्तांत कहकर निवेदन करना कि अब तो आकर वृंदावन में निवास करें। यह संदेश मानों स्वप्न में कहलाया गया है और उसी प्रकार का मिलन भी दिखलाया गया है, जैसे 'जागि परें सुख पावत तैसें'। भाव यह है कि विरहावस्था स्वप्न है और उसीमें सब कष्ट मिलता है और जागृत हो जाने पर अर्थात् मिलन हो जाने पर फिर सुख ही सुख है।

इस मंजरी में १८ दोहे, १२ सोरठे और ७२ चौपाइयाँ हैं। भाषा तथा भाव सभी नंददासजी के योग्य है। इसका पाठ दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ठीक किया गया है।

८. भ्रमरगीत

श्रीकृष्णजी के मथुरा चले जाने के अनंतर विरहिणी गोपियों द्वारा उन्हें भ्रमर-संज्ञा देकर जिन पदों में उपालंभ दिया जाता है, उन्हीं को भ्रमर-गीत कहते हैं। सूरदासजी तथा नंददासजी के भ्रमर गीत व्रजभाषा साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। इस भ्रमर गीत में उद्धवजी श्रीकृष्णजी का संदेश लेकर व्रज आए और उनसे तथा विरह-विधुरा गोपियों के कथोपकथन में साकार-सगुण तथा निराकार-निर्गुण ईश्वर के प्रति प्रेम का विवेचन किया गया है। उद्धव के कूट पाण्डित्य का गोपियों पर कुछ भी असर नहीं हुआ पर विरहकातरा व्रजबालाओं के सरल प्रश्नों, उत्तरों तथा दशा ने उद्धवजी से उद्भट ब्रह्मज्ञानी को प्रेम-विभोर अवश्य कर डाला। श्रीकृष्णजी ने उद्धव को उनका ज्ञान गर्व मिटाने ही के लिए व्रज भेजा था। लौटते समय उनकी प्रेमदशा का जो वर्णन किया गया है तथा श्रीकृष्णजी को पहुँचते ही जो फटकार दिलाई गई है,

उसे पढ़ने तथा श्रवण करने मात्र से उद्धव के हृदय ही के परिवर्तन मात्र का द्योतन नहीं होता है प्रत्युत् प्रत्येक पाठक तथा श्रोता के हृदय में यह प्रेमावेश स्थापित कर देता है।

इस भ्रमर गीत के संपादन में चार हस्तलिखित प्रतियों तथा चार छपी प्रतियों से सहायता ली गई है। हस्तलिखित प्रतियों का काल क्रमशः सं० १८६५, १८७३, १९०८ और १९२३ वि० है। छपी प्रतियाँ सन् १८९४, १९०३, १९०४ और १९१८ ई० की हैं। सभी में ७५ पद हैं अतः यह निश्चित है कि इनमें क्षेपक नहीं है। विशेष प्राचीन एक भी प्रति नहीं प्राप्त हो सकी, इसका खेद अवश्य है। तीन हस्तलिखित प्रतियों के ७५वें पद के अंत में लिखा है कि *'जन मुकुंद पावन भयो सो यह लीला गाय।'* एक हस्तलिखित प्रति तथा छपी प्रतियों में जन मुकुंद के स्थान पर नंददास लिखा है। इसपर दो शंकाएँ उठती हैं। प्रथम यह कि नंददासजी का जनमुकुंद भी छाप रहा हो और दूसरा यह कि अज्ञात जनमुकुंद के स्थान पर प्रसिद्ध नंददासजी का नाम जोड़ दिया गया हो। परंतु जन-श्रुति इसे नंददास का बतलाती है और वैष्णव मंदिरों के नित्य कीर्तन में यह पद पाया जाता है, जिसमें अष्टछाप तथा अत्यंत ही प्रसिद्ध भक्तों के पद लिए गए हैं अतः प्रथम ही शंका मान्य है।

९. गोवर्द्धन लीला

इस रचना की केवल एक प्रति प्राप्त हुई है और खोज की रिपोर्ट में भी इसका केवल एक बार उल्लेख हुआ है। श्रीकृष्ण ने इंद्र की पूजा उठाकर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा की प्रथा चलाई, जिसपर इंद्र ने कोपकर व्रजपर प्रलय मेघ भेजा और उसे वर्षा से बहा देने का प्रयास किया। भगवान ने पर्वत को उठाकर उसकी छत्रच्छाया में सबकी रक्षा की तथा इंद्र का गर्व तोड़ा। इसीका

चालीस चौपाइयों में संक्षेप में इस रचना में वर्णन हुआ है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों की कमी से यह ज्ञात होता है कि इसका प्रचार अधिक नहीं हुआ था। यह रचना छोटी होते भी नंददासजी के योग्य ही है।

१०. श्याम सगाई

श्रीराधिकाजी को देखकर यशोदाजी की इच्छा हुई कि इसके साथ अपने पुत्र श्रीकृष्णजी का विवाह करें और इस संबंध के लिए उन्होंने श्रीराधाजी की माता कीर्तिजी से कहलाया। उन्होने उत्तर दिया कि मेरी पुत्री सीधी-सरल है और श्रीकृष्ण बड़े चंचल-चित्त तथा माखनचोर हैं इसलिये मैं सगाई नहीं करूँगी।

इस उत्तर पर यशोदाजी चिंता कर रही थीं कि श्रीकृष्णजी वहाँ आ गये। वह यह वृत्तांत सुनकर बाल-स्वभाव से बोले कि मैं विवाह नहीं करना चाहता पर यदि तुम्हें इन्हीं से विवाह कराने की चिंता है तो मुझे नंद बाबा की शपथ जो यह पैर पड़कर न दें। इसके अनंतर यह बरसाने की ओर गए और सखियों सहित आती श्रीराधिकाजी इनके सौंदर्य को देखकर ऐसी मुग्ध हुईं कि उनपर बेहोशी छा गई। सखियों ने उनकी माता से सर्प-दंशन के कारण ऐसा होना बतलाया और श्रीकृष्ण को विष दूर कर करने के लिए बुलाने की राय दी। कालीनाग नाथने के कारण यह सर्प के मंत्र-ज्ञाता प्रसिद्ध हो चुके थे। तब अंत में इन्होंने जाकर विष दूर कर दिया और कीर्तिजी ने सगाई करना स्वीकार कर लिया।

भ्रमर गीत के ढंग पर एक रोला तथा एक दोहा मिश्रित २८ पदों में यह विवरण अत्यंत सरस भाषा में लिखा गया है।

११. रुक्मिणी मंगल

इसमे १३१ रोला छंद हैं। इसकी कथा इस प्रकार है कि

विदर्भ-नरेश भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणीजी का विवाह श्रीकृष्णजी से करना चाहते थे क्योंकि रुक्मिणीजी का उन पर प्रेम था और श्रीकृष्णजी का भी उन पर प्रेम था। परंतु भीष्मक का पुत्र रुक्म श्रीकृष्णजी से द्वेष रखता था, इसलिए उसने अपने पिता को रुक्मिणी का विवाह राजा शिशुपाल से करने पर बाध्य किया। अंत में विवाह निश्चय हो गया और शिशुपाल बारात साजकर मगधाधिप जरासंध के साथ विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर पहुँचा। रुक्मिणी को इस विवाह का जब पता मालूम हुआ तब उसने एक ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्णजी को पत्र भेजा कि यदि वे समय पर उसका उद्धार न कर सकेंगे तो उसे बलात् आत्म-हत्या कर लेनी पड़ेगी। यह पत्र पाकर श्रीकृष्णजी रथ पर सवार हो कुंडिनपुर पहुँचे और इनकी सहायता को इनके बड़े भाई बलरामजी भीससैन्य पीछे पीछे पहुँचे। जब श्रीरुक्मिणीजी विवाह के संबंध में नगर के बाहर देवीजी का अर्चन पूजन करने गईं और वहाँ से लौटने लगीं तभी मार्ग में श्रीकृष्णजी ने उन्हें अपने रथ पर बैठा लिया और अपने राज्य की ओर लौट चले। इस हरण की वार्ता को सुनकर शिशुपाल, जरासंध तथा रुक्म सेना लेकर चढ़ दौड़े पर सभी को परास्त होकर लौट जाना पड़ा। द्वारिका पहुँचने पर दोनों का विधिवत् विवाह हुआ और राजा भीष्मक ने दहेज आदि भेज दिया।

नंददासजी ने आरंभ के अंश का विस्तार से वर्णन किया है पर युद्ध को चार पाँच रोलाओं में समाप्त कर दिया है। अंत में विवाह का मंगलगान किया है। यह रचना अत्यंत सरस है।

१२. सुदामा-चरित्र

साढ़े चालीस चौपाइओं में सुदामाजी का प्रसिद्ध उपाख्यान

सरल भाषा में कह दिया गया है। सुदामा की निरीहता तथा उनकी पतिव्रता स्त्री का अपने पति ही के लिए श्रीकृष्णजी से याचना करने को कहना, मित्र से मिलने पर उनसे कुछ न कहना तथा श्रीकृष्णजी का बिना माँगे मित्र की पूरी सहायता करना दिखलाना भक्तकवि के योग्य ही है। यह छोटा सा काव्य संक्षेप में तथा सुगम भाषा में लिखा गया है।

१३. भाषा दशमस्कंध

श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के केवल प्रथम २८ अध्यायों का यह भाषानुवाद है और जनश्रुति के आधार पर यह ज्ञात होता है कि नंददासजी ने इसके आगे अनुवाद नहीं किया। पूरा दशमस्कंध नब्बे अध्यायों में है, जिनमें ४९वें अध्याय पर पूर्वार्द्ध की समाप्ति है। यह अनुवाद भी अक्षरशः न होकर भावानुसरण मात्र है। यह अनुवाद भी किसी मित्र को सुनाने के लिए किया गया था और दोहे-चौपाइयों में है। नंददासजी ने *श्रीमद्भागवत* के टीकाकार श्रीधर स्वामी का स्पष्ट उल्लेख किया है और ऐसा ज्ञात होता है कि इन्होंने अन्य भाष्यकारों के भी ग्रंथ मनन किए हैं, जिनके विचार कहीं कहीं इनके अनुवाद में आ गए हैं। कवि ने अनुवाद में यथानियम कहीं कुछ अंश छोड़ दिए हैं तो कहीं कुछ विस्तार भी किया है।

भाषा दशम स्कंध में कितने अध्याय अनूदित हुए थे, इसमें मतभेद है। श्रीकर्मचंद गुग्गलानीजी द्वारा संशोधित प्रति में २८ अध्याय हैं, जिनके संपादन की आधार चार हस्तलिखित प्रतियाँ थीं। इनमें एक सं० १७६४ वि० की है। श्रीमुरारीलाल केडिया, काशी की सं० १७४७ की तथा काँकरौली के श्रीद्वारिकेश पुस्तकालय की प्रतियों में भी केवल २८ अध्याय हैं। उन्तीसवें अध्याय की

है। मनुष्य कष्ट उठाता है, तप करता है, अपना प्राण तक दूसरों के लिए विसर्जन कर देता है पर यह सब वस्तुतः किसी आशा ही से किया जाता है और वह इस सुख-आनंद से भिन्न नहीं है। कविता भी कवि-हृदय के अनुभव, विचार आदि ही हैं पर इन सबको वह किसी तार्किक शैली पर, उपदेश रूप में या वैज्ञानिक ढंग पर कविता में नहीं रखता प्रत्युत् अत्यंत आनंददायक शैली पर सुंदर शब्दावली में इस प्रकार सजा देता है कि पाठक तथा श्रोता सभी पढ़ सुनकर मुग्ध हो उठते हैं और उन्हें वह आनंद मिलता है, जो सांसारिक आनंद से परे लोकोत्तर ही कहा जा सकता है। कविता केवल मनोरंजन मात्र ही नहीं है और न उसके पठन-पाठन तथा श्रवण से जो आनद मिलता है वह निरुपयोगी ही है प्रत्युत् 'वेदविद्येतिहासानामर्थानां परिकल्पित' होने के कारण उसमें वह शक्ति है, जिससे—

दुःखार्तानां समर्थानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रांतजनने काले नाट्यमेतन्मया कृतम्॥

नाट्यशास्त्र के निर्माता भरत मुनि ने श्रव्य तथा दृश्य काव्यों को आनंददायक ही माना है। लिखते हैं—

क्रीड़नीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्।

भामह भी इसका समर्थन करते हैं—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिंश्च साधु काव्यनिबंधनम्॥

सत्काव्य-ग्रंथ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों के देनेवाले होते हैं, कला में वैचित्र्य लाकर आनंद तथा यश के देनेवाले होते हैं। कोई भी वस्तु अपनी निजी तभी मानी जाती है, जब वह आनंददायक होती है और यही कारण है कि कलात्मक वस्तुएँ

आनंद की प्रतिमूर्ति होती हैं। कविता भी कलात्मक है और इसी के द्वारा ही मनुष्य तथा प्रकृति के सर्वस्व प्रेम, सौंदर्य, शांति तथा आनंद का अनुभव-प्राप्त ज्ञान संचित होकर मानव-हृदय को सदा प्रफुल्लित तथा आनंदित करता रहता है। कला कविता में सजीव हो उठती है और हृत्तंत्री को झंकरित कर अपना अमिट प्रभाव उस पर छोड़ जाती है। इसकी एक एक सूक्तियाँ, छोटे छोटे टुकड़े मानव-समाज के पथ-प्रदर्शन का काम करते हैं और अनंत विश्व मे व्याप्त ईश्वरीय संदेशों को मानव हितार्थ स्पष्ट करते रहते हैं।

व्रजभाषा और उसका व्यापकत्व

भारत की जिस प्राचीनतम भाषा का अब तक पता चला है वह ऋग्वेद में प्राप्त है और शब्दानुशासन होने से उसके सुसंस्कृत हो जाने पर भी प्राचीन भाषाओं का प्रवाह न रुका तथा वे अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए हुए विकसित होती रहीं। ये भाषाएँ संस्कृत न होने के कारण प्राकृत कहलाईं और प्रांत-भेद से इनके भी कई भेद हुए। ये प्राकृत भी जब साहित्यिक हो पड़ीं और इनके रूप आदि भी नियमबद्ध हो गए तब स्वतंत्र रूप से विकसित होती हुई भाषाएँ अपभ्रंश कही जाने लगीं। ये नियमानुकूल न होकर जन-साधारण की बोलचाल में प्रयुक्त होती रहीं, इसीलिए ये भ्रष्ट अर्थात् अपभ्रंश समझी जाने लगीं। जब ये अपभ्रंश भी नियमानुशासित हुईं तब अनेक प्रांतों में वे भाषाएँ विकसित हुईं, जिन्हें कहीं पुरानी हिंदी, कहीं जूनी गुजराती और कहीं कुछ कहा जाने लगा। इन्हीं से वर्तमान काल की भाषाओं का विकास हुआ है।

हिंदी-साहित्य में जिस काव्यभाषा का दौरादौर प्रायः सात

शताब्दियों तक रहा है वह यद्यपि प्रांतीय शब्द 'ब्रजभाषा' के नाम से ही पुकारी जाती है पर अपने साहित्यिक रूप में वह समग्र उत्तरापथ की काव्यभाषा रही है। इसका पूर्वरूप अपभ्रंश-काल की भाषा से मिलता हुआ आया है और यद्यपि इसका ढाँचा पश्चिमी हिंदी ही का है पर यह अन्य प्रांतीय भाषाओं को अपना कर ही चली है। इसमें सभी बोलियों को समानरूपेण आदर मिला है और यही कारण है कि यह इतनी व्यापक हो गई। अवधी भाषा में भी काव्यग्रंथ लिखे गए और अच्छे लिखे गए पर उसमें ब्रजभाषा सी व्यापकता नहीं आ सकी। साहित्य के उन्नयन का आधार राज्याश्रय है और हिंदी-साहित्य के आरंभिक तथा मध्यकाल में हिंदू राज्य विशेषतः गुजरात से ब्रजमंडल तक ही रहे हैं। यह भी पश्चिमी भाषा के आधार को लेकर ही *काव्यभाषा बनने का एक मुख्य कारण हुआ था।*

ब्रजभाषा की व्यापकता तथा विस्तार का प्रधान कारण श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन है, जिसका भक्तकवियों द्वारा खूब प्रचार हुआ था और होता रहता है। सगुण प्रेमोपासना में श्रीरामचंद्र तथा श्रीकृष्णचंद्र ही की उपासना का प्राधान्य बराबर रहा है और प्रथम के मर्यादा पुरुषोत्तम होने से उनकी लीला-वर्णन से सोलहो कलापूर्ण भगवान श्रीकृष्ण की लीला के वर्णन का अधिक प्रचार हुआ। दोनों ही की लीला-भूमि की भाषा दोनों ही के लीला-वर्णन के लिए अपनाई गई थी पर ब्रजमंडल के कवियों ने, जिनकी संख्या अधिक थी, ब्रजभाषा पर विशेष ममता दिखलाई और उसके सहज स्वाभाविक माधुर्य ने उसे और भी सबका प्रिय बना दिया। इन कारणों से ब्रजभाषा के व्यापक-प्रचार में बहुत सहायता मिली और विरोधी आंदोलनों के होते भी उसका स्थान साहित्य में अमर है।

भाषा-सौष्ठव

कविता वास्तव में भाव-प्रधान ही है, भाषा-प्रधान नहीं है पर तब भी भाषा की निजी सत्ता है। भाव के सौंदर्य को पूर्ण रूप से विकसित करना भाषा ही का काम है और यदि भाव को प्रकट करने के लिए उसके उपयुक्त भाषा नहीं हुई तो वह कभी स्पष्ट न हो सकेगा। यद्यपि भाव आत्मा-रूप है, जो कविता के भाषा-रूपी शरीर को सजीव बना देता है पर तब भी यदि भाषा में कोई विशेषता न रही तो वह सजीव हो जाने पर भी आकर्षक न हो सकेगी। निर्जीव होते भी भाषा वह सुंदर चित्र है, जो नेत्रों को बरबस आकृष्ट कर लेता है और सुंदर भाव द्वारा सजीव हो जाने पर तो वह हृदय पर भी अधिकार पा जाता है। उत्तम कविता के लिए भाव तथा भाषा दोनों ही का सुंदर-सुष्ठु होना आवश्यक है और एक की हीनता का प्रभाव दूसरे पर अवश्य पड़ता है। आत्मा तथा शरीर का संबंध पारस्परिक है, एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व ही कहाँ! अच्छा भाव भी अस्पष्ट लचर भाषा के कारण शिष्ट समाज में तब तक सम्मानित नहीं होता जब तक कुशल व्याख्याता उस भाव को स्पष्ट नहीं करता और भाव-हीन होते भी लालित्य-पूर्ण भाषा में होने के कारण कितनी कविता लोगों को बराबर मुखाग्र रहती है। यही कारण है कि सुकवियों का भाषा पर पूरा अधिकार रहता है और वे अच्छे अच्छे भावों को अच्छी उपयुक्त भाषा ही में व्यक्त करते हैं।

भाषा में सरलता अत्यंत आवश्यक है। कविता पढ़ते या सुनते समय यदि उसका भाव स्पष्ट न होता चले और उसको समझने के लिए कोष उलटना पड़े तो रसास्वादन की शृंखला टूट जाती है और भाव उखड़ा-सा लगने लगता है। सरल भाषा

रखते हुए जब कवि भाव के अनुकूल शब्दों का सुंदर चयन करता है तब उसमें जो लालित्य, माधुर्य तथा रमणीयता आ जाती है, उससे भाव-सौंदर्य और भी निखर उठता है। साथ ही भाषा में यह शक्ति भी होनी चाहिए कि वह कवि के हृदयस्थ भाव को श्रोता या पाठक के हृदयों तक तुरंत स्पष्ट रूप से पहुँचा दे और यदि यह शक्ति उसमें नहीं है तो वह कवि को असफल बना देगी। भाषा मे बनावटपन या कृत्रिमता न होनी चाहिए, सरल स्वाभाविक प्रवाह होना चाहिए क्योंकि इसका प्रभाव विशेष रूप से भावों के प्रकटीकरण पर पड़ता है। भाषा में वह लच-कीलापन भी होना चाहिए जो अपने को भावों के अनुकूल बना सके अर्थात् जिस प्रकार के भाव हों उनको उपयुक्त रूप से प्रकट करने के लिए वैसी भाषा स्वतः प्रवाहित होती रहे।

यों तो इस प्रकार के गुण प्रायः सभी भाषाओं में रहते हैं और सफल कवियों के हाथ में पड़ने पर ये गुण और भी स्पष्ट हो उठते हैं पर तब भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि किसी भाषा में ये गुण स्वभावतः अधिक होते हैं तथा किसी में कम। ऐसा भी पाया जाता है कि किसी भाषा में एक प्रकार के गुण अधिक हैं तो किसी मे दूसरे प्रकार के। ब्रजभाषा की बनावट ही कुछ इस प्रकार की है कि उसमें प्रकृत्या माधुर्य, सरसता, लालित्य बना रहता है और उपर्युक्त सभी गुण इसमें हैं। यही कारण है कि इसीमें बहुत काल से कविता होती आ रही है। नंददासजी ब्रजमंडल ही के भक्त-सुकवि हो गए हैं और यह भी सौर-काल के। उस काल के सुप्रसिद्ध कवियों के समाज में भाषाधिकार के कारण ही यह 'और सब गढ़िया नंददास जड़िया' कहलाए थे। सुवर्णकार दो प्रकार के होते हैं, एक वह जो सोने को गढ़कर आभूषण बनाते हैं और दूसरे वह जो उन आभूषणों में कुंदन

से रत्नों को जड़ते हैं। यह कार्य ही बारीक कलापूर्ण होते हुए उन आभूषणों की शोभा का मुख्य कारण होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए इनके सारे ग्रंथ ही उपस्थित हैं पर यहाँ दो चार उदाहरण दे दिए जाते हैं।

उज्जल मृदुल बालुका कोमल सुखद सुहाई।
श्री जमुना जू निज तरंग करि यह जु बनाई॥
प्रेम-पुंज वरधन के काज व्रजराज कुँअर पिय।
मंजु कुंज में नेकु दुरे अति प्रेम भरे हिय॥

(रास पंचाध्यायी)

बुड्यो जु मन पिय प्रेम-रस क्यों हूँ निकस्यो जाय।
कुंजर ज्यों चहलै परयो छिन छिन अधिक समाय॥

(रूपमंजरी)

गुहि गुहि नवल मालती माला। मोहि पहिरावहु मोहनलाला॥
ललित लवंग लतनि की छाँही। हँसि बोलौ डोलौ गहि बाँही॥

(विरहमंजरी)

कौन ब्रह्म की जोति ग्यान कासों कहौ ऊधौ?
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधौ॥
नैन, बैन, स्रुति, नासिका मोहन रूप दिखाइ।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाइ॥

सखा सुनि स्याम के। (भ्रमरगीत)

वृंदावन, बंसीबट, जमुना तट बंसी रट,
रास में रसिक प्यारो खेल रच्यो वन में।
राधा-माधो कर जोरैं, रवि-ससि होत भोरैं,
मंडल में निरतत दोऊ सरस सघन में॥
मधुर मृदंग बाजै, मुरली की धुनि गाजै,
सुधि न रही री कछु सुर, मुनि, जन में।

'नंददास' प्रभु प्यारो रूप-उजियारो अति,
कृष्ण-कीड़ा देखि भये थकित जन मन में ॥ (पदावली)

भक्ति-भावना

सृष्टि के आरंभ ही से किसी न किसी प्रकार की उपासना का आरंभ हो जाता है। प्राचीनकाल के इतिहासों से ज्ञात होता है कि उपासना का आरंभ सवप्रथम भय ही से हुआ था और इसीलिए मानव-समाज के आरंभिक-काल में भूत-प्रेतादि ही सर्वत्र पूज्य माने गए थे। इसके अनंतर भय के साथ लाभ का विचार भी सम्मिलित हुआ और आकाश तथा वर्षा के स्वामी इंद्रदेव की भावना कर उनकी उपासना इसलिए चलाई गई कि वर्षा अच्छी होने से अन्नादि की उपज अधिक होगी। प्रत्यक्ष सूर्य की उपासना चली क्योंकि उसीका प्रकाश मनुष्यों को बहुत लाभ पहुँचाता था। मानवविचार के अधिक परिपक्व होने पर किसी एक ऐसे स्रष्टा की कल्पना की गई, जो समग्र गोचर अगोचर विश्व का निर्माता, नियंता तथा हंता हो सकता है और उसीके प्राय: साथ साथ अवतारवाद का आरंभ हुआ—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ४–७)

इसी प्रकार आरंभ में कर्मकांड का—यज्ञ, तपस्या आदि का—विशेष प्रचार रहा। इसके अनंतर ज्ञान के सिद्धांतों का प्रसार हुआ पर यह सब होते हुए भी भक्ति-श्रद्धा की सत्ता साथ साथ चलती रही और वह सूक्ष्मत: दोनो मे उपस्थित रही। इसके अभाव में कर्मकांड कोरा कर्म मात्र रह जाता है और यही अवस्था ज्ञान-कांड की भी हो जाएगी। अद्वैतवादी शंकराचार्य से प्रसिद्ध

ज्ञानविद् को भी काशी में भक्ति की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी थी। भक्तिपूर्ण उपासना के लिए आधार आवश्यक है और यह सगुण-साकार तथा निर्गुण निराकार दो प्रकार का होता है। कहीं कहीं निर्गुण मतभेद में ऐसे आधार के अभाव में मत-प्रवर्तक स्वयं ही बाद को आधार बन बैठता है, जैसे बौद्ध मत में महाज्ञानी बुद्ध भगवान।

भक्तों में भी दो भेद हैं। एक वे हैं जो संसार-त्यागी होकर केवल अपने इष्टदेव की उपासना में तत्पर रहते हैं, निष्काम अर्थात् कामना-रहित होकर उसीके भजन-कीर्तन में तल्लीन रहते हैं और उसके विनिमय में किसी भी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखते। ये वीतरागी (वैरागी) कहलाते हैं। दूसरी कोटि में वे सांसारिक गृहस्थ हैं, जो अपने इष्टदेव की उपासना, कीर्तन में अपना कुछ समय देते हुए गार्हस्थ्य-धर्म निबाहते हैं। पहली कोटि के भक्त दूसरी कोटि वालों के आदर्श, उपदेष्टा तथा मार्ग-प्रदर्शक होते हैं। इनकी अनन्यता, भक्तिमयी रचनाएं तथा उपदेश जनसाधारण में भक्ति के भाव का उद्रेक करते हैं। परंपरा से घरों में होती आती हुई उपासना-पूजन को देखकर, कथाश्रवण कर, सत्संग से तथा कभी कभी संसार-चक्र में पड़कर भक्ति का बीजारोपण हो जाता है और वह क्रमशः बढ़ती रहती है। भक्तिसूत्र में नारदजी ने कहा है—

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः। कथादिष्विति गर्गः।
आत्मरत्त्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः।

उपासना के पहिले पहिल दो प्रधान भेद हुए, एक शैव और दूसरा वैष्णव। विष्णु के दो अवतारों को लेकर वैष्णवों में भी दो भेद हुए। एक में श्रीसीताराम की और दूसरे में श्रीराधाकृष्ण की उपासना प्रधान मानी गई। अंतिम भेद के तीन आचार्य

हुए—विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य तथा निंबादित्य। प्रथम के अंतर्गत वल्लभाचार्यजी हुए, जिनके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्य नंददासजी हुए। इनकी जीवनी से ज्ञात होता है कि यह एक खत्रानी पर आसक्त होकर मारे मारे फिरते थे पर गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के सत्संग तथा उपदेश से श्रीराधाकृष्ण की भक्ति इनके हृदय में इस प्रकार अंकुरित हो उठी कि वह अंत तक विकसित होती गई और यह भक्त-सुकवियों के अग्रगण्यों में एक हो उठे।

गोपनीय श्रीराधा-तत्व

नंददासजी ने मानमंजरी, स्यामसगाई तथा पदावली में श्रीराधाजी का वर्णन किया है पर उनके अन्य किसी भी रचना में इनका नाम नहीं आया है। दोनों पंचाध्यायी तथा भाषा दशमस्कंध श्रीमद्भागवत के प्रायः अनुवाद ही हैं और जब उसी-में श्रीराधिकाजी का उल्लेख नहीं है तब इनमें न आना ही संभव है। नंददासजी के समय तक श्रीराधाकृष्ण की उपासना काफी प्रचलित हो चुकी थी अतः इन ग्रंथों में उनका नाम न आना किसी अन्य कारण से नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवत में श्रीराधाजी का नाम स्पष्टतः नहीं आया है और ऐसा ही विष्णु-पुराण के संबंध में कहा जा सकता है। महाभारत में श्रीकृष्ण की व्रजलीला ही का वर्णन नहीं है अतः वह व्रज के कृष्ण से भिन्न द्वारिका के अन्य कृष्ण भी कहे गए हैं और यह भी आक्षेप किया जाता है कि श्रीराधिकाजी को गोपियों में प्रमुखता देने का पहिले पहिल श्रेय श्रीजयदेवजी को है। यह ईसवी बारहवीं शताब्दि में हुए थे। अब देखना चाहिए कि इनके पूर्ववर्ती कवियों ने श्रीराधिकाजी का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है या नहीं और यदि किया है तो किस रूप में।

काव्यालंकार के रचयिता रुद्रट का समय ईसवी नवीं शताब्दि माना जाता है और इस पर जैन विद्वान नेमिसाधु ने सं० ११२५ वि० में टीका लिखी है। इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में सं० ११७६ वि० दिया है। नेमि साधु ने टीका में अपने से प्राचीन टीकाकारों का उल्लेख किया है तथा पाणिनि, भरत, कालिदास आदि से प्राचीन साहित्यकारों की रचनाओं से उद्धरण भी दिए हैं। ऐसे ही एक उद्धरण में राधा मधुसूदन का इस प्रकार उल्लेख हुआ है :--

कृष्णः सोऽपि हताशया व्यपहृतः कान्तः कयाप्यद्यमे।
किं राधेमधुसूदनो नहि नहि प्राणाधिकश्चोलकः॥

क्षेमेंद्र का समय ग्यारहवीं शताब्दि विक्रमीय का आरंभ है। इनका नाटक बाल-चरित अप्राप्त है पर इनके दशावतारचरित में (८, ८३,१९६०, १७१, १७६) श्रीराधाकृष्ण का वर्णन है, जिसका रचनाकाल सं० ११२८ वि० है। धाराधिपति भोजराज के पूर्वज वाक्पतिराज के दसवीं शताब्दि के दानपत्र में (इंडिअन ऐंटिक्वेरी जिल्द ६ पृ० ५१) एक श्लोक है जिसमें श्रीराधिकाजी का उल्लेख यों है—

यल्लक्ष्मी वदनेन्दुना न सुखितं यन्नार्दितं वारघे
र्वारायन्न निजेन नाभि सरसी पद्मेन शान्ति गतम्।
यच्छेषाहि फणसहस्र मधुरश्वासैर्न चा श्वासितं
तद्राधा विरहातुरं मुररिपोर्वेल्लद्वपुः पातु वः॥

आनंदवर्धनाचार्य ने स्वरचित ध्वन्यालोक में, जिसकी रचना विक्रमीय नवीं शताब्दि के अंत में हुई थी, एक श्लोक दिया है जिसमें श्रीराधाजी का वर्णन है—

दुराराधा राधा सुभगवदने नापि मृजत-
स्तवैतत्प्राणेश जघनवसने श्रुना पतितम्।

कठोरं स्वाचेतस्तल्पमुपचारैं विरमहे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुनमेष्वेवावमुदितः ॥

श्रीभट्टनारायण का समय सातवीं शताब्दि का अंत तथा आठवीं का आरंभ माना गया है। इन्होंने अपने नाटक वेणी-संहार के मंगलाचरण में श्रीराधाकृष्ण के रास-विहार का वर्णन किया है। श्लोक इस प्रकार है—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ॥

पंचतंत्र का समय विक्रम संवत् के आरंभ के कुछ पूर्व माना जाता है। इसमें विष्णु-रूप कौलिक की कथा है, जिसमें वह कौलिक अपने को विष्णु तथा उस राजकन्या को श्रीराधा का अवतार कहता है।

सत्यं अभिहितं भवत्या परं किन्तु राधा नाम मे भार्या ।
गोपकुलप्रसूता प्रथमं आसीत् सा त्वं अवतीर्णा ॥

पंचतंत्र के प्रायः समकालीन हालसातवाहन की गाथासप्तशती में एक श्लोक इस प्रकार है—

मुहमारुएण तं कह्न गोरअं राहिआएं अवणेन्तो ।
एताणं वल्लवीणं अराणाण विगोरअं हरसि ॥
(मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन्
एतासां वल्लवीनामन्यसामपि गौरवं हरसि ॥)

(काव्यमाला गाथासप्तशती पृ० ४४)

गाथासप्तशती में श्रीकृष्ण के साथ गोपियों का भी वर्णन आया है। भास कवि का समय ईसवी सन् के पूर्व शताब्दियों में है और उनके रचित 'बालचरित' में गोपालकृष्ण का तथा गोपियों

के साथ रास-क्रीड़ा का भी वर्णन आया है। वाल्मीकीय रामायण में वासुदेव श्रीकृष्ण का कई बार वर्णन आया है। बालकांड सर्ग ४० श्लोक २-३ तथा २५ इस प्रकार हैं—

यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः।
महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान्प्रभुः॥ २॥
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम्॥ ३॥
ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबलाः।
ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम्॥ २५॥

अर्थ—जिन धीमान् वासुदेव की यह पृथ्वी है, उन्हीं माधव की यह महिषी हैं। वही भगवान इसके प्रभु कपिल का रूप धारण कर इस पृथ्वी को सदा उठाए रहते हैं। उन सब महाबली वेगवान महात्माओं ने सनातन वासुदेव कपिलजी को वहाँ देखा।

अयोध्याकांड के सर्ग ३० श्लोक ३७ में गोलोक का उल्लेख है—

देवगंधर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान्।

युद्धकांड के सर्ग ११७ श्लोक २७ में लिखा है—

महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम्।
सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुः देवः कृष्णः प्रजापतिः॥

अर्थ—रामचंद्र को संबोधित कर कहा गया है कि अत्यंत कठोर बलि को बाँधकर महेंद्र को आपने राजा बनाया। सीता लक्ष्मी हैं और आप विष्णु, देव, कृष्ण तथा प्रजापति हैं।

उत्तरकांड के सर्ग ५३ पर श्लोक २० इस प्रकार है—

उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन्यदूनां कीर्तिवर्धनः।
वासुदेव इति ख्यातो विष्णुः पुरुषविग्रहः॥

अर्थ-इस संसार में विष्णु भगवान् मनुष्य शरीर में अवतार लेंगे और यदुओं की कीर्ति बढ़ाते हुए वासुदेव नाम से प्रसिद्ध होंगे।

महाभारत में व्रज या मथुरा के श्रीकृष्ण का उल्लेख नहीं है, यह कथन भी भ्रांतिमात्र है। शांति पर्व के दशावतार चरित-वर्णन, वस्त्रहरण के समय द्रौपदी की श्रीकृष्ण को पुकार तथा सभापर्व में शिशुपाल की श्रीकृष्ण निंदा आदि में व्रज तथा मथुरा की लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख है तथा जिनसे निश्चित रूप से ज्ञात हो जाता है कि व्रज, मथुरा तथा द्वारिका के कृष्ण एक ही थे। द्रौपदी पुकारती है—गोविंद द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रियः। श्रीमद्भागवत में ये एक थे, इसका पूरा विवरण है। यद्यपि श्रीराधाजी का नाम इस ग्रंथ में स्पष्ट नहीं आया है पर रासलीला में एक विशेष गोपी पर विशेष प्रेम होने का उल्लेख है और एक श्लोक में गुप्त रूप से नाम लाया गया है। श्लोक है—

अनयाराधितो न्यूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
अन्यो विहाय गोविंद

श्रीराधाजी के संबंध में ब्रह्मवैवर्त पुराण में विशद कथा दी हुई है जो संक्षेप में यहाँ दे दी जाती है।

अनादि काल से चली आती हुई तथा अनंत काल तक चली जानेवाली इस दृश्य तथा अदृश्य समग्र सृष्टि की उत्पादिका तथा संचालिका शक्ति ही परब्रह्म परमेश्वर या प्रकृति है। बृहदारण्यक उपनिषत् (१।४।३) में कहा गया है कि परब्रह्म का एकाकी होने से मन नहीं लगता था इससे उसने दूसरे की इच्छा की। वह स्वतः अपने में अकेला ही स्त्री-पुरुष दोनों के युक्त रूप में पूर्ण है अतः वह एक मटर की दो दाल के समान दो हो गए। ब्रह्मवैवर्त-पुराण के प्रकृति खंड में कहा गया है कि—

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिस्स्यात् सृष्टिवाचकः।
सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥

योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः ।
पुमांश्चदक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृति स्मृतः ॥

प्र से पहिले होना तथा कृति से सृष्टि का अर्थ लेने से तात्पर्य हुआ 'सृष्टि से पहिले वर्तमान होना' । अर्थात् सृष्टि से पहिले जो देवी वर्तमान थी वह प्रकृति कहलाई । सृष्टि के लिए योग द्वारा वह परब्रह्म दो रूप हो गया। दक्षिण अर्द्धांग पुरुष और वाम अर्द्धांग प्रकृति हुआ । प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा है और सृष्टि का प्रधान कारण भी—

गुणे प्रकृष्ट सत्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ ।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः ॥
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्ति समन्विता ।
प्रधानं सृष्टि करणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ॥

और इस प्रकृति की बिना सहायता के ब्रह्म भी सृष्टि नहीं कर सकता—

नहि क्षमं तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं तया विना ।
सर्वशक्तिस्वरूपा या तयाच्च शक्तिमान् सदा ॥

सृष्टि विधान के लिए इसी प्रकृति के पाँच स्वरूप हुए—

गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती ।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥

मूलतः प्रकृति एक होते भी सृष्टिकार्य में पाँच रूप में व्यक्त होती है:—

१. दुर्गा—यह गणेशजननी, शिवरूपा, शिवप्रिया, नारायणी, विष्णुमाया आदि आदि इनके नाम हैं और इनके 'गुणोऽस्त्यनंतोऽनंतायाः' हैं ।

२. लक्ष्मी—शुद्धसत्वास्वरूपा, पद्मा, सर्वसम्पत्स्वरूपा आदि आदि इनके नाम हैं । यह शक्ति ही वैकुंठ मे महालक्ष्मी, स्वर्ग मे

स्वर्गलक्ष्मी, राजाओं के यहाँ राजलक्ष्मी तथा गृहस्थों के यहाँ गृहलक्ष्मी होकर 'सर्वपूज्या सर्ववंद्या' हो गई हैं।

३. सरस्वती—वाग्बुद्धि ज्ञानादि की देवी, सर्वविद्यास्वरूपा, सर्वसंदेहभंजिनी आदि यह तृतीयाशक्ति सदा सुर्वसिद्धिप्रदा है।

४. सावित्री—वेद, वेदांग, छंदस, मंत्र, तंत्र आदि की देवी, जपरूपातपस्विनी, शुद्धसत्वस्वरूपिणी यह ब्रह्मतेजोमयी शक्ति सब-के हृदय में प्रेरणा करनेवाली है।

इस प्रकार शक्ति, ऐश्वर्य तथा ज्ञान की प्रथम तीन देवियाँ हैं और उनकी प्राप्ति के लिए सम्यक् उद्योग की प्रेरणा करनेवाली चौथी देवी हैं। इनके बिना मानव-समाज का जीवन निस्तेज ही रहता है परंतु इनके प्राप्त हो जाने पर इनका समुचित उपभोग करने के लिए राधाशक्ति की आवश्यकता है और उनका वर्णन इस प्रकार दिया है।

५. राधा—यह प्रेम की अधिष्ठातृदेवी तथा पचशक्तियों की प्राण-स्वरूपिणी हैं। यह सर्व सौभाग्ययुक्ता, मानिनी, गौरवान्विता, परमानंद-स्वरूपा, सर्वमाता तथा परमाद्या हैं। यह

रासक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
रासमंडलसंभूता रासमंडलमंडिता।
रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी॥

अर्थात् परमात्मा श्रीकृष्ण की रासक्रीडा की देवी यही सुरसिका रासेश्वरी राधा हैं। सब रसों का समुच्चय जो रास है उसीके मंडल से उत्पन्न यह 'परमाह्लादरूपा' गोलोकवासिनी देवी हैं। यह कैसी हैं—

निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी।
निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा॥

वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालंकारभूषिता।
कोटिचंद्रप्रभाजुष्ट श्रीयुक्ता भक्तविग्रहा॥

इन्हीं के वृषभानु-सुता रूप में अवतार लेने से इनके चरण-कमल के स्पर्श से पृथ्वी पवित्र हो गई और जो ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी 'अदृष्टा' थीं वही भारत में 'सर्वदृष्टा' हो गई थीं। ऐश्वर्य, विद्या, शक्ति सब कुछ रहते भी जिस प्रेम से विहीन जीवन नीरस ज्ञात होता है, उसी प्रेम की सर्वस्वरूपिणी देवी यही श्री राधिकाजी हैं। इस लोक के सुख तथा परलोक की कोई सिद्धि बिना प्रेम के नहीं मिलती। प्रेम का स्थान हृदय है और जहाँ प्रेम है वहीं उसकी अधिष्ठातृ देवी भी हैं।

प्रकृति के इन पाँच रूपों के सिवा 'अंशरूपा, कलारूपा तथा कलांशांश रूपा' अन्य तीन भेद किए गए हैं और अनेक देवियों की उत्पत्ति इन रूपों में बतलाई गई है। जैसे—

१. अंश-रूप—गंगा, तुलसी, मनसा, देवसेना, मंगला, काली, पृथ्वी।

२. कला-रूप—स्वाहा, दक्षिणा, स्वधा, स्वस्ति, पुष्टि, तुष्टि आदि।

३. कलांशांश-रूप अदिति, दिति, सुरभी, कद्रू, विनता आदि।

इस प्रकार परब्रह्म परमेश्वर स्वेच्छा से पुरुष तथा प्रकृति द्विधा होकर सृष्टि का संचालन कर देता है। उसके इच्छानुसार उसके साकार तथा निराकार दोनों रूप होते हैं, जिनमें प्रथम भक्तों द्वारा तथा द्वितीय ज्ञानियों द्वारा ध्यानगम्य होता है।

तेजोरूपं निराकारं ध्यायंते योगिनः सदा।
वदंति ते परंब्रह्म परमात्मानमीश्वरम्॥
वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः।
वदंति इति कस्य तेजस्ते तेजस्विनं विना॥

तेजोमंडलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्।
स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम् ॥

वैष्णव भक्तगण भगवान के साकार रूप का आग्रह करते हुए कहते हैं कि वह—

अतीव सुंदरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्।
किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम् ॥
नवीन नीरदाभासं रासैकश्यामसुंदरम् ॥

और इसी रूप में उस परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करते हैं। भगवान के इसी साकार रूप को ('कृष्ण इत्यभिधीयते') वे कृष्ण कहते हैं और यह भगवान कृष्ण द्विधा रूप होकर श्री राधाजी के—

अतिमात्रं तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले।
रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीड़ां चकार ह ॥

इन्हीं श्रीकृष्ण तथा राधिकाजी से विष्णु तथा कमला अलग रूप धारण कर वैकुंठ में रहने लगे। इसके अनंतर ब्रह्मवैवर्त पुराण के ४८-६ वें अध्याय में राधिकाजी के पृथ्वी पर अवतरित होने की कथा है। शिवजी द्वारा यह कथा कहलाई गई है। वह कहते हैं—

मदिष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति।
अतीव गोपनीयं च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥
शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्।
चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं च सुपुण्यदम् ॥

संक्षेप में गोलोकस्थ वृंदावन में एकाकी परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वेच्छा से दो हो गए और उनका वामांग श्रीराधाजी अलग हो

गईं। रासक्रीड़ा के लिए श्रीकृष्ण ने गोपों को तथा राधिकाजी ने गोपियों को उत्पन्न किया। ये दोनों—

राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम्।
उभयोः सर्व साम्यं च सदासंतो वदंति च॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान प्रभुः।
परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत्॥

यहीं एक बार भगवान श्रीकृष्ण विरजा नाम की श्रीराधाजी की सखी से प्रेमालाप करने से श्रीराधा कुपित हो गईं और उनकी भर्त्सना करने लगीं। श्रीकृष्ण तो मौन रहे पर सुदामा ने कुछ प्रत्युत्तर दे दिया, जिसपर क्रुद्ध हो राधिकाजी ने शाप दिया कि जा, आसुरी योनि में जन्म ले। इसपर उसने भी पलट कर शाप दिया कि तुम भी पृथ्वी पर गोपकन्या हो और कृष्ण का विच्छेद रहे। इसी शाप के कारण—

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सति।
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥

वृषभानु तथा कलावती की कन्यारूप में श्रीराधाजी ने जन्म लिया और जब यह बारह वर्ष की थीं तब रायाण वैश्य से इनका विवाह हुआ। यह रायाण गोलोक ही का रायाण था—

स च द्वादश गोपानां रायाण प्रवरः प्रिये।
श्रीकृष्णांशश्च भगवान् विष्णु तुल्य पराक्रमः॥

यह रायाण यशोदाजी का सहोदर भाई था और इसके गृह पर 'छाया संस्थाप्य' राधाजी अंतर्द्धान रहीं। उनके चौदहवें वर्ष में श्रीकृष्ण का गोकुल में जन्म हुआ। गोकुल में श्रीकृष्ण बाल्यकाल व्यतीत कर तथा कैशोरावस्था में पदार्पण करते ही मथुरा चले गए इस कारण शाप के अनुसार श्रीराधाजी को कृष्ण-विच्छेद बराबर रहा।

प्रेम-भक्ति

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दित पादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम्॥

भगवान श्रीकृष्ण ने पृथ्वी पर पहिले देवकी-सुत वासुदेव रूप में अवतार धारण किया और मथुरा से व्रज वृंदावन में जाकर जब वहाँ प्रगट हुए तब नंदनंदन यशोदा पुत्र कहलाए। यहीं इन्होंने बाल लीला की, जिससे बाल कृष्ण, लीला कृष्ण, गोपी कृष्ण, गोपाल कृष्ण, राधा कृष्ण आदि कहलाए। व्रज में मथुरा लौट आने पर तथा द्वारिका में रहते हुए यह कूट राजनीतिज्ञ वासुदेव कृष्ण हो गए। इसीके अनंतर यह योगेश्वर कृष्ण हुए। श्रीमद्भागवतादि भक्ति ग्रंथों में इनका प्रथम रूप तथा वेद, उपनिषद् महाभारत आदि में इनका द्वितीय रूप विशेष ग्रहण किया गया है। योगेश्वर कृष्ण का विशेष वर्णन महाभारत में आया है।

भगवान श्रीकृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद, अनेक उपनिषदों, दस-ग्यारह पुराणों, संहिताओं, तंत्र ग्रंथों आदि में बराबर मिलता है और श्रीमद्भागवत, हरिवंश तथा महाभारत तो इनकी लीलाओं से भरा हुआ है। इनमें इनकी तथा इनके संबंधियों की वंश-परंपराओं का विस्तार के साथ विवरण मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि द्वापर का अंत श्रीकृष्ण के अंतर्हित होने के साथ-साथ हुआ है और उसके अनंतर कलियुग का आरंभ हुआ है। भारतीय पंचांग के अनुसार कलियुग का आरंभ हुए पाँच सहस्र वर्ष से अधिक हो गए अतः इसके पहिले श्रीकृष्ण ने भारत भूमि में

अवतरित होकर इस देश को अपनी लीलाओं से पावन किया था।

भक्ति सूत्र में श्रीनारदजी ने कहा है कि 'भक्तिः महानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग ही भक्ति है और इसके उदाहरण स्वरूप में 'व्रज गोपिकादिवत्' लिखा है। इन्हीं व्रज गोपियों की प्रधान या स्वामिनी श्रीराधा है तथा श्रीराधा-कृष्ण की उपासना तथा भक्ति ही प्रेमभक्ति कहलाती है।

स्वभावतः स्त्री-हृदय अनुरागपूर्ण होता है और जब वह किसीके प्रति बढ़ जाता है तब सभी अन्य भाव दूर हो जाते हैं। यदि इस अनुराग में विषयांतर नहीं होता और वह माधुर्यमय भगवान के प्रति दृढ़ हो जाता है तभी मानव-जीवन चरितार्थ होता है। इसी प्रकार का अनुराग भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति जन्म ही से गोपियों में था और इसी कारण पति-पुत्र आदि का मोह त्याग कर वे भगवान में पूर्णतया आसक्त हो गईं। अवश्य ही उनकी आसक्ति पहिले बहिर्मुखी थी, वे श्रीकृष्ण के मनोमुग्धकारी रूप-लावण्य ही में अनुरक्त थीं और इसी को अंतर्मुखी करने के लिए श्रीकृष्ण ने पहिले अनुवृत्ति मार्ग ग्रहण कर उनकी आसक्ति को अत्यधिक तीव्र कर दिया। कुछ देर तक श्रीकृष्ण के संपर्क में रहने से उनका प्रेम इतना बढ़ गया कि उन्हें संसार तुच्छ समझ पड़ने लगा। इसके अनंतर कुछ देर के विरह से उनकी अहंता भी दूर हो गई और उनका प्रेमभाव इतना प्रगाढ़ हो गया कि वे कृष्ण रूप हो गईं। इसी समय भगवान इनके बीच में पुनः आविर्भूत हो गए और इससे गोपियाँ पूर्णकाम हो गईं। उनकी बहिर्मुखी बुद्धि अंतर्मुखी हो गई और वे परमानन्द में विभोर हो उठीं। वे शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान में मिल गईं। प्रेमिक आत्माएँ चिन्मय श्रीकृष्ण मूर्ति में आकृष्ट होकर सहज

मानव-प्रकृति के अनुरूप ही उस मधुर मूर्ति के सहवास की प्रार्थिनी हुईं पर उसके स्पर्श मात्र से शुद्ध होकर वे सांसारिक रागों से दूर शुद्ध प्रेमपूर्ण हो गईं।

साधारणतः मनुष्य के सभी कर्म विधि-निषेध से सीमित होते हैं, कोई कर्म भला है तो कोई बुरा है पर बालकों की क्रीड़ा में भले-बुरे का ज्ञान नहीं होता। वे किसी उद्देश्य को लेकर क्रीड़ा नहीं करते। भगवान ने कहा ही है—

दोषबुद्धयोभयातीतः निषेधान् न निवर्तते।
गुणबुद्धया च विहितं न करोति यथार्भकः॥

महापुरुष लोग का भी धर्म अधर्म में कुछ स्वार्थ या अनर्थ नहीं होता—

कुशलाचरितेनेषाम् इह स्वार्थः न विद्यते।
विपर्ययेन वानर्थः निरहंकारिणां प्रभो॥

विहित धर्मपूर्ण आचारों में उनका कोई स्वार्थ नहीं होता और न इसके विपरीत कार्यों के करने से उनको अनर्थ का भान होता है क्योंकि उनमें अहंकार ही नहीं है, अहं की भावना ही नहीं है। ऐसी अवस्था को प्राप्त भक्तगण सर्वांतर्यामी भगवान श्रीकृष्ण में जिस प्रकारकी भावना से पूर्ण आसक्ति प्राप्त कर लेते हैं वही आगे के लोगों के लिए एक मार्ग हो जाता है। भाव को लेकर ही गुरु-शिष्य परंपरा चलती है गुरु जो भाव बतलाता है उसीका आश्रय लेकर शिष्य आगे बढ़ता है और सफल-काम होता है इसी गोपी-भाव या राधा-भाव के मुख्य शिष्य नवद्वीप-गौरव श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु हुए, जिन्होंने इसी प्रेमभक्ति की शिक्षा दी है। राजस्थान की मीराँबाई भी इसी भाव की शिष्या आजन्म रहीं।

गोपियों का प्रेम अलौकिक, असामान्य तथा अतुलनीय था। बालक भगवान श्रीकृष्ण में उनका कैसा सत्य-शुद्ध प्रेम था, यह

उनके मथुरा जाते समय दुःख प्रगट करने से ज्ञात होता है। जब उद्धवजी मथुरा से कृष्ण-संदेश लेकर गोपियों को सान्त्वना देने के लिए वृंदावन आए तब इनकी विरहावस्था देखकर वह ज्ञान-प्रवृद्ध होते भी विस्मित हो गए और कहने लगे—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृंदावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
याः दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुः मुकुंदपदवीं श्रुतिभिः विमृग्याम्॥
वन्दे नंद व्रजस्त्रीणां पादरेणुम् अभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

जिन गोपियों ने दुस्त्याज्य स्वजनों तथा आर्यधर्म को छोड़कर वेद विमृग्य बाल-मुकुन्द का ही भजन किया है उनकी चरण धूलि से पावन हुई वृंदावन की लता पौधे आदि के बीच में मैं भी कुछ एक हूँ। जिनकी हरि कथा का गान त्रिभुवन को पवित्र करता है उन नंद के व्रज की बालाओं के चरण रेणु को मैं निरंतर वंदना करता हूँ।

भक्तिसूत्र में भक्ति की क्या परिभाषा है यह ऊपर लिखा जा चुका है। उसका तात्पर्य यही है कि परमेश्वर परब्रह्म में उस प्रकार का तीव्र अनुराग करना ही प्रेमभक्ति है जैसा गोपियों की या उनकी स्वामिनी श्रीराधाजी की अनुरक्ति श्रीकृष्ण भगवान में थी। यही गोपी या राधा भाव ही प्रेमभक्ति है जो साधारण मनुष्यों के लिए दुर्लभ है। इसका कुछ भी अंश हृदय में उत्पन्न होते ही वह भक्त जीव धन्य हो जाता है। इस भक्तियोग के लिए साधना की आवश्यकता पड़ती है पर व्रज बालाओं को ऐसा करना ही नहीं पड़ा क्योंकि उन्हें साक्षात् भगवान ही का सत्संग प्राप्त था। कहा है—

ते नाधीतश्रुतिगणा: नोपासित महत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः मत्संगान्मामुपागताः ॥

इन्होंने न वेदों का अध्ययन किया, न महात्माओं की उपासना की, न व्रत रखा और न तपस्या की, केवल सत्संग से मुझे पा लिया। अवश्य ही गोपियों का अपूर्व सौभाग्य था कि उन्हें भगवान ही का सत्संग मिल गया, जिससे उन्हें साधन की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। परंतु साधारण मनुष्यों के लिए तो यह दुर्लभ है अतः उन्हें साधना करनी पड़ेगी। इसके लिए शास्त्रों में कुछ साधन बतलाए गए हैं। जैसे—

सात्विकोपासया सत्वं ततः धर्मः प्रवर्तते।

अर्थात् सात्विक भोजन करने से सत्यवृद्धि होती है और धर्म की ओर मन बढ़ता है। इसके अनंतर वैराग्य का अभ्यास करते हुए लिप्सा नष्ट होती है। फिर सच्चे गुरु का आश्रय लेना चाहिए और तब नैतिक तथा आध्यात्मिक अनुशीलन करना चाहिए। इस अनुशीलन के अंतर्गत तप, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य आदि सभी आ जाते हैं। भक्ति की पाँचवीं साधना अभिमत मूर्ति-पूजन करना है, जो भक्ति प्राप्त करने का उत्कृष्ट उपाय है। शास्त्रीय विधि से मूर्ति पूजन करने से पूजक का विशेष उपकार होता है और कुछ दिन इन सब का अभ्यास करते रहने से साधन भक्ति प्राप्त हो जाती है। इसीके अनंतर प्रेमभक्ति का क्रमशः विकास होने लगता है और भक्त के लिए अपने भगवान् के अतिरिक्त अन्य कुछ लक्ष्य रही नहीं जाता। उन्हें

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिः अपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥

न ब्रह्मपद, न इंद्र वैभव, न सार्वभौमत्व, न रसातल का आधिपत्य, न योगसिद्धि और न मुक्ति किसी की भी इच्छा नहीं

रहती क्योंकि उन्होंने अपने को ईश्वर को अर्पित कर दिया है और किसी अन्य की चाह नहीं रह जाती। ऐसे भक्तों को जो सुख प्राप्त होता है वह स्वसंवेद्य है, वर्णनीय नहीं है। उसे भगवान ही एक मात्र प्रिय हो जाते हैं और संसार के अन्य सभी बंधु आदि से विरक्ति हो जाती है। इसी परमानंद के आस्वाद से अन्य सभी क्षुद्र क्षणिक आनंद की लिप्सा रह नहीं जाती और वह सच्चा प्रेमी भक्त हो जाता है।

रास लीला

लीला शब्द का साधारण अर्थ क्रीड़ा या खेल है और प्रायः यही अर्थ कुछ विशेषता लिए हुए साहित्य तथा शृंगार में माना जाता है। लीला एक हाव भी है जिसकी परिभाषा साहित्य-दर्पणकार ने इस प्रकार दी है—

अंगैर्वेषैरलंकारैः प्रेमभिर्वचनैरपि।
प्रीति प्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः॥

(विरह-काल में समय काटने के लिए) अपने प्रिय के अंगविक्षेप, वेष, आभूषण, बातचीत आदि का नायिकाओं द्वारा अनुकरण किया जाना ही लीला हाव कहलाता है। परंतु इस लीला शब्द में, जब वह ईश्वर शब्द संयुक्त हो जाता है, तो रहस्यपूर्ण विशेषता आ जाती है। जब मानव की समझ के परे कोई बात सामने आ जाती है तो वह उसे ईश्वरी-लीला समझकर चित्त को सान्त्वना देता है। ईश्वर के अवतारों अर्थात् महान् पुरुषों के चरित्र भी लीला कहे जाते हैं और उन चरित्रों के अभिनय भी उनकी लीला कही जाती है जैसे रामलीला या कृष्णलीला। जिस प्रकार श्रीरामचंद्र मर्यादापुरुषोत्तम कहे जाते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्णचंद्र लीला पुरुषोत्तम कहे जाते हैं।

लीला शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है, लीयमलातीति लीला। ली का अर्थ जोड़ना, मिलाना, पाना, लीन होना, गलाना आदि है और ला का अर्थ देना, लेना है। दोनों का मिलाकर अर्थ होगा लीन होने को अंगीकार करना। वेदांत सूत्र मे 'लो वत्तु लीला कैवल्यम्' कहा गया है अर्थात् यह लोक केवल (ईश्वरी) लीला के लिए है पर कैवल्य मे मुक्ति या मोक्ष का भी भ व निकलता है। तात्पर्य यह है कि इहलोक केवल ईश्वरी लीला ही के लिए नहीं है प्रत्युत् उस लीला के द्वारा मानव मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। ईश्वर पृथ्वी पर अवतार धारण कर इसी लिए लीला करता है कि वह उसके द्वारा मनुष्यों पर अपनी दया दिखलावे। यह लोक यदि भगवान की लीलाभूमि है तो मानव की यह कर्मभूमि है और आत्मा-परमात्मा का संबंध अनित्य है। ईश्वर के लिए कैवल्य मोक्ष का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि वह अपने ही रूप में एक तथा पूर्ण है अतः मोक्ष का तात्पर्य केवल आत्माओं के लिए ही है, जिन्हें उसकी आवश्यकता है। इस प्रकार भगवल्लीला का उद्देश्य आत्माओं के प्रति दया दिखलाना तथा उनमें भगवान के प्रति प्रेम-भक्ति की प्रेरणा करना ही है, जिससे वे सांसारिक जंजाल से मोक्ष प्राप्त कर सकें।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण की लीलाओं में गोवर्द्धन लीला, गोचारण लीला आदि हैं उसी प्रकार एक रासलीला कहलाती है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण ने शारदी पूर्णिमा को गोपियों को साथ लेकर नृत्य-गान तथा क्रीड़ा की थी। यह पूर्णिमा अब रासपूर्णिमा भी कहलाने लगी है। अब विचारणीय यह है कि यह रास शब्द कैसे बना और इसका अर्थ तथा भाव क्या है? अब रासलीला का अर्थ इतना विस्तृत हो गया है या उसका महत्त्व इतना बढ़ गया है कि उसके अंतर्गत समग्र कृष्णलीला ले ली गई है और

इस लीला को करने वाले रासधारी तथा उनके दल को रास-मंडली कहने लगे हैं। रास यात्राएँ भी होती हैं, जिनमें श्रीकृष्ण की सभी लीला के अभिनय होते हैं।

रास शब्द की व्युत्पत्ति रस शब्द से हुई है। क्रिया रस का अर्थ आस्वादन करना, प्रेम करना तथा शब्द करना है। संज्ञा रस के अनेक अर्थ हैं जैसे खट्टा, तिक्त, मिठास आदि छ रस, कविता के शृंगार आदि नव रस, स्वाद, प्रेम, किसी वस्तु का निचोड़ा हुआ द्रव पदार्थ, जल आदि हैं। इस शब्द से बने हुए रास शब्द के कोलाहल, विलास, शब्द, वाणी, शृंखला तथा गान-युक्त वह नृत्य जो गोलाकार घूमते हुए किया जाता है। रास शब्द का अंतिम अर्थ उसके अन्य अर्थों का एकीकरण करके बाद में माना गया ज्ञात होता है, क्योंकि ऐसे नृत्य में बहुत से स्त्री-पुरुषों के सहयोग देने से अवश्य ही विलासपूर्ण, कर्ण मधुर ही सही, कोलाहल होता रहा होगा तथा वे शृंखला के समान एक दूसरे से मिलकर नृत्य-गान करते थे। इसके स्वरूप तथा उसके आस्वादन का वर्णन यों किया जाता है कि

सत्वोद्रेकादखंडस्वप्रकाशानंद चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥

रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर जब सतोगुण के उद्रेक से अखंड निर्मल प्रकाश युक्त आनंद तथा चमत्कार मय, अन्य विषयों के संबंध से हीन ब्रह्म के आस्वाद के भाई का, तथा अलौकिक चमत्कार द्वारा अनुप्राणित रस का कोई-कोई ज्ञाता अपने ही आकार की भाँति अभिन्न रूप से आस्वादन करता है। अर्थात् सच्चिदानंदमय विषयहीन अलौकिक चमत्कारपूर्ण रसों का

समुच्चय ही रास है और जिसका आस्वादन कोई-कोई वैसे ही ज्ञाता कर सकते हैं जिनमें पूर्व जन्म के वासनाख्य संस्कार बने हैं तथा जो उसमें तन्मय हो जाते हैं। इस प्रकार रास तथा लीला दोनों शब्दों की कुछ व्याख्या कर लेने पर रासलीला के रहस्य का कुछ ज्ञान हो जाता है।

भगवान अपनी लीला शक्ति से दिव्य अवतार धारण कर अमलात्मा जीवों के लिए भक्तियोग का विधान करते हैं और वे 'आनंदैकरसमूर्तयः' भक्त उस सौंदर्य-माधुर्य-सुधामयी मूर्ति के प्रति ऐसे आकृष्ट हो जाते हैं कि उन्हें भगवद्दर्शन के आगे सांसारिक सुख तो क्या, मुक्ति, कैवल्य, अपुनर्जन्म आदि सभी तुच्छ ज्ञात होते हैं। जिस प्रकार भगवान विधि-निषेधातीत हैं, उसी प्रकार शुद्ध अंतःकरण के भक्त भी हो जाते हैं। उनके लिए मर्यादा का पालन या अपालन कुछ महत्व नहीं रखता। शास्त्रीय विधि तो इतनी ही है कि ईश्वर के प्रति पूज्य तथा श्रद्धा का भाव रखो और उसकी उपासना तथा भक्ति करो। लोगों में ऐसी प्रवृत्ति इसी विधि के कारण होती है और वे बलपूर्वक उस ओर चित्त लगाते हैं पर भगवान की दिव्य लीला में प्रविष्ट होने पर भक्त को इस विधि की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। वह स्वतः विधि या निषेध किसी का विचार किए ही, भगवान के प्रति आकृष्ट हो जाता है। उसे तो भगवान में विशुद्ध प्रेम ही अपेक्षित है।

बहुत से भाव ऐसे भी होते हैं, जो प्रच्छन्न रूप में कुछ और जान पड़ते हैं पर उनका रहस्य कुछ और ही होता है। यह तो स्पष्ट है कि भगवान श्रीकृष्ण प्राकृत नहीं हैं और ये गोपियाँ भी सब प्राकृत प्रपचों से परे हैं। उनकी यह लीला स्थूल दृष्टि से काम क्रीड़ा ही कही जायगी पर उसमें वास्तव में आत्मा तथा परमात्मा के अलौकिक संयोग का रहस्य ही मुख्य है। गोपियों के

प्रेम का पर्यवसान अभेद ही मे है, भेद में नहीं। वास्तव में ये व्रज लीलाएँ प्राकृत न थीं केवल उनका वाह्यरूप ही प्राकृत था। श्रीकृष्ण ने यह सब लीलाएँ अपने अवतार के आरंभ मे उसके प्रधान प्रयोजन भक्तो में प्रेमभक्ति की प्रेरणा के लिए की और गोपियाँ इस भक्ति-मार्ग की आचार्य-स्वरूपा हुईं।

पंचाध्यायी

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखात् द्रवसंयुतम्।
पिवत भागवतम् रसमालय मुहुरहो रसिकाः भुविभावुकाः॥

श्रीमद्भागवत वेदरूपी कल्पवृक्ष का फल है, जो शुकदेवजी के मुख से निकले हुए रस से भरा हुआ है और रस का आकर है। रसिक भावुकगण इस ग्रंथ के रस का निरंतर पान करते रहें। ज्ञानभक्ति के इस अद्वितीय ग्रंथ के दशम स्कंध में श्रीकृष्ण की बाल तथा कैशोर लीला नब्बे अध्यायो में वर्णित है। इन अध्यायों में २९वें से ३३वें अध्याय तक रासलीला का वर्णन है, जिसे रास पंचाध्यायी कहते हैं। नंददासजी ने इसीका भाषा में पद्यवद्ध अनुवाद किया है पर स्वच्छंद भाव से, कहीं कुछ बढ़ाया है तो कहीं कम भी कर दिया है। साथ ही इन्होंने रास पंचाध्यायी लिखने के अनंतर सिद्धांत पंचाध्यायी की भी रचना की, जिसमे रास क्रीड़ा के सिद्धांतों को समझाया है।

संक्षेप में रासलीला की कथा भागवत के अनुसार इस प्रकार है कि शारदीय पूर्णिमा की रात्रि के आरंभ में श्रीकृष्ण ने मुरली बजाकर गोपियों का आह्वान किया। गोपियाँ भी सभी सांसारिक कर्मों का त्याग कर व्यग्रता के साथ वहीं जा पहुँचीं। श्रीकृष्ण ने उनकी प्रेम-परीक्षा लेने के लिए उन्हें घर लौट जाने के लिए उपदेश दिया पर जिन्होंने सभी सांसारिक संबंध, मोह आदि

छोड़कर सत्यनिष्ठा से श्रीकृष्ण के प्रति एकांत अनुराग ले लिया था, वे किस प्रकार लौट सकती थीं। इस प्रकार उन व्रज बालाओं को अपने प्रति आकृष्ट देखकर अनाकृष्ट भगवान श्रीकृष्ण उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। गोपियों में श्रीकृष्ण को विहार करते पाकर अहंकार उत्पन्न हुआ कि वे श्रीकृष्ण को अत्यंत प्रिय हैं पर भगवान उनके इस अहंकार को दूर करने के लिए तत्काल ही अंतर्हित हो गए।

श्रीकृष्ण के साथ विहार करते समय व्रजाङ्गनाएँ उनके हास-विलास, वार्तालाप, नृत्य आदि में इतनी तन्मय हो रही थीं कि वे कृष्ण-मय हो गईं। प्रेमोन्माद में वे अपने ही को कृष्ण समझ कर उनका अनुकरण करने लगीं। फिर वे वनों में श्रीकृष्ण को खोजने लगीं और जो सभी में व्याप्त है उसका पता वृक्ष, पशु आदि से पूछती फिरने लगीं। उनके मनमें भगवान के न मिलने पर गृह लौटने का ध्यान भी नहीं गया, उनमें संसार के प्रति कुछ भी मोह रहा नहीं गया था। अंत में बहुत खोजने पर श्रीकृष्ण के चरण चिह्न मिले और इसके अनंतर श्रीराधिकाजी मिलीं। अब वे सब पुनः श्रीकृष्ण को खोजने लगीं। अंत में उनके न मिलने पर वे उच्च स्वर से रुदन करने लगीं और उनकी लीलाएँ गाने लगीं।

इस प्रकार इनका रुदन सुनकर भगवान श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच में प्रगट हो गए। गोपियाँ मदनमोहन श्रीकृष्ण को पाकर परम आह्लादित हुईं और उनके साथ यमुना-तट पर जाकर विहार करने लगीं। कुछ वार्तालाप के अनंतर रास-मंडल रचा गया और प्रत्येक गोपी के साथ एक-एक श्रीकृष्ण प्रगट होकर नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त होने पर प्रातः-काल सभी गोपियाँ अपने गृह लौट गईं और किसी ने भी उनपर शंका नहीं की।

नददासजी ने इसमे कुछ परिवर्द्धन तथा संक्षिप्तीकरण किया है। आरंभ में शुकदेवजी की शोभा, भक्ति आदि का बारह रोलाओं में, भागवत तथा पंचाध्यायी का माहात्म्य चार रोलाओं में, वृंदावन तथा वृक्ष का वर्णन सोलह रोलाओं मे और श्रीकृष्ण-शोभा पाँच रोलाओं में वर्णित है। इसके अनंतर शरद-वर्णन कुछ विस्तृत किया गया है। मुरली-नाद सुनकर जब व्रजबालाएँ अपने-अपने गृहों के कार्यों को छोड़कर वन की ओर भागी हैं, तब नददासजी ने केवल उनकी विरह तीव्रता तथा मिलन की आतुरता ही का वर्णन किया है और किन-किन कार्यों को छोड़कर वे वन की ओर चली थीं, उनकी भागवत के समान सूची नहीं दी है। परीक्षित के शका समाधान के अनतर कृष्ण गोपी मिलन का वर्णन है, जिसे भागवत में केवल एक ही श्लोक में कह दिया गया है और तब श्रीकृष्ण दस श्लोको में उपदेश देकर लौट जाने को कहते हैं। नंददासजी ने श्रीकृष्ण के व्रजबालाओं के आने पर मुग्ध होने तथा उनका आदर करने के अनंतर केवल एक रोला मे लौट जाने का संकेत कराया है। इसके उपरान्त गोपियों के दुखित होने तथा प्रणय-कोप से उनके दिए हुए उत्तर का उल्लेख है। भागवत में जब ग्यारह श्लोक में उत्तर है तब नद-दासजी ने केवल छः रोलाओं मे कहलाया है। इस प्रकार की कातरोक्ति सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो उनके साथ वन विहार करने लगे। इसका वर्णन भी भागवत के आधार पर होते भी स्वतत्र है। इसी बीच कामदेव का आना, मूर्छित होना तथा रति का उसे उठा ले जाना नंददासजी की निजी कल्पना है। इसके अनतर गोपियों को उचित सौभाग्य-गर्व होने पर श्रीकृष्ण के अतर्ध्यान होने के साथ प्रथम अध्याय समाप्त हो जाता है।

नंददासजी दृष्टांत रूप में बतलाते हैं कि जिस प्रकार मिष्टान्न खाते खाते मन भर जाने पर अन्य तिक्त, निमकीन रस विशेष रुचिकारक ज्ञात होते हैं उसी प्रकार प्रेम में भी संयोग के अनंतर कुछ वियोग होने से प्रेम भी विशेष पुष्ट होता है। व्रजबालाएँ भी श्रीकृष्ण के थोड़ी देर के संसर्ग से इतने प्रेमावेश में आ गई थीं कि उन्हें चेतन अचेतन का ज्ञान नहीं रह गया था और श्रीकृष्ण को न देखकर वे ऐसी विरहाकुला हो गईं जैसे निर्धन महानिधि का पाकर फिर खोदेने से होता है। वे वृक्ष, पौधे आदि से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगीं पर उनसे जब निराश हो गईं तब इनका प्रेमावेश और बढ़ा। उनका अहमत्व मिट गया और वे कृष्ण रूप हो गईं। कृष्ण ही में तन्मय होकर—'उन्मत्त की नाईं' वे उन्हीं की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। वे कृष्ण-भगति तें कृष्ण' हो गईं। इसी समय इन्हें श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह दिखलाई दिए और वहीं 'प्यारी तिय' (आराधाजी) के चरण चिन्ह भी मिले। यहीं इन्हें वेनी-गुहन' के चिन्ह भी मिले पर उन व्रज बालाओं में रत्ती भर ईर्ष्या उत्पन्न नहीं हुई क्योंकि वे सभी सांसारिक माया-मोह द्वेष आदि से परे हो गई थीं। ये उन्हीं पद चिन्हों का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं। कुछ ही दूर पर वही प्यारी तिय' अकेली महाविरह में रोती हुई मिली और उसे खोई हुई महानिधि का अर्द्धांश मानकर वे उसे साथ लेकर यमुना तट पर पहुँचीं। यहाँ दूसरा अध्याय समाप्त होता है और तीसरे में गोपियाँ उन्हीं की लीला का वर्णन करते हुए इस प्रकार अंतर्ध्यान होने पर उलाहने देने लगीं।

इस प्रकार व्रजवनिताओं की विरहाकुलता देखकर श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच एकाएक प्रगट हो गए। उन 'मनमथ के मनमथ' को देखकर वे अत्यंत आह्लादित हो उठीं। यमुना के तट पर

श्रीकृष्ण से मिलकर सभी पूर्णकाम हो गईं तथा उनके हृदय का कलमप रूपी घाम दूर हो गया। सभी ने आसन देकर भगवान को बैठाया और अंतर्ध्यान हो जाने के कारण उनका प्रणय-तिरस्कार करने लगीं। इस पर भगवान ने उनके निस्वार्थ प्रेम की प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न किया। यहीं चौथा अध्याय समाप्त होता है और पाँचवें में रासलीला का वर्णन है।

रास उस नृत्य को कहते हैं, जिसमें अनेक स्त्री-पुरुष मिलकर गोलाकार नृत्य करते हैं। योगेश्वर श्रीकृष्ण जितनी गोपियाँ थीं उतना रूप धारण कर प्रत्येक के लिए आसन पर विराजमान हो चुके थे अतः सभी युगल मूर्तियाँ हाथ पकड़ कर उठ खड़ी हुईं और रासमंडल बनाकर नृत्य-गान करने लगीं। नंददासजी ने नृत्य, गान तथा क्रीड़ाओं का बहुत ही सुंदर सरस वर्णन दिया है। प्रत्येक गोपी यही समझ रही थी कि भगवान उसीके सन्निकट हैं, उसीके हैं और वह स्वयं उन्हीं की है अर्थात् दोनों में भेद नहीं है। इस प्रकार २९ रोलाओं तक यह वर्णन समाप्त कर नददासजी कहते हैं कि इस रस को शिव, शुकदेव आदि देवता-ऋषिगण समझते हैं पर वे भी वर्णन नहीं कर सकते। इस कथा को प्रेम-भक्ति से जो लोग सुनते हैं, गाते हैं उनके लिए यह वेद-ज्ञान-हरिभक्ति के तत्व के समान है और पापनाशिनी तथा मंगलदायिनी है। नंददासजी ने इस रचना में गोपियों के (रासलीला समाप्त होने पर) अपने-अपने गृहों को लौट जाने का उल्लेख नहीं किया है, जैसा कि भागवत में है। नंददासजी ने रासलीला ही नहीं समाप्त की है और होती हुई रासलीला के महत्व का वर्णन करते हुए उसे समाप्त कर दिया है। उनका भाव यही है कि यह नित्य रासलीला है, जिसकी कभी समाप्ति नहीं है।

पंचाध्यायी का आधार श्रीमद्भागवत ही है, ऐसा होते भी नंददासजी कोरे अनुवादक मात्र नहीं हैं। कवि-कल्पना प्रसूत अनेक नए प्रसंगों का समावेश, सुंदर उक्तियाँ, भाषा-सौष्ठव, विषय-प्रतिपादन की विशिष्ट रीति तथा धार्मिक विचार ये सब कवि की मौलिक विशेषताएँ हैं। चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण के पुनः प्रगट होने पर गोपियों को जो आनंद हुआ है, उसके वर्णन में कवि ने जो उत्प्रेक्षाओं की लड़ी सी पिरो दी है वह नंददास जी ही की कल्पनाएँ हैं। भागवत में कुल गोपियों के बीच एक ही श्याम के बैठने का उल्लेख है पर नंददासजी ने प्रत्येक गोपी के सामने

एक एक हरि देव सबहि आसन पर बैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे॥

इसी अध्याय में राजा परीक्षित ने पुनः शंका की तथा शुकदेवजी ने उसका समाधान किया पर नंददासजी ने उस अंश को छोड़ दिया है क्योंकि इन्होंने वैसा प्रसंग ही नहीं आने दिया है, जिस पर शंका उठाई गई है। *तात्पर्य यही है कि नंददास की निजी* मौलिकता की छाप इस ग्रंथ में सर्वत्र है।

रास पंचाध्यायी में जिस रासलीला का वर्णन हुआ है वह केवल साधारण कामकेलि नहीं है प्रत्युत् उसमें आध्यात्मिक रहस्य ही प्रधान है, इसे स्पष्ट करने के लिए नंददासजी ने एक स्वतंत्र काव्य सिद्धांत पंचाध्यायी लिखा है। इसमें १३८ रोला हैं पर यह अध्यायों में नहीं बँटा है। इसमें आरंभ में श्रीकृष्ण की स्तुति है और बतलाया गया है कि वह नर नहीं नारायण हैं। रास पंचाध्यायी में पहिले रास-रस के अधिकारी भक्त श्रीशुकदेवजी की स्तुति तथा वृंदावन-माहात्म्य वर्णन कर श्रीकृष्ण की शोभा अति-संक्षेप में वर्णित है। इसमें भी वे नारायण ही कहे गए हैं पर

सिद्धांत में कुछ विस्तार से कहा गया है कि 'वह अपार रूप-गुण-कर्म संपन्न हैं, वेद पुराणादि सभी विद्याएँ जिनकी स्वाँस मात्र हैं, पंच-विषय, पंच महाभूत, सभी इंद्रियाँ, अहंकारादि जिसकी माया के विकार हैं और जो इन्हींके अधीन है तथा जिसकी आज्ञा से वह सृजन-पालन-संहार करती रहती है। जिनका स्वरूप जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति से परे प्रकाशित होता है, वही नारायण श्रीकृष्ण हैं और अनेक अवतार धारण करते रहते हैं। जिनकी माया ने शिवजी तथा ब्रह्माजी को मोह लिया था, जिनके कारण इंद्र का गर्व पहाड़ पर गिर कर चूर हो गया था, उन्हीं श्रीकृष्ण ने रास-रस प्रगट किया।' यह रास-रस कैसा था, उसे बतलाते हैं कि

अवधिभूत गुन रूप नाद तर्जन जहँ होई।
सब रस को निर्सार रास-रस कहिए सोई॥

इसके अनंतर जीवात्मा का वर्णन करते हैं कि यह काल, कर्म तथा माया के अधीन है और विधि-निषेध तथा पाप-पुण्य के फेर में पड़ा हुआ है। इस प्रकार के साधारण जीव श्रीकृष्ण नहीं हैं प्रत्युत् वह

परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी।
ते क्यों कहिए जीव-सदृश प्रति शिखर निवासी॥

और इन्हीं सच्चिदानंद भगवान ने साधारण जीवों के उद्धार के लिए दया करके व्रज में रस-रूप अवतार लिया क्योंकि उस समय वैसे ही भक्तगण वहाँ प्रगट हो चुके थे। श्रीवृंदावन के दिव्य रूप का भी यहीं कवि ने अति संक्षेप में वर्णन दिया है और शरद-रजनी, यमुना-तीर तथा रासलीला करने की इच्छा का उल्लेख मात्र कर दिया है। इस प्रकार नंददासजी ने भगवान, भक्त, स्थान, समय सभी की दिव्यता का वर्णन करते हुए रासलीला की दिव्यता की ओर पाठकों को आकृष्ट किया है और तब कहते

हैं कि लीला पुरुषोत्तम ने 'शब्द-ब्रह्ममय' मुरली बजाकर सभी को मोह लिया। इस ब्रह्मनाद को सुनकर जिनमें 'परमात्मा से मिलने की आकांक्षा पूर्णरूप से थी वे शीघ्रता ही से नहीं, उन्मादग्रस्त सी उस ओर दौड़ पड़ीं। वे किस प्रकार उस ओर प्रेरित हुईं, कैसे उस ओर चलीं आदि का 'बारह रोलाओं में अच्छा वर्णन किया है। कितनी अनन्यता, तल्लीनता तथा एकनिष्ठा से सभी सांसारिक मोह आदि त्याग कर वे परमात्मा से मिलने चलीं, यह बतला कर कवि कहता है कि विद्वानों का यह कथन है कि ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती पर गोपियों ने अपना यह नया मार्ग प्रकट किया है कि प्रेम ही से भगवान को प्राप्ति होती है।

ये गोपियाँ इस मार्ग की अधिकारिणी थीं या नहीं इसे भी कवि ने दोनों ही पंचाध्यायी में बतलाया है। कहते हैं—

> सुद्ध प्रेममय रूप पंच भूतन तें न्यारी।
> तिनहि कहा कोउ कहै ज्योति सी जग उजियारी॥
>
> (रास पंचाध्यायी)
>
> धर्म, अर्थ, अरु काम कर्म इह निगम निदेसा।
> सब परिहरि हरि भजत भई करि बड़ उपदेसा॥
>
> (*सिद्धांत पं०*)

ये व्रजबालाएँ पंचभूतों के प्रभाव से युक्त शुद्ध प्रेम-स्वरूपिणी थीं और वेदाज्ञा-रूप धर्म-अर्थ-काम आदि सभी का त्याग कर एक मात्र भगवान में लीन हो चुकी थीं। यही कारण है कि जो इस माग की अधिकारिणी नहीं थीं, उन्होंने मुरलीनाद को सुना अनसुना कर दिया। जो अधिकारिणी थीं पर बलात् रोक दी गईं, वे 'गुनमय तन तजि' ईश्वर से जा मिलीं। जिस समय श्रीकृष्ण ने गोपियों के आने पर उन्हें गृह लौट जाने को स्त्री-धर्म का उपदेश दिया उसी समय उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि आप

हमें स्त्री-धर्म का क्यों उपदेश दे रहे हैं ? ये सब धार्मिक आचार-विचार आप ही की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं और हमने अपनी प्रेम-भक्ति से आपको पा लिया है। अब हमें इन सब सांसारिक प्रपंच की क्या आवश्यकता है ?

नंददासजी इस ग्रंथ के संबंध में कहते हैं—

नाहिंन कछु शृंगार कथा इहि पंचाध्याई।
सुंदर अति निरवृत्त परा तें इती बड़ाई॥
जे पंडित शृंगार ग्रंथ मत यामें सानैं।
ते कछु भेद न जानैं हरि को विषई मानैं॥

उनका तात्पर्य कहने का यही है कि श्रीकृष्ण की रासलीला शृंगारिक कामकेलि मात्र नहीं है प्रत्युत् आत्माओं के परमात्मा से मिलन के प्रेममार्ग का चित्रण है। इस प्रकार प्रथम परीक्षा के अनंतर वन-विहार आरम्भ हुआ पर शीघ्र ही प्रेमगर्विता व्रज-बालाओं का अहंकार दूर करने के लिए, क्योंकि शुद्ध निष्काम प्रेम में इसका गंध भी नहीं होना चाहिए, श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच में अंतर्ध्यान हो गए। ऐसा होते ही वे व्रजबालाएँ विरह-कातरा होकर श्रीकृष्ण को ढूँढ़ने लगीं। उन्हें शरीर का भान भी नहीं रहा और वे जड़-चेतन की भिन्नता भी भूल गईं। वे वृक्ष-लतादि से पूछती फिरती रहीं और फिर कृष्णमय होकर उनकी लीला का अनुकरण करने लगीं। कहीं कृष्ण-चरण-चिह्न देख पाया तो उसी पर निछावर हो पड़ीं। आगे राधिकाजी विरह में विलाप करती मिल गईं तो उन्हें ही

धाय भुजन भरि लै पुनि तिहिं जमुना तट आईं।
कृष्ण-दरस लालसा तुतरफै मीन की नाईं॥

सभी व्रज-बालाएँ भगवान के दर्शन की लालसा में विकल हो गईं और

अपुनैं ई प्रेम-सुधानिधि चढ़ि गइ प्रेम कलोलैं।

क्योंकि नंददासजी ने पहिले ही सिद्धांत रूप में कहा है कि

कृष्ण विरह नहिं विरह, प्रेम-उच्छलन कहावै।
निपट परम सुख रूप इतर सब रस बिसरावै॥

वास्तव में प्रेम-भक्ति के अनुयायियों का यह सिद्धांत ही है कि भगवान के विरह में जब सभी सांसारिक माया-मोह दूर हो जाते हैं तथा अहंता का भाव मिट जाता है तभी उनका नैकट्य प्राप्त होता है। इस प्रेमानंद के सामने भक्त को अन्य सभी रस भूल जाते हैं। इस प्रकार ब्रज-बालाएँ जब विरहानल में तपकर स्वच्छ हो गईं, अहंकार मिट गया तब भगवान उन्हींके बीच प्रगट हो गए। श्रीकृष्ण को अपने बीच देखकर गोपियाँ कैसी प्रसन्न हुईं, इसके वर्णन में नंददासजी ने लौकिक शृंगार त्याग दिया है। कहते हैं—

साँवरे पिय कर परस पाइ सब सुखित भईं यौं।
परमहंस भागवत मिलत संसारी जन ज्यौं॥
जैसे जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था मैं सब।
तुरिय अवस्था पाइ जाइ सब भूलि भईं तब॥

इस प्रकार तुरीयावस्था को प्राप्त होने पर उनकी सभी सांसारिक कामनाएँ प्रेम-भक्ति में लीन हो गईं और शक्तियों द्वारा आवृत परमात्मा के समान गोपियों ने श्रीकृष्ण को घेर लिया। यद्यपि आरंभ में गोपियों ने श्रीकृष्ण से लौकिक प्रेम ही किया पर जब वह प्रेम अत्यंत उत्कट होकर शुद्ध तथा निस्सीम हो गया तभी श्रीकृष्ण उनके वश हो गए। भगवान में जिस प्रकार भी मन लगाया जाय वह उस पर साधन का बिना विचार किए प्रसन्न हो जाते हैं।

तैसेहिं ब्रज की बाम काम रस उत्कट करिकै।
शुद्ध प्रेममय भई लई गिरिधर उर धरिकै॥

इसके अनंतर जो रासलीला हुई उसके संबंध में भी कवि ने जो कुछ वर्णन किया है वह भी आध्यात्मिक रहस्य ही से आच्छादित है और इसका प्रभाव भी समय पर ऐसा पड़ा कि

थके उडुप अरु उडुगन उनकी कौन चलावै।
काल चक्र पुनि चकित थकित भयौ मरम न पावै॥

इस रासलीला का वह लोकोत्तर आनंद है, जिसे वेद आदि नित्य कहते हैं। इस पर अमर्यादा या अश्लीलता का जो आक्षेप करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि यदि आत्मा तथा परमात्मा के मिलन तथा तज्जनित आनंद का वर्णन किया जाय तो उसके लिए लौकिक मिलन तथा आनंद ही को प्रतीक रूप में लिया जा सकता है। अवश्य ही उस वर्णन में अलौकिकता का भाव या आध्यात्मिक रहस्य सूत्रवत छिपा रहेगा। इसीलिए नंददासजी ने यह सिद्धांत पंचाध्यायी बनाकर इस रासलीला की दिव्यता घोषित की है।

रास-पंचाध्यायी प्रबंध-काव्य ही कहा जा सकता है पर रास-लीला की सुपरिचित कथा इतनी अल्प है कि कवि को उसकी कमी की पूर्ति अन्य प्रकार से करनी पड़ी है। लौकिक शृंगार के भावों को लेकर ही कवि ने उन्हें ऐसा आध्यात्मिक रूप दिया है कि उसमें उसके आत्मा की परमात्मा से मिलकर नित्यानंद प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा स्पष्ट झलकती है। यह काव्य कथा-प्रधान न रहकर भाव-प्रधान हो गया है और इसमें भावों का चित्रण तथा दृश्य-वर्णन ही रसात्मकता लाने का साधन प्रकृत्या बन गया है। यही कारण है कि इसमें कवि को भाषा-सौष्ठव तथा उसकी अलंकृत शैली पर इसलिए विशेष ध्यान रखना पड़ा

है कि यह चित्ताकर्षक तथा हृदयग्राही हो उठे। इस वर्णन में आलंबन तथा उद्दीपन दोनों विभागों का सम्यक् तथा अत्यंत सजीव चित्रण किया गया है। आलंबन रूप में श्रीकृष्ण तथा गोपियों का तथा उद्दीपन रूप में वृंदावन, प्रकृति, शरद रात्रि आदि की शोभा का वर्णन है।

आख्यानक काव्य रूप-मंजरी

हिंदी-साहित्य के इतिहास के मध्य या भक्ति काल की भक्ति जिस प्रकार सगुण तथा निर्गुण धाराओं में प्रवाहित हुई उसी प्रकार निर्गुण धारा की दो शाखाएँ ज्ञान प्रधान तथा प्रेम-प्रधान फूटीं। इनमें अंतिम शाखा ही मे सांसारिक प्रेमाख्यानों को लेकर अलौकिक शुद्ध ईश्वर-प्रति प्रेम का यथार्थ वर्णन किया गया है। इन आख्यानक काव्यो मे फारस के सूफी सप्रदाय के कवियो के आख्यानक काव्यों 'मसनवियों' की शैली ग्रहण की गई है और लौकिक प्रेम (इश्क मजाज़ी) को लेकर अलौकिक प्रेम (इश्क हकीको) की महत्ता प्रदर्शित की गई है। भक्त आशिक (प्रेमी) है और 'माशूक' (प्रियतमा) 'खुदा' है। उसीसे मिलने के लिए प्रेमी भक्त विरहाकुल रहता है। यही विरह प्रेम की पीर है जो यावज्जीवन रहती है। इसमें ईश्वर निर्गुण निराकार रहता है। हिंदी में इस प्रकार के जितने प्रमुख काव्य हैं वे सभी मुसलमानों द्वारा लिखे गए हैं और जितने हिंदुओं के लिखे हैं वे सभी साधारण तथा निम्न कोटि के हैं। ऐसा होना सहज स्वाभाविक है क्योंकि फारसी और इसी कारण उर्दू में पुरुष ही विरह कष्ट उठाता है, रोता है तथा मिलने के लिए तड़पता है और स्त्री 'बेवफा' (अकृतज्ञ) होती है। भारतीय भावना इसके ठीक विपरीत होती है, प्रेमिका ही विरहिणी होती

है, वही कष्ट उठाती है और नायक शठ, दुष्ट आदि होता है। वही पारसीक भावना हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों में मुसलमान-कवियों द्वारा गृहीत है। जैसे जायसी के पद्मावत में पद्मिनी की खोज में रत्नसेन ही 'अपनास' करता है और तब उसे वह मिलती है। आख्यानक काव्य की परंपरा हिंदी साहित्य में सोलहवीं विक्रमी शताब्दि से आरंभ होती है और इसके पहिले का कोई काव्य अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

रूपमंजरी प्रेमाख्यानक काव्य अवश्य है पर यह भारतीय परंपरानुसार है, सूफी संप्रदाय के पारसीक-भावना-युक्त निर्गुण निराकार-प्रेमाख्यान की परंपरा में नहीं है, यह ऊपर लिखे भेद से स्पष्ट है। इसमें सांसारिक पति के 'क्रूर कुरूप कुँवर वहुँ दीनी' होने से परकीया भाव से भगवान श्रीकृष्ण को 'गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक' मान कर उनके प्रति प्रेम लगाया गया है। रूप मंजरी प्रेमिका है और वह प्रेम करती है सगुण साकार श्रीकृष्ण से। स्वप्न में दर्शन मिलने से इसका प्रेम उद्वेलित हो उठता है और पुनर्मिलन के लिए वह अत्यंत कातर हो उठती है। अंत मे इसकी विरह तपस्या से प्रसन्न होकर 'सपनो ओट दै भेंटे गिरिधर लाल।' इस कथानक में कहीं किसी प्रकार की बाधा बीच में नहीं पड़ती, केवल भक्त तन्मयता तथा एकनिष्ठा से भक्ति करते हुए भगवान की दया से उसे प्राप्त कर लेता है। इसमें शुद्ध गोपी-प्रेमपद्धति का अत्यंत सरस वर्णन है, जो राम-पंचाध्यायीकार के योग्य हुआ है। इंदुमती गुरु का कार्य करती है, जो अपने शिष्य के लिए भगवान से निरंतर प्रार्थना करती रहती है कि वह उस पर दया करें।

इस काव्य में आख्यानक अंश बहुत ही थोड़ा है, प्राय: ४०-५० पंक्तियों में आ जायगा पर कवि को इसकी ओट में 'परम

प्रेम-पद्धति इक श्राही। नंद जथामति बरनत ताही॥' मात्र लक्ष्य था। इसी कारण वह अपने लक्ष्य की विस्तृत विवेचना करता हुआ भी कथा शीघ्रता से बढ़ाता चलता है। वह मंगलाचरण ही से इस प्रकार आरंभ करता है—

प्रथमहिं प्रनऊँ प्रेममय परम ज्योति जो आहि।
रूप उपावन रूपनिधि नित्य कहत कवि ताहि॥

परब्रह्म परमेश्वर की परम ज्योति का जो अत्यंत आकर्षक सुंदरतम रूप है तथा नित्य है उसी के प्रति प्रेम करने की यह पद्धति भक्तों की निधि है। ईश्वर की प्राप्ति के अनेक मार्ग कहे गए हैं पर प्रेम-मार्ग सबसे निराला है—

जग में नाद अमृत मग जैसो। रूप अमीकर मारग तैसो॥

साधारणतः सभी जीवों में परामात्मा का अंश समानरूपेण वर्तमान है पर क्या कारण है कि उनमें से कुछ सज्जन होते हैं और कुछ दुष्ट दुर्जन? उपमा देकर कवि बतलाता है जिस प्रकार चद्र एक होते भी अनेक भरे हुए जलपात्र में अनेक दिखलाता है और जैसा निर्मल या गँदला जल होता है वैसा ही वह भी दीखता है। अन्य उदाहरण भी दिए गए हैं। साथ ही कवि कहता है कि यह मार्ग अनधिकारियों के लिए नहीं है और इस काव्य को पढ़कर या सुनकर सांसारिक चहले में उनके अधिक फँसने ही की संभावना है। जिनकी आत्मा शुद्ध है, वे ही इस प्रेमाख्यान के आध्यात्मिक तत्व को समझकर इस मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

इस प्रकार मार्ग का संक्षिप्त परिचय देकर कवि उदाहरण रूप में एक आख्यान लेकर इसका विस्तार से विवेचन करता है। कहते हैं—

इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौं। प्रभु तुम अपनी जस कै मानौं॥

कवि का आशय है कि न वह कोई सच्ची घटना का वर्णन कर रहा है, न कोई कहानी ही लिख रहा है प्रत्युत् वह अपने हृदयस्थ प्रेम-भक्ति ही का वर्णन करता है—

अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही। जो कछु मो उर-अंतर आही॥

कवि पहिले निर्भयपुर का वर्णन करता है, वहाँ के राजा धर्मधीर का कीर्तिमान् होना बतलाता है और तब उसकी पुत्री रूपमंजरी के लड़कपन तथा वयः प्राप्ति का सरस विवरण देता है। इतना कह कर भक्त कवि यह स्पष्टतया बतला रहा है कि निर्भयपुर निवासिनी धर्मधीर की पुत्री रूप मंजरी ही इस प्रेम पद्धति के अपनाने योग्य पात्र है। निर्भीक चित्त होकर धैर्य के साथ धर्म का आश्रय लिए हुए रूपनिधि परमात्मा का अंश रूपमंजरी आत्मा ही इस प्रेम-मार्ग पर चलकर उसमें लीन हो सकती है। विशेष का उदाहरण देते हुए सामान्य की बात कही गई है। रूपमंजरी नाम भी रूपनिधि का अंश मानकर रखा गया है।

इतना वर्णन देने के अनंतर कवि अत्यंत संक्षेप में रूपमंजरी के विवाह-योग्य होने, वर खोजने, क्रूर कुरूप से विवाह होने तथा इसके कारण सबके दुखी होने का वर्णन कर देता है और पुनः उसी पद्धति के विश्लेषण में लग जाता है। रूपमंजरी विवाह होने पर कहाँ रही. श्वसुरालय में या मायके में, तथा उसके पति ने उसके प्रेममार्ग में कोई अड़चन डाली या नहीं इन सब के वर्णन से कवि उदासीन है, उससे तो केवल इतने ही से मतलब है कि भक्त किस प्रकार प्रेम कर भगवान से मिलता है अतः कथा भाग मात्र बढ़ाने के लिए उसने इतना वर्णन कर दिया। यह ध्वनि भी अवश्य निकलती है कि सांसारिक माया किसी कारणवश जब

टूटती है तभी मनुष्य ईश्वर की ओर आकर्षित होता है जैसे इस आख्यान में 'क्रूर कुरूप' पति मिलने से उसे ससार से विरक्ति होती है और वह ईश्वर को पाने का हठ ठानती है। यह कवि अपनी निजी अनुभूति का उल्लेख कर रहा है जैसा उसकी जीवनी से ज्ञात होता है।

इतना वर्णन हो जाने पर 'सहचरि' का प्रसग आरभ होता है और वह रूपमजरी के कष्ट को देखकर स्नेहवश उसे इस प्रेम पद्धति में दीक्षित करती है। इंदुबदनी रूपमजरी की सखी का नाम इंदुमती रखा जाता है। वह रूपमजरी के सर्वांगसुदर रूप का वर्णन करती है और उसके अनुरूप पति के न मिलने से वह दुखित होती है। वह उसके दु खनिवारण का उपाय सोचती है कि ऐसा रूप निष्फल न चला जाय और इसके लिए 'उपपति-रस' ही औषधि निर्धारित करती है। अब उपपतियों में यह समझकर कि—

> सुर नर धाम के धाम सब छुवहिं बीच विकराल।
> तिन में इह कैसे बसे छैल छबीली बाल ॥

वह उन भगवान श्रीकृष्ण को उसके योग्य चुनता है जो 'निगमहिं निपट अगम' हैं और जो 'आप दया करि आनै'। वह जाकर 'गिरिधर पिय प्रतिमा दिख आई' और तन उसे जिस प्रकार गुरुदेव ने बताया था उसी प्रकार उनकी प्रार्थना करती है। अत मे भगवान उसकी पुकार सुनते हैं और स्वप्न में रूपमजरी को दर्शन देते हैं। प्रथम दर्शन का रूपमजरी पर कैसा प्रभाव पडता है और बहुत पूछने पर वह जिस प्रकार उसे बतलाती है उसका अत्यत सरस स्वाभाविक विवरण दिया गया है। वह पूर्व जन्म में गोपी थी इसका आभास इस प्रकार कहकर दिया गया है कि 'द्रुम वेली कछु मीत से भाई।' प्रथम

दर्शन ही से किस प्रकार अनुराग उत्पन्न हुआ और निरंतर बढ़ता गया यह

> गड़्यो जु मन पिय प्रेम रस क्योंहूँ निकर्यो जाय।
> कुंजर ज्यों चहले पर्यो छिन छिन अधिक समाय॥

नायक का परिचय पूछने पर रूपमंजरी कहती है कि कहीं स्वप्न भी सच्चा हुआ है जो तू पूछती है पर सखी के हठ पर तथा उषा-अनिरुद्ध प्रेमाख्यान का उदाहरण देने पर बतलाती है कि किस प्रकार कहूँ ? वाणी रूप को ग्रहण कर नहीं सकती, नेत्र ही रूप-रस का पान करते हैं पर बोलने की समर्थ्य ही नहीं है और वे भी उस अनुपम रूप को पूर्णरूपेण ग्रहण नहीं कर सके, जिस प्रकार स्वाति का सुंदर बादल चातक की चोंच में कहाँ तक समा सकता है। तब भी कुछ शोभा वर्णन कर कहती है—

> ताके रूप अनूप रस बौरी हौं मेरी आलि।
> आज तनक सुधि परन दै सबै कहौंगी कालि॥

कितना सुंदर सहज अनलंकृत कथन है कि हृदय पर मार्मिक प्रभाव छोड़ जाता है। ऐसा ही भाषा के कारण 'नंददास जड़िया' कहे गए हैं।

इंदुमती उतने ही वर्णन से समझ गई कि जिसकी वह प्रार्थना किया करती थी उसी ने कृपा की है और इससे प्रसन्न होकर वह विह्वल हो उठी। सखी को प्रसन्नता देखकर रूपमंजरी ने कारण पूछा तब उसने कुल-वृत्त बतला दिया तथा श्रीकृष्ण का परिचय भी दिया। अब भक्त-कवि प्रथम दर्शन से किस प्रकार कुछ समय तक रूपमंजरी सुखी रही और फिर उसकी विरह-दशा बढ़ी इसका अत्यंत सरस विवरण देता है। अनुराग का आरंभ इस प्रकार होता है—

तिय-हिय-दर्पन तन-रुई रही हुती पुट पागि।
प्रीतम-तरनि-किरनि परसि लागि परी तिहि आगि॥

हृदय रूपी दर्पण पर प्रीतम रूपी सूर्य की किरण पड़ने से प्रेमाग्नि लग गई और हृदय का आच्छादन शरीर रूपी रुई ने उसे पकड़ लिया। इस प्रकार प्रेम का आरंभ मिलन से होने के कारण ,

रूप जोति सी लटकति डोलै। सब सो बचन मनोहर बोलै॥
अँग अँग प्रेम उमँग अस सोहै। हेम छरी जराय जरि को है॥
वार वार कर दर्पन धरै। कुंतलहार सँवार्यो करै॥

पर इसके बाद ही इस प्रफुल्ल प्रेम ने पुनः मिलन न होने से विरह का रूप धारण किया।

भूख पियास सबै मिटि गई। लाम कछु गुरजन की लई॥
डभकदै नैन नीर भरि आवहि। पुनि सुखि महाछबि पावहि॥
पुलक अंग स्वरभंग जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै॥

इस प्रकार विरह-दशा बढ़ने लगी और ताप इतना बढ़ा कि वह किसी के पास बैठकर इस भय से स्वाँस तक नहीं लेती थी कि उसकी गर्मी का ज्ञान होने से कोई यदि पूछ बैठे तो वह क्या उत्तर देगी। यदि कोई उसे कमल पुष्प देता तो वह इस आशका से कि कहीं उसके ताप से जल न जाय पास रखवा लेती थी।

इसके अनंतर पावस, शरद, हिम, शीत, वसंत तथा ग्रीष्म षट्ऋतु वर्णन करते हुए विरह दशा का वर्णन किया गया है। बीच बीच में सहचरी का आशा दिलाना, प्रश्नोत्तर, होली के अवसर पर कृष्णलीला का गान सुनकर मूर्च्छा आना आदि का अत्यत रसमय वर्णन किया गया है। इस प्रकार एक वर्ष तक विरह-ताप रूपी तपस्या में तपने पर तथा प्रेम-परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर पुनः स्वप्न में भगवान् श्रीकृष्ण उसे मिले।

तिहूँ काल में प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।
तातैं सपनो ओट दै भेंटे गिरिधरलाल॥

इस प्रकार प्रेमाख्यान समाप्त करते हुए कहते हैं कि—

जदपि अगम तें अगम अति निगम कहत है जाहि।
तदपि रँगीले प्रेम तें निपट निकट प्रभु आहि॥

अर्थात् सत्य प्रेम भक्ति पद्धति ही से भगवान की शीघ्र दया हो सकती है, अन्य से नहीं। इस कथा को भी नंददासजी ने रूपमंजरी तथा इंदुमती का नाम देकर 'निज हित कै करी।' इस कथा के पढ़ने तथा सुनने से परम प्रेम-पद की प्राप्ति होती है, यह भी जता दिया है।

इस प्रेम-पद्धति की कठिनता भी नंददासजी ने इस प्रकार प्रगट की है कि इस मार्ग में—

गरल अमृत इकठौं करि राखे। भिन्न भिन्न करि बिरलो चाखे॥

अर्थात् सांसारिक प्रेम तथा ईश्वर-प्रति प्रेम साथ साथ चलता है, एक से छूटकर या आगे बढ़कर दूसरा प्राप्त होता है। यदि पहिले ही में फँसकर रह गए तो वासना विष ही मिलेगा पर यदि उसे त्यागकर भगवान में आसक्ति हो गई तो वही माधुर्य-अमृत की प्राप्ति हो जायगी। यही इस मार्ग की कठिनाई है, जिसे दूर करते ही जीव सच्चा भक्त हो जाता है।

इस आख्यानक काव्य में शृङ्गारिकता पूर्ण रूप से है और 'उपपति रस' की प्रधानता है, जिसे विष कहा गया है और इसमें जो आध्यात्मिक भाव तथा शुद्ध ईश्वर-प्रति प्रेम भक्ति है वही अमृत है। प्रथम विष-रूपी मार्ग पर चलकर ही दूसरे अमृत-मार्ग पर जाना होता है पर यह विष-रूपी मार्ग ऐसे आकर्षक सहज स्निग्ध शोभा से आच्छादित है कि उस पर आगे बढ़ना

अत्यंत सुगम है और जो इसे अपनी निष्ठा से पार कर लेता है वह दूसरे मार्ग पर तुरंत पहुँच जाता है। ईश्वर प्राप्ति के जो अन्य मार्ग हैं वे आरंभ ही से इतने कठोर हैं कि उन्हें अपनाना सबके लिए अत्यंत कठिन है। यही कारण है कि

इंदुमती मतिमंद पै अवर नाहिं निबहंत।
नागर नगधर कुँअर पद यह मग छुयो चहंत॥

नंददास जी ने शृङ्गारिक वर्णन करते हुए भी पहिले ही स्पष्ट रूप में कह दिया है कि उनकी नायिका का उपपति सांसारिक नहीं है प्रत्युत् संसार-मात्र के सर्वस्व परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। सभी भक्ति पद्धतियों या ज्ञान-कर्म की पद्धतियों का लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति ही है और इनको अपनाने का सभी मानव को अधिकार है। मानव में पुरुष तथा स्त्री दोनों ही हैं। अब विचारणीय यह है कि पुरुष तो भगवान का दास, सखा आदि कुछ भी बनकर भक्ति कर सकता है और भक्त-भगवान के द्वित्व भाव को, 'दुई' को, दूर कर सकता है तो वह आक्षेप-योग्य नहीं माना जाता पर यदि स्त्री ऐसा भाव लेकर चलती है तो उस पर अनेक प्रकार के आक्षेप किए जाते हैं। ऐसा किया जाता है, इसमें भी आश्चर्य न करना चाहिए क्योंकि मानव-दुर्बलताएँ तो प्रकृत हैं। स्त्री-भक्त यदि परमेश्वर को पति मानकर पूजती है, ध्यान करती है और उसे प्राप्त कर लेती है तो सांसारिक पुरुष उस पर उपपति या जार भाव रखने का लांछन लगाते हैं, अश्लीलता का दोषारोपण करते हैं पर उन्हें ध्यान में रखना चाहिए कि क्या वह ऐसा कर सकती है, कि भगवान को बुलाकर उनके समक्ष मंडप में बैठाकर पाणिग्रहण करें और तब भक्ति का श्रीगणेश करें। स्त्री-भक्त विवाहिता हो या कुमारी हो वह ईश्वर में पिता, पति, सखा आदि ही का भाव लेकर चल सकती है और इन सब संबंधों में निकटतम संबंध पति-पत्नी

भाव है, जिसमें द्वित्व का अभाव है। संसार की दृष्टि में उनका यह भाव अवश्य उपपति-भाव कहलाएगा पर उसे सांसारिक उपपति-भाव मानकर आक्षेप करना मूढ़ता मात्र है।

नंददास जी ने वास्तव में एक आख्यानक की ओट में प्रेम-भक्ति की पद्धति का विवेचन किया है कि संसार के सभी माया-मोह आदि को त्यागकर एक मात्र भगवान की प्राप्ति के लिए जब भक्त कातर हो उठता है तभी उस पर भगवान दया कर अपना सामीप्य प्रदान करते हैं और वह भवसागर के जंजाल से मुक्त हो जाता है।

रूपमंजरी काव्य में केवल दो पात्री हैं—नायिका रूपमंजरी तथा उसकी सखी इंदुमती। पात्र श्रीकृष्ण हैं पर वह अत्यंत गौण हैं। कवि ने रूपमंजरी की 'लरिकाई' से यौवन प्राप्ति तक का क्रमिक वर्णन विस्तार से दिया है और उसके सौंदर्य का अत्यधिक उत्कर्ष इसी कारण वर्णित किया है कि वह 'दुसरी मनहु समुद की चेटी' होकर भगवान के योग्य पात्री हो जाय। यह वर्णन शृंगारिक है और उपमा आदि कहीं कहीं श्लीलता से दूर पड़ गई हैं। ऐसा होते भी वर्णन सहज स्वाभाविक तथा अत्यंत सरस हुआ है। इसी समय विवाह-योग्य होते ही उसका विवाह ऐसे कुरूप पुरुष से होता है, जिससे रूपमंजरी सांसारिक पति-सुख-सौभाग्य से विरक्त हो उठती है। संसार से विमुख या विरक्त होते ही मनुष्य की चित्तवृत्ति ईश्वर की ओर मुड़ती है और ठीक ऐसे ही अवसर पर उसकी सखी इंदुमती उसके विचार-परिवर्तन को समझकर उसे परमात्मा श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित करती है। वह जानती है कि श्रीकृष्ण भगवान

जिहि जिहि भाय भजै जो जोई। तिहि तिहि बिधि सो पूरन होई॥

अर्थात् जो जिस जिस भाव से मुझे भजता है उसी भाव से उसकी इच्छा पूरी हो जाती है। नंददास जी ने श्रीभगवद्गीता के

'ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।' इस वचन की ही इस रूप में उद्धरणी की है। इंदुमती रूपमंजरी को इसी प्रेम-भक्ति में दीक्षित करती है, उसके लिए निरंतर भगवान से प्रार्थना करती रहती है और रूपमंजरी के विरह-कष्टों को देखकर उसे बराबर आश्वासन तथा भगवान के मिलने की आशा दिलाती रहती है। सारे आख्यानक की प्रेमगाथा पर, विरह की लौकिक दशाओं पर तथा मिलन पर इतना घना आध्यात्मिक रंग चढ़ा हुआ है कि साधारण सांसारिक प्रेम का उसमें चिन्ह तक नहीं ज्ञात होता। रूपमंजरी का प्रिय या उपपति या इसके प्रेम का आलंबन कोई सांसारिक पुरुष नहीं है प्रत्युत्

वह देखै उहि लखै न कोई। पंडित कहहिं कि सब ठाँ सोई ॥
गोकुल गाँव कहूँ इक कोई। तामैं सदा बसत सखि सोई ॥

वह अविनश्वर परमात्मा है, जिसे साधारण मानव-नेत्र नहीं देख सकते। रूपमंजरी यह समझ गई कि उसके श्रीकृष्ण कौन हैं और वह उनके प्रेम-विरह में अचेत सी हो गई। उसने उस 'प्रेम-सुधा रस' का पान किया था जिसे पाने का स्वत्व सच्चे भक्त ही को है। रूपमंजरी का मिलन भी

तिहूँ काल मैं प्रगट हरि, प्रगट न इहि कलिकाल।
तातैं सपनो ओट दै भेंटे गिरिधर लाल ॥

विरह मंजरी तथा रस मंजरी

नंददासजी हिंदी साहित्य के इतिहास के पूर्व-मध्य-काल के अंतर्गत आते हैं, जो सं० १३५० से सं० १७०० तक माना जाता है। इनकी प्रायः सभी रचनाएँ इसी काल की विशेषता लिए हुए अर्थात् भक्तिपूर्ण हैं पर उनमें दो ऐसी हैं, जिनमें उत्तर-मध्य-काल की विशेषता भी है अर्थात् रीति ग्रंथों में वे परिगणित की

जा सकती हैं। सौरकाल में उच्चकोटि के साहित्य ग्रंथों के तैयार हो जाने पर काव्यशास्त्र की आवश्यकता सभी को ज्ञात हो चुकी थी पर उस काल में वैसे ग्रंथ बहुत कम बन पाए। हिंदी के सुकवियों के सौभाग्य से हिंदी की जननी संस्कृत का अमूल्य कोष उनको सुलभ था और वे संस्कृत भाषा से अभिज्ञ थे अतः हिंदी में रीति ग्रंथों का अभाव होने पर भी वे संस्कृत के ग्रंथों के कारण उस विषय के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ऐसी अवस्था में न इन कवियों ने रीति-ग्रंथों के तैयार करने का प्रयास किया और न स्यात् आवश्यकता समझी। नंददासजी ने इस ओर दृष्टि की और संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों के लाभ के लिए ही अनेकार्थ-मंजरी तथा नाम मंजरी दो कोष प्रस्तुत किए। इसी उद्देश्य से श्रीमद्भागवत का यह अनुवाद भी कर रहे थे, जिसे उन्हें निरुपाय होकर बंद करना पड़ा था। कुछ इसी विचार से इन्होंने रस-मंजरी तथा विरह-मंजरी दो रचनाएँ तैयार कीं जिनमें प्रथम में नायिका-भेद का विवरण है और द्वितीय में चंद्र को दूत बनाकर विरह-वर्णन किया गया है।

नंददासजी के पहिले रचे गए रीति ग्रंथों में कृपाराम की हिततरंगिणी, मोहनलाल मिश्र का शृङ्गार-सागर आदि ही मिलते हैं। करणेश वंदीजन, बलभद्र मिश्र, आचार्य केशवदास आदि प्रायः इनके समकालीन थे। नवाब अब्दुर्रहीम खाँ कुछ समय के लिए समकालीन होते परवर्ती थे और उनका बरवै नायिका भेद इनके बाद ही लिखा गया था, जिसमें केवल उदाहरणों का संग्रह मात्र है। रीतिकाल के या इसके पहिले के जिन कवियों ने इस प्रकार के रीति-ग्रंथों का प्रणयन किया है उनमें प्रायः अधिकांश में काव्य-कला का एक प्रकार नाममात्र को विवेचन हुआ है और वे केवल प्रणेताओं की कवित्वशक्ति के

परिचायक मात्र हैं। अपर्याप्त तथा कभी-कभी भ्रामक परिभाषाएँ देकर ये कविगण उदाहरणों में अपनी पूरी कवित्वशक्ति दिखलाते थे। नंददासजी ने रस मंजरी नायिका भेद पर लिखा है और इस में परिभाषा तथा उदाहरण दोनों को एक में मिलाकर इस प्रकार लिखा है कि वे दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। जैसे एक कवि ने अज्ञात यौवना की इस प्रकार परिभाषा दी है—

निज तन जोवन आगमन जो नहिं जानति नारि।
सो अग्यात सुजोवना बरनत कवि निरधारि॥

इस दोहे के प्रथम अर्द्धांश में अज्ञातयौवना का अर्थ मात्र दिया गया है और दूसरा अर्द्धांश परिभाषा की दृष्टि से बेकार है। नंददासजी इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माहीं॥
पौंछैं डारति रोम की धारा। माननि बाल सिवाल क डारा॥
दीरघ नैन चलति जब कौनें। सरद कमल-दल हू तें लौंनें॥
तिनहिं श्रवन बिषपकरयौ चहै। अंबुज दल से लागे कहै॥
इहि परकार तिया जो लहिये। सो अज्ञात जौबना कहिये॥

उस नायिका के आगत यौवन-चिन्ह के अज्ञान का कुछ वर्णन देकर उससे परिभाषा प्रस्तुत की गई है जिससे बाद में उदाहरण देने की आवश्यकता ही नहीं रह गई।

हिंदी तथा उसके आधार संस्कृत के ग्रंथों में नायिकाओं के जितने भेदोपभेद किए गए हैं और जितना विशद वर्णन उनका किया गया है उतना नायकों का नहीं है। इसका कारण क्या है? प्रकृति, धर्म, वय, अवस्था आदि के अनुसार जितने भेद नायिकाओं के हो सकते हैं प्रायः उतने सभी नायकों के भी हो सकते हैं तथा होते भी हैं जैसे स्वकीया, मुग्धा, खंडिता आदि के समान स्वकीय, मुग्ध, खंडित भी होते हैं। अभिसारिकाओं से

अधिक अभिसारक ही वास्तविक जगत में मिलेंगे। इसके दो कारण समझ में आते हैं। प्रथम तो यही है कि इन सब ग्रंथों के लेखक तथा कवि पुरुष ही रहे अतः उनके लिए वर्णनीय स्त्री-जगत् ही था। पुरुषों का वर्णन तो नाम मात्र के लिए शठ, अनुकूल आदि दो चार भेद बनाकर कर दिया गया है। दूसरा कारण तथा प्रधान कारण यह है कि भारत की प्रकृति ने प्रकृति ही पर प्रेम करने, उसके दुःख तथा सुख उठाने, विरह में रोने-कलपने, खंडिता-लक्षिता होने, मिलन के लिए अभिसार करने आदि का सारा भार डाल दिया है और पुरुष को केवल अनुकूल, धृष्ट आदि होने का अधिकार दे दिया है। ऐसी अवस्था में नायिका-भेद ही का विशेष लिखा जाना उचित हो गया। यह बहुत कुछ स्वाभाविक भी है क्योंकि पुरुष कठोर होने के कारण बहुत-सी बातों को छिपाने की शक्ति रखता है, विशेष सहनशील होता है तब स्त्री इसके विपरीत विशेष मृदुल, संकोचशील आदि होती है और वह अपने विरह आदि को सहनशील न होने से शीघ्र प्रकट कर देती है। पारसी-उर्दू साहित्य में इसका ठीक उल्टा होता है और 'माशूक' (प्रेमिका) ही अनुकूला, धृष्टा आदि होती है और आशिक (प्रेमी) ही प्रेम करता है, विरह में रोता बिलबिलाता है और मिलन के लिए आतुर रहता है। अतः यदि इस प्रकार के ग्रंथ उनमें लिखे जाते तो वे नायिका-भेद न होकर नायक-भेद होते। पर उनमें ऐसे ग्रंथों का अभाव ही है।

यद्यपि रसमंजरी में नायिका-भेद ही वर्णित है पर इसका नामकरण इस प्रकार करने का कारण नंददासजी लिखते हैं कि—

है जो कछु रस इहि संसार। ताकहुँ प्रभु तुमही आधार॥
ऐसेहि रूप प्रेम रस जो है। तुम तें है तुम ही करि सोहै॥

रूप प्रेम आनंद रस जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव कौं निधरक बरनौं ताहि॥

अर्थात् सभी को रसेश भगवान श्रीकृष्ण का समझकर और उनको 'रस-मय, रस-कारण, रसिक' जान कर इस ग्रंथ का नाम रसमंजरी रख दिया है। इसकी रचना का कारण भी एक मित्र ही है और उसके कहने पर कि—

हाव भाव हेलादिक जिते। रति समेत समुझावहु तिते।
जब लग इनके भेद न जाने। तब लग प्रेम तत्व न पिछाने॥

नंददासजी ने—

रसमंजरि अनुसार कै नंद सुमति अनुसार।
बरनत बनिता-भेद जहँ प्रेम सार विस्तार॥

ज्ञात होता है कि संस्कृत की रसमंजरी, भानु कवि कृत, का आधार लेकर स्वेच्छानुसार यह रचना की गई है। नंददासजी ने स्वभाव के अनुसार जो तीन भेद उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा होते हैं, उनका उल्लेख नहीं किया है। धर्म के अनुसार जो तीन भेद होते हैं, उसीसे आरंभ किया है। ये भेद स्वकीया, परकीया तथा सामान्या हैं। इनके तीन-तीन भेद अवस्थानुसार मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा होते हैं। मुग्धा के दो भेद अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना हैं और द्वितीय के नवोढ़ा तथा विश्रब्ध नवोढ़ा हुए। धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेद मुग्धा में अस्पष्ट और मध्या तथा प्रौढ़ा में स्पष्ट माना है। इन्हीं में व्यापार भेद से सुरतिगोपना, वाग्विदग्धा तथा लक्षिता तीन भेद और वर्णन किए हैं। इसके अनंतर प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीनवल्लभा तथा प्रीतमगमनी नौ भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा परकीया चारों में मानकर वर्णन किया है। इस प्रकार नायिका-भेद समाप्त कर

धृष्ट, शठ, दक्षिण तथा अनुकूल चार भेद नायक के बतलाए हैं और तब हाव, भाव, हेला और रति का वर्णन कर ग्रंथ समाप्त किया है।

संस्कृत में मेघ, पवन, हंस आदि जिस प्रकार दूत बनाए जाकर विरह-संदेश देने के लिए भेजे गए थे उसी प्रकार नंददास जी ने चंद्रमा को दूत नियत कर ब्रजबालाओं का विरह-संदेश श्रीकृष्ण के पास द्वारिका भेजा है। विरह के भेद देने तथा विरह ही का संदेश भेजने के कारण इस रचना का नाम विरहमंजरी रखा गया है। ग्रंथ का आरंभ ही इस प्रकार करते हैं—

परम प्रेम उच्छलन इक बढ़्यो जु तन मन मैन।
ब्रजबाला विरहिनि भई कहत [चंद सों बैन॥
अहो चंद रस कंद हो जात आहि वहि देस।
द्वारावति नँदनंद सों कहियो बलि संदेस॥

इस प्रकार चद्र से संदेश कहते हुए विरह का उल्लेख होते ही कवि ब्रज के चार प्रकार के विरह का वर्णन करता है, जो उसके विचार से अन्यत्र नहीं होते। इन भेदों का नाम प्रत्यक्ष, पलकांतर, वनांतर तथा देशांतर दिया है। शृंगार रस के दो भेद किए गए हैं, प्रथम संभोग या संयोग और द्वितीय विप्रलंभ या वियोग है। वियोग ही विरह है अर्थात् प्रिय से रहित होना। जब किसी प्रिय का वियोग किसी भी कारण से होता है या उसके समागम से वंचित होना पड़ता है तो उससे जो कष्ट मिलता है वही विरह-जन्य संताप होता है। इन कारणों को रीति-ग्रंथों में चार भाग में रखा गया है, जो वियोग के चार भेद कहे गए हैं। ये पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि विरह या वियोगजन्य दुःख सभी प्रिय स्त्री पुरुष के लिए होता है, जैसे मित्र, बंधु-बांधव आदि, पर काव्य जगत में केवल नायक-नायिका के वियोग ही को

लिया गया है। पूर्वराग वियोग वह है जहाँ किसी के सौंदर्य आदि गुणों के सुनने से या चित्र या स्वप्न या साक्षात् दर्शन करने से अनुराग उत्पन्न हो जाने पर वह प्राप्त न हो अर्थात् जब तक अनुरक्त नायक या नायिका का दूसरे से मिलन न हो। यह पूर्वराग तीन प्रकार का होता है। एक वह है जिसमें अनुराग अत्यंत गभीर होता है, बाहरी दिखावट कम होते भी हृदय में दृढ़ता से बना रहता है। यह नीली राग कहलाता है। दूसरा इसके ठीक विपरीत होता है, ऊपरी प्रेम की दिखावट अधिक होती है पर भीतर हृदय में स्थिर नहीं रहता। इसे कुसुभ राग कहते हैं। तीसरा मंजिष्ठा राग है, जिसमें ऊपरी तड़क भड़क भी हो और हृदय में भी बना रहे। वियोग का दूसरा भेद मान है। यह विरह-कष्ट अपने आप आमंत्रित किया हुआ होता है, जो प्रणय या ईर्ष्या के कारण उत्पन्न हो जाता है। अत्यधिक प्रणय या नए प्रणय में, दोनों पक्ष में पूर्ण प्रेम होते भी, अकारण या अत्यंत साधारण कारण को लेकर जब एक दूसरे पर कोप करता है या कहें कि कोप का स्वाँग रचता है तब वह प्रणय मान कहलाता है और थोड़े ही अनुनय-विनय में यह स्वाँग उतार फेंका जाता है। परंतु ईर्ष्या से अर्थात् किसी दूसरे के प्रति प्रेम या समागम के चिह्न देख कर या सुनकर या शंका कर जो मान होता है वह ईर्ष्या-मान है और यह, अधिक स्थायी होता है। तीसरा भेद प्रवास है, जिसमें नायक किसी कारण अन्यत्र चला जाता है और चौथा करुणात्मक है। जब प्रिय मरण-दशा को प्राप्त हो जाता है पर मरता नहीं उस समय उस विरह की आशंका से जो कष्ट होता है वही करुणात्मक विप्रलंभ है।

नंददासजी ने विरह के जो चार भेद कहे हैं उनमें दो तो रीतिग्रंथों के लिये हुए एक भेद प्रवास वियोग के अंतर्गत आ

जाते हैं पर प्रत्यक्ष तथा पलकांतर किसी के अंतर्गत नहीं आते। न इसमें मान का भाव है और न पूर्वराग है। करुणात्मक ये किसी प्रकार कहे नहीं जा सकते। अतः ये कवि की उपज हैं। इसीसे कहते हैं कि

नद समोधत ताकौ चित्त। ब्रज को बिरह समुझि लै मित्त॥
ब्रज में बिरह चारि परकारा। जानत हैं जो जाननिहारा॥

परंतु इसके पहिले नंददास जी कहते हैं कि

ज्यों मनि कंठ बाँधि कै कोई। बिसरै बन बन ढूँढ़ै सोई॥
सो यह बाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला॥
पियहिं फूल माला ही दीनो। सुंदर अंगराग रस भीनी॥
ताहि पहिरि कै कनक अटारी। पौढ़ि रही भरि आनँद भारी॥

अब विचारणीय यह है कि देशांतर विरह प्रिय के दूर चले जाने ही पर होता है और यहाँ संध्या को मिलन हुआ था उस समय की मिली हुई माला पहिर कर संयोगावस्था के आनंद से भरकर श्रीराधा जी सो गईं। जागने पर उन्हें द्वारावती की लीला की सुधि आ गई जिससे वह विरह-कातरा हो गईं। इससे यह भी स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण द्वारावती में लीला कर रहे थे अर्थात् ब्रज से बहुत दूर प्रवास में थे तथा देशांतर विरह वास्तविक था। ऐसी अवस्था में इस मिलन तथा विरह में क्या तारतम्य है, यही विचार का विषय है। रास-पंचाध्यायी की समीक्षा में दिखलाया गया है कि विरह सदा प्रेम का उन्नायक रहा है और विरहाग्नि से प्रेम शुद्ध तथा निर्मल होता है। वैष्णव संप्रदायों के अनुसार व्रजभूमि भगवान श्रीकृष्ण की नित्य लीला भूमि है और उनका उससे वियोग नहीं है। तब यही मानना होगा कि श्रीकृष्ण अपने रसेश रूप से व्रज में रहते थे या रहते हैं और अपने दूसरे दुष्ट-संहारकारी रूप से मथुरा, द्वारिका आदि गए होंगे। परंतु इन

संप्रदायाचार्यों की यह आध्यात्मिक भक्ति-भावना कब की हो सकती है? अवश्य ही भगवान श्रीकृष्ण के लीला-काल के बाद की, नहीं तो उद्धव को संदेश लेकर व्रज में आने की आवश्यकता ही क्या रह गई थी? यदि श्रीकृष्ण एक रूप में व्रज ही में उस समय उपस्थित थे तब दूसरे रूप को उद्धव से ज्ञानी को विरह-विधुरा व्रज वनिताओं को समझाने के लिए भेजना कभी आवश्यक न होता। व्रज भगवान का नित्यधाम है, यह भावना आचार्यों तथा भक्तों ने बाद में की होगी और इसका प्रभाव नंददासजी पर अवश्य रहा होगा। वह कहते हैं—

बहुर्‌यो व्रज लीला सुधि आई। जामें नित्य किसोर कन्हाई॥

नंददासजी ने जिससे यह विरह-निवेदन चंद्र के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति कहलाया है वह स्पष्ट ही श्रीराधिकाजी ज्ञात हो रही हैं। *यह रासेश्वरी तथा कृष्णमय हैं, जो*

सुमिरत तदाकार ह्वै जाहीं। इहि वियोग इहि विधि व्रज माहीं॥

श्रीराधाजी जिस प्रकार कृष्णमय हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण राधामय हैं। इन दोनों का कभी वियोग नहीं है और वे एक ही हैं, केवल लीला के लिए दो हैं। ऐसी अवस्था में श्रीराधाजी का विरह ठीक उसी प्रकार का है जैसा नंददासजी कहना चाहते हैं। मिलन होते भी द्वारिका की लीला को सुधि आते ही वियोग की कल्पना हो गई और सारा बारहमासा कह जाने के अनंतर

हि विधि घरि इक रही चटपटी। मात प्रेम की निपट अटपटी॥
ाकौं निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे॥

प्रेम की कुछ विचित्र चाल होती है। नंददासजी कहते हैं—

भूत छिये, मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय।
प्रेम-सुधा-रस जो पिये, तिहि सुधि रहे न कोय॥

तात्पर्य यह कि प्रेम की ऐसी विलक्षण रीति है कि प्रिय के

रहते भी कभी-कभी प्रेमिका को ऐसा भान हो उठता है कि वह कहीं चला तो नहीं गया और उद्विग्न हो प्रश्न कर बैठने पर उसका भ्रम दूर हो जाता है, जिससे स्यात् वह स्वयं लज्जित हो उठती है। इसी को प्रत्यक्ष-विरह कहा गया है। यह अत्यंत अस्थायी विरह या विरह-भ्रांति मात्र है। दूसरा भेद पलकांतर भी वस्तुतः विरह न होकर विरह की भावनामात्र है। बराबर टकटकी लगाकर प्रिय का दर्शन करने में पलक गिरने से जो व्यवधान पड़ जाता है उसीके लिए प्रेमिका को जो कष्ट होता है, वही एक प्रकार का विरह-कष्ट मान लिया गया है। इसे कवि प्रेम की एक कसौटी मान कर कहता है—

सुनि पलकांतर विरह की बातैं। परम प्रेम पहिचानत तातैं॥

वनांतर भेद में विरह प्रवास ही का है, चाहे वह दिन भर का या कुछ घंटों ही का क्यों न हो। श्रीकृष्ण लीला मे जब वह गाय चराने के लिए वनों में जाते थे तब जब तक वह लौटते नहीं थे उस समय तक था यह नित्य का विरह था पर जब वह अक्रूर के साथ मथुरा चले गए और वहाँ की लीला समाप्त कर द्वारिका में जा बसे तब विरह देशांतर हो गया। इसी विरह के हो जाने पर गोपियों की शिरोमणि श्रीराधाजी ने रात्रि में चंद्रमा को देखकर उसे संदेश दिया कि श्रीकृष्ण से द्वारिका जाकर हमारे विरह-कष्ट की कथा कह आओ।

रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज वर गोरी॥
द्वारावति लीला सुधि भई। ताही छिन जु विकल ह्वै गई॥
दृष्टि परि गयो चंदा गेन। लागी ताहि सँदेशा दैन॥
द्वादस मास विरह की कथा। विरहिनि को दुखदायक जथा॥
छिनक माँझ बरनी तिहि बाला। महाविरहिनी ह्वै तिहि काला॥

अब कवि संदेश रूप में बारहमासा अर्थात् चैत्र से फाल्गुन

महीने तक की हर एक मास की अलग-अलग विरह-वेदना का वर्णन करता है, जो सहज स्वाभाविक तथा सरस होते हुए अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। प्रत्येक मास के प्राकृतिक व्यापारों तथा वस्तुओं या विरहिणी के हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है या उसे अनुभव होता है उसका सरल स्निग्ध भाषा में वर्णन किया गया है। वियोगावस्था में सुखप्रद वस्तुओं का भी कष्टदायक होना, संयोग-काल की स्मृति का कष्टप्रद होना तथा सृष्टि की सभी वस्तु से दुःख ही अनुभव करना ही स्वाभाविक हो उठता है, जैसे नंददासजी कहते हैं—

चंदन पंद तो तिनकौं सियरे। जिन तें नंद-सुनन पिय नियरे॥
सुखद जु हुतौ तुम्हारे संग। सो वह वैरी भयो अनंग॥
द्रुमनि सौं लपटि प्रफुल्लित वेली। जनु मोहिं हँसति है देखि अकेली॥

प्रेम के कारण दुःख तथा सुख दोनों का अनुभव कुछ विशेष रूप से होता है और उनकी अनुभूति भी कुछ विचित्र होती है। सृष्टि की सभी वस्तुओं तथा व्यापारों से जब प्रेम संयोगावस्था में आनंद ही आनद ग्रहण करता है तब उन्हीं से वियोगावस्था में वह दुःख ही संग्रह करने के योग्य रह जाता है। इसी रूप में इस बारहमासे में नंददास जी ने सामान्य वस्तुओं तथा व्यापारों से विरह वेदना ही के अनुभवों का वर्णन किया है। केवल ऐसे प्राकृतिक वस्तुओं तथा व्यापारों के कथन से भी सहृदयों पर प्रभाव पड़ जाता है पर जब उनसे अनुभूत कष्ट का भी उल्लेख होता है तो वह विशेष मार्मिक हो उठता है। जैसे,

वृष की तपति तपति अति वई। घर वन अनलमई सब भई॥
तैसिय विरह विथा तन नई। अगिन में अगिन और ज्यों दई॥
चंदन चरचे अति परजरै। इंदु-किरनि घृत-बूँद सी परै॥
पावस-सैन मैन ल चढ़यौ। विरही जन मारन रिस बढ़यौ॥

बदर बनैत चहूँ दिसि धाये। बूँद बान घन बरसत आये॥

ऐसा भी स्वभावतः होता है कि दुखद वस्तु विरह में विशेष कष्टप्रद हो जाती है, जैसे—

दिन अरु रजनी परै तुसारा। सीतल महा अगिनि की झारा॥
मृदुल वेलि सी व्रज की बाला। मुरझि चली हो गिरिधर लाला॥

और संयोग में जो वस्तु जितनी सुखप्रद होती है विरह में उतनी ही कष्टप्रद हो जाती है, जैसे जाड़े की बड़ी रात्रि संयोगिनी को सुखद होने के कारण छोटी जान पड़ती है पर उसी प्रकार विरहिणी को दुखद होने से बहुत बड़ी मालूम पड़ती है।

बड्डी रैन तनक से दिना। क्यों भरिए पिय प्यारे बिना॥
रवि जौ तनक न लेइ छुड़ाइ। तौ मोहि निसा-बकी गिलि जाइ॥

कार्तिक महीने में रासलीला हुई थी। स्मृति दशा का इसके विवरण में कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

'आई सरद सुहाई राती। प्रफुलित बलित मल्लिका जाती॥
उदित अहै उडुराज सदा कौं। रहत अखंडित मंडल जाकौं॥
छुटि रहि ज्योति विमल चंदिनी। सुभग पुलिन कलिंदनंदनी॥
सीतल मृदुल बालुका सच्यो। जमुना सुकर तरंगिनि रच्यौ॥
कलपत फल रे मंजुल मुरली। मोहन मधुर सुधारस जुरली॥

इसमें रासक्रीड़ा की रम्यस्थली तथा उस पर खेलती हुई शरद-चाँदनी वैसी ही है जैसी रासलीला के समय थी पर इस समय अभाव उसीका है, जिसके लिए मंजुल मुरली कलप रही है। कुल वस्तु-स्थिति वैसी ही प्राप्त होने पर भी एक के अभाव में वह कलपाने ही का कार्य कर रही है। इसी पर वह संदेश भेजती है कि—

ठाढ़े है पिय बहुरि बजाओ। ताकरि व्रजसुंदरी बुलाओ॥

जिसमें यह विरह-वेदना किसी प्रकार दूर हो। यह विरहाग्नि

ऐसी है जो किसी प्रकार का उपाय करने पर बुझती नहीं क्योंकि—

और ठौर की आगि पिय पानी पाय बुझाय।
पानी में की आगि बलि काहे लागि सिराय॥

इस विरहाग्नि का स्थान तो हृदय है और वह केवल दूसरे, प्रिय के, हृदय के मिलन पर ही शांत हो सकती है।

इस प्रकार बारहमासा तथा संदेश समाप्त कर नंददासजी अपने संप्रदाय की प्रेमभक्ति-पद्धति पर आ जाते हैं और सत्य-निष्ठा, तन्मयता तथा एकाग्रचित्त से अपने इष्टदेव से मिलन की याचना करने पर जिस प्रकार वह भक्त पर दया करते हैं उसी प्रकार—

सुपनै कोउ दुख पावत जैसे। जागि परै सुख पावत तैसे॥

उस विरहकातरा ने—

इकले प्रानपियारे पाये। देखि हरष भरे नैन सिराये॥

और कवि ने—

इहि परकार विरहमंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी॥

इसलिए प्रस्तुत किया कि—

जो इहि सुनै गुनै हित लावै। सो सिद्धांत तत्व को पावै॥

एक बात विचारणीय है कि यह चंद्रदूत की कथा देशांतर विरह का वर्णन करते हुए आरंभ होती है और देशांतर विरह से तात्पर्य यही है कि व्रजबालाओं का देश छोड़कर उनके प्रिय श्रीकृष्ण अन्यत्र चले गए हैं। दूत चंद्र को द्वारावती भेजा गया है इसलिए श्रीकृष्ण वहीं रहते रहे होंगे, यह भी निश्चित है तब नंददासजी के नीचे लिखे दो प्रकार के कथन एक दूसरे के विरोधी ज्ञात होते हैं। कहते हैं:—

१. सो यह बाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला॥
२. रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज बर गोरी॥
द्वारावति लीला सुधि भई। ताही छिन जु विकल ह्वै गई॥
दृष्टि परि गयो चंदा गैन। लागी ताहि सँदेसा दैन॥

पहिले तो कहते हैं कि अभी संध्या को वह मोहनलाल से मिल चुकी है और फिर कहते हैं कि कुछ थोड़ी रात्रि रहते वह जाग पड़ी और द्वारावती चले जाने का स्मरण आते ही विरहिणी बन चंद्रमा को दूत बना द्वारिका संदेश भेजती है। विरहमंजरी के अंत में भी ऐसी ही बातें कही जाती हैं—

१. मोहि तो लै चलि चंदा मंदा। जहँ मोहन सोहन नँदनंदा॥
२. बहुरयो ब्रजलीला सुधि आई। जामैं नित्य किसोर कन्हाई॥
इकले प्रानपियारे पाये। देखि हरप भरे नैन सिराये॥

पहिले तो चंद्र से कहती है कि हमें वहाँ ले चलो जहाँ श्रीकृष्ण हैं अर्थात् द्वारिका और तुरंत ही ब्रजलीला की सुधि आते ही उसे श्रीकृष्ण वहीं अर्थात् व्रज ही में अकेले मिल जाते हैं। ऐसी अवस्था में यह विरह देशांतर कैसे हो सकता है, जब सोने के पहिले मिलन और जागने के बाद फिर मिलन। इतने ही बीच में किस प्रकार प्रीतम के प्रवास-वियोग की समाप्ति हो सकती है। इस प्रकार के विरोधी कथनों में नंददासजी ने सामंजस्य किस प्रकार स्थापित किया है, इसपर विचार करना आवश्यक है।

नंददासजी ने विरह के जो चार भेद किए हैं वे साधारण मानव विरह नहीं हैं, जिसे सभी मनुष्य समझ सकते हैं, वे—

ब्रज में बिरह चारि परकारा। जानत हैं जो जाननिहारा॥

अर्थात् विरह के ये भेद ऐसे हैं, जिन्हें विशिष्ट लोग ही समझ सकते हैं। वास्तव में विरह के ये भेद आश्चर्य में डालने वाले हैं।

सामने बैठे हैं पर तब भी विरह, पलक गिरने से क्षण भर न देख सकने पर विरह तथा घंटे दो घंटे वन-उपवन में चले जाने पर विरह। जहाँ ऐसे विरह होते हैं वहाँ देशांतर विरह कैसे सह्य हो सकता है अतः उसकी केवल भावना मान कर ली जाती है। नंददास जी भी इसे समझते थे इसी से कहा है—

सुनि देसांतर बिरह-बिनोद। रसिक जनन-मन बढ़वन मोद॥

अर्थात् देशांतर-विरह विनोद मात्र है, जिससे रसिक भक्तों को सुनकर आनंद मिलता है क्योंकि यह विरह उसी प्रकार का है—

ज्यों मनि कंठ बाँधि के कोई। बिसरै बन बन ढूँढै सोई॥

तिस पर इस प्रकार भेद करने का तात्पर्य नंददास जी क्या बतलाते हैं वह भी सुनिये और समझिए :—

इहि परकार बिरह मंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी॥
जो इहि सुनै गुनै हित लावै। सो सिद्धांत तत्व को पावै॥
अवर भाँति ब्रज को बिरह बनै न क्यौं हूँ नंद।
जिनके मित्र बिचित्र हरि पूरन परमानंद॥

जैसे विचित्र पूर्ण परमानंद श्रीकृष्ण प्रीतम हैं, वैसी ही विचित्र प्रेमिकाएँ हैं, वैसा ही विरह तथा उसके भेद हैं। किसी अन्य प्रकार से इसका वर्णन नहीं हो सकता, यह भी नंददास जी कहते और साथ ही यह भी कहते हैं कि इसे सुनने, समझने तथ अपना हित मानने से कृष्ण भक्ति का सिद्धांत तत्व प्राप्त होता है। अब देखना चाहिए कि सिद्धांत क्या है? आरंभ में कहा है कि

प्रसन भये किधौं सुंदर स्यामा। सदा बसौ वृंदाबन धामा॥
याके बिरह जु उपज्यो महा। कहौ नंद सो कारन कहा॥

जब श्रीकृष्ण सदा वृंदावन धाम में बसते हैं तब वहाँ क्यों विरह होगा? इस प्रश्न पर नंददासजी ने ब्रज के विशिष्ट विरह को

समझाया है, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। मूलतः

परम प्रेम उच्छलन इक बढ़यो जु तन मन मैन।
ब्रजबाला विरहिन भई कहति चंद सों बैन॥

जो ब्रजबाला 'परम प्रेम' से उद्वेलित हो उठी है और जिसने 'प्रेम-सुधा-रस' का पान किया है उसे विरहिणी होते ही किसी प्रकार की सुधि नहीं रहती तथा वह विरह की भावना कर दुखित होती है। इस प्रकार 'घरि इक रही चटपटी', जो प्रेम की निपट अटपटी चाल है और इसके अनंतर ही इस सत्य शुद्ध विरहाग्नि से तपते ही

ताकों निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे॥
समाचार जाने तिहि तिय के। अंतरजामी सब के हिय के॥

भक्ति-प्रधान् शाखा में, सगुण-साकार तथा निर्गुण-निराकार दोनों में, इष्ट के प्रति सत्य प्रेम होना मूल है और मिलन होने तक अर्थात् भगवान के साक्षाद्दर्शन तक विरहावस्था ही प्रधान साधना है और इस साधना में जो सफल होता है, उसकी विरहाकुलता इतनी बढ़ जाती है कि उसे शरीर का भान नहीं रह जाता और उसे 'सब ठाँ सोय' दिखलाई पड़ता है तभी उसे भगवान भी मिलता है। लौकिक प्रेम में भी विरह उसका पोषक होता है और 'मुमकिन नहीं कि दर्द इधर हो उधर न हो'। सूफी संप्रदाय में भी यही 'इश्क मजाज़ी' हिज्र (विरह) से 'इश्क हक़ीक़ी' हो जाता है और 'जहाँ आर्ज़ू है वहाँ रूबरू है' अर्थात् मिलन की उत्कट इच्छा होते ही प्रत्यक्ष हो जाता है। तब वह दशा हो जाती है कि

दिल के आईनः में है तस्वीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

परंतु यह दर्पण विरह-कष्ट रूपी साधना से जितना ही स्वच्छ

होता है उतना ही स्पष्ट दर्शन भी होता है। नंददासजी वल्लभ-संप्रदाय के वैष्णव थे और इसके अनुसार वृंदावन भगवान श्रीकृष्ण का नित्यधाम है। वह अपने व्रज-कृष्ण रूप में सदा यहाँ निवास करते हैं, चाहे अन्य रूपों से वह मथुरा, द्वारिका आदि कहीं रहें। ऐसी अवस्था में व्रज के लोगों का विरह भावुकता मात्र है पर जब तक वह रहता है तब तक वह सत्य तथा वास्तविक है, नहीं तो वह साधना ही न रह जायगा।

भ्रमरगीत

हिंदी साहित्य में, विशेष कर उसके व्रजभाषा-विभाग में, गोपी-उद्धव संवाद को लेकर एक से एक अनूठी उक्तियाँ कही गई हैं। जब भगवान श्रीकृष्ण व्रजलीला समाप्त कर लोकपीड़क बाल-हत्याकारी नृशंस कंस को मारने के लिए वसुदेव आदि द्वारा निमंत्रित होकर अक्रूर के साथ मथुरा चले आए और कंस को उसके सहायकों सहित मार कर अपने माता-पिता को कारागार से छुड़ाया तब वह अपने भाई बलरामजी के साथ वहीं रह गए। विरह-कातरा व्रजबालाओं की दशा बार-बार सुनकर श्रीकृष्ण ने उन्हें सान्त्वना देने के लिए अपने परम मित्र उद्धवजी को संदेश देकर भेजा, जिन्हें अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। उद्धवजी ही से सदेश भेजने में श्रीकृष्ण को यह भी इष्ट था कि प्रेम-भक्ति की प्रवर्तिका गोपियों के पास पहुँचने पर उद्धवजी का ज्ञान-गर्व दूर हो जायगा। यह कथा श्रीमद्भागवत दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के ४६४७वें अध्यायों में वर्णित है। इसी अमर घटना को लेकर अनेक भ्रमरगीत निर्मित हुए हैं, जिनमें भक्ति अर्थात् सगुण उपासना मार्ग तथा ज्ञान अर्थात् निर्गुण उपासना मार्ग को लेकर भक्त-कवियों ने अनूठी उक्तियाँ कही हैं और अन्त में

सगुण उपासना ही विशेष लोकप्रिय सिद्ध हुई है। गोपियों के प्रेममार्ग की विजय जनसाधारण की सगुण उपासना के प्रति-श्रद्धा प्रकट करती है। उद्धवजी ज्ञान-मार्ग के प्रकांड पंडित थे और उनकी पराजय ज्ञान-मार्ग की दुरूहता प्रकट करते हुए स्पष्टतः बतला रही है कि यह मार्ग सब के लिए न होकर विरले लोगों के लिए है। वास्तव में प्रथम सरस तथा गार्हस्थ्य धर्म निबाहनेवालों के लिए है और दूसरा नीरस संसार विरक्तों के उपयुक्त है। यही कारण है कि गोपियों की तन्मयता, एकनिष्ठा तथा सरसता में उद्धवजी का ज्ञान का गर्व मिट गया।

नंददासजी ने भ्रमरगीत का आरंभ इस प्रकार किया है कि मानों उद्धवजी व्रज में आकर टिके हैं और जब उन्हें एकांत में गोपियों से कुछ बातचीत करने का अवसर मिला तब वह गोपियों से कहते हैं—

> कहन स्याम-संदेस एक मैं तुम पै आयौ।
> कहन समै संकेत कहूँ अवसर नहिं पायौ॥
> सोचत ही मन मैं रह्यौ कब पाऊँ इक ठाँउ।
> कहि सँदेस नँदलाल कौ बहुरि मधुपुरी जाउँ॥
> सुनौ व्रज नागरी!

इतना सुनते ही, नँदलाल का नाम कान में पड़ते ही, व्रज-बालाओं का सांसारिक ज्ञान विलुप्त हो गया और प्रेमानंद रस से उनका हृदय इतना भर उठा कि उनके सर्वांग पुलकित हो उठे, नेत्रों में जल आ गया और वाणी इतनी गद्‌गद हो उठी कि वे बोल तक न सकीं। जब वे किसी प्रकार अपने को सँभालकर अपने प्यारे कृष्ण का संदेश सुनने योग्य हुईं तब उद्धवजी ने अपने ज्ञान की पोटली खोली। ज्ञान तथा सगुण-निर्गुण का उपदेश देते हुए कहते हैं कि

जाहि कहौ तुम कान्ह ताहि कोउ पितु नहिं माता।
अखिल अंड ब्रह्मंड बिस्व उनही में जाता॥
लीला को अवतार लै धरि आए तन स्याम।
जोग जुगुत ही पाइयै पारब्रह्म-पद-धाम॥
सुनौ ब्रज नागरी!

साथ ही यह भी समझाया कि यदि ज्ञान-दृष्टि से देखो तो वह तुम से दूर नहीं हैं, वह सर्वत्र व्याप्त हैं। सगुण तो उपाधि मात्र है, वह तो निर्गुण, निराकार तथा निर्लिप्त ब्रह्म हैं जिनका सर्वत्र प्रकाश है। यह सुनकर गोपियाँ कितना सरल उत्तर देती हैं—

कौन ब्रह्म की जोति ज्ञान कासों कहै ऊधो?
हमरे सुंदर श्याम प्रेम को मारग सूधो।

फिर कहती हैं—

ताहि बताओ जोग जोग ऊधौ जेहि पावौ।
प्रेम सहित हम पास नंदनंदन गुन गावौ॥
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरि पूरि।
प्रेम पियूषै छाँड़िकै कौन समेटे धूरि॥

जिन्हें इस बात का घमंड हो कि वे ईश्वर को या उसकी माया को समझ सकते हैं वे भले ही ज्ञान-मार्ग पर अग्रसर हों पर जिन्हें केवल प्रेम, श्रद्धा या भक्ति से ईश्वर का गुणगायन कर उनका जन बनना है, उनके लिए ज्ञान तथा कर्म की अहंता के फेर में पड़ना उचित नहीं। इस पर उद्धवजी कहते हैं कि कर्म ही इस विश्व में प्रधान है और इसीके द्वारा विश्व बनता-बिगड़ता है तथा इसी के द्वारा आसन लगाकर लोग ब्रह्माग्नि में शुद्ध हो सायुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं। गोपियाँ इसका कितना सीधा सादा उत्तर देती हैं कि

कर्म, पाप अरु पुन्य, लोह सोने की बेड़ी।
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है नीच कर्म तें भोग।
प्रेम बिना सब पचि मुये विषय बासना रोग॥

कर्म, धर्म या अधर्म तथा उसके फलस्वरूप पुण्य और पाप ये दोनों ही बंधन हैं। एक स्वर्ग देता है तो दूसरा नर्क। इस कर्म के फेर में वे ही पड़ते हैं जिनके हृदय में भगवान के प्रति प्रेम, श्रद्धा या भक्ति नहीं है और जिसने 'चाखा कृष्ण रस' उसके लिए सारा कर्मकांड धूलि के समान है। अतः किसी प्रकार के बंधन में न पड़कर भगवान के श्रीचरण में मन लगाकर उनका सामीप्य प्राप्त करना ही भक्तों का ध्येय रहता है। इसीमें पूर्ण-आनंद मिलता है। यह सुनकर उद्धवजी अपना पक्ष प्रतिपादन करते हैं कि यदि ऐसा समझ लिया जाता तो योगी लोग क्यों समाधि लगाकर तथा तपस्या कर अपनी ज्योति ब्रह्म-ज्योति में मिलाते। इस पर गोपियाँ कहती हैं—

जोगी जोतिहिं भजैं भक्त निज रूपहि जानै।
प्रेम पियूषै प्रगटि श्याम सुंदर उर आनै॥

योगी लोग भगवान की ज्योति को भजते हैं इसलिए उसी में मिल सकते हैं परंतु भक्त अपने रूप को पहिचानता है और वह प्रेम रूपी अमृत साधन से भगवान को अपने हृदय में स्थापित करता है। भक्त यह नहीं चाहता कि भगवान में मिलकर वह भी भगवान बन जाय प्रत्युत् वह उससे अलग रहकर उसकी दया तथा सामीप्य प्राप्त कर उसका दर्शन, भजन, सेवा करना चाहता है। भक्त सगुण-निर्गुण, माया, कर्म आदि के प्रपंच से दूर रहकर उस रूप-राशि भगवान के दर्शन मात्र चाहता है—

नास्तिक हैं जे लोग कहा जानैं निज रूपैं।
प्रगट भानु कों छाँड़ि गहत परछाईं धूपैं॥
हमरें तो यह रूप बिन और न कछू सुहाय।
जो करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय॥

इस प्रकार वाद-विवाद समाप्त करते हुए व्रजबालाओं के नेत्रों के आगे श्रीकृष्ण का वही रसेश रूप आ जाता है और वे, इस ज्ञान-जंजाल के मूर्त रूप उद्धव की ओर से मुख फेर कर उसी मूर्ति से प्रेमालाप करने लगती हैं। वे अपने अनन्य प्रेम में विभोर तथा विरह में कातर होकर उनसे अपनी परवशता, दीनता आदि प्रगट करती हैं, उपालंभ देती हैं और पूर्णरूप से आत्मसमर्पण कर मिलन की याचना करती हैं। उद्धवजी इन सब की प्रेम विह्वलता देखकर तथा उनकी उक्तियाँ सुनकर स्वयं उस प्रेम-भाव में ऐसा तन्मय हो गए कि उन्होंने विचार किया कि—

कबहुँ कहै गुन गाय श्याम के इन्हें रिझाऊँ।
प्रेम-भक्ति तो भले स्यामसुंदर की पाऊँ॥
जिहि किहि विधि ये रीझहीं सो हौं करौं उपाय।
जातें मो मन सुद्ध होइ दुबिधा ज्ञान मिटाय॥
पाय रस प्रेम कौ।

इसी समय कहीं से एक भ्रमर उड़ता आ गया। उसे देखते ही भ्रमर को कृष्ण तथा उनके दूत उद्धव के समान मानकर इन दोनों पर गोपियों ने व्यंग्य कसे, आक्षेप किए तथा विनोद किया। अंत में यह सब कहकर वे ऐसी कातर हो गईं कि—

ता पाछें एक बार ही रोईं सकल ब्रजनारि।
हा! करुनामय नाथ हो! केसौ! कृष्ण! मुरारि॥

व्रजबालाओं के इस प्रेमाश्रु-प्रवाह में उद्धवजी का ज्ञान-गर्व

वह गया और उन्होंने गोपियों को अपना गुरु इस प्रेम-मार्ग का बनाया। कहते हैं—

गोपी-प्रेम-प्रसाद सों हौं ही सीख्यौ आय।
ऊधौ तें मधुकर भयौ दुविधा जोग मिटाय॥
पाय रस प्रेम कों॥

इस प्रेम में दीक्षित होकर उद्धवजी मथुरा लौटे और गोपियों की प्रेमदशा उनके चित्त में ऐसी चढ़ी थी कि वे श्रीकृष्ण से मिलते ही उनकी कठोरता पर उलाहना देते हुए कहते हैं कि—

पुनि पुनि कहै हे स्याम जाय वृंदावन रहिए।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपी सँग लहिए॥
और संग सब छाँड़िकै उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यो जात है अब ही नेह सनेहु॥

यह उपालंभ सुनते ही भगवान श्रीकृष्ण ने प्रेमावेश में उद्धव को वह रूप दिखाया जिसमें 'रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात' और कहा कि 'उनमें मोमें हे सखा छिन भरि अंतर नाहिं'।

नंददासजी ने तर्क वितर्क के रूप में वार्तालाप चलाते हुए भी सारा वर्णन इतनी भावुकतापूर्ण किया है कि वह काव्य-कौशल की दृष्टि से मनमुग्धकारी होते हुए अत्यंत प्रभावोत्पादक भी हो गया है। गोपियों के प्रेम, विरह-कातरता, वियोग में आंतरिक संयोग-दशा सभी का सुंदर भावमयी भाषा में वर्णन किया है और साथ ही गोपियों तथा श्रीकृष्ण पर इन दशाओं से जो प्रभाव पड़ता है तथा अनेक अनुभावों द्वारा वे स्पष्ट होते हैं उनका वर्णन कर उन्हें मानों सजीव कर दिया है। ये सारे वर्णन रससिक्त तथा रसोत्पादक होते भी आध्यात्मिक विचार-धारा से परिप्लुत हैं और रसिक भक्तों पर पूर्ण प्रभाव डालते हैं। इस भ्रमरगीत के पढ़ते हुए स्पष्ट ज्ञात होता है कि भक्त-कवि

नंददास का स्वर भी गोपियों के प्रेमपूर्ण आत्मनिवेदन के स्वर में मिलता चल रहा है। कवि ने निजी प्रेम-भक्ति की उत्कृष्टता, स्वहृदयगत भक्ति-भावना की तन्मयता तथा इष्ट-मिलन की उत्कट आकांक्षा सभी का ऐसा सुंदर सरस वर्णन किया है कि वे उनकी अनुभूत सी ज्ञात होती हैं और उनका श्रोताओं पर प्रभाव पड़ता है।

श्याम सगाई

नंददास जी की यह साधारण रचना है। भाषा-सौष्ठव तो कवि के उपयुक्त ही है पर न इसमें वर्णन-वैचित्र्य ही है और न भावों की सरस अभिव्यंजना ही। काव्यकला की दृष्टि से इसमें किसी प्रकार की विशेषता नहीं है। अलंकारों का समावेश भी बहुत कम है और जो है वह भी कविता का उन्नायक नहीं हो सका है। कथा जो थोड़ी सी है उसके संगठन में भी विशेष रोचकता नहीं आ पाई है। कथा इस प्रकार है—

एक दिन श्रीराधा कृष्णजी के घर खेलने आई। यशोदाजी ने उनके सौंदर्य को देखकर उनसे श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने का विचार किया और ब्राह्मणी द्वारा उनकी माता से कहलाया। कीर्तिजी ने कोरा उत्तर दे दिया कि मेरी पुत्री बड़ी सीधी है और कृष्ण बड़े नटखट हैं, मैं विवाह नहीं करूँगी। यह सुनकर यशोदा जी को दुःख हुआ और कृष्ण के आने पर उन्हें उलाहना दिया। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो वे पाँव पड़कर देंगे, तुम शोक न करो। इसके अनंतर यह बन ठन कर बरसाने *गए जहाँ इन्हें देखते ही*

मन हरि लीनो स्याम परी राधे मुरझाई।

और 'स्याम स्याम रटिबे. लगी' तब सखियों ने उपाय बत-

लाया कि 'तुम्हें घर ले चलते हैं, वहाँ कहना कि साँप ने काट खाया है तब हम लोग श्रीकृष्ण को बुला लावेंगे। यही किया गया और राधा जी की माता ने सखियों के कहने पर श्रीकृष्ण को तुरंत बुलवाया और कहला दिया कि अच्छी होने पर श्रीकृष्ण से विवाह कर दूँगी। इस संदेश पर श्रीकृष्ण जाने में आनाकानी करने लगे पर अंत में समझाने पर गए। वहाँ इनके जाते ही राधाजी अच्छी हो गईं और सगाई भी हो गई।

यह रचना स्वतंत्र नहीं ज्ञात होती। कवि ने यथानियम न आरंभ में वंदना की है और न रचना का कोई कारण दिया है। अंत में भी लीला के माहात्म्य का कथन नहीं है और न आध्यात्मिक भाव प्रेम सिद्धांत ही का उल्लेख है। यह केवल एक बड़ा पद है, जो कीर्तन में गाया जाता है।

रुक्मिणीमंगल

श्रीमद्भागवत के ५२-४ वें अध्यायों में रुक्मिणीमंगल की कथा विस्तार से दी है जिसका संक्षिप्त विवरण पहिले दिया जा चुका है। नंददासजी अपनी कथा उस समय से आरंभ करते हैं जब रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण के गुणों को सुनकर उनपर अनुरक्त हो जाती हैं और उन्हें समाचार मिलता है कि उनके भाई रुक्म के आग्रह पर उनका पिता भीष्मक उन्हें शिशुपाल को देने का निश्चय करता है। इस बात को सुनने से श्री रुक्मिणी को कितना कष्ट हुआ, और इस पूर्वराग की विरह-वेदना कितनी असह्य हो उठी, इसका कवि ने विस्तार से अत्यंत भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। साथ ही यह कठिनाई भी थी कि—

कन्या कन्या-विरह-दुःख कों कासों कहिहै।

श्री रुक्मिणीजी अपनी विरह-वेदना किसी से कह भी नहीं

सकती थीं क्योंकि अभी तो वह अविवाहिता थीं, इसलिए यह सारा दुःख भीतर ही रहकर अत्यधिक कष्टकर हो उठा था। जब दुःख से नेत्रों में जल भर आते थे और कोई कारण पूछता था तो इन्हें बहाना करना पड़ता था। उनकी यह दशा हो गई थी कि—

मिटी भूख अरु प्यास पास कोउ और न भावै।
कोनें जाइ उसास भरै दुख कहत न आवै॥
दुरी रहति क्यों प्रिय-रति प्रकटहि देत दिखाई।
पुलक अंग, सुर-भंग, स्वेद कबहूँ जड़ताई॥

इस प्रकार वह अपने दुःख को छिपाने का प्रयत्न कर रही थीं पर उसका प्रभाव उनकी शरीर पर विवर्णता, अचेतनता आदि के रूप में पड़ रहा था। विवाह के समारोह को देखकर उनका शोक बढ़ने लगा और शुभ कंकन बँध जाने पर—,

निरखि-निरखि कर कंकन दृग जल भर-भर आहीं।

अंत में सोचती हैं कि यदि लोक-लज्जा के फेर में पड़ी तो मेरा सर्वस्व चला जायगा अतः अब क्या करना उचित है। जिन श्रीकृष्ण के चरण-रज की इच्छा ब्रह्मा, ऋषिगण आदि करते हैं और जिन्हें गोपियों ने लोक-लज्जा त्यागकर पाया उसी प्रकार प्राप्त करने का श्रीरुक्मिणी ने भी निश्चय किया। तब—

इहि बिधि धरि मन धीर चीर अँसुवन सिरायकै।
लिख्यो पत्र सुविचित्र चित्र रुक्मिनि बनायकै॥

और इस पत्र को एक ब्राह्मण को दिया कि इसे श्रीकृष्ण के पास पहुँचा दे और वह ब्राह्मण भी श्री रुक्मिणी के दुःख को देख कर सीधा द्वारिकाजी पहुँचा। यहाँ उस पुरी की शोभा का कवि ने बड़ा सुंदर वर्णन किया है। ब्राह्मण नगर की शोभा देखता

हुआ श्रीकृष्ण के प्रासाद में पहुँचा और वहाँ उन्हें देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। कृष्णजी ने भी जब उसका आदर-सत्कार कर बैठाया तब ब्राह्मण ने रुक्मिणीजी का पत्र उन्हें दिया। कृष्णजी ने जब पत्र खोलकर पढ़ना आरंभ किया तब—

परम प्रेम रस साँचे अच्छर बनत न बाँचे।

कुछ अंश पढ़ने के अनंतर रुक्मिणीजी के प्रेमपूर्ण आह्वान से उनका हृदय इतना पसीज उठा कि वह उसे पूरा पढ़ न सके और तब ब्राह्मण ने उनके आदेश से पढ़ सुनाया। पत्र में रुक्मिणीजी ने पहिले अपना परिचय दिया और तब किस प्रकार श्री नारदजी द्वारा श्रीकृष्ण गुण गायन सुननें से उनके प्रति उसका अनुराग हुआ तथा उसने उनका वरण किया, इसे बतलाया। इसके अनंतर रुक्म के हठ से शिशुपाल से विवाह निश्चय होने का समाचार देकर कहा है कि

जो नगधर नँदलाल मोहिं नहि करिहौ दासी।
तो पावक परजरिहौं बरिहौं तन तिनका सी॥

इसलिए जो उचित समझिए वह कीजिए।

इस पत्र को सुनते ही श्रीकृष्ण ब्राह्मण के साथ रथ पर सवार हो शीघ्रता से कुंडिनपुर चले। इधर रुक्मिणीजी ब्राह्मण को विदा कर कृष्ण-आगमन की प्रतीक्षा में घबराने लगीं। कभी अटारी पर चढ़कर देखतीं कभी खिड़कियों मे से। शुभ शकुन होने से घबड़ाहट कुछ कम होती थी पर परिस्थिति के अनुसार समय की कमी से फिर बढ़ जाती थी। इसी समय ब्राह्मण लौटकर आ पहुँचा और उसके प्रसन्न मुख को देखकर उन्हें कुछ धैर्य हुआ। तब भी शंका के कारण पूछने का साहस नहीं हो रहा था कि ब्राह्मण ने श्रीहरि के आने का समाचार सुना दिया। इसी परिस्थिति का कवि ने कितना सरस वर्णन किया है—

पूछि न सक मुख बात दई यह कहा कहैगो।
कै अमृत सो सींच, किधौं विष देह दहैगो॥
निकसि प्रान तब तन तें द्विज के बचननि आये।
तबहि कह्यो हरि आये मनु फिर बहुरयौं पाये॥

श्रीकृष्ण के कुंडिनपुर आते ही नगर-निवासी उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़े और उनके एक एक अंग के सौंदर्य पर मुग्ध हो सभी एक स्वर से इन्हें ही राजकुमारी के योग्य वर कहने लगे। पर शिशुपाल तथा उसके साथ के नरेशों ने यह समाचार सुनकर दुःख प्रकट किया कि इनका आना रहस्य से खाली नहीं है, कोई उत्पात न खड़ा हो जाय।

इसके अनंतर कुलाचार के अनुसार रुक्मिणी जी नगर के बाहर अंबिका देवी की पूजा करने गई और विधिवत् पूजन करने तथा इच्छित वर पाने के उपरांत धीरे धीरे घर की ओर लौटीं। इसका कवि ने अत्यंत अलंकृत भाषा में वर्णन किया है—

मंद मंद पग धरै चंदमुख किरन बिराजै।
मनिमय नूपुर बजै बीन मनमथ सी बाजै॥
अरुन चरन प्रतिबिंब अवनि में यों उनमानों।
जनु धर अपनी जीभ धरत पग कोमल जानी॥

इसी समय रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण को देखने के लिए एकाएक जब अपना घूँघट खोल दिया तब ऐसा भान हुआ कि, मानों आकाश में अभी चंद्रमा निकल आया हो। इनके मुखचंद्र की शोभा तथा नेत्रों के कटाक्ष से सारी रक्षक सेना जड़वत् हो गई और जब रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण को देखा तो यह भी लड़खड़ा उठीं पर क्रमशः ज्यों ही वह रथ के पास पहुँचीं तभी श्रीकृष्ण ने इन्हें अपने पास रथ में बैठा लिया। तब

ले चले नागर नगधर नवल तिया कों ऐसे ।
मारिन आँखिन धूरि पूरि मधुहा मधु जैसे ॥

यह अलंकार कवि की निजी सूझ है और कितनी सुंदर है। माधुर्य की साकार मूर्ति श्रीरुक्मिणीजी की मधु से तथा उनके प्रेमी नागर श्रीकृष्ण की मधुहा से समानता देने में कितनी सरसता है।

इसके अनंतर हरण की पुकार मचती है और सभी राजे ससैन्य पीछा करते हैं पर बलरामजी ने, जो श्रीकृष्ण के एकाकी कुंडिनपुर जाने का समाचार सुनते ही सेना साथ लेकर पीछे-पीछे आ पहुँचे थे, उन सब को युद्ध में परास्त कर भगा दिया। रुक्म ने श्रीकृष्ण का पीछा किया पर उन्होंने इसे परास्त कर छोड़ दिया और स्वयं रुक्मिणीजी को लेकर अपने नगर आये तथा विधिवत् विवाह कर लिया।

भक्त-कवि श्रेष्ठ नंददासजी को रोला छंद सिद्ध था और भाषा पर इनका अधिकार अनुपम था। *रुक्मिणी मंगल* में इनकी सरस उक्तियाँ, आकर्षक वर्णन शैली तथा प्रांजल प्रसादगुण पूर्ण भाषा सभी इनकी कवित्व शक्ति की परिचायिका हैं।

भाषा दशम स्कंध

नंददास जी ने श्रीमद्भागवत दशम स्कंध का अनुवाद करने के लिए चौपाई दोहे छंदों ही को लिया है, जैसा कि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस के लिए किया है। दोनों ही प्रायः समकालीन तथा भाई-भाई थे और दोनों ही ने स्वतंत्र रूप से अवतार लीलाओं के लिए ये ही छंद उचित समझे हैं। वंदना रूप में नंददास जी कहते हैं—

नव लच्छन करि लच्छ जो दसमैं आश्रय रूप।
'नंद' बंदि ले प्रथम तिहि श्रीकृष्णाख्य अनूप ॥

नौ लक्षणों द्वारा समझने योग्य जो दसवाँ आश्रय रूप है, उस श्रीकृष्ण नामधारी (परब्रह्म परमात्मा) की पहिले हे नंददास वंदना कर ले। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के दसवें अध्याय में ये दश लक्षण विस्तार से दिए हुए हैं जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानु कथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय। आश्रय के तत्व को समझने के लिए महात्माओं ने प्रथम नौ विषयों का श्रुति आदि की सहायता से विवेचन किया है। नंददासजी ने संक्षेप में श्रीधरी तथा सुबोधिनी टीकाओं के आधार पर यहाँ उनका वर्णन दिया है पर निरोध का विस्तार से विश्लेषण किया है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण की वंदना कर पुनः कहते हैं—

ज्यों गुरु गिरिधर देव की सुंदर दया दरेर।
गुंग सकल पिंगल पढ़ै पंगु चढ़ै गिरि मेर ॥

यहाँ 'गुरु गिरिधर' से दो भाव निकलता है, गुरु तथा गिरिधर या गुरु रूपी गिरिधर। वल्लभ संप्रदाय में गुरु गिरिधर के समान ही और कभी-कभी बढ़कर माने जाते हैं अतः पहिला ही अर्थ समीचीन ज्ञात होता है। इस प्रकार वंदना करके नंददास जी ने दसों लक्षणों का वर्णन किया है।

महत् तत्व, पंच महाभूत, इंद्रियाँ आदि जो सृष्टि के कारण वर्ग हैं, उनकी विराट् स्वरूप परमेश्वर में अवस्थिति है और माया द्वारा प्रेरित उनकी उत्पत्ति या सृष्टि का वर्णन ही सर्ग है। जब ब्रह्मा कार्य रूप में इसे लाकर सृष्टि रचते हैं तब उसे विसर्ग कहते हैं। इस प्रकार सृष्टि हो जाने पर अपनी अपनी मर्यादा पालन करते हुए जो उत्कर्ष की प्राप्ति होती है उसीका नाम स्थिति

-है। भक्तों पर भगवान की जो कृपा उनके दोषों पर ध्यान न देते हुए होती है, उसे ही पोषण कहा जाता है। यही वल्लभ संप्रदाय में पुष्टि है तथा उक्त संप्रदाय इसी कारण पुष्टि मार्ग भी कहलाता है। साधुओं की धर्म में जो प्रवृत्ति होती है उसे मन्वन्तर कहते हैं। साधु-असाधु की वासना अर्थात् कर्मवासना जहाँ हो वहाँ ऊति होती है। भगवान के अवतारों तथा उनके अनुगामी महापुरुषों की, जैसे राजा मुचकुन्द आदि की कथा ईशानु कथा कही गई है। दुष्ट राजाओं की दुष्टता का हरण करना ही निरोध है। मायाजनित अन्यथा रूप को त्याग कर आत्मा का अपने रूप में मिल जाना ही मुक्ति है। ऊपर लिखे नौ लक्षणों द्वारा जो लक्षित होता है वही परब्रह्म या परमात्मा आश्रय है, जिससे सब जगत का आविर्भाव तथा जिसमें सबका तिरोभाव होता है। इन्हीं आश्रय श्रीकृष्ण का दसवें स्कंध में वर्णन किया गया है।

नंददासजी ने निरोध पर कुछ और भी लिखा है। श्रीमद्भागवत में निरोध की परिभाषा इस प्रकार दी है—शक्तियों के साथ, योगनिद्रा का अवलंबन करके प्रलय-काल में हरि के शयन करने पर हरि में जीव के लय होने का नाम निरोध है। इस पर श्रीधर स्वामी ने जो टीका की है उसीके भाव को लेकर नंददासजी ने 'दुष्ट नृप-दलन' को निरोध बतलाया है। इसके, अनंतर श्री वल्लभाचार्य की सुबोधिनी टीका के अनुसार अर्थ किया है कि भक्तों को अन्य सभी विषयों से विरक्ति तथा मोक्ष का त्याग कर भगवान में शुद्ध प्रेम रखना ही निरोध है। जैसे मोक्ष तथा ब्रह्मानंद का सुख दिखलाने पर भी व्रजवासी मधुर मूर्ति के बिना व्याकुल हो उठे थे। निरोध की तीसरी व्याख्या इस प्रकार की है कि स्नेह भक्ति ऐसी हो कि ईश्वर का ऐश्वर्य देखकर भी उधर ध्यान न रहे। जैसे यशोदाजी ने श्रीकृष्ण के मुख में सारी

सृष्टि-लीला देखी पर उस ओर उनकी दृष्टि सत्य स्नेह के कारण नहीं गई। इसी प्रकार श्रीकृष्णलीला में अनेक स्थलों पर निरोध के उदाहरण मिलते हैं।

इस प्रकार इन लक्षणों का वर्णन कर भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद कार्य आरंभ किया है। श्रीकृष्णजन्म से गोवर्द्धन धारण तथा वरुणालय से नंद की मुक्ति तक की कथा अट्ठाईस अध्यायों में वर्णित है और इसके अनंतर पाँच अध्यायों में रासलीला का जो वर्णन है उसे नंददासजी ने पंचाध्यायी में कहा है। इसके अनंतर व्रजलीला के चार अध्याय बचते हैं और तब अक्रूर श्रीकृष्ण को लिवा जाने के लिए आते हैं और ३९ वें अध्याय में लिवा कर लौट जाते हैं। मेरा कुछ ऐसा विचार है कि नंददासजी ने स्यात् रासपंचाध्यायी लिखने के अनंतर आगे भागवत का अनुवाद ही नहीं किया क्योंकि इन सांप्रदायिक भक्तों के केवल व्रज के ही कृष्ण, गोपीकृष्ण या राधाकृष्ण, इष्ट देव थे, मथुरा, द्वारिका या महाभारत के कृष्ण नहीं थे। समग्र भागवत का अनुवाद करना, यमुना जी में विसर्जन करना तथा इसी अंश का बच रहना कोरी दंतकथा सी ज्ञात होती है।

नंददास जी की यह रचना अनुवाद मात्र है पर इस कार्य में भी वह सफल रहे हैं। निज संप्रदाय के विचारों को प्रकृत्या महत्व देकर उनका इसमें समावेश अधिक किया है और इसी कारण बहुत से अंश छोड़ भी दिए हैं। श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा का इन्होंने कुछ विस्तार किया है, जैसे माता का इन्हें चलना सिखाना आदि। बीसवें अध्याय में वर्षा तथा शरद ऋतुओं का सुंदर वर्णन है और इसी के अनंतर इक्कीसवें अध्याय में गोपिका गीत है। प्राकृतिक शोभा के बीच श्रीकृष्ण की वंशी सुनकर

गोपियों ने उनके रूप-माधुर्य तथा अपने अनुराग का आपस में अच्छा वर्णन किया है।

गोवर्द्धनलीला तथा सुदामाचरित

ये दोनों रचनाएँ भी साधारण हैं और चौपाइयों में अति संक्षेप में दोनों लीलाएँ कह दी गई हैं। भाषा के सरल सुगम होते भी इसमें काव्य-कौशल प्रायः नहीं-सा है। वर्णन भी जहाँ कहीं आए हैं वे अत्यंत संक्षेप में हैं और उनमें कुछ वैचित्र्य भी नहीं है। भाषा दशम स्कंध में चौबीसवें तथा पचीसवें अध्यायों में गोवर्धनलीला वर्णित है। दोनों रचनाओं की सत्रह-अठारह पंक्तियाँ एक सी हैं पर स्वतंत्र गोवर्द्धनलीला की अन्य बची पंक्तियाँ दशम स्कंध भाषा की चौपाइयों से हीन हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि नंददास-जी ने पहिले गोवर्द्धनलीला लिखी होगी और जब वह दशम स्कंध की भाषा करने लगे तब इसकी अच्छी पंक्तियाँ उसमें ले लीं।

गोवर्द्धनलीला में आरंभ में वंदना तथा अंत में माहात्म्य भी दिया है पर सुदामाचरित में वंदना नहीं है और अंत में केवल इतना कहा गया है

भक्ति मुक्ति पावै सोई तूरन।

सुदामाचरित लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध कथा है और इससे भगवान श्रीकृष्ण की दयालुता, मित्रवत्सलता आदि प्रगट होती है। कथा अति संक्षिप्त है, विस्तार नहीं किया गया है। सुदामा जी अपनी पतिव्रता पत्नी के दारिद्र्य से कष्ट पाने के कारण कहने पर श्रीकृष्ण के पास द्वारिका जाते हैं, वहाँ उनका बड़े प्रेम से स्वागत होता है, बाल्यकाल की पाठशाला की बातें स्मरण आती हैं और फिर दूसरे दिन सुदामा जी अपने घर लौटते हैं। श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष रूप में सुदामा की कुछ भी सहायता नहीं की

इससे वह कुढ़ते हुए लौटे पर जब गृह पर पहुँचकर वहाँ का वैभव देखा तब आश्चर्यचकित तथा विमुग्ध हो गए।

नंददासजी की यह एक साधारण रचना है। वर्णन की कमी के साथ साथ भाषा में लालित्य भी इनके योग्य नहीं है। भावात्मक तथा वर्णनात्मक अंशों को इन्होंने प्रायः छोड़ ही दिया है। यह भी इनकी आरंभिक रचना हो सकती है।

पदावली

यों तो सुना जाता है कि नंददासजी ने बहुत से पद बनाए हैं पर नित्य-कीर्तन पद-संग्रह, अन्य भजन-संग्रह तथा हस्तलिखित पद-संग्रहों से खोजकर केवल दो सौ के लगभग पद्य संकलित किए जा सके हैं। आरंभ में बीस पद स्तुति के रखे गए हैं, जिनमें एक श्रीकृष्ण तथा दो राम-कृष्ण के हैं। श्रीरामचंद्र तथा श्रीकृष्णचंद्र दोनों का साथ साथ वर्णन करते हुए कहा है—

नंददास के ये दोउ ठाकुर दशरथ-सुत बाबा नंद-किशोर।

इसके अनंतर नौ पद गुरुस्तुति, चार पद यमुना-स्तव, एक गंगा-स्तव तथा दो श्री हनुमान जी की वंदना पर हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने भाई गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रभाव के कारण ही इन्होंने ऐसा किया है क्योंकि अष्टछाप के अन्य कवियों ने ऐसे पद नहीं बनाए हैं। दो पदों में व्रज महिमा कहकर आठ पदों में कृष्णजन्म तथा बधाई कही गई है। इसके अनतर वालक्रीड़ा, श्रीराधा-जन्म, पूर्वानुराग, राधाकृष्ण-विवाह तथा प्रेम-लीला का वर्णन है। अंतिम के अंतर्गत कुछ नायिकाओं खंडिता, अभिसारिका आदि का वर्णन भी आ गया है। माखन-चोरी, छाक तथा दधि-दान के पदों के अनंतर गोवर्द्धन तथा रास की लीलाओं के कुछ पद हैं। मानलीला के बारह-तेरह पदों के बाद

कुछ त्योहारों को लेकर पद कहे गए हैं। मलार, वर्षा, हिंडोला, मल्हार तथा फाग के भी बहुत से पद बनाए हैं। परंतु आश्चर्य है कि नंददास जी के विनय, भक्ति, भ्रमरगीत, दुष्ट संहार लीला आदि पर एक भी पद नहीं प्राप्त हो सके।

नंददास जी के संकलित पदों में कुछ तो भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टि से बहुत सुंदर बन पड़े हैं पर कुछ ऐसे भी हैं जो साधारण हैं। कृष्ण-जन्म बधाई पर कई पद अनूठे हैं। ब्रज की सुंदरियाँ एकत्र होकर बधावा ले नंद जी के घर चलीं उस समय उनके मुखों पर कैसी प्रसन्नता झलक रही है, उनके चाल की आतुरता, गान सभी से प्रसन्नता उमड़ी सी पड़ती है। बालक का मुख देखकर बलैया लेना, गोपों के झुंड का आना और सब का आनंद प्रकट करना सभी का नंददासजी ने अलंकृत भाषा में सुंदर वर्णन किया है।

जुरि चली हैं बधावन नंद महर घर सुंदर ब्रज की बाला।
(प० सं० २६)

श्री राधाजी में श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर ही पूर्वानुराग उत्पन्न होने पर उनकी क्या दशा हुई इसे नंददासजी वर्णन कर कहते हैं कि

'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री।

यह रूप-माधुरी कैसी थी और इसका प्रभाव ब्रजांगनाओं पर कैसा पड़ता था इसका प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार वर्णन किया है। नंददासजी ने भी इसका वर्णन बड़ी सरस भाषा में किया है। एक गोपी यमुनाजी से पानी

इससे यह सुनते हुए कौटे पर जब गृह पर पहुँचकर वहाँ का वैभव देखा तब आश्चर्यचकित तथा विमुग्ध हो गए।

नंददासजी की यह एक साधारण रचना है। वर्णन की कमी के साथ साथ भाषा में लालित्य भी इनके योग्य नहीं है। भावात्मक तथा वर्णनात्मक अंशों को इन्होंने प्रायः छोड़ ही दिया है। यह भी इनकी आरंभिक रचना हो सकती है।

पदावली

यों तो सुना जाता है कि नंददासजी ने बहुत से पद बनाए हैं पर नित्य-कीर्तन पद-संग्रह, अन्य भजन-संग्रह तथा हस्तलिखित पद-संग्रहों से खोजकर केवल दो सौ के लगभग पद संकलित किए जा सके हैं। आरंभ में बीस पद स्तुति के रखे गए हैं, जिनमें एक श्रीकृष्ण तथा दो राम-कृष्ण के हैं। श्रीरामचंद्र तथा श्रीकृष्ण-चंद्र दोनों का साथ साथ वर्णन करते हुए कहा है—

नंददास के ये दोउ ठाकुर दशरथ-सुत बाबा नंद-किशोर। ४

इसके अनंतर नौ पद गुरुस्तुति, चार पद यमुना-स्तव, एक गंगा-स्तव तथा दो श्री हनुमान जी की वंदना पर हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने भाई गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रभाव के कारण ही इन्होंने ऐसा किया है क्योंकि अष्टछाप के अन्य कवियों ने ऐसे पद नहीं बनाए हैं। दो पदों में ब्रज महिमा कहकर आठ पदों में कृष्णजन्म तथा बधाई कही गई है। इसके अनंतर बालक्रीड़ा, श्रीराधा-जन्म, पूर्वानुराग, राधाकृष्ण-विवाह तथा प्रेम-लीला का वर्णन है। अंतिम के अंतर्गत कुछ नायिकाओं खंडिता, अभिसारिका आदि का वर्णन भी आ गया है। माखन-चोरी, छाक तथा दधि-दान के पदों के अनंतर गोवर्द्धन तथा रास की लीलाओं के कुछ पद हैं। मानलीला के बारह-तेरह ...

कुछ त्योहारों को लेकर पद कहे गए हैं। मलार, वर्षा, हिंडोला, बहार तथा फाग के भी बहुत से पद बनाए हैं। परंतु आश्चर्य है कि नंददास जी के विनय, भक्ति, भ्रमरगीत, दुष्ट संहार लीला आदि पर एक भी पद नहीं प्राप्त हो सके।

नंददास जी के संकलित पदों में कुछ तो भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टि से बहुत सुंदर बन पड़े हैं पर कुछ ऐसे भी हैं जो साधारण हैं। कृष्ण-जन्म बधाई पर कई पद अनूठे हैं। ब्रज की सुंदरियाँ एकत्र होकर बधावा ले नंद जी के घर चलीं उस समय उनके मुखों पर कैसी प्रसन्नता झलक रही है, उनके चाल की आतुरता, गान सभी से प्रसन्नता उमड़ी सी पड़ती है। बालक का मुख देखकर बलैया लेना, गोपों के झुंड का आना और सब का आनंद प्रकट करना सभी का नंददासजी ने अलंकृत भाषा में सुंदर वर्णन किया है।

जुरि चली हैं बधावन नंद महर घर सुंदर ब्रज की बाला।
(प० सं० २६)

श्री राधाजी में श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर ही पूर्वानुराग उत्पन्न होने पर उनकी क्या दशा हुई इसे नंददासजी वर्णन कर कहते हैं कि

'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री।

यह रूप-माधुरी कैसी थी और इसका प्रभाव व्रजांगनाओं पर कैसा पड़ता था इसका प्रायः सभी कृष्ण-भक्त कवियों ने अपने सामर्थ्य के अनुसार वर्णन किया है। नंददासजी ने भी इसका वर्णन बड़ी सरस भाषा में किया है। एक गोपी यमुनाजी से पानी

भरकर आ रही थी कि मार्ग में कहीं उसने 'स्याम रूप काहू को ढोटा' को देख लिया और ऐसा आकर्षण हुआ कि

ठगिसी रही, चेटक सों लाग्यो, तब तें व्याकुल फुरत न बानी।
जा दिन तें चितयो री मो तन तादिन त उन हाथ बिकानी।
नंददास प्रभु यों मन मिलि गयो ज्यों सारंग में पानी॥

इस रूप-माधुरी को देखने में पलकें जब बाधा डालती हैं तो वह उन्हीं पर चिढ़ सी जाती है और पलकों से कहती है—

देखन दे मेरी बैरन पलकें।
नँदनंदन मुख तें यों आली बीच परत मानों बज्र की सलकें॥
ऐसो मुख निरखन को आली कौन रची विच पूत कमल कें।
'नंददास' सब जड़न की इहि गति मीन मरत भायें नहिं जल कें॥

श्री राधिकाजी की रूप-माधुरी का भी अत्यंत सरस वर्णन दिया है। मान करने पर जब सखी उन्हें बुलाने जाती है तब उनकी मुखश्री पर वह स्वयं ऐसी लुब्ध हो जाती है कि वह निश्चय नहीं कर पाती कि स्वयं देखा करे या श्रीकृष्ण को बुलाकर दिखलावे। कहा है कि 'नारि न मोह नारि के रूपा' पर यहाँ की मुखशोभा उसका अपवाद है। सुनिए—

तेरे ही मनायबे तें नीको री लगत मान
तौ लौं रहि प्यारी जौं लौं लालहि लै आऊँ।
औरनु को हँसौहीं मुख तेरी तौ रुखाई आली
सोरह कला को पूरो चद 'बलि जाऊँ॥
चलि न सकत उत, पग न परत इत तें
ऐसी सोभा छाँड़ि फिरि पाऊँ धौं न पाऊँ।
नंददास प्रभु दोउ विधि ही कठिन परी
देखिबो करौं किधौं लालहिं दिखाऊँ॥

जैसा अनूठा भाव है वैसी ही सरस भाषा में वह प्रकट भी

किया गया है। सखी का विकल्प कितना सहज स्वाभाविक है, वह चाहती है कि स्वयं देखा करे और 'लाल' को भी लाकर दिखलावे।

नंददासजी ने सावन के झूले तथा फागुन के हिंडोले पर भी बहुत से पद लिखे हैं और सुंदर सरस लिखे हैं। यमुना जी के किनारे पर व्रजवधुओं से घिरे हुए राधाकृष्ण झूला झूल रहे हैं। बादल गरज रहा है, पपीहा, दादुर, मोर शोर मचा रहे हैं और उन्हीं में स्वर मिलाकर सखियाँ भी मलार गा रही हैं।

झूलत मोहन रंग भरे गोप-बधू चहुँ ओर।
'नंददास' आनंद भरे अति निरखत जुगुलकिसोर ॥
(प० सं० १५७)

रासलीला पर भी नंददासजी ने कई बड़े सरस पद कहे हैं। राधाकृष्ण हाथ पकड़े हुए गोपी-मंडल के बीच नृत्य कर रहे हैं तथा अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं, जिन्हें देखकर सभी मुग्ध हो गए। इस सुंदर चित्र का वैसी ही सरस भाषा में वर्णन किया है—

वृंदावन, बंसीबट, जमुना तट, वंसी-रट,
रास में रसिक प्यारो खेल रच्यो बन में।
राधा-माधो कर जोर, रवि-ससि होत भोरें
मंडल में निरतत दोउ सरस सघन में ॥
मधुर मृदंग बाजे, मुरली की धुनि गाजे,
सुधि न रही री कछु सुर मुनि जन में।
'नंददास' प्रभु प्यारो रूप-उजियारो अति
कृष्णक्रीड़ा देखि भये थकित जन मन में ॥

नंददास-ग्रंथावली

रास पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

वंदन करौं कृपानिधान श्री शुक सुभकारी।
सुद्ध जोतिमय रूप सदा सुंदर अविकारी ॥१॥
हरि-लीला-रस मत्त मुदित नित बिचरत जग मैं।
अद्भुत गति कतहूँ[1] न अटक ह्वै निकसत[2] नग मैं ॥२॥
नीलोत्पल-दल स्याम अंग नव-जोवन भ्राजै।
कुटिल अलक मुख-कमल मनों अलि-अवलि बिराजै ॥३॥
ललित बिसाल सुभाल दिपत जनु निकर निसाकर।
कृष्ण-भगति-प्रतिबंध[3] तिमिर कहुँ कोटि दिवाकर ॥४॥
कृपा-रंग-रस-ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण-रसासव[4]-पान-अलस[5] कछु घूम घुमारे ॥५॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब सुक की छबि छीनी।
तिन बिच[6] अद्भुत भाँति लसति कछु इक मसि भीनी ॥६॥
स्रवन कृष्ण-रस-भवन गंड-मंडल भल दरसै।
प्रेमानंद मिली[7] सुमंद मुसकनि मधु बरसै ॥७॥
कंबु कंठ की रेख देखि हरि-धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिहि निरखत नासै ॥८॥
उर-बर पर अति छबि कि भीर कछु बरनि न जाई।
जिहि अंतर[8] जगमगत निरंतर कुँवर कन्हाई ॥९॥

---

१. कहुँ नहिं न। २. निकसे मग। ३. प्रतिबिंब। ४. रसामृत। ५. करत। ६. मधि। ७. मलिद मंद। ८. भीतर।

सुंदर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय-सरवर रस पूरि चली मनु उमगि पनारी ॥१०॥
ता[1] रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी।
त्रिवली ता महँ ललित भाँति मनु उपजति लहरी ॥११॥
गूढ़ जानु आजानुबाहु मद-गज-गति डोलैं।
गंगादिकनि पवित्र करत अवनी पर डोलैं ॥१२॥
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगनि तें दूरि भए दुरि।
पसरि परयो अँधियार सकल संसार घुमड़ि घुरि ॥१३॥
तिमिर-ग्रसित सब लोक-ओक[2] लखि दुखित दया कर।
प्रगट कियो अद्भुत-प्रभाउ भागवत-विभाकर ॥१४॥
ताहू में पुनि अति रहस्य यह पंचाध्याई।
तन मँह जैसे पंच प्रान अस सुक मुनि गाई ॥१५॥
परम रसिक इक मीत मोहि तिन आज्ञा दीन्ही।
तातें मैं यह कथा जथामति भाषा कीन्ही ॥[3]१६॥

श्रीवृंदावन वर्णन

श्रीवृंदावन चिद्घन कछु छवि बरनि न जाई।
कृष्ण-ललित लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई ॥१७॥
जहँ नग खग मृग कुंज लता बीरुध तृन जेते।
नहिन काल गुन-प्रभा[4] सदा सोभित रहे तेते ॥१८॥

---

१. जिहि। २. विकल जब देखि दया कर। ३. ह० प्र० ख व ग तथा लीथो की प्रति में इस रोला के और कलकत्ते की छपी प्रति में १४वें रोला के बाद यह दोहा है—

(श्री) शुक मुनि रूप अनूप है, सो बरन्यो कवि नंद।
अब वृंदावन बरनिहौं, जहँ वृदावन-चंद ॥

४. प्रभउ (प्रभाव)।

सकल जंतु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं।
काम-क्रोध-मद-लोभ-रहित लीला अनुसरहीं ॥१९॥
सब[1] दिन रहत वसंत कृष्ण-अवलोकनि-लोभा।
त्रिभुवन[2] कानन जा बिभूति करि सोभित सोभा ॥२०॥
ज्यों[3] लछमी निज रूप अनूप चरन सेवत नित।
भ्रू विलसति जु बिभूति जगत जगमगि रहि जित कित ॥२१॥
श्री अनंत महिमा अनंत को बरनि सकै कवि।
संकरषन सो कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि ॥२२॥
देवन मैं श्रीरमारमन नारायन प्रभु[4] जस।
बन मैं वृंदावन सुदेस सब[5] दिन सोभित अस ॥२३॥
या बन की बर-बानिक या बन हीं बनि आवै।
सेस महेस सुरेस गनेस न पारहिं पावै ॥२४॥
जहँ जेतिक द्रुम जाति कल्पतरु सम सब लायक।
चिंतामनि सम[6] भूमि सकल[7] चिंतित फल-दायक ॥२५॥
तिन मधि इक जु कलपतरु लगि रहि जगमग जोती।
पत्र मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती ॥२६॥
तिन[8] मधि तिन के गंध लुब्ध धास गान करत अलि।
बर किन्नर गंधर्ब अपछरा तिन पर करि बलि ॥२७॥

---

१. (ह० प्र० क, ख, ग व मु०)
सब रितु संतत बसत लसत तहँ दिन प्रति ओभा।
(अन्य पाठा०) सब दिन रहत बसंत लसै तहँ दिन दिन ओभा ॥
२. (ह० प्र० क, ख व मु०)
आन बनन जाकी बिभूति करि सोभित सोभा।
३. जौ। ४. जैसे। ५. सोभित हैं ऐसे। ६. मय। ७. सकनि।
८. तहँ मुनियन के या तहँ मुनिअन के।

अमृत फुही सुख गुही अति सुही परति रहति नित।
रास रसिक सुंदर पिय को स्रम दूर करन हित ॥२८॥
या सुर तरु महँ अवर एक अद्भुत छबि छाजै।
साखा - दल - फल - फूलनि हरि-प्रतिबिंब बिराजै ॥२९॥
ता पर कोमल कनक - भूमि मनिमय मोहति मन।
दिखियत सब प्रतिबिंब मनों घर महँ दूसरो बन ॥३०॥
तहँ[1] इक मनि मय अंक चित्र को संख सुभग अति।
तापर षोडस दल सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥३१॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुंदर कंदर।
तहँ राजत ब्रजराज - कुँवर - बर रसिक पुरंदर ॥३२॥

श्रीकृष्ण की शोभा

निकर विभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुंदर[2] नंद कुँवर उर पर सोइ लागत वडु जस ॥३३॥
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवति छबि ताकी।
अखिल अंड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी ॥३४॥
परमातम[3] परब्रह्म सबन के अंतरजामी।
नारायण भगवान धरम करि सब के स्वामी ॥३५॥
बाल कुमार पुगंड धरम आसक्त जु ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन ॥३६॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जहँ।
याही तें बैकुंठ - बिभव कुंठित लागत तहँ ॥३७॥

---

१. मितत मिसद सत कोस। (इ० प्र० क, ख, ग व मु०) में 'इक बिवस्ति' 'अंक चित्र' का पाठांतर है। २. हरि-उर रुचिर निविड़ विषै या हरि भू के उर निविड़ बिषै। ३. सरव आतमाराम।

शरद रजनी वर्णन

जदपि[1] सहज माधुरी बिपिन सब दिन सुखदाई।
तदपि रँगीली सरद समय मिलि अति छवि पाई ॥३८॥
ज्यौं अमोल नग जगमगाय सुंदर जराय सँग।
रूपवंत गुनवंत भूरि[2] भूषन भूषित अँग ॥३९[3]॥
रजनी मुख सुख देत ललित मुकुलित[4] जु मालती।
ज्यौं नव जोबन पाइ लसति गुनवती बाल ती ॥४०॥
नव[5] फूलनि सौं फूलि फूल अस लगति लुनाई।
सरद[6] छबीली छपा हँसत छबि सौं मनु आई ॥४१॥
ताही छिन उडुराज उदित रस[7] - रास - सहायक।
कुमकुम - मंडित प्रिया बदन जनु नागर नायक ॥४२॥
कोमल किरन अरुनिमा[8] बन मैं ब्यापि रही अस।
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यौ गुलाल जस ॥४३॥
फटिक छरी सी किरन कुंज - रंध्रनि जब आई।
मानों बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई ॥४४॥
मंद मंद चलि चारु चंद्रिका अस छबि पाई।
उमकति हैं पिय रमा - रमन कौं मनु तकि आई ॥४५॥

---

१. सहज माधुरी वृंदाबन। २. बहुरि। ३. सं० १७५७ की प्रति में निम्नलिखित पद अधिक है।

निस रास रसमत्त जदपि रस नव रँग भीनो।
तदपि लोक निस्तार हेत करिबें मन दीनो ॥४०॥

४. प्रफुलित। ५. छबि सौं फूले अवर फूल (ह० प्र० क, ख व ग) छबि सौं फूले फूल अतुल (अन्य)। ६. मनहुँ सरद की छपा छबीली बिहँसति आई। (ह० प्र० क व ख व ग)। ७. रितुराज। ८. अरुन वा घर मैं।

मुरली-वर्णन

सब लीनी कर-कमल जोगमाया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव[1] जुर ली ॥४६॥
जाकी धुनि तें अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर ॥४७॥
नागर[2] नवल किसोर कान्ह कल - गान कियो अस।
बाम बिलोचन बालन को मन हरन होई जस ॥४८॥

व्रजबालाओं की विरह-दशा

सुनत चलीं व्रजबधू गीत - धुनि को मारग गहि।
भवन भीति द्रुम कुंज पुंज कितहूँ अटकीं नहि ॥४९॥
नाद[3] अमृत को पंथ रँगीलो सूछम भारी।
तिहिं[4] व्रज तिय भले चलीं आन कोउ नहिं अधिकारी ॥५०॥[5]
जे रहिं[6] गईं घर अति अधीर गुनमय सरीर बस।
पुण्य पाप प्रारब्ध सँच्यौ तन नहिंन पच्यौ रस ॥५१॥
परम दुसह श्री कृष्ण - विरह - दुख व्याप्यो तिन मैं।
कोटि बरस लग नरक भोग अघ भुगते[7] छिन मैं ॥५२॥
जिय[8] पिय को धरि ध्यान तनिक आलिंगन किय जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छीन कीने मंगल सब ॥५३॥
इतर[9] धातु पाहनहि परसि कंचन है सोहै।
नंद सुघन सो परम - प्रेम इह अचरज को है ॥५४॥

---

१. अधरन रस। २. पुनि मोहन सों मिली कछू कल गान कियो अस। (ह० प्र० च, ग व मु०) ३. राग अमृत। ४. तिहि मग व्रज तिय चलीं। ५. इस पुस्तक का ५७वाँ पद प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में इसी पद के अनंतर है।,एक में 'जोतिमय' के स्थान पर प्रेममय है। ६. रुकि। ७. भोग्यो। ८. पुनि रंचक धरि ध्यान पियहिं परिरंभ दियो जब। ९. पीतर, पितलि।

तेउ पुनि तिहि मग चलीं रँगीली तजि गृह संगम ।
जनु पिजरनि तें छुटे छुटे नव प्रेम विहंगम ॥५५[1]॥
सावन-सरित न रुकै करै जो जतन कोऊ[2] अति ।
कृष्ण गहे जिनको मन ते क्यों रुकहि अगम गति ॥५६॥
सुद्ध जोति-मय रूप पाँच भौतिक तें न्यारी ।
तिनहि कहा कोउ गहै जोति सी जगत उज्यारी ॥५७॥
जदपि कहूँ के कहूँ बधुनि आभरन बनाए ।
हरि पिय पैं[3] अनुसरत जहीं के तहिं चलि आए ॥५८॥

राजा परीक्षित का प्रश्न

परम भागवत रतन रसिक जु परीछित राजा ।
प्रश्न करयो रस पुष्ट करन निज सुख के काजा ॥५९॥
परम[4] धरम को पात्र जानि जग को हितकारी ।
उदर दरी में करी कान्ह जाकी रखवारी ॥६०॥
जाकों सुंदर स्याम-कथा छिन छिन नइ[5] लागै ।
ज्यौं लंपट पर-जुवति-बात सुनि अति अनुरागै ॥६१॥
हो मुनि क्यौं गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि ।
जानि भजे कमनीय कान्ह नहि ब्रह्म-भाव करि ॥६२॥

प्रश्न का समाधान

तब कहि श्री शुकदेव देव यह आचिरज नाहीं ।
सर्व भाव भगवान कान्ह जिनके हिय माहीं ॥६३॥

---

१. सं० १७५७ की हस्तलिखित प्रति में इसके अनंतर निम्नलिखित पद दिया है, जो परिशिष्ट में सं० १२ पर दिया गया है ।

कोइक सुख गुनमय सरीर तिन सहित चली ढुकि ।
मात पिता पति बंधु रहे झकि नहिन रही रुकि ॥

२. कोटि । ३. पैंप । ४. श्रीभागवत । ५. प्रिय ।

परम दुष्ट सिसुपाल बालपन तें निदक अति।
जोगिन कों जो दुर्लभ सुलभहिं पाई सोइ गति ॥६४॥
हरि-रस-ओपी गोपी ये सब तियनि तें न्यारी।
कँवल-नैन गोविद-चंद की प्रान-पियारी ॥६५॥

कृष्ण-गोपी-मिलन

तिनके नूपुर नाद सुने जब परम सुहाए।
तब हरि के मन नैन सिमिटि सब स्रवननि आए ॥६६॥
झुनक झुनक पुनि छबिलि भाँति सब प्रगट भईं जब।
पिय के अँग अँग सिमटि मिले[1] छबिले नैननि तब ॥६७॥
सुभग[2] बदन सब चितवन पिय के नैन बने यों।
बहुत[3] सरद ससि माहिं अरबरे ह्वै चकोर ज्यों ॥६८॥
अति आदर करि लईं भईं पिय[4] पैं ठाढ़ी अनु।
छबिलि छटनि मिलि छेक्यौ मंजुल घन मूरति जनु ॥६९॥
नागर-गुरु नँद-नंद चंद हँसि मंद मंद तब।
बोले बाँके बैन प्रेम के परम ऐन सब ॥७०॥
उज्जल रस कौ यह सुभाव बाँकी छबि छावै।
बंक चहनि पुनि कहनि बंक अति रसहि बढ़ावै ॥७१॥
अहो तिया कहा जानि भवन तजि कानन डगरीं।
अर्द्ध गई सर्वरी कछुक डर डरीं न सगरीं ॥७२॥[5]
लाल[6] रसिक के बंक बचन सुनि चकित भईं यों।
बाल-मृगिन की माल सघन बन भूलि परी ज्यों ॥७३॥
मंद परसपर हँसीं लसीं तिरछी अँखियाँ अस।
रूप उदधि 'उतराति रँगीली मीन पाँति जस ॥७४॥

---

१. मिले हैं रसिक नैन तब। २. सब के मुख अवलोकत्व। ३. स्वच्छ। ४. चहुँ दिसि। ५. ७२ वाँ पद हस्त० प्र० स० में है, क या ग या ह० में नहीं है पर आवश्यक है। ६. लाल रसाल के व्यंग्य।

जब पिय कह्यो घर जाहु अधिक चित चिंता बाढ़ी।
पुतरिन की सी पाँति, रहि गईं इक टक ठाढ़ी ॥७५॥
दुख के बोझ छबि-सींव ग्रीव नै चली नाल सी।
अलक अलिन के भार नमित[1] मनु कमल माल सी ॥७६॥
हिय भरि बिरह हुतासन सासन सँग आवत झर।
चले कछुक मुरझाइ मधु भरे अधर बिंब बर ॥७७॥
तब बोली ब्रज[2] बाल लाल मोहन अनुरागी।
गद्‌गद सुंदर गिरा गिरिधरहिं मधुरी लागी ॥७८॥
अहो[3] अहो मोहन प्राननाथ सोहन सुखदायक।
क्रूर[4] बचन जनि कहौ नहिन ये तुम्हरे लायक ॥७९॥
जौ कोउ बूझै धरम तबहिं तासों कहिए पिय।
बिन ही बूझे धरम कहत क्यौं, कहि दहिए हिय ॥८०॥
नेम धर्म जप तप ये[5] सब कोउ फलहि बतावैं।
यह कहुँ नाहिन सुनी जो फल फिरि धरम सिखावै ॥[6]८१॥
अरु[7] यह तुम्हरौ रूप धरमि के धरमहिं[8] मोहै।
घर मैं को तिय भरम धरमहहि आगे को है ॥८२॥
नगनि (न) कौं धरम न रह्यौ पुलकि तन चले ठौर तें।
खग मृग गो बछ मच्छ कच्छ ते रहे कौर तें ॥८३॥
स्यौं ही[9] पिय की मुरली जुरली अधर-सुधा-रस।
सुनि निजु धरम न तजै तरुनि त्रिभुवन महि को अस ॥८४॥
सुनि गोपिन के प्रेम बचन सी आँच लगी जिय।
पिघरि चल्यो नवनीत-मीत नवनीत[10]-सदस हिय ॥८५॥

---

१. निहुरि या -भ्रमित। २. ब्रज नवल बाल लालहि अनुरागी।
३. अहो मोहन अहो प्राननाथ सुंदर सुखदायक। (ह० प्र० क ग ख)
४. निठुर। ५. मत। ६. चंद्रिका में यह पद नहीं है। ७ पिय।
८. भरमहि। ९. तैसिय। १०. सुंदर मोहन हिय।

बिहँसि मिले नँदलाल निरखि ब्रजबाल बिरह बस।
जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेम बस ॥८६॥[1]

बन-बिहार

बिहरत[2] बिपिन बिहार उदार नवल नँद-नंदन।
नव कुमकुम घनसार चारु चरचित तन चंदन ॥८७॥
गोपीजन मन[3]-मोहन-मोहन लाल बने यौं।
अपनी दुति के उडुगन उडुपति घन खेलत ज्यौं ॥८८॥
कुंजनि कुंजनि डोलनि मनु घन तें घन आवनि।
लोचन तृषित चकोरन के चित चोप बढ़ावनि ॥८९॥
सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गए तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ ॥९०॥
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई।
गुंजत मंजु अलिंद बेनु जनु बजति सुहाई ॥९१॥[4]
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत।
इत घनसार तुसार मलय[5] मंदार झकोरत ॥९२॥
इत लवंग नवरंग एलि इत झेलि रही रस।
इत कुरुबक केवरा केतकी गंध-बंधु बस ॥९३॥
इत तुलसी छबि हुलसी छहिलि परिमल लपटैं।
इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दपटैं[6] ॥९४॥
उज्जल[7] मृदुल बालुका कोमल[8] सुभग सुहाई।
श्री जमुना जू निज तरंग करि नाह[9] जु बनाई ॥९५॥
बिलसत बिबिध बिलास हास नीबी कुच-परसत।
सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यौं बरसत ॥९६॥

---

१. यह पद चंद्रिका में नहीं है। २ बिलसत। ३ मन। ४. यह पद चंद्रिका में नहीं है। ५. मिली। ६. दपटैं या लूटैं। ७. यह पद ६० ३० क प चंद्रिका में नहीं है। ८. सुंदर। ९. श्यन या आपु बिछाई।

मदन-मद-हरण

तहँ[1] आयो यह मौन पंचसर कर हैं जाके।
ब्रह्मादिक कौं जीति बढ़ि रह्यौ अति मद ताके ॥९७॥
निरखि ब्रजबधू संग रंग भरे[2] नव किसोर तन।
हरि[3]-मनमथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ को मन ॥९८॥
मुरछि पर्‍यौ तब मैन कहूँ धनु कहुँ निषंग[4] सर।
लखि[5] रति पति की दसा भीत भइ मारति उर कर ॥९९॥
पुनि पुनि पियहि अलिंगति रोवति अति अनुरागी।
मदन के बदन चुवाइ अमृत भुज भरि लै भागी ॥१००॥

गोपी-गर्व

अस अद्‌भुत पिय मोहन सौं मिलि गोप-दुलारी।
नहिं[6] अचरजु जौ गरब करहिं गिरिधर की प्यारी ॥१०१॥
रूप भरीं गुन भरीं भरीं पुनि परम प्रेम रस।
क्यौं न करैं अभिमान कान्ह भगवान किए[7] बस ॥१०२॥
✓ जँह नदि नीर गँभीर तहाँ भल भँवरी परई।
छिल छिल सलिल न परै परै तौ छवि नहिं करई[8] ॥१०३॥
प्रेम-पुंज बरधन के काज ब्रजराज कुँअर पिय।
मंजु कुंज मैं नेकु[9] दुरे अति प्रेम भरे हिय ॥१०४॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडा वर्णने रसिक-जन प्राणनाम प्रथमोऽध्यायः ।

---

१. तव। २. भीने किसोर तनु। ३. हरि जु तब मन मथ्यौ। ४ विसिष बर। ५. रति देखत पति-दसा। ६. अचरज नहिं जो गरब होइ। ७. मए। ८. धरई। ९. तनिक।

दूसरा अध्याय

मधुर[1] वस्तु ज्यों खात निरंतर सुख तौ भारी।
बीचि-बीचि कटु अम्ल तिक्त अतिसय रुचिकारी॥१॥
ज्यों पट्ट पुट के दिए निपट ही[2] रसहिं परै रँग।
तैसेहि[3] रंचक बिरह प्रेम के पुंज बढ़त अँग॥२॥
जिनके नैन निमेप ओट कोटिक जुग जाहीं।
तिनके गृह बन कुंज ओट दुख अगनित[4] आहीं॥३॥

बिरह दशा-वर्णन

थकि[5] सी रहीं ब्रजबाल लाल गिरिधर पिय बिनु यौं।
निधन महानिधि पाइ बहुरि ज्यों[6] जाइ भई त्यौं॥४॥
ह्वै गई बिरह बिकल तब बूझत द्रुम बेली-बन।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरही जन॥५॥
हे मालति! हे जाति! जूथिके! सुनियत[7] दै चित।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन लाल लखे[8] इत॥६॥
हे केतकि! इत कितहूँ तुम चितए पिय रूसे।
किधौं नंद-नँद(न) मंद मुसकि तुमरे मन मूसे॥७॥
हे मुक्ताफल बेलि! धरें मुक्ता-मनि-माला।
देखे नैन बिसाल मोहनै नंद के लाला॥८॥
हे मंदार उदार बीर करबीर महामति!
देखे कहूँ बलबीर धीर मन-हरन धीर गति॥९॥

---

१ ज्यों कोउ परम मधुर मिली सौं खात निरंतर।
बीचि बीचि संधान तिक्त रस अतिसय रुचिकर॥
२. अति। ३. रंच बिरह के बड़े प्रेम के पुंज प्रगट अँग। ४. गनना नाहीं। ५. ठगि। ६. फिरि जात भयो ज्यों। या तबहिं पुनि जाय भई ज्यों (इ० प्र० ए)। ७. सुनि इत। ८. लहे।

ए चंदन ! दुखकंदन सब कहुँ जरत सिरावहु[1]।
नँद-नंदन-जगबंदन-चंदन हमहि मिलावहु ॥१०॥
बूझहु[2] री इन लतनि फूलि रहीं फूलनि सोहीं[3]।
सुंदर पिय कर परस बिना अस फूल न होहीं[4] ॥११॥
हे सखि ये मृगवधू इनहिं किन बूझहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन अबहिं कतहूँ[5] चितए हरि ॥१२॥
अहो कदंब, अहो अंब, निंब, क्यों रहे मौन गहि।
अहो बट ! तुंग सुरंग बीर कहुँ इत[6] उलहे लहि ॥[7]१३॥
जमुन निकट के बिटप पूछि भई निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि महाकठिन ये तीरथ-बासी ॥१४॥
हे अवनी ! नवनीत-चोर चित-चोर हमारे।
राखे कितहि दुराइ बतावहु प्रानपियारे ॥१५॥
अहो तुलसी कल्यानि ! सदा गोविंद-पद-प्यारी।
क्यों न कहति तू नँद नंदन[8] सों दसा[9] हमारी ॥१६॥

---

१. जुड़ावहु। २. पृछहु री इहि लतहि। ३. सोई। ४. होई। ५. कहुँ देखे है हरि। ६. तुम इत उत लहि। ७. इस पद के अनंतर ह० प्र० ख में चार पद निम्नलिखित अधिक हैं—

हे कुरवक बक-बकी बिनासन पिय कहुँ देखे।
हे लवग नवरग कान्ह कहुँ तैं इत पेखे ॥
अहो हंस बर बंस संजो देखे हैं तुम।
गोपबंस अवतंस बिना अति मई संस हम ॥
अहो पवन सुम-गवन चकित हे जु रह्यो चल।
सुख के भवन दुखदवन रवन कितहूँ चितए बल ॥
हे अशोक हरि सोक लोकमनि पियहि बतावहु।
अहो पनस सुम मनस तीय सब मरत जियावहु ॥

८. सुवन। ९. बिथा।

अपने मुख चाँदने चलैं सुंदरि तिन माहीं।
जहँ आवैं तम पुंज कुंज गहवर तरु छाहीं ॥१७॥
इहि बिधि बन घन ढूँढ़ि ढूँढ़ि उनमत की नाईं।
करन लगीं मन-हरन-लाल-लीला मन भाईं ॥१८॥
मोहन लाल रसाल की लीला इनहीं सोहैं।
केवल तनमय भईं कछु न जानति हम को हैं ॥१९॥
भृंगी भय तें भृंग होत इक[1] कीटु महा जड़।
कृष्ण भगति[2] तें कृष्ण होन[3] कछु नहिं अचरज बड़ ॥२०॥
तब पायो पिय पद-सरोज कौ खोज रुचिर तहँ।
जव, गद, अंकुस, कुलिस, कमल छबि जगमगात जहँ ॥२१॥
जो रज सिव अज कमला खोजत जोगी-जन-हिय।
तें[4] सम मदन करन लगीं सिर धरन लगीं तिय ॥२२॥
देखे[5] ढिग जगमगत तहाँ प्यारी तिय के पग।
चितय परस्पर चकित भईं जुरि चलीं तिही मग ॥२३॥
आगे चलि पुनि[6] अवलोकी नवपल्लव सैनी।
जहँ पिय सुमुग सुमुग लै सुकर[7] गुही है बेनी ॥२४॥
तहँ पायो इक मंजु मुकुर मनि-जटित बिलोलै।
तिहि बूझैं ब्रजबाल बिरह भरि सोच न बोलै ॥२५॥
तर्क करत अपमाहिं[8] अहो यह क्यों कर लीन्हौ।
तिन में तिनके हिय की जानि उन उत्तर दीन्हौ ॥२६॥
बेनी गुहन समय छबिलो पाछैं बैठो जब।
सुंदर बदन बिलोकनि पिय[9] के अंतर भयो तब ॥२७॥
तातें मंजुल मुकुर सुकर लै बाल दिखायो।
श्री मुख को प्रतिबिंब सखी तब सनमुख आयो ॥२८॥

---

१. यह। २. प्रेम। ३. होवैं। ४. सो रज। ५. निरखे। ६. इक।
७. सुरप। ८. आपुन में। ९. मुख को।

धन्न कहत भई ताहि नाहि कछु मन मैं कोपीं।
निरमत्सर जे संत तिनकि चूड़ामणि गोपीं ॥२९॥
इन[1] नीके आराधे हरि ईस्वर वर जोई।
तातें निधरक अधर सुधारस पीवत सोई ॥३०॥
आगें चलि पुनि तनक दूरि देखी सो ठाढ़ी।
जासौं सुंदर नंद कुँअर[2] पिय अति रति बाढ़ी ॥३१॥
गोरे तन की जोति छूटि छबि छाय रही घर।
मानहुँ ठाढ़ी कुँअरि सुभग कंचन अवनी पर ॥३२॥
जनु घन तें बिजुरी बिछुरी मानिनि-तनु काछें।
किधौं चंद्र सौं रूसि चंद्रिका रहि गइ पाछें ॥३३॥
नयननि तें जलधार हार धोवत धर धावत।
भँवर उड़ाइ न सकति बास-बस मुख ढिग आवत ॥३४॥
'कासि कासि पिय महाबाहु' यों बदति अकेली।
महाबिरह की धुनि सुनि रोवत खग द्रुम[3] बेली ॥३५॥
दौरि[4] भुजनि भरि लईं सबनि लै लै उर लाईं।
मनहुँ महा निधि खोइ मध्य आधी निधि पाईं ॥३६॥
जित[5] तित तें सब बहुरि बहुरि जमुना तट आईं।
जहँ नँद-नंदन जग-बंदन पिय लाड़ लड़ाईं ॥३७॥

श्री भागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडायां गोपीविरलेप वर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

तीसरा अध्याय

कहन लगीं अहो कुँअर कान्ह ब्रज प्रगटे जब तें।
अवधि[6] भूत इंद्रादि इहाँ क्रीड़त हैं तब तें ॥ १ ॥

---

१. यह चंद्रिका में नहीं है। २ सुवन। ३. मृग। ४. धाइ। ५. तिहि लै तहँ ते। ६. अवधि भूत इंदिरा अलंकृत है रही तब तें।

नैन-मूँदिबो महा शस्त्र लै हाँसी हाँसी[1]।
मारत हौ कित सुहृद नाथ बिनु मोल की दासी ॥ २ ॥
बिष तैं जल तैं ब्याल अनल तैं चपला[2] झर तैं।
क्यों राखी, नहिं मरन दई नागर, नगधर तैं ॥ ३ ॥
जब[3] तुम जसुदा-सुवन भये पिय अति इतराने।
विश्व कुसल के काज विधिहिं बिनती कै आने ॥ ४ ॥
अहो मीत, अहो प्राननाथ यह अचरज भारी।
अपननि[4] जो मरिहौ करिहौ काकी रखवारी ॥ ५ ॥
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन मैं।
सिल त्रिन कंटक अटकत कसकत हमरे मन मैं ॥ ६ ॥
प्रनत मनोरथ करन[5] चरन सरसीरुह पिय के।
कहा[6] घटि जैहै नाथ हरत दुख हमरे हिय के ॥ ७ ॥
फनी फनन पर अरपे डरपे नहिंन नैकु तब।
छबिली[7] छातिन धरत डरत कत कुँवर कान्ह अब ॥ ८ ॥
जानत[8] हैं हम तुम जु डरत ब्रजराज-दुलारे।
कोमल चरन-सरोज उरोज कठोर हमारे ॥ ९ ॥
हरें[9] हरें धरि पीय हमहिं वौ प्रान-पियारे।
कत अटवी महिं अटत गड़त त्रन कूट[10] न न्यारे ॥१०॥[11]

श्री भागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडायाँ नंददासकृतौ
गोपिका गीत उपालंभ वर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥

---

१. फाँसी। २. दामिनि। ३. जनु। ४. अपने जन। ५. करत। ६. बंचक रंचक काहि न हरियै दुख या ही के। ७. छतियन पर पग। ८. हम समझीं यह। ९. सनै सनै धरिए पिय हम कों अधिक। १०. कूप अन्यारे। ११. हस्तलिखित प्र० ख में इसके बाद दो पद निम्नलिखित अधिक हैं—

चौथा अध्याय

यहि विधि प्रेम-सुधानिधि में[1] अति बढ़ी कलोलैं।
ह्वै गईं विह्वल वाल लाल सौं अलवल बोलैं॥ १॥
तब तिनहीं में तें[2] निकसे नँद नंदन पिय यौं।
दृष्टि बंध के दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं॥ २॥
पीत बसन बनमाल बनी[3] मंजुल मुरली हथ।
मंद मधुरतर[4] हँसत निपट मनमथ के मनमथ॥ ३॥
पियहिं निरखि तिय वृंद उठीं सब इकै बार यौं।
परि[5] घट आए प्रान बहुरि उफकत[6] इंद्री ज्यौं॥ ४॥
महा छुधित कौं जैसे[7] असन सौं प्रीति सुनी है।
ताहू तें सतगुनी सहस गुनि कोटि गुनी है॥ ५॥
कोउ चटपटि सौं उर लपटीं कोउ कर बर लपटीं।
कोउ गल लपटी कहति भलैं भलैं कान्हर कपटी॥ ६॥

या परि तुमरी कथा अमृत सब ताप सिरावहि।
अमर अमृत कौं तुच्छ करै ब्रह्मादिक गावहिं॥
या घरि जित (करि) तुमरो सुदर (मोहन) मुख अवलोक्यो पिय।
तिनकी ताप न मिटहि रसिक सविद कोविद हिय॥
स० १७५७ की प्रति में दो पद और अधिक दिए हुए हैं—
बुध जन मन हरनी बानी बिनु जरत सबै तिय।
अधर सुधासव सहित तनक प्यावहु ज्यावहु पिय॥
जो कैसे हूँ साँझ समैं सुंदर मुख देखैं।
तौ यह बिधना क्रूर करी कितनै न··· ॥

१. मधि बढि गईं। २. प्रगट भये। ३. धरे। ४. मुसुकात। ५. फिरि आए घट। ६. जागहिं। ७. जैसे भोजन।

कोउ नगधर[1]-वर पिय की गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नवघन तें सटकि दामिनी छटा[2] सुं अटकी ॥ ७ ॥
बैठे पुनि तिहिं पुलिन परम आनंद भयो है।
छबिली अपने छादन छवि सों बिछा दयो है ॥ ८ ॥[3]
एक एक हरि देव सबहि आसन पर बैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे ॥ ९ ॥
ज्यों अनेक जोगीस्वर हिय में ध्यान धरत हैं।
इकहि बेर इक मूरति सब कों सुख बितरत हैं ॥१०॥
कोटि कोटि ब्रह्मांड जदपि इकली[4] ठकुराई।
ब्रज-देविन की सभा साँवरे अति छवि पाई ॥११॥
त्यों[5] सब गोपिन सनमुख सुंदर स्याम बिराजै।
ज्यों नवदलनि[6] मंडलहि कमल कर्णिका भ्राजै ॥१२॥
बूझन लागीं नवल[7] बाल नँदलाल पियहिं तब।
प्रीति रीति की बात मनहि मुसकाति जाति सब ॥१३॥
इक[8] भजते कों[8] भजै एक अनभजतनि भजहीं।
कहो कान्ह ते कवन आहि जे दुहुँअनि तजहीं ॥१४॥
जदपि जगत-गुरु नागर जसुमति[9]-नंद-दुलारे।
पै[10] गोपिन के प्रेम अग्र अपने गुन हारे ॥१५॥
तब बोले पिय[11] नव किसोर हम ऋनी तिहारे।
अपुनें हिय[12] तें दूरि करौ सब[13] दोस हमारे ॥१६॥

---

१. नागर नगधर। २. दामन या दामिनि। पाठा०—घन तें। ३ इसके अनन्तर के दो पद केवल चार हस्तलिखित प्रतियों में हैं। ४. एकहि। ५. सब सुंदरि के। ६. नव दल मंडल में कमल करनिका। ७. ब्रज-जुवति जुगतिहिं जुगति। ८. कहुँ भजहिं बिनु भजेंही इक। ९. नगधर। १०. गोपिन-प्रेम के आगे अपने ही। ११ ब्रजराज कुँअर हौं रिनी तुम्हारी। १२. मन। १३. यह दोस हमारे।

कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जो।
हे मनहरनी तरुनी उरुन[1] न होउँ तबौ तौ ॥१७॥
सकल विश्व अप बस करि मो माया सोहति है।
मोह[2]-मई तुम्हरी माया सोइ मोहिं मोहति है ॥१८॥[3]

इति श्रीमागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडायां गोपी विरह तापोपशमन नाम चतुर्थोऽध्यायः।

पाँचवाँ अध्याय

सुनि पिय के रस वचन सवनि[4] गँसि छाँड़ि दयौ है।
बिहँसि आपने उर[5] सौं लाल लगाय लयौ है ॥१॥
कोटि कलपतरु लसत बसत पद पंकज छाँहीं।
कामधेनु पुनि कोटि कोटि बिलुठत रज माँहीं ॥२॥
सो पिय भए अनुकूल तूल कोउ भयो न है अब।
निरवधि सुख को मूल सूल उनमूल करी सब ॥३॥
आरंभित अद्भुत सु रास वहि कमल-चक्र पर।
नंमित[6] न कितहूँ होइ सबै निरतत विचित्र वर ॥४॥
नव मर्कत-मनि स्याम कनक-मनिगन ब्रज बाला।
बृंदावन कौं[7] रीझि मनहुँ पहिराई माला ॥५॥
नूपुर,[8] कंकन, किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै[9] सुर जुरली ॥६॥

---

१. उरुनी नहिन होउँ तौ। २. प्रेम। ३. सं० १७५७ की प्रति में पाँचवें अध्याय के आरंभ के दो पद देकर चतुर्थ अध्याय समाप्त किया गया है। ४. कोघ सब। ५. कंठनि। ६. फिरि आए तिहि सुरतरु तर मोहन गिरिवर धर। ७. गुन। ८. बाजत नूपुर करतल कंकन। ९. बीना धुनि।

मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की सार[1] भँवर गुंजार रली पुनि ॥७॥
तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की ॥८॥
साँवरे पिय सँग निरतत चंचल ब्रज की बाला।
मनु घन-मंडल खेलत मंजुल चपला[2] माला ॥९॥
चंचल रूप लतनि सँग डोलति जनु अलि-सैनी।
छबिली तियन के पाछें आछें बिलुलित बेनी ॥१०॥
मोहन पिय की मलकनि ढलकनि मोर मुकट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥११॥
कोउ सखि कर पर तिरप बाँधि निरतत छबिली तिय।
मानहुँ करतल फिरत लट्टू लखि लट्टू होत पिय ॥१२॥
कोउ नायक को भेद भाव लावन्य रूप सब।
अभिनय करि दिखरावति गावति गुन पिय के जब ॥१३॥
तब नागर नँदलाल चाहि चित चकित होत यों।
निज प्रतिबिंब बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यौं ॥१४॥
रीझि परस्पर वारत अंबर भूषन अँग के।
और तबहिं बनि रहत तहाँ अद्भुत रँग रँग के ॥१५॥
कोउ मुरली सँग रली[3] रँगीली रसहिं [4]बढ़ावति।
कोउ मुरली को छेंकि छबीली अद्भुत गावति ॥१६॥
ताहि साँवरो कुँअर रीझि हँसि लेत भुजनि भरि।
चुंबन करि सुख-सदन बदन तें दै तमोल ढरि[5] ॥१७॥
जग में जो संगीत नृत्य सुर नर रीझत जिहि।
सो ब्रज तियन को सहज गवन आगम गावत तिहि ॥१८॥

---

१. तार। २. दामिनि। ३. मिली। ४. रँगहि। ५. हरि।

जो[1] ब्रज देवी निरतत मंडल रास महा छवि।
सो[2] रस कैसे बरनि सके इहै ऐसो को कवि ॥१९॥
राग रागिनी समुझन कौं बोलियौ सुहायो।
सो कैसे कहि आवै जो ब्रज-देविन गायो ॥२०॥[3]
ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति।
लटकि-लटकि वह निर्त्तनि कापै कहि आवै गति ॥२१॥
अद्भुत रस रह्यो रास गीत धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वै[4] रह्यो सिला पुनि ॥२२॥
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु-मंडल सिगरौ।
पाछै रवि रथ थक्यौ चलै नहिं आगे डगरौ ॥२३॥
थकित सरद की रजनी न जनी केतिक बाढ़ी।
बिहरत[5] सजनी स्याम जथा रुचि अति रति बाढ़ी[6] ॥२४॥
इहि बिधि बिबिध बिलास बिलसि निसि कुंज सदन के।
चले जमुन जल क्रीड़न व्रीड़न बृंद[7] मदन के ॥२५॥
सरसि मरगजी माल चाल मद गज जिमि मलकत।
घूमत[8] रस भरे नैन गंडस्थल श्रमकन झलकत ॥२६॥
धाय जमुन जल धँसे लसे छवि परति न बरनी।
बिहरत मनु गजराज संग लिये तरुनी करनी ॥२७॥
तियनि के तन जल-मगन बदन तहुँ यौं छवि छाये[9]।
फूली हैं जनु जमुन कनक के कमल सुहाये[10] ॥२८॥

---

१. यह पद हस्त० प्र० ख में कुछ पाठांतर के साथ सं० २२ के बाद है पर सं० १७५७ की प्रति में नहीं है। २. तिहि कोउ कैसे बरनै अस इह आदि कौन कवि। ३. १८—२० तक तीन पद चंद्रिका में नहीं हैं। ४. सिल होइ गई। ५. बिलसत। ६. गाढ़ी। ७. कोटि। ८. राजत। ९. छाजे। १०. बिराजे।

मंजुल[1] अंजुलि भरि भरि पिय कौं तिय जल मेलत।
जनु अलि सौं अरविंद-वृंद मकरंदनि खेलत ॥२६॥
यह अद्भुत रस-रासि कहत[2] कछु नहिं कहि आवै।
सुक[3] सनकादिक नारद सारद अतिसय[4] भावै ॥३०॥
सिव मन ही मन ध्यावैं काहू नाहिं जनावैं।
सेस सहसमुख गावैं अजहूँ अंत न पावैं ॥३१॥
अज अजहूँ रज बांछित सुंदर वृंदावन को।
सो न तनक कहुँ पावत सूल मिटत नहिं तन को ॥[5]३२॥
जदपि पद[6]-कमल कमला अमला सेवत निसिदिन।
यह रस अपनै सपनै कबहूँ नहिं पायौ तिन। ३३॥
बिनु अधिकारी भए नहिंन वृंदावन सूझै।
रेनु कहाँ तें सूझै जब लौं बस्तु न बूझै ॥३४॥
निपट निकट घट में ज्यों अंतरजामी आही।
विषय विदूषित इंद्री पकरि सकै नहिं ताही ॥३५॥
जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै।
प्रेम-भगति सो पावै अरु सब के मन भावै ॥३६॥
हीन असर्धा निंदक नास्तिक धरम-बहिर्मुख।
तिन सौं कबहुँ न कहै, कहै तौ नहिंन लहै सुख ॥३७॥
भगत जनन सौं कहु जिनके भागवत धरम बल।
ज्यों जमुना के मीन लीन नित रहत जमुन जल ॥३८॥
जदपि सप्त-निधि भेदक जमुना निगम बखानै।
ते तिहिं धारहिं धार रमत न छुअत जल आनै ॥३९॥

---

१. यह पद चंद्रिका में नहीं है। २. कछुक छबि कहत न आवै। ३. सनक सनदन। ४. अति जिय या अतिही। ५. ३२–४ तक पद चंद्रिका में नहीं है। ६. [illegible]

यह उज्जल रस-माल कोटि जतनन कै पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ यहि सोरौ जिनि कोई ॥४०॥
श्रवन-कीर्तन सार सार सुमिरन को है पुनि।
ज्ञान-सार हरि-ध्यान-सार स्रुतिसार गहत गुनि ॥४१॥
अघ हरनी मन-हरनी सुंदर प्रेम वितरनी।
'नंददास' के कंठ बसौ नित मंगल-करनी ॥४२॥

इति श्रीमागवते महापुराणे दशमस्कंधे रासक्रीडायां नंददास कृतौ पंचमोऽध्यायः।

परिशिष्ट

अति सुदेस कटि देस सिंह[1] सोभित जंघन[2] अस।
जोबन[3]-मद आकरसत बरसत प्रेम-सुधा-रस ॥[4]१॥
सुंदर पद अरबिंद-मधुर मकरंद मुक्त जहँ।
मुनिजन-मधुकर-निकर सदा सेवत लोभी तहँ ॥[5]२॥
जे संसार-अँधार-अगार मैं मगन भए बर।
तिन हित अद्भुत दीप प्रगट कीनो जु कृपा कर ॥३॥
श्री भागवत सुनाम परम-अभिराम परम मर्ति[6]।
निगम सार सुकुमार[7] बिना गुरु-कृपा अगम गर्ति[8] ॥४॥
अब सुंदर श्री वृंदावन-गुन गाइ सुनाऊँ।
सकल सिद्धिदायक नायक पै सब सिधि पाऊँ ॥[9]५॥

---

१. सिह सुदर सोमित अस। २. सघन। ३. जुवतिन-मन। ४. मूल के ११वें पद के बाद। ५. १२वें के बाद। ६. गति। ७. सुखसार। ८. अति। १४वें पद के बाद तीसरा व चौथा। ९. यह पद ह० प्र० क व ग में नहीं है पर ख के कोर पर १६वें के बाद लिखा हुआ है अतः परिशिष्ट में रखा गया है।

तिहि सौरभ सों मत्त मुदित अलि धाए आवत।
सुक सारिका रतनमय श्री गोविंद-गुन गावत ॥६॥
थलज जलज झलमलत ललित बहु भँवर उड़ावै।
उड़ि उड़ि परत पराग कछू छबि कहति न आवै ॥७॥
जमुना जू अति प्रेम भरी नित बहै सुगहरी।
मनि-मंडित महि माहि दौरि जनु परसति लहरी ॥[1]८॥
कंठ मोति की माल ललित बनमाल धरे पिय।
मंद मधुर हरि पीत बसन फरकत करपत हिय ॥[2]९॥
मोहन मुरली नाद कियो सुसुन्यो सब किनहीं।
जथा सुखद सुख रूप तथा बिधि परस्यो तिनहीं ॥१०॥
तरनि-किरन ज्यों मनि पषान सबहीं सों परसै।
सूर्यकांत मनि बिना नहिंन कहुँ पावक दरसै[3] ॥११॥
कोउक तरुनि गुनमय सरीर तन[4] सहित चली ढकि।
मातु-पिता-पति-बंधु रहे झुकि न रहीं रुकि[5] ॥१२॥
चलत अधिक छबि फबी स्रवन मैं कुंडल झलकैं।
संकित लोचन चपल ललित[6] छबि बिलुलित अलकैं ॥१३॥
कहुँ दिखियत क नाहिं सखी घन बीच घनी यौं।
बिजुरिन की सी छटा सघन घन माँझ चली ज्यौं ॥१४।
आइ उमगि सो मिलीं रँगीली गोप-बधू अस।
नंद-सुअन-सागर सुंदर सों प्रेम-नदी जस ॥१५॥

---

१. ६–८ तक पद मूल के ३०वें के बाद थे। अंतिम पंक्ति का पाठा० मनि मंदिर दोउ तीर उठत छबि अद्भुत लहरी। २. २६वें पद के बाद। ३. ४८वें पद के बाद १०–११वाँ पद थे। इनके अनंतर एक छपी प्रति में १५ पद नए मिलते हैं, ऐसा कहा जाता है पर उन्हें मैंने नहीं देखा। ४. रति। ५. ५५वें के बाद। ६. चारु तहँ।

कृष्ण तुष्टिकर कर्म करैं जो आनि प्रकारा।
फल बिभचारि न होत होय सुख परम अपारा[1] ॥१६॥
कुंजन प्रति निकसत सोभित सुंदर आनन अस।
तमकि कुटी तें निकसत नव राका मयंक जस[2] ॥१७॥
कैक बचन कहे नर्म कैक रसबस-कर्मनि पर।
एक कहे तिय धर्म परम भेदक सुंदर-बर ॥१८॥
ये सब नवल किसोरी भोरी भरीं नेह रस।
तातें समुझि न परी करी पिय प्रेम बिबस अस[3] ॥१६॥
अरु तुम्हरे कर-कमल महा दूती यह मुरली।
ताते सबके धरम प्रेम अधरन-रस जुरली ॥२०॥
सुंदर पिय को बदन निरखि कों[4] सो जु न भूल्यौ।
रूप सरोवर माँहि सरद[5] अंबुज जनु फूल्यौ ॥२१॥
कुटिल अलक मनु[6] अनबोले मधुकर मतवारे।
तिन[7] में मिलि गए चपल नयन पिय मीन हमारे ॥२२॥
चितवनि मोहन मंत्र भौंह जनु मनमथ-हाँसी।
निपट ठगौरी आहि मंद मृदु[8] मादक हाँसी ॥२३॥
अधर सुधा के लोभ भईं हम[9] दासि तिहारी।
ज्यौं लुबधीं पद-कमलनि कमला चंचल नारी ॥२४॥
जौं न देहु यह अधर[10]-अमृत सुनि हो मोहन हरि।
करिहैं यह तन भसम बिरह-पावक मों गिरि परि ॥२५॥

---

१. १३–१६ तक पद ५८वें के बाद। २. ६७वें के बाद। ३. १८–९ पद ७१वें के बाद। ४. कै को नहिं भूलै। ५. सरस। ६. मुख कमल मनो। ७. जिन महँ मिलि रहे लाल नैन मन मधुप हमारे। ८. मुसकनि मृदु। ९. हरि। १०. अधरामृत तौ सुनि सुंदर हरि।

तब[1] पिय पदवी पाइ बहुरि धरिहैं सुंदर अँग।
निधरक ह्वै इह[2] अधर-अमृत पैहैं फिरिहैं सँग[3] ॥२६॥
अद्‌भुत साँवल अंग बन्यौ अद्‌भुत पीतांबर[4]।
मूरति[5] धरि सिंगार प्रेम-अंबर ओढ़े हरि[6] ॥२७॥
बिलुलित[7] उर बनमाल लाल जब चलत चाल बर।
कोटि मदन की भीर उठत इत लुठति[8] पगन तर[9] ॥२८॥
ब्रज-जुवतिन-कर मंडित मंडन करत फिरत बन।
अपनी दुति के उडुगन उडुपति मनु खेलत घन[10] ॥२९॥
फूलनि-माल बनावन[11] लाल पहिरि[12] पहिरावनि।
सुभग[13] सरोज सुधावन[14], जोत मनोज मनावन[15] ॥३०॥
राजबेल अरु एल गेल मृगमद की बेल इत।
नव कुर्बक केवरा केतकी गंध-बंधु नित ॥[16]३१॥
बैठे तहँ सुंदर सुजान सब[17] गुननिधान हरि।
बिलसत बिबिध बिलास रास रस अति हुलास भरि[18] ॥३२॥
अहो सुभग बन सुगँध पवन नैसुक[19] थिर ह्वै रहि।
सुख के भवन दुख-दवन रवन कहुँ[20] इत उत है लहि[21] ॥३३॥
अहो चंपक अहो कुसुम तुम्हैं छबि सब सों न्यारी।
नेकु बताय जु देव जहाँ हरि कुंज-बिहारी[22] ॥३४॥

---

१. पुनि पद पिय के पाइ। २. मद अधरामृत फिरि पीवत हैं संग। ३. २०—२६ तक पद ८४ वें के बाद। ४. पीत बसन। ५ मुकुट धरे। ६. जनु। ७. बिगलित। ८. पुनि गिरत चरन। ९. २७-८ पद ८७ वें के बाद। १० यह मूल के ८८वें पद का पाठांतर मात्र है। ११ बनाय। १२ पहिरत पहिरावत। १३. सुमन। १४. सुधाकर ओज। १५. मनावन। ८९ वें के बाद। १६. ९२ वें के बाद। १७. गुन के निधान। १८. ९५ वें के बाद। १९. थिर ह्वै रही चलि। २०. इत ते चितर बलि। २१. दूसरे अध्याय के १० वें के बाद। २२. १२ वें के बाद।

अहो असोक हरि सोक लोकमनि पियहिं बतावहु।
अहो पनस सुभ सनस[1] तीय सब मरत जियावहु[2] ॥३५॥
हे जमुना सब जानि बूझि तुम हठहिं गहत हौ।
जो जल जग उद्धरन ताहि तुम प्रगट बहत हौ ॥३६॥
अहो कमल सुभ बरन बरन कहु कहुँ हरि निरखे।
कमल माल वनमाल कमल कर अति ही हरषे[3] ॥३७॥
हरि की[4] चलनि बोलि[5] हरि की सी हरि की हेरनि।
हरि की सी गाइ[6] निबेरनि टेरनि अंबर फेरनि ॥३८॥
हरि की सी बनि[7] बन तें आवनि गावन रस रंगी।
हरि की सी गेंदुक[8] रचन नचन पुनि होन त्रिभंगी ॥३९॥
कोउ इक अंबर को गिरिवर कर धर बोलत तब।
निडर इहि तर रहौ गोप गोपी गाइन सब[9] ॥४०॥
चकित भई सब कहति कौन यह बड़ भागिनि अस।
परम कंत एकांत पाय पीवत जु अधर रस[10] ॥४१॥
सोऊ पुनि अभिमान भरी जब कहन लगी तिय।
मों तें चलो न जाय जहाँ तुम चलन चहत पिय[11] ॥४२॥
तन की जोति जगमगै छूटि रही छाजत है धर।
मानहुँ ठाढ़ी ससि बिनु रोहिनि ससि मंडल पर ॥४३॥
वा सुंदरि की दसा देखि कहत न बनि आवै।
बिरह भरी पुतरी जु होइ तौ कछु छबि पावै[12] ॥४४॥

---

१. सरस। २. १३ वें के बाद। ३. ३५-६ पद १४ वें के बाद। ४. की सी। ५. बिलोकनि। ६. गाइनि घेरनि। ७. बन तें आवनि गावनि अति रस रंगी। ८. कंदुक रचन सचन नित ललित। ९. ३७-९ पद १९ वें के बाद। १०. २३ वें के बाद। ११. ३० वें के बाद। १२. ४२-३ पद ३३ वें के बाद।

कोउ चुंवति मुख-कमल कोऊ भुअ[1] माल सु अलकैं।
जा मँह पिय[2] संगम की मंजुल श्रमकन झलकैं ॥४५॥
पोछति अपने अंचल रुचिर[3] दृगंचल ती के।
पीक भरे जु कपोल लोल रद[4] छद जहँ पी के[5] ॥४६॥
सब कों सब[6] सुख बरसत सरसत[7] बड़ हितकारी।
तिन महि पुनि ये गोप बधू प्रिय निपट तिहारी[8] ॥४७॥
जब पुनि[9] बन को जात सात[10] जुग सम बीतत छिनु।
दिन बीतत जिहि भाँति हमहिं जानति पिय तुम बिनु ॥४८॥
जब पुनि बिपिन तें आवत सुंदर आनन देखैं।
तब इन बिधिना क्रूर रची[11] लै नैन निमेखैं[12] ॥४९॥
कहाँ हमारी प्रीति कहाँ तुमरी निठुराई।
मनि पषान सौं खँचि दई सो कछु न बसाई[13] ॥५०॥
दौरि लपटि गईं ललित पियहिं[14] बनि कहत न आवै।
मीन सछरि जस परहि पुलिहिं पुनि पानी पावै[15] ॥५१॥
कोउ पिय भुज लिपटाय रहीं नव नारि नवेली।
जनु सुंदर सिंगार बिटप लपटी छबि बेली ॥५२॥
कोउ कमल[16]-पद कमल-कुचन बिच राखि रही यौं।
परम कृपन धन पाइ हिये[17] सौं लाइ रहत ज्यौं ॥५३॥
कोउ पिय रूप नयन भरि[18] उर मैं धरि धरि ध्यावति।
मधु माँखी[19] लौं डीठि दुहूँ दिसि अति छबि पावति ॥५४॥

---

१. भुज। २ सुंदर स्याम। ३. सो दृग चंचल। ४. मुख चंद सों।
५. ४४-५ पद ३६ वें के बाद। ६. सों। ७ रासि जो बहुत हितकारी।
८. तीसरे अध्याय के पहिले के बाद। ९. कानन कों। १०. उछछ।
११. कर धरी। १२. ४७-८ पद ६ठे के बाद। १३. ७वें के बाद।
१४. लाल मुख के। १५. चौथे अध्याय के ४थे के बाद। १६. कोमल।
१७. छाति। १८. मग। १९. मधुर मिट ज्यों दृष्टि दसों दिसि।

कोउ दसननि दल[1] अधर बिंब गोविंदहिं ताड़ति।
कोउ इक चारु[2] चकोर चखनि मुख चंद निहारति[3] ॥५५॥
कहुँ काजल कहुँ कुमकुम कहुँ कहुँ पीक लीक[4] वर।
तहँ राजत नँदनंद कंद कंदर्प-दर्प-हर ॥५६॥
जोगी जन बन जाइ जतन करि कोटि[5] जनम पचि।
अति निर्मल करि करि राखत हिय रुचि आसन रचि ॥५७॥
कछु[6] घिनात तहँ जात नवल नागर मोहन[7] हरि।
ब्रज[8] की तियन के अंबर पर बैठे अति रुचि करि[9] ॥५८॥
जे भजतन कों भजैं सजैं अपने स्वारथ हित।
जैसे पसु जु परस्पर चाटत सुख मानत चित ॥५९॥
जे अनभजतनि भजैं तौन धरमी सुखकारी।
जैसे मातु पितादि करैं सुत की रखवारी ॥६०॥
जे दुहुअनि कों तजैं अहैं ते गुरुद्रोही मैं।
आत्म राम कै पूर्ण काम कै अकृतघ्नी हैं ॥६१॥
अकृतघ्नी हौं नाहि तुमरे चित प्रेम बढ़ावन।
निधन महाधन लाभ सरिस चित चोप लगावन[10] ॥६२॥
तुम जु करी सो कोउ न करी हे नवल किसोरी।
लोक वेद की सुदृढ़[11] स्रिखला तृन सम तोरी[12] ॥६३॥
कलपवृच्छ जड़ सुनिय सकल चितनि फलदायक।
यह ब्रजराज-कुमार सबै सुखदायक नायक[13] ॥६४॥

---

१. दिए। २. मैन चकोर चारु। ३. ५१-४ पद ७वें के बाद। ४. लगी। ५. अनत जतन पचि। ६. कछु छिन तहाँ न जात। ७. सुंदर। ८. जुवतिन के आसन पर ऐसे बैठे रुचि करि। ९. ५५-७ पद ८वें के बाद। १०. ५८-६१ पद १४वें के बाद। ११. दृढ़ सांकर। १२. १८वें के बाद। १३. पाँचवें अध्याय के १म के बाद।

एक[1] वार ब्रजवाल लाल सब चढ़े-जोर कर।
नव वन इत उन होत सबै निर्तत विचित्र वर ॥६५॥
मनि[2] दर्पन सम अवनि[3] रमनि तापर छवि देहीं।
विथुरित[4] कुंडल अलक तिलक झुकि[5] झाईं लेहीं ॥६६॥
एकहि मूरति ललित लाल आलात की नाईं।
सबके अंसन धरी साँवरे बाँह सोहाईं ॥६७॥
कमल कर्णिका मध्य जु स्यामा[6] स्याम बनी छवि।
द्वै द्वै गोपियन बिच पुनि[7] मंडल माहि लसे फबि ॥६८॥
मूरति एक अनेक लगत[8] अद्भुत सोभा अस।
अविकल[9] दरपन मॅडल माहि विधु आनि परत जस ॥६९॥
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि मधि नील मनी अद्भुत झलकै जस[10] ॥७०॥
मिलि जु भई इक अद्भुत धुनि तिहि सुनि सुनि मोहैं।
सुर-नर-गन गंधर्व कछु न जानत हम को हैं[11] ॥७१॥
अनाधिकारी जिते तिते सुनि सुनि मुरझाए।
अद्भुत रास-विलास सुरस देखन नहिं पाए ॥७२॥
वृन्दावन कों त्रिगुन[12] पौन सो[13] विजन विलोलै।
जहँ जहँ श्रमित विलोकै तहँ तहँ रंग[14] भरयो डोलै ॥७३॥
राग-रागिनी-मंडल ढिग तहँ ठाढ़े गावत।
ताल पखावज आवज बीना मुरज बजावत ॥७४॥

– १ इके बार ब्रजबाल फिरति जा पर सहसन वर। निहुरनि कतहूँ होद सबै नर्तन विचित्र वर। २. पुनि। ३. अवनी रमनी अति। ४. विलुलित। ५. भद झलकत। ६. राधिकालाल। ७. जु मोहनलाल बनै फनि। ८. देखि। ९ मंजुल मुकुर मंडली वहु प्रतिबिंब वधू जस। १०. ६४-९ पद ४५वें के बाद। ११. ७०-८१ तक ७वें के बाद। १२. त्रिविध। १३. सुख। १४. रस।

ललना अद्भुत राग लेति सोभित सोभा यों।
सुभग घटा पर छटा छबीली थिरकि रहत ज्यों ॥७५॥
उड़े[1] अरुन पट बास रास मंडल मंडित अस।
मनो सघन अनुराग घटा उमड़त[2] घुमड़त रस ॥७६॥
ताकी धूँधरि-मत्त मधुप बन भ्रमत जु ऐसें।
प्रेम जाल के गोल कछुक कवि उपजत जैसे ॥७७॥
श्रम भरि सुंदर बुंद रंग भरि कहुँ[3] वहुँ बरसत।
प्रेम[4] भजत जिनके जिय तिनके हिय अति सरसत ॥७८॥
पिय के मुकुट की लटकनि मटकनि[5] मुरली-रव अस।
कुहुकि कुहुकि मनो[6] नाचत मंजुल मोर भरयो रस ॥७९॥
अपन[7] अपन जतगती भेद नर्तन लागति जब।
अलि गँधर्व-नृप से सब सुंदर गान करत तब ॥८०॥
कबहुँ[8] परसपर निर्तत लटकनि मंडल डोलनि।
कोटि अमृत सम मुसकनि मंजुल तत्थेइ बोलनि ॥८१॥
कल किंकिनि गुंजार तार नूपुर बीना पुनि।
मृदुल मुरज टंकार भँवर झंकार मिली धुनि ॥८२॥
सिर तें कुसुम जु सुंदर बरसत अति आनँद भरि।
जनु पद गति पर रीझि अलक पूजति पुहपनि करि[9] ॥८३॥

---

१. उडुगन अरुन अबीरन अद्भुत ससि मंडल सी। २. घन उमड़नि जैसी। ३. कछु कछु सरसत। ४. प्रेम भक्ति बिरला जिनके। ५. मुरली नाद भरी रस। ६. पै बाजत मंजुल सोर भरयो अस।

७. आपु आपुनी-जाति भेद तहँ नृतन लगीं सब।
गँधरब मोहे ता छिन सुदरि गान करति जब ॥

८. छबि सों निरतति लटकति मटकति मंडल डोलति।
कोटि अमृत मुसकाति मृदुलता थेइ थेइ बोलति ॥

९. १०वें के बाद।

कोउ तिनहूँ तें अधिक अमिस्रित सुर जुत गति नइ।
सबको छेंकि छबीली अद्भुत गान करत भइ[1] ॥८४॥
गंडन[2] सौं मिलि ललित गंड-मंडल मंडित छबि।
कुंडल सों कच उरझे सुरझे जहँ बहुते कवि ॥८५॥
अद्भुत रस रह्यो रास कहत कछु नहिं कहि आवै।
ज्यों मूकै रस को चसको मनही मन भावै ॥८६॥
कही न परै महेस सेस पैं गुरु गनेस पैं।
चकित जहाँ सरसुती इती मति कहँ सुरेस पैं ॥८७॥
कुसुम धूरि धूँधरे कुंज मधुकरन पुंज जहँ।
ऐसें ही रस अलस लटकि कीनौ प्रवेस तहँ ॥८८॥
नव पल्लव कर सैनी अति सुख दैनी तिहिं तर[3]।
तापर[4] सुमन उसेसी मधुर निरेसी तिहिं पर ॥८९॥
कबहुँ परस्पर छबि सौं भरावत प्रेम-मदन भर।
प्रकृत काम छाती अजहूँ धरकत जाके डर ॥९०॥
विलसति[5] अति रति जुद्ध रुद्ध सौं रत रस-सागर।
उज्जल प्रेम उजागर सब गुन आगर नागर ॥९१॥
हार हार में उरझि उरझि बहियाँ में बहियाँ।
नील पीत पट उरझि उरझि बेसर नथ महियाँ[6] ॥९२॥

---

१. १६वें के बाद।

पाठा० कोउ उन तें अति गावत सुर लय टेत तान नइ।
सब संगीत छकै जु सुंदरी गान करत भइ ॥

२. भुजदंडनि सों मिलनि ललित मंडल निरतत छवि।
कुंडल कच सो उरझ सुरझि नहिं बरनि सकै कवि ॥

३. सिरसैं। ४. सुंदर सुमन सु निरसत अति आनँद हिय बरसैं।

५. बिहँसति रति अवरुद्ध जुद्ध सुरत रस सागर। ६. ८४–९१ तक २१वें के बाद।

श्रम भरि सुंदर अंग रास[1] रस छलित-चलित गति।
अंसनि पर भुजवर[2] दीने सोभित सोभा अति ॥६३॥
कमल बदन पर अलकनि[3] कहुँ कहुँ श्रम जल[4] झलकनि।
सदा बसौ मन मेरे मंजु[5] मुकुट की लटकनि[6] ॥६४॥
टूटि मुकुति की माल छूटि रहि साँवरे उर पर।
जनु[7] सिंगार पहार तें सुरसरि धाइ धसीं धर ॥६५॥
घूमत रस भरे नैन पलनि मलकनि मनहरनी।
जनु गजराज बिराजै सँग लिये तरुनी करनी ॥६६॥
जहँ काहू को गम ना जमुना अति सुख दैनी।
जगमगाति तट घाट महा मनिजटित निसैनी ॥६७॥
कल बिटपनि सौं लपटि लता फूलीं फूलीं जल।
बिलसत सारस हंस बस बिगसत अंबुज दल ॥६८॥
तहँ अद्भुत जल-केलि बनी छबि कही न परई।
जिहि चितवत चित रचक बंचक कलिमल हरई ॥६९॥
कोउ आपुन ही धँसी लसी पिय सौं रति मानी।
कोउ पट गहि कोउ लट गहि छबि सौं पानी आनी[8] ॥१००॥
मुख कमलनि के आगें जल अरबिंद लगे अस।
भोर भएँ भौननि के दीपक मंद परत जस ॥१०१॥
कबहुँ परस्पर[9] छिरकत मंजुल अंजुल भरि भरि।
अरुन कमल मंडली फाग खेलत रस रँग[10] अरि ॥१०२॥
रुचिर दृगंचल चंचल अचल मैं[11] झलकत अस।
सरस कनक के कंजन खंजन जाल परत जस ॥१०३॥

---

१. सरस अति मिलित ललित गति। २. दिए लटक सोभा सोमित अति। ३. अलक छूटि। ४. की। ५. मोर। ६. २७ वें के बाद। ७. मनु गिरि तें सुरसरी जु द्वै विधि गिरीं धाइ घर। ८. ९४–९९ तक ११ वें के बाद। ९. छिरकति छेलि जु। १०. मानों। ११. बर जगमग।

कमलनि तजि तजि अलिगन मुख-कमलनि आवति जब।
छवि सों छबीली बाल छिपति जल में बुड़कनि सब ॥१०४॥
जमुना जल में दुरि मुरकामिनि करत कलोलें[1]।
जनु[2] घन भीतर भीतर ससि गन तारे डोलें ॥१०५॥
अलिगन कमलनि तजि के मुख-कमलनि पर आवत।
छवि सों छविले छैल भेंटि तेहि छिनहिं उड़ावत ॥१०६॥
कबहुँक सब मिलि बाल लाल को छिरकति, छवि अस।
मनसिज पायो राज आजु अभिषेक होत जस ॥१०७॥
निकसि[3] सुंदरी भाँति कांति मन ही मन भावै।
बाल-बैस छवि जैसे[4] कवि पैं कही न आवै ॥१०८॥
भीजि बसन तन लपटि निपटहीं[5] अद्भुत छवि सब।
नैननि के नहिं बैन बैन के नहिंन[6] नैन तब ॥१०९॥
रुचिर निचोरनि चुवत नीर लखि भे अधीर तनु।
तन बिछुरन की पीर धीर अँसुअन रोवत जनु ॥११०॥
तब इक द्रुम-तन चितै कुँअर अस[7] अज्ञा दीनी।
निरमोलक[8] अंबर भूषन तिहि[9] बरषा कीनी ॥१११॥
अप[10] अपनी रुचि के पहिरे छवि[11] परत न बरनी।
जग[12] मोहिनी जिती तिनकी मोहिनि ब्रज-घरनी ॥११२॥
ब्रह्म मुहूरति कुँअर कान्ह निज[13] घर आए तब[14]।
गोपनि अपनी गोपी अपने ढिग पाईं[15] सब ॥११३॥

---

१. निलोलें। २. मानों तब घन मध्य दामिनी दामिन डोलें। ३. तिनकी सुंदर कांति भाँति मनमोहन भावै। ४. कवि पैं कनहूँ कहत न आवै। ५. जु छवि नहि जाइ कही है। ६. नैन नहीं है। ७. वर। ८. निरमल। ९. तिनहीं। १०. अपनी। ११. बसन बनी छवि। १२. जग में मोहन आए तिनकी ब्रजतिय मोहिनी सब। १३. घन। १४. जब। १५. जानीं तब।

ऐसे ही जीति सरद की परम मनोहर रातैं।
क्रीड़त हैं पिय रसिक सुदिन दिन अन अन भातैं ॥११४॥
नित्त रास-रसमत्त नित्त गोपीजन-वल्लभ।
नित्त निगम यों कहत नित्त नव तन अति दुर्लभ[1] ॥११५॥
यह लीला गोपाल लाल की परम रसावधि।
सिव सुक नारद सारद तिनकों इहै महानिधि[2] ॥११६॥
नैन[3] हीन के हेत नवल नागरि नारी जस।
मंद हँसनि सुकटाच्छ लसनि वह का जानै रस[4] ॥११७॥
हरि[5] दासन को संग करै हरि-लीला गावै।
परम कांत एकांत भगति[6] रस तौ भल पावै[7] ॥११८॥

---

१. १००–१४ तक २९वें के बाद। २. ३६वें के बाद। ३. गैन हीन रतिनायक। ४. ३६वें के बाद। ५. रसिक जननि के संग रहै। ६. परम रस सोई। ७. ३८वें के बाद।

श्रीकृष्ण-सिद्धांत-पंचाध्यायी

जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुन कर्म अपारा।
परम धाम जग धाम परम अभिराम उदारा ॥१॥
आगम निगम पुराण स्मृती गन जे इतिहासा।
अवर सकल विद्या विनोद जिहि प्रभुक उसासा ॥२॥
रूप, गंध, रस, शब्द, (स्पर्श) जे पंच विषय वर।
महाभूत पुनि पंच पवन पानी अंबर धर ॥३॥
दस इंद्रिय अरु अहंकार महँ तत्व त्रिगुन मन।
यह सब माया कर विकार कहें परमहंस गन ॥४॥
सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व-प्रभव-प्रतिपाल-प्रलय कारक आयसु-बस ॥५॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति धाम पर-ब्रह्म प्रकासैं।
इन्द्रियगन, मन, प्रान इनहि परमातम भासैं ॥६॥
पटगुन अरु अवतार धरन नारायन जोई।
सबकौं आश्रय अवधि भूत नँदनंदन सोई ॥७॥
शिशु कुमार पौगंड धर्म पुनि बलित ललित लस।
धर्मी नित्य किशोर नवल चितचोर एकरस ॥८॥
जे जग में जगदीस कहै अति रहे गर्व भरि।
सब कर कियौ निरोध अपुन निज सहज खेल करि ॥९॥
महा-मोहनी-मय माया मोहे तिरसूली।
कोटि कोटि ब्रह्मांड निरखि बिधि हू गति भूली ॥१०॥
महाप्रलै कौ जल थल लै गिरि पर बरस्यौ हरि।
न जनों गरब गिरि तें गिरि कब गयौ धूरि मूरि करि ॥११॥

ब्रह्मादिक कों जीति महामद मदन भरयौ जब।
दर्प-दलन नँद-ललन रास-रस प्रगट करयौ तब ॥१२॥
अवधि-भूत गुन रूप नाद तर्जन जहँ होई।
सब रस कौ निर्त्तास रास रस कहिए सोई ॥१३॥
ननु विपरीत धरम यह परम सुंदर परसन करि।
कवन धर्म रखवारो अनुसर जीव सदृश हरि ॥१४॥
काल-कर्म-माया-अधीन ते जीव बखानें।
विधि-निषेध अरु पाप-पुन्य तिन में सब सानें ॥१५॥
परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी।
ते क्यों कहिए जीव-सदृश प्रति शिखर-निवासी ॥१६॥
कर्म काल अनिमादि योगमाया के स्वामी।
ब्रह्मादिक की टांत जीव सर्वांतरजामी ॥१७॥
वहे जात संसार धार जिय फंदे फदन।
परम तरुन करुना करि प्रगटे श्रीनँदनंदन ॥१८॥
सघन सच्चिदानंद नंदनंदन ईश्वर जस।
तैसेई तिनके भगत जगत में भये भरे रस ॥१९॥
श्री वृंदावन चिद्घन घन घन घन छवि पावें।
नंद सूनु को नित्य सदन श्रुतिगन जिहि गावें ॥२०॥
सुंदर सरद सुहाई रितु जहँ सदा विराजै।
नव अखंड मंडल ससि सब ही रजनी भ्राजै ॥२१॥
जमुन तीर बलवीर चीर हरि वर जिहि दीनौं।
तिन सँग बिबिध बिलास रास रमिबे मन कीनौं ॥२२॥
तिहि छिन सोइ उड्राज उदित सुरराज-सहायक।
कुंकुम मंडित प्रिया-वदन जनों रंजित नायक ॥२३॥
कमल नैन पिय कौं हिय सुंदर प्रेम समुद जस।
पूरन शशितनु निरखि हरषि बाढ़ी तरंग-रस ॥२४॥

अरुन किरन मिलि अरुन भयौ छबि कहि नहिं जाही।
जनु हरि-हिय अनुराग निकसि बिकस्यो .बन माँही ॥२५॥
शब्द-ब्रह्म-मय बेनु बजाय सबै जन मोहे।
सुर-नर-गन गंधर्व कछु न जानैं हम को हैं ॥२६॥
परम मधुर मादक सुनाद जिहि ब्रज-जुव मोही।
त्यौं हीं धुनि सुनि चलीं छटा सी अतिसय सोही ॥२७॥
इक पहिलियें गमन मन सुंदरि घन मूरति हरि।
अब मधुराधर मधु मिलाय बोली सुनाय करि ॥२८॥
सुनि उमगीं अनुराग-भरी सावन-सरिता-जस।
सुंदर नगधर नागर-सागर मिलन बढ़ी रस ॥२९॥
कोइ गमनी तजि सौंहन, दोंहन, भोजन, सेवा।
अंजन, मंजन, चंदन, द्विज-पति-देव निषेवा ॥३०॥
धर्म, अर्थ अरु काम कर्म इह निगम निदेसा।
सब परिहरि हरि भजति भईं करि यह उपदेशा ॥३१॥
प्रीतम सूचक शब्द सुनत जब अति रति बाढ़ै।
होत सहज सब त्याग नाग जिमि कंचुकि छाँड़ै ॥३२॥
जदपि कहूँ के कहुँ बहु अमरन (आनि) बनाए।
हरि पिय पैं अनुसरन जहाँ क तहाँ चलि आए। ३३॥
कृष्ण तुष्ट करि कर्म करै जो आन प्रकारा।
फल बिभचार न होइ होइ सुख परम अपारा ॥३४॥
मातु, पिता, पति-कुल-पति, सुत, पति रोक रहे सब।
नहिंन रुकीं रस धुकीं जाय सो मिलीं तहाँ सब ॥३५॥
मोहन नंद-सुवन पिय हिय .हरि लीनौं जाकौ।
कोटि कोटि विघनेश बिघन करि सकै न ताकौ ॥३६॥
जे अरबर में अति अधीर रुकि गईं भवन जब।
गुनमय तनु तजि चित्तस्वरूप धरि पियहिं मिलीं तब ॥३७॥

ज्ञान बिना नहिं मुकति इह जु पंडित गन गायो।
गोपिन अपनो प्रेम-पंथ न्यारोइ दिखरायो ॥३८॥
ज्ञान आतमानिष्ट गुनत यों आतमगामी।
कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी ॥३९॥
नाहिंन कछु सृंगार कथा इहि पंचाध्याई।
सुंदर अति निरवृत्त परा तें इती बड़ाई ॥४०॥
जिन गोपिन कौं प्रेम निरखि शुक भये अनुरागी।
ब्रह्मानंद मगन ते निकसे ह्वै बैरागी ॥४१॥
पुनि तिनकी पद-पंकज-रज अज अजहूँ छिछै।
बढ़ी बुद्धि विशुद्धतु सौं पुनि सो रज इंछै ॥४२॥
संकर नीकैं जानत सारद नारद गानत।
तातें सबै जगत-गुरु गोपिन गुरु करि मानत ॥४३॥
भ्रजरवनी गजगवनी कानन मे जब आईं।
सुंदर बृंदावन घन पन पन घन बुधि पाई ॥४४॥
त्रिगुन पवन लै आगैं ह्वै अलि धाए आए।
अवर सहेली चेली तिनहूँ अति सुख पाए ॥४५॥
मनिमय नूपुर कंकन किंकिनि के झनकारा।
तैसिय अलि झंकारी चंचल कुंडल हारा ॥४६॥
आनि हरि निकट बाढ़ी सोहति प्रेम नवेली।
मानहुँ सुंदर सुरतरु चहुँ दिसि आनँद बेली ॥४७॥
नागर गुरु नँदनंदन बोलें अति अनुरागे।
काम विषै पै बचन कहे सब रस के पागे ॥४८॥
जे पंडित शृंगार ग्रंथ मत यामैं सानैं।
ते कछु भेद न जानैं हरि को विषई मानैं ॥४९॥
अनाक्रष्ट मन कृष्ण दुष्ट-मद-हरन पियारे।
जहँ जहँ उज्जल परम धरम ताके रखवारे ॥५०॥

धर्म अर्थ पर यचन कहे ते काहे तें इत।
ब्रज देविन के शुद्ध प्रेम रस प्रगट करन हित ॥५१॥
सुनि पिय के अस यचन चकित भई ब्रज की बाला।
गद्गद कंठ रसाला बोलीं यों तिहि काला ॥५२॥
अहो अहो जसुमति-प्यारे (तुम) नँदलाल दुलारे।
जिनि कहौ यचन अन्यारे तुम तौ प्रान पियारे ॥५३॥
धर्म कह्यौ दृढ़ता कौं जो धर्म (हिं) रत होई।
जा धर्महिं आचरन समळ मन निर्मल होई ॥५४॥
मन निर्मल भये सुबुध तहाँ बिज्ञान प्रकासै।
सत्य ज्ञान आनंद आत्मा तब आभासै ॥५५॥
तब तुम्हरी निज प्रेम भगति रहि सेई आवै।
तौ कहुँ तुम्हरे चरन कमल कौं निकटहि पावैं ॥५६॥
तिन कहुँ हो तुम प्रान नाथ फिरि धर्म सिखावहु।
समुझि कहौ पिय बात चतुर-सिरमौर कहावहु ॥५७॥
अरु जे *शास्त्र-निपुन जन ते सब करहिं तुमहि रति।*
तुम अपने आतमा नित्य-प्रिय नित्य परमगति ॥५८॥
दार गार सुत पति इन करि (कहो) कवन आहि सुख।
बढ़े रोग सम दिन दिन छिन छिन देहि महा दुख ॥५९॥
ब्रह्मादिक जा चितवनि लगि नित सेव करी है।
सो लक्ष्मी सब छाँड़ि तिहारे पाँइ परी है ॥६०॥
तैसेहि हम सब छाँड़ि तिहारे चरननि आईं।
नहिंन तजौ, पिय भजौ, तजौ ए सन निठुराई ॥६१॥
सुनि गोपिन के प्रेम-बचन हँसि परे भरे रस।
जदपि आत्माराम रमन भए नवल नेह बस ॥६२॥
विहरत बिपिन बिहार वहत कछु नहिं कहि आवै।
बार बार तन पुलकित शुक मुनि तिहि (तहँ) गावै ॥६३॥

अवधिभूत नागर नगधर कर पारस पायो।
अधिक अपनपौ जानि तनक सौभग-मद छायो ॥६४॥
गर्वादिक जे कहे फाग के अंग आदि ते।
शुद्ध प्रेम के अंग नहिन जानहि प्राकृत जे ॥६५॥
कमलनयन करुनामय सुंदर नंदसुवन हरि।
रम्यो चहत रस रास इनहि अपनी समसरि करि ॥६६॥
तातें तिनहीं माहिं तनक दुरि रहे ललन यौं।
दृष्टिबंध करि दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं ॥६७॥
अलक पलक की ओट कोटि जुग सम जिन जाहीं।
तिन कहुँ पल छिन ओट कोट दुख गनना नाहीं ॥६८॥
सुधि न रही कछु तन मैं बन मैं बूझति डोलैं।
निगम-सार सिद्धांत वचन तें छल बल बोलैं ॥६९॥
कृष्ण-विरह नहि बिरह-प्रेम-उच्छलन कहावै।
निपट परम सुख-रूप इतर सब दुख बिसरावै ॥७०॥
ढूँढ़न लगि ब्रजबाल लाल मोहन पिय कौं तहँ।
नूत, प्रयाल, कदंब, निंब अरु अंब, पनस जहँ। ७१॥
आवहु री ए बड़ महान बट पीपर बूझैं।
मोहन पियहि बतैहौ जौ कहुँ इन कौं सूझैं ॥७२॥
आगैं चलि ब्रज युवती सेवति आनि परी तहँ।
नूत, प्रयाल, कदंब, निब अरु अंब, पनस जहँ ॥७३॥
सखि ए तीरथवासी पर-उपकारी सब दिन।
बूझहु री नँदनंदन प्रभु इन सूझत हैं किन। ७४॥
रूप गुन भरी लता जे जु सोहत बन माँही।
नँदनंदन इन बूझौ निरखे हैं किधौं नाहीं ॥७५॥
इहि बिधि बन घन बूझि प्रेम बस लगति सुहाई।
करन लगीं मनहरन लाल लीला मन भाई ॥७६॥

सिसु कुमार पौगंड वलित अभिनय दिखराए।
कमलनैन-प्रापत्ति उपाइ सब लोक सिखाए ॥७७।
अरु जे आहिं उपासक तिनहिं अभेद बतायौ।
सिसु कुमार पौगंड कान्ह एकै दिखरायौ ॥७८॥
अवतारी अवतार-धरन अरु जितक बिभूती।
इह सब आश्रय के अधार जग जिहिं की ऊती ॥७९॥
ताते जग गोपी पुनि पुनि सुक मुनि हू गावैं।
सनक सनंदन जगवंदन तेऊ सिर नावैं ॥८०॥
नँद-नंदन लीला करि ललना धन्य भईं जब।
सुंदर चरन सरोज खोज निकटहिं पायौ तब ॥८१॥
सुनि सब धाईं आईं जीवनिमूरि सी पाईं।
पुनि पुनि लेहिं बलाइ आपुनी करति बड़ाईं ॥८२॥
सखि इह कृष्ण-चरन-रज अज शंकर शिर धारैं।
रमा-रमन पुनि धारैं अपनें दोष निवारैं ॥८३॥
पुनि पेखे पिय-ढिग प्यारी प्रिय अंक (लगी) जब।
कवन आहि इह बड़-भागनि यों कहन लगीं तब ॥८४॥
इन नीकैं आराधे हरि ईश्वर वर जोई।
तौ पिय-अधर-सुधा रस पीवत निधरक होई ॥८५॥
सोऊ पुनि अभिमान भरी तब कहन लगी तिय।
मो पै चल्यो न जाइ जहाँ तुम चल्यौ चहत पिय ॥८६॥
जब जब जो उद्गार होइ अति प्रेम विध्वंसक।
सोइ सोइ करैं निरोध गोप-कुल केलि-वतंसक ॥८७॥
नहिं कछु इन्द्रिय-गामी कामी कामिनि कै वस।
सब घट अंतरजामी स्वामी परम एक रस ॥८८॥
नित्य, आतमानंद, अखंड स्वरूप, उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा ॥८९॥

तातें तिनहीं माहि पुरयो परि दूरि न भायौ।
सा बाला अति बिलपि अखंडित प्रेम दिखायौ ॥९०॥
जैसोइ कृष्ण अखंड-रूप चिद्रूप उदारा।
तैसोइ उज्जल रस अखंड तिन कर परिवारा ॥९१॥
जगत-उधारन कारन गुरु भये मधु दिखरावैं।
कामी कामिन समझावैं ज्यों जिनि इह गावैं ॥९२॥
सो तब तिनहूँ देखी ठाढ़ी सोहति ऐसी।
नव अंबुज तें अबहीं बिछुरी बिजुरी तैसी ॥९३॥
सोचै चितवै बन मैं मन मैं अचरज भारी।
छिन छीनी चंद्र तें चारु चंद्रिका न्यारी ॥९४॥
धाय भुजन भरि लै पुनि तिहि जमुना तट आईं।
कृष्ण दरस लालसा सु तरफै मीन की नाईं ॥९५॥
अपुनै ई प्रेम-सुधानिधि बढ़ि गई (प्रेम) कलोलैं।
बिह्वल ह्वै गईं बाल बाल सौं अलबल बोलैं ॥९६॥
तब प्रगटे नँदनंदन सुंदर सब जग-बंदन।
गोपी-ताप-निकंदन कोहैं कोटिक चंदन ॥९७॥
मधुर मधुर मुसकात बिलोलित उर बनमाला।
केवल मनमथ-मन मथ चंचल नैन बिसाला ॥९८॥
पियहि निरखि ब्रजबाल सबी सब एकहि काला।
ज्यों प्रानन्हि कैं आये उमकहि इंद्रियजाला ॥९९॥
साँवरे पिय कर परस पाइ सब सुखित भईं यौं।
परमहंस भागवत मिलत संसारी-जन ज्यौं ॥१००॥
जैसें जागत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था में सब।
तुरिय अवस्था पाइ जाइ सब भूलि भईं तब ॥१०१॥
मिलि जमुना तट बिहरत सुंदर नंद के लाला।
तैसिय ब्रज की बाला भरी अति प्रेम रसाला ॥१०२॥

जदपि अखंडानंद नंदनंदन ईश्वर हरि।
तदपि महाछवि पाइ छवीली ब्रज देविन करि ॥१०३॥
पुनि ब्रज-सुंदरि सँग मिलि सोहै सुंदर वर यौं।
अनेक शक्ति करि आवृत सोहै परमातम ज्यौं ॥१०४॥
पुनि जस परम उपासक ज्ञानादिक करि, सोहै।
यौं रस-लोपी गोपी मिलि मनमोहन मोहै ॥१०५॥
कृष्ण-दरस आनंद बरस दुख दूरि भयो मन।
पाय मनोरथ अपुनी जैसैं हरषैं श्रुति-गन ॥१०६।
जब लगि श्रुति कर कर्मकांड कर्महि परमानैं।
तब लगि इंद्र बरुण रवि इनहीं ईश्वर गानैं ॥१०७॥
ज्ञानकांड मैं परमेश्वर विज्ञान परम सुख।
विसरि गयो सब काम्य कर्म अज्ञान महादुख ॥१०८॥
तैसेइ गोपी प्रथम काम अभिराम रसीं रस।
पुनि पाछे निःसीम प्रेम जिहि कृष्ण भए वस ॥१०९॥
जेन केन परकार होइ अति कृष्ण मगन मन।
अनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन ॥११०॥
महाद्वेष करि महाशुद्ध शिशुपाल भयौ जब।
मुकुत होत वह दुष्टपनौ कछु सँग न गयौ तब ॥१११॥
अरज्यौ मरवा श्रुवा यज्ञ साधन अवशेषै।
स्वर्ग जाइ सुख पाइ बहुरि को तिन तन देखै ॥११२॥
योगी जिहिं अष्टांग साधनाहु साधत ते।
पाइ परम परमातम बहुरि का बहुरि करत ते ॥११३॥
तैसेहिं ब्रज की बाम काम रस उत्कट करि कै।
शुद्ध प्रेममय भईं लईं गिरिधर उर धरि कै ॥११४॥
आरंभित तब रुचिर रास अद्भुत सुलास जहँ।
अमल अष्टदल कमल महा मंडल मंडित तहँ ॥११५॥

-मधि कमनीय करनिका तापर बिबि किसोर बर।
पुनि द्वै द्वै गोपी करि हरि-मंडित मंडल पर ॥११६॥
एकै मूरति ललित लाल आलात की नाईं।
सब के अंसनि धरी साँवरी बाँह सुहाई ॥११७॥
जदपि बच्छस्थल रमति रमा रमनो धर कामिनि।
तदपि न यह रस पायो पायो जौ ब्रज-भामिनि ॥११८॥
जित कहुँ ती ब्रजबधू कोटियन कोटि भरी रति।
तितेई जहाँ रागिनी राग संगीत भेद गति ॥११९॥
काहू के काहू न गीत संगीत छुयो जहँ।
भिन्न भिन्न अपनाय अनागत प्रगट कियो तहँ ॥१२०॥
घनिता जहँ शत कोटि कहत कछु नहिं कहि आवै।
अपने गुन गति नृत्त नाद कोउ पार न पावै ॥१२१॥
जग मैं जो संगीत नाटि जिहि जगत रिझायौ।
अस ब्रज-तियन कौं सहज गमन यौं आगम गायौ ॥१२२॥
जो ब्रजदेवी निरतति मंडल रास महा छबि।
तिहि कोउ कैसैं बरनै ऐसो कौन आहि कवि ॥१२३॥
राग रागिनी सम जिनकौ बोलिबौ सुहायौ।
सु कवन पै कहि आवै जो ब्रजदेविन गायौ ॥१२४॥
जैसे कृष्ण अमित महिमा कोउ पार न पावै।
ऐसै ही ब्रजबनिता गुनगन गनत न आवै ॥१२५॥
जब नायक के भेद भाय लाधन्य रूप गुन।
अभिनय दिखरावैं गावैं अद्भुत गति उन ॥१२६॥
तहाँ साँवरे कुँवर रीझि कैं रीझि रहत यौं।
निज प्रतिबिंब बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यौं ॥१२७॥
जिनकी गति धुनि छटा सकल जग छाइ रही है।
जिमि रंचक लक्ष्मी-कटाक्ष सब बिभव कही है ॥१२८॥

ते तौ मदन मोहन पिय रीझि भुजन भरि लीन्ही।
चुंबन करि मुख सदन वदन ते बीरी दीन्ही ॥१२९॥
लटकि लटकि ब्रजबाला लाला उर जब फूलीं।
उलटि अनंग अनंग दह्यौ तब सब सुधि भूलीं ॥१३०॥
रीझि सरद की रजनी न जनी केतिक बाढ़ी।
विहरत सजनी स्याम यथारुचि अति रति काढ़ी ॥१३१॥
थके उडुप अरु उड़गन उनकी कौन चलावै।
कालचक्र पुनि चकित थकित भयौ (कछु) मरम न पावै ॥१३२॥
निरखत सारद नारद संकर सनक सनंदन।
हरषत बरसत फूलन जै जै जै नँदनंदन ॥१३३॥
अद्भुत रस रह्यौ रास कहत कछु नहिं कहि आवै।
सेष सहस मुख गावै अजहूँ अंत न पावै ॥१३४॥
हो सज्जन जन रसिक सरस मन के यह सुनियौ।
सुनि सुनि पुनि आनंद हृदै है नीकें गुनियौ ॥१३५॥
सकल शास्त्र सिद्धांत परम एकांत महा रस।
जाके रंचक सुनत गुनत श्रीकृष्ण होत बस ॥१३६॥
रास सकल मंडल रस के जे भँवर भए हैं।
नीरस विषय विलास छिया करि छाँड़ि दए हैं ॥१३७॥
'नंददास' सौं नंद-सुवन जौ करुना कीजै।
तिन भक्तन की पदपंकज रस सों रुचि दीजै ॥१३८॥

श्रीनंददासेन कृत श्रीकृष्ण-सिद्धांत पंचाध्यायी समाप्त

अनेकार्थ-ध्वनि मंजरी

जो प्रभु जोति जगत मय, कारन करन अभेव।
विघन[1]-हरन सब सुभ[2]-करन, नमो नमो ता देव ॥१॥
एकै वस्तु अनेक हैं, जगमगात जगधाम।
जिमि कंचन तें किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम ॥२॥
उचरि सकत नहिं संस्कृत, अर्थ[3] ज्ञान असमर्थ।
तिन हित 'नंद' सुमति जथा, भाषा कियो सुअर्थ ॥३॥

(गो)

गो इंद्री, दिवि, बाक, जल, स्वर्ग, सुदृष्टि[4] अनिद।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोविंद ॥४॥

(सुरभी)

सुरभी चंदन, सुरभि मृग, सुरभी बहुरि बसंत।
सुरभी[5] चंपक बन कहै, जो जग-कर्ता कंत ॥५॥

(मधु)

मधु बसंत, तरु, चैत्र, नभ, तिय, मदिरा, मकरंद।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधु-सूदन गोविंद ॥६॥

(कलि)

कलि कलेस, कलि सूरमा, कलि निषंग, संग्राम।
कलि कलियुग जहँ और नहि, केवल केशव नाम ॥७॥

---

१. अशुभ। २. सुख। ३ समुझन कों। ४. वज्र, खग, छंद।
५. सुरभी चारत बन सुने जो जग कमला-कंत।

(आत्मा)

मन, बुधि, चित्त, सुभाव, तनु, धर्म, जीव, अहँकार।
इनको[1] कहियत आतमा, परमातम आधार ॥८॥

(अर्जुन)

अर्जुन द्रुम, कंचन, धवल, सहस्रार्जुन, दिग, सत्थ[2] ।
अर्जुन केकी, पांडु-सुत, हरि खेलत जेहिं सत्थ ॥९॥

(धनंजय)

अगिन धनंजय कहत[3] कवि, पवन धनंजय आहि।
अर्जुन बहुरि धनंजय, कृष्ण सारथी जाहि ॥१०॥

(पत्र)

पत्र परन औ पत्र सर, वाहन पत्र सुचित्त।
पत्र पंख विधि ना दिए, जिन चढ़ि मिलते मित्त ॥११॥

(पत्री)

पत्री तरु, पत्री कमल, पत्री बहुरि विहंग।
पत्री सर कर चित्र जिमि, इमि सेवहु श्रीरंग ॥१२॥

(बरही)

बरही द्रुम, बरही अगिन, बरही कुरकुट नाम।
बरही मोर किशोर के, चंद्र धरे सिर स्याम ॥१३॥

(धाम)

धाम तेज औ धाम तनु, धाम किरन, गृह धाम।
धाम जोत जो ब्रह्म है, घनीभूत हरि स्याम ॥१४॥

(काम)

काम भोग, अभिलाष पुनि, मन्मथ कहिए काम।
काम काज, जनि भूलि मन, भजिले हरि अभिराम ॥१५॥

---

१. ये सब। २. अर्थ। ३. कोउ इक।

(बाम)

बाम कुटिल औ[1] बाम शिव, बाम काम, स्तन बाम।
बाम मनोहर कों कहत, जैसे मोहन श्याम ॥१६॥

(भव)

भव शंकर, संसार भव, भव कहिए कल्यान।
भव सुंदर[2] जस जगत फल, जब भजिये भगवान ॥१७॥

(कं)

कं सुख, कं[3] जल, कं अनल, कं शिर, कं पुनि काम।
कं कंचन ते प्रीति तजि, सदा कहो हरि-नाम ॥१८॥

(कल्प)

कल्प[4] कुशल औ दिवस जो, कल्प समर्थ जु होय।
कल्प कपट तजि हरि भजो, कल्पवृक्ष सम सोय ॥१६॥

(कर)

कर गज-सुण्ड, सुहस्त कर, कर जु किरन, कर दान।
कर विप जैसे तजि विपय, भजि हरि अमीनिधान ॥२०॥

(दर)

दर जु कहत कवि शंख को, दर ईपत कौ नाम।
दर डर तें राखो कुँअर, मोहन गिरधर श्याम ॥२१॥

(वर)

वर सुंदर, वर श्रेष्ठ पुनि, वर जु देवता देत।
वर दूलह से कान्ह नित, वर तिय हिय हरि लेत ॥२२॥

---

१. कुच, धनुप, शिव, जुवति काम कर बाम। २. पूजन जग सफल तन।

३. पय जल तन अनिल विधि द्युति सिर सठ काम।
कं कंचन चित प्रीति ज्यों यों भजिए हरि नाम॥

४ कल्प जु विधि दिवि कल्प सम।

(वृष)

वृष सुरपति, वृष[1] कर्ण पुनि, वृष जु वृषभ, वृष काग ।
वृष सुधर्म करि हरि भजो, जौ चाहौ सुखधाम ॥२३॥

(पतंग)

तरनि पतंग, पतंग खग, पावक बहुरि[2] पतंग ।
सब जग रंग पतंग को, हरि एकै नव रंग ॥२४॥

(दल)

दल कहिए नृप कौ कटक, दल पत्रन कौ नाम ।
दल बरही के चंद सिर, धरे स्याम अभिराम ॥२५॥

(पल)

पल को[3] माँस कहत कवी, पल उन्मानहि सोय ।
पल जु पलक हरि बिच परे, गोपिन जुग सत होय ॥२६॥

(बल)

बल वीरज, धीरज, धरम, बल नृप दल कौ नाम ।
बल साहस, बल दैत्य पुनि, बल कहिए बलराम ॥२७॥

(अल)

अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन कौ नाम ।
अल अभरन, अल अलस तजि, भजौ[4] मनोहर स्याम ॥२८॥

(बयस)

बयस विहंगम को कहत, बयस कहिय पुनि काल ।
बयस जु यौवन जात है, भजि लै मदनगोपाल ॥२६॥

---

१. गो धर्म बर इंद्र वृषभ बल काम । २. चग । ३ आमिष मूरल उबट पद उसास पल होय । ४. भजि मनमोहन ।

(जीव)

जीव बृहस्पति कों कहत, जीव कहावै चंद।
जीव आतमा नित जिये, जग-जीवन नँद-नंद ॥३०॥

(मार)

मार विघ्न, विष मार पुनि, मार कहावै काम।
मार अमृतहू तें अमृत, सुंदर गिरिधर नाम ॥३१॥

(सार)

सार बीर्ज, धीरज, धरम, सार[1] वज्र, घृत सार।
सार जु[2] सबको साँवरो, जिन मोह्यो संसार ॥३२॥

(कलभ)

कलभ कहत करि-साव कों, कलभ[3] बहुरि उत्ताल।
कलभ कलुष कलिक्लेश[4] तें, काढ़हु दीनदयाल ॥३३॥

(नभ)

नभ आश्रय, नभ भाद्रपद, नभ श्रावण कौ मास।
नभ अकास, नभ निकटही, घट घट रमा-निवास ॥३४॥

(वसु)

अष्टम वसु है वह्नि अरु, वसु सूरज, वसु नीर।
वसु धन जग में सो धनी, जाके धन बलबीर ॥३५॥

(पटु)

पटु तीछन, पटु वज्र कहि, पटु आरोग्य कहंत।
पटु प्रवीन सोइ जगत में, भजे जो रुकमिनि-कंत ॥३६॥

---

१. थिर बल पवि घृत वार। २. मित बर। ३. कोढी ऊँट उताल। ४. काल तें राखहु।

(तुरंग, कुरंग)

गरड़[1] तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग।
हरिन[1] कुरंग, कुरंग सो, रँग्यो न हरि-हर रंग॥३७॥

(आत्मज)

आत्मज कहिए रुधिर-अंग, आत्मज कहिए काम।
आत्मज पूत सपूत सो, भजे जो सुंदर स्याम॥३८॥

(कबंध)

बिन सिर कहत कबंध कौं, कह् कबंध पुनि नीर।
राच्छस-राज कबंध जिहि, गति दीन्ही बलबीर॥३९॥

(हंस)

हंस तुरंगम, हंस रवि, हंस मराळ सु छंद।
हंस जीव को कहत कवि, परमहंस गोविंद॥४०॥

(पयोधर, भूधर)

मेघ, अर्क, कुच, सैल, द्रुम, एजु पयोधर आहि।
भूधर गिरि, भूधर नृपति, भूधर आदि बराह॥४१॥

(बाण)

बान बहावै बलि-तनय, बिसिप आहि पुनि बान।
बान कहत कवि स्वर्ग को, श्रीहरि पद निर्बान॥४२॥

(बरुण)

बरुन कहत पति नीर कौं, बरुन स्याम[2] को नाम।
बरुन हरे जब नंद तब, कैसे धाये स्याम॥४३॥

(गोत्र)

गोत्र नाम कौं कहत कवि, गोत्र सैल सुनियंत।
गोत्र बंधु सो धन्य जहँ, बिद्यासुत[3] गिनियंत॥४४॥

---

१ । २ । ३ [illegible]

(तन)

तन शरीर, विस्तार तन, तन सूक्षम, तन तात।
तन विरलो कोउ जगत में, सुनै जु हरिहर[1] बात ॥४५॥

(वाल)

बाल सिरोरुह, बाल सिसु, मूक कहावे बाल।
बाल सोई है जगत में, भजै न बाल गोपाल ॥४६॥

(जाल)

जाल झरोखा जाल गन, जाल दंभ श्रौ मंद।
जाल फाँस विद्या जगत, दिखि न भूल नँद-नंद ॥४७॥

(काल)

काल असित पुनि काल बय, धर्मराज पुनि काल।
काल व्याल के काल हरि, मोहन मदनगोपाल ॥४८॥

(ताल)

ताल ताल हरिताल पुनि, दोइ करसों करताल।
ताल वृक्ष फल खाय कर, हत्यो दनुज नँदलाल ॥४९॥

(व्याल)

व्याल कहत हैं क्रूर नर, दुष्ट स्वपद गज व्याल।
व्याल सर्प-सिर चढ़ि नचे, नटवर वपु नँदलाल ॥५०॥

(जलज)

जलज मीन, मोती जलज, जलज संख अरु चंद।
जलज जु कमल फिरावते, ब्रज आवत नँदनंद ॥५१॥

(तम)

तम तामस गुन, राहु तम, तमजु तिमिर, तम क्रोध।
तम अज्ञान कों हरहु हरि, उर धरि दीप प्रबोध ॥५२॥

---

१. हरि-रस।

(गुन)

गुन राजस, गुन सूत्र पुनि, गुन कमान की जेह।
गुन चरित्र गोविंद के, गावहु उर धरि नेह ॥५३॥

(अवि)

अवी शैल, अवि मेष पुनि, अवि सविता को नाम।
अवि रच्छक सब जगत कौं, एकै सुंदर स्याम ॥५४॥

(बन)

बन पानी कौं कहत कवि, बन बारिद कौं जाल[1]।
बन कानन तें सुरभि सँग, बनि आवत नंदलाल[2] ॥५५॥

(घन)

घन दृढ़, घन बिस्तार पुनि, घन जिहिं गढ़त लोहार।
घन अंबुद, घन सघन घन, घन-रुचि नंदकुमार ॥५६॥

(बरन)

बरन स्तुति, आखर बरन, बरन द्विजादिक चार।
बरन अरुन सित पीत है, अबरन नंद-कुमार ॥५७॥

(पोत)

पोत गेह[3] अरु निपट सिसु, पोत जु बस्त्र अनूप।
पोत नाव जिमि जलधि मधि, स्याम नाम सुखरूप ॥५८॥

(बुध)

बुध पंडित कौं कहत हैं, बुध ससि-सुतहिं बखान।
बुध हरि को अवतार इक, बोध भयो जिहिं ज्ञान ॥५९॥

(अनंत)

गगन अनंतहि कहत बुध, बहुरि अनंत अनेक।
शेष अनंत बदत कवी, हरि अनंत अरु एक ॥६०॥

---

१. नाम। २. घनस्याम। ३. कहावै।

(क्षय)

क्षय निवास कौं कहत कवि, क्षय कहिए क्षय रोग।
क्षय परलय मधि हरि विषै, लीन होत सब लोग ॥६१॥

(राजिव)

राजिव शशि, राजिव अनिल[1], राजिव मुक्ता मीन।
राजिव नाभि गोविंद की, होइ रहिए मन लीन ॥६२॥

(लोक)

लोक व्याकरन, लोक जन, लोक देह, रस मूल।
तीन लोक सुत-उदर लखि, रही जसोमति भूल ॥६३॥

(शुक्र)

शुक्र वीर्य अरु अग्नि पुनि, शुक्र जेठ को मास।
शुक्र अजहुँ बावनहिं प्रति, पल पल भरत उसास ॥६४॥

(खग)

खग रवि, खग ससि, खग पवन, खद अंबुद, खग देव।
खग बिहंग हरि सुतरु तजि, भज जड़ सेंवल सेव ॥६५॥

(कलाप)

गुन कलाप तूनीर बहु, अभरन आहि कलाप।
बरही बृंद[2] कलाप पुनि, हरि हरि-भजन कलाप ॥६६॥

(ब्रह्म)

ब्रह्म ब्रह्म-कुल, ब्रह्म विधि, ब्रह्म वेद औ जीय।
ब्रह्म नंद के सदन में, जाहि नचावति तीय ॥६७॥

(उडु, उडुप)

उडु बिहंग, उडु नखत गन, उडु कैवर्तक आहि।
उडुप चंद्र, नौका उडुप, उडुप गरुड़ बड़ आहि ॥६८॥

---

१. सलिल। २. चंद।

(मंद)

मंद[1] सनीचर, मंद खल, मंद अल्प, अघ मंद।
मंद[2] अभागी मूढ़ ते, जे न भजहिं नँद-नंद ॥६९॥

(वारन)

वारन कहिये बरजिबो, वारन पुनि सन्नाह।
वारन गज हरि उद्धर्यो, आनि गह्यो जब ग्राह ॥७०॥

(स्यंदन)

स्यंदन जल कहँ कहत कवि, स्यंदनचित्र तुरंग।
स्यंदन रथ चढ़ि रुक्मिणी, लै आये श्रीरंग ॥७१॥

(मंथी)

मंथी ससि, मंथी मदन, मंथी ग्राह प्रचंड।
मंथी बहुरो राहु है, जो हरि कर विधि खंड ॥७२॥

(कौसिक)

कौसिक गुग्गुल, इंद्र पुनि, कौसिक घूघू नाम। ·
कौसिक विश्वामित्र हैं, जिन जाचे श्रीराम ॥७३॥

(पुष्कर)

पुष्कर जल, पुष्कर गगन, पुष्कर शुंड गयंद।
पुष्कर तीरथ पाप-हर, पुष्कर नाम गोविंद ॥७४॥

(अंबर)

अंबर अमृत कों कहत, अंबर गगन सुभाइ।
अंबर पीत जु स्याम तन, रही जुवतिन लुभाइ ॥७५॥

(संबर)

संबर जल, संबर[3] असुर, संबर सैल अनूप।
संबर बाँधहु गाढ़ गहि, कृष्ण नाम सुभ रूप ॥७६॥

---

१. मंद सतत हानि। २. मंद मूढ़ नर तजु भगत। ३. मावर।

(कंबल)

कंबल जल परवाह पुनि, कंबल गुग्गुल चाम।
कंबल बहुरो ऊन है, कंबल मंगल नाम ॥७७॥

(नग)

नग कहियतु द्रुम, रवि, रतन, नग कहियत पुनि धाम।
नग गिरि जिहि तें कान्ह को, भयो सु नगधर नाम ॥७८॥

(नाग)

नाग पत्र औ नाग गज, नाग दुष्ट नर बाम।
नाग सर्प संसार को, सिद्ध मंत्र हरि नाम ॥७९॥

(करन)

करन कहावै रवि-तनय, करन कहत पुनि कान।
करन नाव जिहि सेइये, करन-धार भगवान ॥८०॥

(द्विज)

द्विज पंछी को कहत कवि, द्विज कहिए पुनि दंत।
तीन बरन तें द्विज बड़ो, जब जाने[1] भगवंत ॥८१॥

(अज)

अज बकरा, अज पितामह, अज कहिए पुनि ईस।
अज जीवन भर नर कहत, अज एकै जगदीस ॥८२॥

(सिव)

सिव सुख, सिव कल्यान पुनि, श्रेष्ठ पुरुष सिव होय।
शिव शंकर अरु शिव सलिल, कृष्ण सदा शिव सोय ॥८३॥

(विरोचन)

ब्रह्म[2] विरोचन, सूर्य पुनि, चंद्र विरोचन रात।
दैत्य विरोचन धन्य सो, जाके बलि सौं तात ॥८४॥

---

१. सेवहि श्रीकंत। २. वह्नि।

(बलि)

बलि हरि-पूजा, असुर कहि, बलि भोजन, बलि भाग ।
बलि राजा, बलि[1] लच्छमी, जा हिय हरि अनुराग ॥८५॥

(वृक)

वृक पावक कों कहत कवि, वृक भिड़हा को नाम ।
वृक दानव दलि देव शिव, राखे सुंदर स्याम ॥८६॥

(रज)

रज राजस, आकाश[2] रज, रज युवती में होय ।
रज धूली, रज पाप कहि, रज[3] जल निर्मल धोय ॥८७॥

(कुस)

कुस सीता-सुत, दर्भ कुस, कुस कहिए पुनि नीर ।
कुस दानव-दल[4] छार कर, तहाँ बसे बलबीर ॥८८॥

(कंबु, भुवन)

कंबु संख औ कंबु गज, कंबु दुष्ट को नाम ।
भुवन गगन औ भुवन जल, त्रिभुवन-नायक स्याम ॥८९॥

(कूट)

कूट बहुत धार कूट गिरि, अहि नर कूट कहंत ।
कूट कपट कहँ निपट तजि, भजि ले मन भगवंत ॥९०॥

(खर)

खर राक्षस खर, सान खर, खर तीक्षन को नाम ।
खर गरदभ जग में सोई, जो न भजे हरि स्याम । ९१॥

(कुज, जम)

कुज मंगल, कुज अन्न द्रुम, कुज भौमासुर नाम ।
जम जग, जम जमराज वे, राखहु सुंदर स्याम ॥९२॥

१. पी जाउँ बलि । २. आरक । ३. हरि । ४. दलि द्वारिका ।

(हरिनी)

हरिनी प्रतिमा हेम की, हरिनी मृग की तीय।
हरिनी जूथी जासु की, फूल-माल हरि-हीय ॥६३॥

(धात्री)

धात्री कहिए आँवरो, धात्री धाय बखान।
धात्री धरती सेस सिर, सोहै तिल परमान ॥६४॥

(सिवा)

सिवा शंभु की सुंदरी, सिवा स्यार की बाम।
सिवा हरड़ जिमि रोग हर, इमि अघ-हर हरि नाम ॥९५॥

(रसना)

रसना काँची कहत कवि, रसना बहुरो दाम।
रसना जिह्वा तासु की, जो भज लै हरि नाम ॥६६॥

(रंभा)

रंभा कहिए अप्सरा, रंभा कदली नाम।
रंभा गोकुल गाय-धुनि[1], जिहि मोहे घनस्याम ॥९७॥

(माया)

माया छल, माया दया, माया नेह कहंत।
माया मोहन लाल की, जिन मोहे सब संत ॥६८॥

(इला)

इळा मही, बुध-ती इला, इला उमा अभिराम।
इला सरस्वति से भली[2], जामें हरि को नाम ॥६६॥

(जोती)

जोति नखत गन जोति दुति, जोति नेत्र अरु आग।
जोति ब्रह्म में[3] थिर रहे, रहे जगत जिहि लाग ॥१००॥

१. की वधू। २. भजै जो जाने अभिराम। ३. सोइ नदग्रह रह्यो अलिंदहि लागि।

(सुमना)

सुमना कहिये मालती, सुमना मुदिता तीय।
सुमना रति सोइ स्याम सों, करि ले लंपट जीय ॥१०१॥

(इडा)

इडा आहि नभदेवता, इडा भूमि अभिराम।
इडा अंबिका मातु मोहि, प्रीति देहि घनस्याम ॥१०२॥

(अजा, निशा)

अजा छाग, माया अजा, जिहि मोहे अजंयाम।
निसा जामिनी कहत कवि, निसा हरिद्रा नाम ॥१०३॥

(विधि)

विधी काल[1], विधि देवता, विधि कहिए जु बिधान।
विधि को विधि जो हरि रची, सोई विधि परमान ॥१०४॥

(जृंम)

जृंम अलस करि वलित नर, जृंम कहावे मूढ़।
जृंभ कपट तजि हरि भजो, घट घट परगट मूढ़ ॥१०५॥

(हस्त)

हस्त कहत गज सुंड कों, हस्त नक्षत्र सुभाइ।
हस्त हाथ तें डारि जिन, हरि-हीरा तन पाई ॥१०६॥

(कृतांत)

आगम शास्त्र कृतांत सब, पुनि सिद्धांत कृतांत।
जम कृतांत के त्रास तें, राखहु कमलाकांत ॥१०७॥

(मित्र)

मित्र भानु कों कहत कवि, मित्र अगिन कों नाम।
मित्र मीत सब जगत के, एकै सुंदर स्याम ॥१०८॥

---

१. वेषा।

(सारंग)

पिक, चामर, कच, संख[1], कुच, कर, वाइस, ग्रह होय।
खंजन, कंजल खातमद, वाम बिसन है सोय ॥१०९॥
क्षिति, वाखान, भुजंग पुनि, को वड़ मानस मान।
सारंग श्री भगवान को, भजिए आठो जाम ॥११०॥
सारंग सुंदर को कहत, रात दिवस बड़ भाग।
खग, पानी अरु घन कहिय, भ्रंमर, अबला, राग ॥१११॥
रवि, ससि, दीपक, गगन, हरि, केहरि, कंज, कुरंग।
चात्रिक, दादुर, दीप, अलि, ये कहिए सारंग ॥११२॥

(हरि)

इंद्र, चंद्र, अरविंद, अहि, कपि, केहरि, आनंद।
कंचन, काम, कुरंग, घन, धनुष, दंड, नभ चंद ॥११३॥
पानी, पावक, पवन, पथ, गिरि, गज, नाग, नरिंद।
ये हरि इनके मुकुट-मनि, हरि ईश्वर गोविंद ॥११४॥

(ध्रुव)

ध्रुव निसचल, ध्रुव जोग पुनि, ध्रुव जो ध्रुव-पद ताल।
ध्रुव तारे तिहि अटल गुन, गुन गोविंद गोपाल ॥११५॥

(सुमन)

सुमन सुघुर, सुमनस पुहुप, सुमनस बहुरि बसंत।
सुमनस जेहि मन में बसहि, केसव कमला-कंत ॥११६॥

(बिटप)

बिटप अरग, पल्लव बिटप, बिटप कहत बिस्तार।
बिटप वृच्छ की डार गहि, ठाढ़े नंदकुमार ॥११७॥

---

१ हंस।

(दान)

दान द्विजन कौं देत सो, गजमद कहिये दान।
दान साँवरे लेत वन, गोपी-प्रेम-निधान ॥११८॥

(रस)

रस नव, रस घृत, रस अमृत, रस विषया अरु नीर।
रस पर को रस प्रेम रस, जाके बस बलवीर ॥११६॥

(स्नेह)

तेल सनेह, सनेह घृत, बहुरो प्रेम सनेहु।
सो निज चरनन गिरधरन, 'नंददास' कहँ देहु ॥१२०॥

परिशिष्ट (क)

(रामहरि कृत)

(गो)

गो दिक रवि मृग सत दया अमि प्रसू चप बाल।
जग्य निगम सर चिह्न गिर गो सुप भजि गोपाल ॥१॥

(सुरभी)

सुरभी चंपक धीर पुनि मंत्री कंचन भाम।
बिल्व प्रसस्तऽरु जायफल सुरभी ललित सुराम ॥२॥

(अर्थ)

अर्थ पदारथ वस्तु वसु भाव प्रयोजन काज।
अभिप्राय चेष्टा जनम अर्थ श्याम सों साज ॥३॥

(तीर्थ)

तीरथ यज्ञ पात्र श्रुति मुनिवर पुन्य अरन्य।
प्रवचन सत्यऽरु शुचि सलिल तीरथ हरि भज धन्य ॥४॥

(ललाम)

संप ललाम प्रभावना ध्वज लांगूल ललाम।
सत्र प्रधानऽरु चिह्न हय नृप के नृप श्रीराम ॥ ५ ॥

(खं)

खं नभ पुर भू द्यौ नखत ज्ञान रंध्र सुख धाम।
खं इंद्रिय दुख देत हैं दया करौ हरि स्याम ॥ ६ ॥

(सं)

सं संसय संगति सभा सं कहिए रणभूमि।
संजु समय फिरि है कहाँ भजौ कृष्ण रस भूमि ॥ ७ ॥

(सर)

सर सायक सरकंड सर सर सरसी सरजीत।
सर सम हरि की कौन जग भजि लै मोहन मीत ॥ ८ ॥

(गुरु)

गुरु विद्या जेष्ठऽरु पिता गुरू बृहस्पति नाम।
मंत्र देन श्री गुरु बड़े जिन तें पैये स्याम ॥ ९ ॥

(शृंग)

शृंग कहत सींगऽरु चतुर शृंग जुनाद प्रधान।
शृंग सिखर गिरिराज को कर धारयौ भगवान ॥१०॥

(भंग)

भंग जु भंजन भाँग पुनि किरण रुचीची नाम।
भंग भाजिवो जब मिटै करि हरि पद विश्राम ॥११॥

(सोम)

सोम सुधा वल्लो कनक गूलौ जुगादि नृप सोम।
बार बार मन सोम गहि हरि भजि जग दुख होम ॥१२॥

(सुचि)

सुचि जु अग्नि द्विज मंत्र वर ब्रह्मचर्य सित ज्ञान।
सुचि असाढ़ सुचि सुद्ध सो भजन कृष्ण को जान ॥१३॥

(हार)

हार वहत अध्वा रजत मान पराजय हार।
हार जु माला हाथ लै भजि मन नंद-कुमार ॥१४॥

(वार)

वार वेर प्रतिवार कच द्वार जलण न्यौछार।
काँट वारि जल मूक सिसु कृष्ण सीस सिखि वार ॥१५॥

(सूर)

सूर विदुप भट सिंह किटि अंध अग्नि रवि सूल।
सूर उदर की जब मिटै भजिए हरि अनुकूल ॥१६॥

(धर्म)

धर्म अहिंसा धनुष धय उपमा जज्ञ स्वभाव।
धर्म वेद अरु पुन्यकरि हरि भजि बहुरि न दाव ॥१७॥

(संपूर्ण)

संपूरन वैराग जस प्रभुता लछमी रूप।
संपूरन जु प्रबोध मन भजि लै कृष्ण अनूप ॥१८॥

(प्रवाल)

प्रवाल जु मूँगा बीन पुनि पल्लव बहुत प्रवाल।
है प्रवाल बलवान हरि जगत करें प्रतिपाल ॥१९॥

(कीलाल)

कीलाल जु जल पय रुधिर भूपण अरु मकरंद।
कीलाल जु जम त्रास तें छुटैं भजैं गोबिंद ॥२०॥

(अच्छ)

अच्छ कहत पासे नयन चमू बहेड़े सोइ।
अच्छ चक्र हरि कर सदा रच्छा भक्तिहि होइ ॥२१॥

(काण्ड)

कांड कहत पादप अखिल तुला बाण वल काल।
कांड मूल सबके हरी जगत रच्यौ इक ख्याल ॥२२॥

(पख)

पख द्वारयौ पाँसू विपुन अर्ध मास बल जान।
पख जु पच्छ हरि राखिए जातें होइ कल्यान ॥२३॥

(दण्ड)

दंड काठ की न्याय कर दंड विधानऽरु तूल।
दंड सरीरहि पाइ कें हरि न भजे मुख धूल ॥२४॥

(घिण)

घिण जु मुहूरत थिरथा उच्च समय घिण नाम।
घिण जु नियम हरि भजन कौ कीजै आठौं जाम ॥२५॥

(गुन)

गुन प्रधान इंद्रिय ललित त्यागऽरु सीतल उष्ण।
नटी गवइया सूर जे ए गुन गुनि श्रीकृष्ण ॥२६॥

(पुंडरीक)

पुंडरीक है केशरी सितऽरु कमंडल नाम।
पुंडरीक पंकज नयन बसै नंद के धाम ॥२७॥

(मंडल)

मंडल कहि भूभाग कौं पिल्ला गोलऽरु वृंद।
सर्वोपरि व्रजमंडलहि रहत जहाँ नँदनंद ॥२८॥

(अंत)

अंत धर्म अंतर्निकट अंत पदारथ नाम।
अंत सत्य मति धारियै जौ चाहत हरि स्याम ॥२९॥

(बहुल)

बहुल तर्क अतिशय बहुल, बहुल प्रभृत अरु प्राय।
बहुल जु उपमा दीजियै ललित कुँवर नँदराइ ॥३०॥

(चक्र)

चक्र अखिल चकवा किरन चक्र देस कौ नाम।
चक्र सुदर्शन हाथ हरि दुष्टन मारन स्याम ॥३१॥

(पुष्कर)

वाद्य खड्ग फल भांड ह्रद प्रात चक्र गद च्यार।
पै निमित्त गिर द्वीप तरु पुष्कर मुख हरि सार ॥३२॥

(बालक)

बालक सिंह सुगंध पुनि जूटी खेचर नाम।
बालक सिसु घर नंद के खेलत सुंदर स्याम ॥३३॥

(पलास)

हर्यौ रंग पल्लव बहुरि छाया ढाक पलास।
असुर पलासहि मार बहु ब्रज हरि किए विलास ॥३४॥

(कीनास)

कीनास क्षुधित ह्रद अनुग दानव जम कीनास।
कीनास जु अघ कृपण कें हरिन बसावें बास ॥३५॥

(कदंब)

निवड कदंब विरोष पुनि निर्गुन नर कौ नाम।
तरु कदंब चढ़ि कूदि दह्रि काली नाथ्यौ स्याम ॥३६॥

(शंकु)

संकु स्वैर संख्या विवर कीलऽरु मंद स्वछंद।
शंकु संकीरन दाव नल वन लगि पी नँदनंद ॥३७॥

(भ्रूण)

भ्रूण जु बालक द्विज कहत पक्षी भय चांडाल।
भ्रूण विकल संजोग तें रक्षक श्री गोपाल ॥३८॥

(भूत)

भूत असुर अरु भूतजन पंच तत्व गति काल।
भूत प्रेत तें हरि बिना कौन करै प्रतिपाल ॥३९॥

(सिंह)

सिंह सूर वर रास इक बहुरि सिंह को सिंह।
सिंह पौरि में दैत्य हत सिंह नाह नर-सिंह ॥४०॥

(फणा)

फणासीग अहि फण जटा मथिवौ फणा बहाय।
फणा मंडली सखा सँग मोहन माखन खाइ ॥४१॥

(वेला)

वेला तट वेला समय वेला पुनि आगार।
वेला पथ हरि अनुसरौ मिलैं जु नंदकुमार ॥४२॥

(कला)

कला महल नट की कला ग्लौ घट यह विज्ञान।
कला अंग प्रभुता सजौ भजौ कृष्ण धरि ध्यान ॥४३॥

(गौरी)

गौरी गोरोचन सिवा गौरी हलदी नाग।
गौरी रागहि गावते घन तें आवत स्याम ॥४४॥

(स्यामा)

स्यामा कोंगणि अरु निसि स्यामा पीपल नाम।
स्यामा राधा नाम जप सहज मिलें घनस्याम ॥४५॥

(सुधा)

सुधा कहत अवनी तड़ित इक भोजन धन धाइ।
सुधा अमी ते अमर जग कृष्ण नाम गुन गाइ ॥४६॥

(सुभा)

सुभा हरड़ थोहर सुभा सुभा कहत कल्याण।
सुभा जु सोभावान हरि और न दूजो जान ॥४७॥

(अमृत)

अमृत जल विप देवता जज्ञ सेस अनयास।
अमृत सुधा तें सरस है भजन कृष्ण ब्रजवास ॥४८॥

(अमर)

अमर स्वर्ग पवि सकुन तरु अमर जु नास गिलोइ।
अमर देव के देव हरि प्रभु सम अमर न कोइ ॥४९॥

(अष्टापद)

अष्टापद सों नौ सरभ समय रसम पुनि काल।
अष्टापद कृम जोनि तें छुटवौ मोहनलाल ॥५०॥

(सारंग)

ललित पवन घन तड़ित रुन अहि निसि चरु नरु काम।
घन पद कपि विप करट गर ओज कठिन विय ग्राम ॥५१॥
द्विज छत्र कच धनु असि सर खंजन वीन मराल।
मृगमद पय पिक कमल छवि है सारँग नँदलाल ॥५२॥

(हरि)

हरि चंदन। चातिक किरणि शुक सत्य शिव कील।
शुक दादुर जम भय मिटै हरि भजि गहि मन सील ॥५३।

(रस)

हर्ष तिक्त 'सिगार रस द्रवी सुगंधऽरु राग।
पारद बीरज कोकनद ए रस हरि रस पाग ॥५४॥

(स्नेह)

बीस ऊपरें एक सो नंददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि कीने हैं जु नवीन ॥५५॥
श्री मत श्री नँददास जू रस मय आनँदकंद।
रामहरी की ढीठता छिमियौ हो जग बंद ॥५६॥
कोश मेदिनी आदि औ कछू शब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि बिच रुधि दिय बाँचौ जाचित भाइ ॥५७॥
जो इहि अनेका अर्थ कौं पढ़ै सुनै नर कोइ।
सो अनेक अर्थहि लहै पुनि परमारथ होइ ॥५८॥

परिशिष्ट (ख)

शब्द एक नाना अरथ. मोतिन कैसो दाम।
जो नर करिहैं कठ सो ह्वैहैं छबि के धाम ॥ १ ॥

(गौरी)

गौरी है अंबा-सुता, गौरी हरदी होइ।
गौरी गिरिजा सुदरी, शिव अर्धंगी सोइ ॥ २ ॥

(स्यामा)

स्यामा तिय जो रज बिना, स्यामा रजनी होइ।
स्यामा कहिए प्रीति को, करो स्याम सों सोइ ॥ ३ ॥

(हरिद्रा)

कहिय हरिद्रा बनथली, सिसा हरिद्रा होय।
मंगल बहुरि हरिद्रा, हरद हरिद्रा सोय॥ ४॥

(बारुनी)

गजगति कहिए बारुनी, सुरा बारुनी नाम।
पच्छिम दिसि है बारुनी, बरुन बसहिं तेहि ठाम॥ ५॥

(सुधा)

सुधा दूध, बिजुरी सुधा, सुधा बली निज धाम।
सुधा बधू, पुत्री सुधा, सुधा अमृत को नाम॥ ६॥

(सुभा)

सुभा सुधा, सोभा सुभा, सुभा सिद्ध[1] पर नारि।
बहुरो सुभा हरीतकी, हरि पद की रज धारि॥ ७॥

(कनक)

राजत नृप जु रहे सदा, बहुरो कनक खजूर।
कनक धतूरे को कहत, कनक स्वर्ण सुख-मूर॥ ८॥

(तात, केतकी)

तात पिता अरु भ्रात कहि, तात पुत्र कहँ जान।
फूल, चंद्र, रवि, काम, सर, पंच केतकी नाम॥ ६॥

(सीता)

सीता निधि, सीता छमा, सीता गंगा होय।
सीता सिय[2] की देवता, जेहि जाचे सब कोय॥१०॥

(क्षुद्रा)

छुद्रा बिस्या कहि नटी, मधु माखी की लाल।
इनको छुद्रा कहत हैं, मूरख नर की दास॥११॥

---

१. सिद्ध। २. श्रुति।

(बला)

बला सैन[1], धरनी बला, बला औषधी होय।
बला चंचला लक्ष्मी, जेहि जाचै सब कोय ॥१२॥

(चक्र)

चक्र बरन रथ चक्र गन, चक्र विहंग विसेस।
चक्र सुदर्शन कृष्ण को, चक्र नृपति कौ देस ॥१३॥

(पुंडरीक)

पुंडरीक सायक कहत, पुंडरीक आकास।
पुंडरीक हरि कमल जहँ, तहँ कमला को बास ॥१४॥

(परिघ)

परिघ वज्र, परवत परिघ, अवसर सर्वं विसेस।
परिघ बान जल थल नदी, परिघ सूर ससि सेस ॥१५॥

(नेत्र)

नेत्र नयन औ नेत्र पट्ट, मृगमद नेत्र कहंत।
नेत्र ज्ञान जब जागमगे, तब कहिए भगवंत ॥१६॥

(पंथी)

पंथी हरिनी को कहत, पंथी गाया जीव।
पंथी बहुरो ईस्वरी, जिहि सङ्ग छिति बस कीव ॥१७॥

(कह)

कह ब्रह्मा, कह पवन घन, कह कहिए पुनि धाम।
कह छिति में नर ऊपजे, भजै न सुंदर स्याम ॥१८॥

(हार)

हार कुसुम मोतियान कौ, हार छेत्र विस्तार।
हार विरह कानन कहे, रजत बमाया हार ॥१९॥

---

१. सैन।

(अहि)

अहि वासर, अहि रुधिर पुनि, अहि एक दानव नाम ।
अहि भुजंग जमुना पर्‍यो, सो नाथ्यो घन स्याम ॥२०॥

(तंत)

तंत तार औ तंत सुख, सिद्ध औषधी तंत ।
तंत कहत संतान कहँ, हरि रस जानहु तंत ॥२१॥

(छिन)

छिन उत्सव अरु नेम छिन, छिन जु मुहूर्त कहंत ।
छिन यह समय न पाइये, भजले मन भगवंत ॥२२॥

(काष्ट)

काष्ट काल या विसखई, काष्ट अमर पुर काष्ट ।
काष्ट जु बहुरि बसुंधरा, बुद्धि हीन नर काष्ट ॥२३॥

(पलास)

हरित जु बरन पलास कहि, रच्छस बहुरि पलास ।
द्रुम दल सैल पलास कहि, बहुरो काठ पलास ॥२४॥

(सित)

सित रूपौ, सित ज्ञान पुनि, सित सुकृतहिं कहंत ।
सित तीक्षन सित सुक पुनि, सित उज्जल भगवंत ॥२५॥

(गुरु)

गुरु नृप, गुरु माता पिता, गुरु प्रोहित, गुरु छंद ।
बिहफे गुरु, दीरघ गुरू, सब के गुरु गोविंद ॥२६॥

(नंदन)

नंदन चंदन कों कहत, नंदन बन घन दात ।
नंदन कहिये पुत्र कहँ, जेहि हरषें पितु मात ॥२७॥

(अवतंस)

भ्रात पुत्र अवतंस कहि, अल अवतंस सुजान।
सोरह बरसी बयस कौं, अभिनव कंत सुमान ॥२८॥

(कुंतल)

सूत्रधार कुंतल कहत, कुंतल कपटी वेस।
खंडपान कुंतल कहैं, कुंतल बहुरो केस ॥२६॥

(कोन, द्रोन)

कोन मही अरु कोन दिस, गृह अंतर कहि कोन।
द्रोन काक अरु द्रोन गिरि, कर कहि बारिज द्रोन ॥३०॥

(कातर)

कातर कानन कौं कहत, कातर कहिए हार।
कातर कहि दुरभिच्छ पुनि, अस्तुति करी विचार ॥३१॥

(कुथ)

कुथ सुकथा कुथ कोय पुनि, कुथ करि कमल निसोइ।
प्रातः स्नाई विप्र कुथ, कमल कली बिध होइ ॥३२॥

(कुंत)

कुंत सलिल औ कुंत सद, कुंत अनिल, वसु, काल।
कुंत कमल पुनि कुंत सुख, कुंत सुरंग कराल ॥३३॥

अनेकार्थ की मंजरी पढ़ै सुनै नर कोय।
अर्थ भेद जानै सबै पुनि परमारथ होय ॥३४॥

(मयूर)

नीलकंठ, केकी, बरहि, शिखी, शिखंडी होय।
शिव-सुत-वाहन, अहिभषी, मोर, कलापी सोय ॥१६॥
नटत मयूर अटान चढ़ि, अतिहि भरे आनंद।
निस[1] दिन बनए रहत हैं, नव नीरद नँद-नंद ॥१७॥

(सिंह)

पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव, मृगराय।
सिंह पौरि वृषभानु की, सहचरि पहुँची जाय ॥१८॥

(अश्व)

बाजी, बाह, तुरंग, हय, सैंधव, अश्व, गँधर्व[2]।
तरल तुरंगम जहँ[3] बँधे, हयशाला वे सर्व ॥१९॥

(हस्ती)

हस्ती, दंती, द्विरद, द्विप, पद्मी, वारन, व्याल।
इभ, कुंभी, कुंजर, करी, स्तम्बेरम, सुण्डाल ॥२०॥
सिंधुर, मदवर[4], नाग, कपि, गज सावज, मातंग।
हरि, गयंद झूमत खरे, रजित नाना रंग ॥२१॥

(सिद्धि)

अणिमा, महिमा, गरिमता, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम।
वशीकरन अरु ईशिता, अष्ट सिद्धि के नाम ॥२२॥
एकहु सिद्धी बस करे, तेहि सिध कह संसार।
ते वृषभानु भुआल के, द्वार बोहारनहार ॥२३॥

(नवनिधि)

महा पद्म अरु पद्म-पुनि, कच्छप, मकर, मुकुंद।
शंख, खर्व अरु नील ये, अपर कहावत नंद ॥२४॥

---

१. छिन छिन। २. 'पमान। ३. भीर जहँ, नैकु न देवे जान। ४. पद्म।

ये नवनिधि जे जगत में, विरले काहू दीख।
ते वृषभानु भुआल के, परत भिखारिन भीख ॥२५॥

(मुक्ति)

मुक्ति, अमृत, कैवल्य पद, अपुनर्भव, अपवर्ग।
निश्रेनी, निर्वान सुख, महा सिद्धि वर स्वर्ग ॥२६॥
मुक्ति जु चार प्रकार की, नहिं पैयत जप जोग।
ते वृषभानु भुआल के, पावत पामर लोग। २७॥

(राजा)

स्वामी, अधिपति, प्रभु बड़े, नरपति, छितिपति, भूप।
बाहुज[1], भूपति, नृपति, नृप, श्री वृषभानु अनूप ॥२८॥

(इंद्र)

शक्र, शतक्रतु शची-पति, सक्रंदन, पुरहूत।
कौशिक, वासव, वृत्रहा, मघवा, मातलि-सूत ॥२९॥
जिष्णु, पुरंदर, वज्रधर, आखंडल, रिपु पाक।
शोभित जहँ वृषभानु नृप, को है इंद्र वराक ॥३०॥

(देव)

देव, अमर, निर्जर, विबुध, सुर, सुमनस, त्रिदिवेश।
वृंदारक, सु विमानगति, अग्नि, जिह्व, अमृतेश ॥३१॥
दिविष, दलेपा, वन्हिमुख, गीरवान, अति ओप।
कौन देवता रम जहाँ, बनि बैठे सब गोप ॥३२॥

(अमृत)

सोम, सुधा, पीयूप, मधु, अगदराज, सुरभोग।
अमी,[2] अमृत जहँ हरि-कथा, मत्त रहत सब लोग ॥३३॥

---

१. राजा जहँ वृषभानु नृप बैठे सभा अनूप। २. अमी जहाँ कान्हर-कथा मत्त।

नाममाला

(दोहा)

नमामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल-दल-नैन ।
जग-कारन करुनायतन[1], गोकुल जाको ऐन ॥१॥
उचरि सकत नहिं संस्कृत, जान्यो चाहत नाम ।
तिन हित 'नंद' सुमति जथा, रचत नाम के दाम ॥२॥
गूंथनि नाना नाम को, अमरकोष के भाय ।
मानवती[2] के मान पर, मिले अर्थ सब आय ॥३॥
नाम रूप गुन भेद के, सोइ प्रगट सब ठौर ।
या बिन तत्व न और कछु, कहै सु अति बड़ बौर ॥४॥

(मान)

अहंकार, मद, दर्प पुनि, गर्व, स्मय[3], अभिमान ।
मान राधिका कुँवरि को, सब को करु कल्यान ॥५॥

(सखी)

बयसा[4], सुमुखी, सखी पुनि, हितू, सहचरी आहि ।
अली कुँवरि वृषभानु की, चली मनावन ताहि ॥६॥

(बुद्धि या प्रज्ञा)

बुद्धि, मनीषा, सौमुखी, मेधा, धिषना, धीय ।
मति सौं मति[5] करतै चली, भली विचच्छन तीय ॥७॥

(सरस्वती)

बानी, बाक, सरस्वती, गिरा[6], शारदा, नाम ।
चली मनावन भारती, बचन चातुरी काम ॥८॥

१. करुणार्णव । २. मानमनी । ३. सगहि । ४. वेन्या, सारंधी, । ५. मतौ जु कर चली । ६. इला ।

(शीघ्र)

आशु, झटिति, द्रुत, तूर्ण, लघु, छिप्र, सत्वर, उत्ताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर लखि नँदलाल ॥९॥

(धाम)

सदन, सद्म, आराम[1], गृह, आलय, निलय, स्थान[2]।
भवन भूप वृषभानु के, गई सहचरी[3] स्यान ॥१०॥

(सुवर्ण)

कंचन, अर्जुन, कार्त्तसुर, चामीकर, तपनीय।
अष्टापद, हाटक, पुरट, भर्म्म,[4] रजत, रमणीय ॥११॥

(रूपा)

रुक्म, रजत, दुर्दान पुनि, जातरूप, खर्ज्जूर।
रूपे के गोशाल तहँ, भूप-भवन तें दूर ॥१२॥

(उज्ज्वल)

शुक्ल, शुभ्र, पांडुर विशद, अर्जुन, सित, अवदात।
धवल नवल ऊँचे अटा, करत छटा सों बात ॥१३॥

(शोभा)

भा, आभा, शोभा, प्रभा, सुपमा, परमा, कांति।
छवि[5], द्युति अति लखियत जहाँ, सुरन होत मन भ्रांति ॥१४॥

(किरण)

अंशु, गभस्ति, मयूख, कर, गो, मरीचि, वसु, ज्योति।
रश्मि परत ससि-सूर की, जगमग जगमग होति ॥१५॥

---

१ आगार या सकेत। २. निकेत। ३. सखी इहि हेत। ४. महा-रजत। ५. द्युति न परत कहि भौन की सुर भूले दिगि भाँति।

(मयूर)

नीलकंठ, केकी, बरहि, सिखी, सिखंडी होय।
सिव-सुत-वाहन, अहिभषी, मोर, कलापी सोय ॥१६॥
नटत मयूर अटान चढ़ि, अतिहि भरे आनंद।
निस[1] दिन घनए रहत हैं, नव नीरद नँद-नंद ॥१७॥

(सिंह)

पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव, मृगराय।
सिंह पौरि वृषभानु की, सहचरि पहुँची जाय ॥१८॥

(अश्व)

बाजी, बाह, तुरंग, हय, सैंधव, अश्व, गँधर्व[2]।
तरल तुरंगम जहँ[3] बँधे, हयशाला वे सर्व ॥१९॥

(हस्ती)

हस्ती, दंती, द्विरद, द्विप, पद्मी, वारन, व्याल।
इभ, कुंभी, कुंजर, करी, स्तम्बेरम, सुण्डाल ॥२०॥
सिंधुर, मद्दवर[4], नाग, कपि, गज सावज, मातंग।
हरि, गयंद झूमत खरे, रंजित नाना रंग ॥२१॥

(सिद्धि)

अणिमा, महिमा, गरिमता, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम।
वशीकरन अरु ईशिता, अष्ट सिद्धि के नाम ॥२२॥
एकहु सिद्धी बस करै, तेहि सिध कह संसार।
ते वृषभानु भुआल के, द्वार बोहारनहार ॥२३॥

(नवनिधि)

महा पद्म अरु पद्म पुनि, कच्छप, मकर, मुकुंद।
शंख, खर्व अरु नील ये, अपर कहावत नंद ॥२४॥

---

१. छिन छिन। २. 'कमान। ३. भीर जहँ, नैकु न दैये जान। ४. पवग।

ये नवनिधि जे जगत में, बिरले काहू दीख।
ते वृषभानु भुआल के, परत भिखारिन भीख ॥२५॥

(मुक्ति)

मुक्ति, अमृत, कैवल्य पद, अपुनर्भव, अपवर्ग।
निश्रेनी, निर्वान सुख, महा सिद्धि वर स्वर्ग ॥२६॥
मुक्ति जु चार प्रकार की, नहिं पैयत जप जोग।
ते वृषभानु भुआल के, पावत पामर लोग।२७॥

(राजा)

स्वामी, अधिपति, प्रभु बड़े, नरपति, छितिपति, भूप।
बाहुज[1], भूपति, नृपति, नृप, श्री वृषभानु अनूप ॥२८॥

(इंद्र)

शक्र, शतक्रतु शची-पति, सक्रंदन, पुरहूत।
कौशिक, वासव, वृत्रहा, मघवा, मातलि-सूत ॥२९॥
जिष्णु, पुरंदर, वज्रधर, आखंडल, रिपु पाक।
शोभित जहँ वृषभानु नृप, को है इंद्र वराक ॥३०॥

(देव)

देव, अमर, निर्जर, विबुध, सुर, सुमनस, त्रिदिवेश।
वृंदारक, सु विमानगति, अग्नि, जिह्न, अमृतेश ॥३१॥
दिविप, दनेया, वन्हिमुख, गीरवान, अति ओप।
कौन देवता रम जहाँ, घनि बैठे सब गोप ॥३२॥

(अमृत)

सोम, सुधा, पीयूप, मधु, अगदराज, सुरभोग।
अमी,[2] अमृत जहँ हरि-कथा, मत्त रहत सब लोग ॥३३॥

---

१. राजा जहँ वृषभानु नृप बैठे सभा अनूप। २. अमी जहाँ कान्हर-कथा मस्त।

(भृत्य)

विधिकर, किंकर, दास पुनि, अनुचर, अनुग, पदाति ।
भृत्य फिरत जहँ मैंन से, छबि बरनी नहिं जात ॥३४॥

(दासी)

भृत्या, दासी, किंकरी, चेरी भरे जु अंग ।
राजति मनिमय अजिर में, को उरबसि को रंभ ॥३५॥

(अंतःकरण)

स्वांत हृदय, मनमथ-पिता, आत्मा मानस नाउँ ।
चित में सोचति सहचरी, भीतर कैसे जाउँ ॥३६॥

(अंजन)

कज्जल, गज पाटल, मखी, नाग दीप-सुत सोय ।
लोपांजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोय ॥३७॥

(हीरा)

निष्क, पदिक अरु वज्र पुनि, हीरा बनै जु ऐन ।
सकुची तिय मन निरखि तन, भूप भवन छबि मैन ॥३८॥

(मोती)

शशि-गोती, मोती, शुलिक, जलज, सीप-सुत नाम ।
मुक्ता बंदनवार तहँ, शोभित सुंदर धाम ॥३९॥

(मंगल)

कुंज, अँगारक, भौम पुनि, लोहितांग, महि-माल ।
मंगल से ठाढ़े उदित, धरे जु दीपक लाल ॥४०॥

(शुक्र)

उशना, भार्गव, काव्य, कवि, असुर-पुरोहित सोहि ।
गजमुक्तन की माल यह, शुक्र धरे जनु पोहि ॥४१॥

(लक्ष्मी)

श्री, पद्मा, पद्मालया, कमला, चपला होय।
सिंधु-सुता, मा, इंदिरा, विष्णु-वल्लभा सोय॥४२॥
जाकी नैन-कटाक्ष-छबि, रही सकल जग छाय।
सो लक्ष्मी वृषभानु-गृह, आपुहि प्रगटी आय॥४३॥

(माता)

अंबा, सावित्री, प्रसू, जननी, माता नाम।
जननी राधा कुँवरि की, बैठी मंगल-धाम॥४४॥

(नमस्कार)

बंदन, अभिवादन,[1] प्रनति, नमस्कार करि ताहि।
आगे[2] अलि सकुचत चली, जहाँ कुँवरि-बर आहि॥४५॥

(सीढ़ी)

आरोहन, आरोह पुनि, निःश्रेनी, सोपान।
मनिमय सीढ़ी सखि चढ़ी, लखी न काहू आन॥४६॥

(शय्या)

कसिपु, तल्प, शय्या, शयन, संस्तर[3] पुनि शयनीय।
दुग्ध फेन सी सेज पर, बैठी तिय कमनीय॥४७॥

(तकिया)

उपबर्हन, उपधान पुनि, कंदुक सोई छीन[4]।
मृदुल उसीसो उठँगि कै, बैठी[5] तिय रिसनीय॥४८॥

(बेटी)

पुत्री, दुहिता, कन्यका, तनया, तनुजा होय।
सुता जहाँ वृषभानु की, तहाँ गई सखि सोय॥४९॥

---

१. अति बदन। २. लंब प्रनाम करत। ३. संवेशन। ४. उसीर।
५. बैठी मानिक मीर।

(फूल)

कुसुम, प्रसून, सुमनसु पुनि, पुष्प, फलपिता नाम।
फूल, मंजरी गेंद कर, खेलत छबि सों बाम ॥५०॥

(बंसी)

बंसी, कुंभिर, मीनहा, मच्छ-घातिनी नाम।
बेसर सों उरझी जु लट, मानों बंसी काम ॥५१॥

(श्रवण)

श्रवण, श्रोत्र, श्रुति, शब्द-गृह, कर्ण खुमी छबि भोर।
मनु बिबिरूप सु कमल-कलि, फूली ससि-मुख-तीर ॥५२॥

(केश)

अलक, सिरोरुह, चिकुर, कच, कुंचित कुटिल सुढार[1]।
कुंतल[2] कबरि ललाट जनु, चंदहि गई दरार ॥५३॥

(ललाट)

मस्तक[3], अलिक, ललाट पर, बेंदी बनी जराय।
मनों भाल तें भाग्य-मनि, प्रगटी बाहर आय ॥५४॥

(नेत्र)

लोचन, अंबक, चच्छु, दृग, ईछन रूप अधीन।
कछु रिस राते नैन जनु, जावक भींजे मीन ॥५५॥

(अधर)

बनित, ओष्ठ पुनि रदन छद, अधर मधुर पढ़ि भाय।
नाम लिखत जाको तुरत, किलक ऊख ह्वै जाय ॥५६॥

---

१. सुधार। २. लटके ललित। ३. शेखर अलिकऽरु गोधिका पट बेंदीय जराय।

(दशन)

रदन, दसन द्विज, दंत, रद, मदन[1] करत रँग भीज।
जनु नव नीरद मध्य में, शीतल विद्युत बीज ॥५७॥

(वृहस्पति)

धिषण, शिखंडी, आंगिरस, सुराचार्य, गुरु, जीव।
वाचस्पति जनु[2] ससि तरे, बनी निबौरी ग्रीव ॥५८॥

(मुख)

आनन, आस्य जु पुनि वदन, वक्त्र, तुंड छबि भौन।
मुख रूखो है जात इमि, जिमि दरपन मुख-पौन ॥५६॥

(ग्रीवा)

गल, कंधर, ग्रीवा बहुरि, कंठ कपोती कौन।
पीक-लीक जहँ झलमलइ, ससि-छबि कोनी जौन ॥६०॥

(हाथ)

हस्त, बाहु सुख पानि, कर, कबहूँ[3] धरत कपोल।
बर अरबिंद बिछाय जनु, सोवत इंदु अडोल ॥६१॥

(उरोज)

उरज, पयोधर, कुच कहिय[4], अस्तन उर छबि-ऐन।
कंचन-संपुट देव जनु, पूजि छिपाए मैन ॥६२॥

(किंकिणी)

रसना, काँचो, किंकिनी, क्षुद्र मेखला जाल।
क्षुद्रावलि जनु मयन-गृह, बाँधी बंदनमाल ॥६३॥

---

१ इमि दमकत। २ ससि तरि उदित। ३. कनुडुँक धरे। ४. स्तन, उर मंडन छनि ऐन।

(नूपुर)

तुला, कोटि, मंजीर पुनि, नूपुर रुनकत पाय।
रुनकि उठी जनु मयन की, बीना सहज सुभाय ॥६४॥

(अंबर)

चोल, निचोल, दुकूल, पट, अंशुक, बासस, चीर।
पिय तन बास जु बसन में, छिन छिन होत अधीर ॥६५॥

(कीर)

रक्त-चंचु, शुक, कीर जब, पढ़न लगत पिय नाम।
झुकि झहरावति मुसुकि तब, अति छवि पावति बाम ॥६६॥

(दर्पन)

प्रतिबिंबऽरु आदर्श पुनि, मुकुर स्वकर तिय लेति।
पियमूरति नैनन निरखि, फेरि डारि तेहि देति ॥६७॥

(बीणा)

तंत्री, बीणा, वल्लकी, बहुरि विपंची आहि।
यंत्र बजावति सहचरी, बहुरो बरजति ताहि ॥६८॥

(अंतरध्यान)

गुप्त, तिरोहित, अंतरित, गूढ़, दुरूढ़, निलीय।
लोपांजन सों लुकि सखी, देखि एहि विधि सीय ॥६९॥

(पान)

नागवल्लि[1]-दल, पान, द्विज, वामयूढ सखि चाहि।
भौंह उमेठव मिठनु जनु, चाप चढ़ावत आहि ॥७०॥

(समय)

सामय, समय, अनीह, मय, वेला, अनिमिष, काल।
घरी घेर लौं सखिन यों, देखी बाल रसाल ॥७१॥

---

१. मुखवासन तांबूल द्विज पान सखी करि चाहि।

(पानी)

अंबु, कमल, कीलाल, जल, पय, पुष्कर, बन, वारि।
अमृत, अर्ण, जीवन, भुवन, घन रस अरु पापारि ॥७२॥
मेघ-पुष्प, विष, सर्व-मुख, कं, कबंध, रस, तोय।
उदक, पाथ, संबर, सलिल, आप[1] पीठ पुनि सोय ॥७३॥
पानी नैन पखारिकै, अंजन हाथै लीन।
प्रगट भई पिय की सखी, निपट सुसंकित दीन ॥७४॥

(भय)

साध्वस, डर, आतंक, भय, भीति, भीर, भी,[2] त्रास।
डरत सहचरी सकुच तें, गई कुँवरि के पास ॥७५॥

(चरण)

चरन, चलन, गतिवत पुनि, अंघ्रि, पाद, पद, पाय।
पग बदन करि सहचरी, ठाढ़ी सन्मुख जाय ॥७६॥

(हरिद्रा)

पीता, गौरी, कांचनी, रजनी, पिंडा नाम।
हरदी चूनो परत जिमि, इमि देखत भइ वाम ॥७७॥

(टेढ़ा)

वक्र, असित, कुंचित, कुटिल, टेढ़ो मोहन ठौर।
अरुन कमल पर प्रात जनु, पंख पसारे भौंर ॥७८॥

(भौंह)

भ्रू, तर्ज्री, भृकुटी, कुटिल, भौंह सतर करि भाल।
बहुत काल बीते तनक, बोली बाल रसाल ॥७९॥

(क्रोध)

कोप, क्रोध, आमर्ष, तम, रोष पाय रिपु होय।
छोभ भरी तिय को निरखि, डरी सहचरी सोय ॥८०॥

---

१. अपु म्पीठ। २. पुनि।

(क्षेम)

छेम[1] भद्र मंगल शुभम, संशिव, शिव, कल्यान।
कित डोलत है कुशल कहु, पूछति कुँवरि सुजान ॥८१॥

(संज्ञा)

संज्ञा आवै गोत्र पुनि, छेम धाम तुम नाम।
अमिय वरस वर दरस तें, सब परिपूरन काम ॥८२॥

(स्त्री)

स्त्री, ललना, सीमंतिनी, दारा, बनिता, बाम।
अबला, बाला, अंगना, प्रमदा, कांता नाम ॥८३॥
वरुनी, रमनी, सुंदरी, तनु[2] ऊरज पुनि सोइ।
तिय तोसी तिहुँ लोक में, रची बिरंचि न कोइ ॥८४॥

(ब्रह्मा)

अज, कमलज, विधि, जगपिता, धाता, सतधृत होइ।
स्रष्टा, चतुरानन, धिषण, द्रुहिण, स्वयंभू सोइ ॥८५॥
लै लै सत सत छबिन की, जिती हुती जग माँझ।
तोहि रची बिधिना निपुन, बहुरयो ह्वै गयो बाँझ ॥८६॥

(सुंदर)

सुभग, सुसम, बंधुर, रुचिर, कांत, काम, कमनीय।
रम्य, सुवेसऽरु भव्य पुनि, दर्शनीय, रसनीय ॥८७॥
तैसोइ[3] सुंदर वर कुँवर, नागर नगधर पीय।
जोरि रचि बिधिना निपुन, एक प्रान तनु बीय ॥८८॥

(युधिष्ठिर)

धर्मराज, अजातरिपु, कौनतेय, कुरुराय।
नृपति युधिष्टिर सम प्रिया, तेरे[4] पीय सुभाय ॥८९॥

---

१. क्षेम, अनामय, भद्र, भव। २. तनूदरी। ३. कम्र मनोज्ञ मनोहर-ऽरु। ४ तेरे सौति अभाव।

(अर्जुन)

जिष्णु, धनंजय, विजय, नर, फाल्गुन, कीटी होय ।
गुडाकेश, गांडीवधर, पार्थ, कपिध्वज सोय ॥९०॥
अर्जुन सो धनुधर अवधि, तिहि सम और न होय[1] ।
तिमि तुव प्रेम अवधि सुविधि, रचो विरंचि न कोय[2] ॥९१॥

(गंगा)

विष्णुपदी, निर्जर-नदी, निगम-नदी, हरि-रूप ।
धुवनदा, मंदाकिनी, भागीरथी अनूप ॥९२॥
सुरसरि ज्यों तिहुँ लोक में, पाप-हारि सुभ-कारि ।
तिमि तुव कीरति-सरित विय, किय पुनीत नर-नारि ॥९३॥

(दीर्घ)

प्रथुल, प्रांसु, परिणद्ध, प्रथु, आयत, तुंद, बिशाल ।
दीर्घ स्वास जो भरति अलि, का कारन है बाल ॥९४॥

(शरीर)

काय, कलेवर, कुणप, बपु, देह, आतमा, अंग ।
बिग्रह, उपधन, संहनन, धाम, सरीर पतंग ९५॥
तुव तन समसरि करन हित, कनक आगि झपि लेइ ।
कोमल सरस सुगंध नहिं, को कवि उपमा देइ ॥९६॥

(कमल)

पुंडरीक, पुष्कर, कमल, जलज, अब्ज, अंभोज ।
पंकज, सारस, तामरस, कुवलय, कंज, सरोज ॥९७॥
मकरंदी,[3] अरविंद पुनि, पद्म, कुसेसय भाँउ ।
क्यों[4] मुख-नलिन मलिन कछू, देखति हौं बलि जाउँ ॥९८॥

---

१. वीय । २. तीय । ३. सतपत्री औ सहसदल । ४. पंकेरुह अरविंद-मुख लखि मलीन तेहि बाम ।

(चंद्रमा)

इंदु, कलानिधि, सुधानिधि, जैवात्रिक, ससि, सोम ।
अब्ज अमीकर, छपाकर, विधु, कहियत[1] हिम-रोम ॥९९॥
बिछुरि चंद ते चंद्रिका, रहति न न्यारी होइ ।
इमि अवलोकति बाल कहुँ, कहि बलि कारन सोइ ॥१००॥

(काम)

मदन जु मन्मथ, मनोभव, अतनु, पंचसर, मार ।
मीनकेतु, कंदर्प पुनि, दर्पक बिरह बिदार ॥१०१॥
पुष्प-चाप, मनसिज, वितनु, शंबरारि, स्मर, काम ।
पति सों रति जिमि मैन रुठि, इमि दिखियति तोहिं भाम ॥१०२॥

(मेघ)

धाराधर, जलधर मिहिर, जग-जीवन, जीमूत ।
मुदिर, बलाहक, तड़ित-पति, कामुक,[2] धूम-सपूत ॥१०३॥

(भौंर)

मधुकर, भ्रमर, द्विरेफ, अलि, अलिन, शिलीमुख, भृंग ।
चंचरीक, रोलंब पुनि, कीलालप सारंग ॥१०४॥
मधुप, मधुव्रत, मधुरसिक, इंदीवर-मधु-चोर ।
भँवर[3] नाम जुरि मौरवी, होव काम सिरमौर ॥१०५॥

(दामिनी)

छपा-रुचि, छटा, अकालकी[4], तड़ित चंचला होइ ।
विद्युत, संप, विजाग, विजु, दामिनि घन विन सोइ ॥१०६॥

(सेना)

प्रतनी, ध्वजनी, वाहिनी, चमू बरूथिन ऐन ।
साधक, दंड, अनीक, बल, नृप बिन बने न सैन ॥१०७॥

---

१. हिमकर । २. परजन, जग्य-सपूत । ३. भ्रमर बिना केतकि न कछु केतकि बिना न भौंर । ४. अकाश की ।

(धनुष)

सरासनऽरु कोदंड, धनु, कार्मुक, रिपु-संताप।

(प्रत्यंचा)

प्रत्यंचा, गुन, मौरवी, जेह, पनिच सँग चाप ॥१०८॥

(प्रिया)

इष्टा, दयिता, वल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ।
पिय कें तोसी प्राणपति, और न देखी कोइ ॥१०९॥

(लता)

प्रतती, विराती, वल्लरी, विशनी, लता, प्रतान।
अमरबेलि जिमि मूल बिन, इमि देखत तुव मान ॥११०॥

(मित्र)

सुहृद, दयत, वल्लभ, सखा, प्रीतम परम सुजान।
सहकारी, सहकृत पिय न, करै अकारन मान ॥१११॥

(पुत्र)

आत्मज, सूनु, अपत्य पुनि[1], तनुज, तनय कहि तात।
नंद[2] के नंद गोविंद सों, न करु गर्व की बात ॥११२॥

(मनुष्य)

मानुष, मर्त्य[3]ऽरु पुरुष, नर, मानव, मनुज, पुमान।
नर जनि जानहु नंदसुत, हरि ईश्वर भगवान ॥११३॥

(जोगीश्वर)

रिषि, भिच्छुक, तपसी, जती, व्रती, तपी, मुनि आहि।
संजति[4] बरनी संजमी, जोगी खोजत ताहि ॥११४॥

---

१. तनुज, तनय, तनधयु तात। २. नँदनदन। ३. परम पवित्र बपु।
४. जोगीजन मिलि तप करैं नितही।

(वेद)

आम्नाय, श्रुति, ब्रह्म, पुनि, धर्म-मूल सब काम।
निगम, अगम जाकौं कहत, सोई सुंदर स्याम ॥११५॥

(शेष)

शेष, महाअहि, सर्पपति, धरनीधरन, अनंत।
सहस-बदन करि गुन गनत, तदपि न पावत अंत ॥११६॥

(धर्मराज)

वैवस्वत, मृतु, पितरपति, सजमनी-पति होइ।
महिषध्वज, नरदंडधर, समवर्त्ती[1] पुनि सोइ ॥११७॥
अंतक, काल, कृतांत, जम, जातें जग डरपंत।
सो तौ पिय भ्रूभंग तें, थरथर घाति काँपंत ॥११८॥

(कुवेर)

पुन्य जनेश्वर, वैश्रवन, धनद, ऐलविल होइ।
गुह्यकपति, त्र्यंबक-सखा, राजराज पुनि सोइ ॥११९॥
नर-बाहन, किनर-अधिप, द्रव्याधीस कुवेर।
हरि-पद-पंकज परस कौं, पावत नाहिंन वेर ॥१२०॥

(वरुण)

वरुण, प्रचेता, पांसुपति, जलपति, जलचर-ईस।
सो सुनि तुव पिय पगनि पर, पर्यौ घसत नित सीस ॥१२१॥

(दुर्गा)

उमा, अपरना, ईस्वरी, गवरी, गिरिजा होइ।
रुद्रा, चंडिका, अंबिका, भवा, भवानी सोइ ॥१२२॥
अर्प्या, मेनकजा, अजा, सर्व-मंगला नाम।
माया जहाँ[2] अधीन जग, विस्तारति है धाम ॥१२३॥

---

१. सूरज-सुत। २. अपने हेत करि जग निस्तारति धाम।

(गणेश)

लंबोदर, हेरंब पुनि, द्वैमातुर, इकदंत।
मूषक-वाहन, गज-बदन, गनपति, गिरिजा तंत ॥१२४॥
कोटि बिनायक जो लिखैं, महि से कागर कोटि।
ता परि तेरे पीय के, गुन नहि आवैं टोटि ॥१२५॥

(धूर्त)

व्याजी, जिह्म, कुटिल, कितव, छद्मी, कुहक छली जु।
कपटी कान्हर कुँवर की, केती कहत भली जु ॥१२६॥

(कुरंग)

श्रैण, हरिण, वातप, प्रपद, हरि, सारँग पुनि आहि।
करसायल[1] मृग दृग लियें, चलि थोरौ इतराहि ॥१२७॥

(पाप)

एन, वृजिन, दुहकृत, दुरित, अघ, अमीव पुनि पंक।
किल्बिष, कल्मष, कलुष, कलि, कश्मल, समल, कलंक ॥१२८॥
पाप[2] महाबन दहन दव, जाकौ रंचक नाम।
ताकौं तू कपटी कहति, कहा कहौं तोहि भाम ॥१२९॥

(पाषान)

ग्राव, अस्म, प्रस्तर, उपल, सिल पषान अति भार।
पानी पर पाथर तिरें, जाके नाम अधार ॥१३०॥

(नौका)

उडुप, पोत, नवका, पलन, तरि, वहित्र, जल-जान।
नाम-नाँव चढ़ भव-उदधि, केते तरे अजान ॥१३१॥

---

१. मृग-सिसु ऐसे दृग लिए चलि। २. पाप हारि ज्यों नीर कर।

(रुधिर)

श्रोणित, रक्त, ककोणि पुनि, रुधिर, असृक, क्षतजात ।
लोहू पीयत पूतना, पूत भई छ्वै गात ॥१३२॥

(राक्षस)

कौनय, अश्रय पुन्य जन निषका-सुत, दुर्नाद ।
कर्बुर, असुर, निसाचरऽरु जातुधान, क्रव्याद ॥१३३॥
ऐसे राक्षस पातकी ह्वाँ देखी गति होति ।
उलटि समानी पीय में परगट जाकी जोति ॥१३४॥

(धूरि)

धूलि, धूसरी, खेह, रज, पांशु शर्करा मंद ।
हरिपद-सिकता, रेनु कौं वांछत सनक-सनंद ॥१३५॥

(महादेव)

गंगाधर, हर, शूलधर, ससिधर, शंकर, धाम ।
शर्व, संभु, शिव, भीम, भव, भर्ग, काम-रिपु नाम ॥१३६॥
त्रिनयन, त्रियंक, त्रिपुर-अरि, ईस, उमापति होइ ।
जटी, पिनाकी, धुर्जटी, नीलकंठ, मृड सोइ ॥१३७॥
वामदेव से देव बलि जाको धरत धियान ।
ताकौं तू कपटी कहत यह घौं कौन सयान ॥१३८॥

(सूर्य)

देव, दिवाकर, विभाकर, दिनकर, भास्कर, हंस ।
मिहर, तिमिरहर, प्रभाकर, विवस्वान, तिग्मंस ॥१३९॥
रवि-मंडल मडन जु को कहत जु मुनि-जन जाहि ।
सो यह नागर नंद कौ क्यों बलि कपटी आहि ॥१४०॥

(मिथ्या)

मिथ्या, मोघ, मृषा, अनृत, वितथ, अलीक, निरत्थ ।
ऐसे पिय सों झूठ बलि, क्यौं बोलिये असत्य ॥१४१॥

(निकट)

अती पार्श्व, अवि दूर, तट, उप, समीप, अभ्यास।
अवसि अनादर होइ जो, रहै निरंतर पास ॥१४२॥

(चंदन)

गंध-सार, श्री खंड, हरि, मलयज, भद्र, पटीर।
चंदन कौं ईंधन करति, मलया-वासी भीर ॥१४३॥

(मीन)

सफरी, अनमिष, मत्स्य, तिमि, पृथरोमा, पाठीन।
मकर, उलूपी, अंडभव, वैसारन, झष, मीन ॥१४४॥
केत[1] नाम जुरि मदन है, सिंध चंद्र ढिग जाइ।
चंदहिं मंद न जानहीं जलचर मानहिं ताहि ॥१४५॥

(सागर)

सिंधु, सरितपति, सलिलपति, अंभोनिधि, कूपार।
इरावान, अर्णव, उदधि, कौस्तुभ-अवधि, अपार ॥१४६॥
रतनाकर गुन रूप कौं, सुंदर गिरिधर पीय[2]।
तिहिं मिलि प्रेम कलोलिये, यों न बोलियै तोय[3] ॥१४७॥

(मर्कट)

कपि, साखामृग बलीमुख, प्लवग, कीस, लंगूर।
बानर के कर नारियर, दयौ विधाता क्रूर ॥१४८॥

(बलभद्र)

रौहिणेय, बलभद्र, बल, संकर्षण, बलिराम।
नीलांबर, रेवतिरमण, मुसली, पालक काम ॥१४९॥

---

१. छीर समुद के तीर बलि बरात जु जलचर आहि।
२. लाल। ३. माल।

अब रंचक क्यों, चुप करै, किते बैठ जिउ लेत।
हरि हलधर के वीर कौं कितक बड़ाई देत ॥१५०॥

(पृथ्वी)

पृथ्वी, छिति, छौनी, छिमा, धरनी, धात्री गाइ।
उर्वी, जगती, वसुमती, वसुधा सर्वं सहाइ ॥१५१॥
अचला, बिपुला, सागरा, धरा, लोवंरा होइ।
गोत्रा, अवनी, कुंभिनी, मही, मेदनी, सोइ ॥१५२॥
विश्वंभरा, वसुंधरा, थिरा, कास्यपी आहि।
रसा, अनंता, भू, इला, विला कहत पुनि ताहि ॥१५३॥
सब धर जिन इक सीस पर, सोहति जिमि कन हीर।
क्यों आनहि तुव आँखितर, ता हलधर के बीर ॥१५४॥

(बाण)

तोमर, खग, जिह्मग, अशुग, विशख, शिलीमुख, बाण।
कण, मार्गण, नाराच, इषु, पत्री सोखन प्राण ॥१५५॥
सायक घाय पिराइ पुनि, सिमिटि सरीर मिलाइ।
वचन-तीर की पीर बलि, मिटै न जो जुग जाइ ॥१५६॥

(वैश्वानर)

पावक, वन्हि, दहन, ज्वलन, शिखी, धनंजय होइ।
सक्र, उषर्बुध, वायु-सख, वीतहोत्र पुनि सोइ ॥१५७॥
जात वेद, ज्वल जोति, हरि, चित्रभानु, वृहभानु।
अनल, हुतासन, विभावसु, निर्जर-जीभ, कृसानु ॥१५८॥
अगनि दगध जे[1] द्रुम लता, फिरि फल फूल[2] न देत।
वचन-दग्ध जे जीव बलि, बहुरि न अंकुर लेत ॥१५६॥

---

१. बलि। २. फूलहिं।

(मूर्ख)

मुग्ध, मंद, जड़,मूक, नड़, अज्ञ, कटुक-वद संठ।
मूरख नर जाने कहा, मनि जैसे कपि-कंठ ॥१६०॥

(विज्ञ)

कृती, कुशल, कोविद, निपुन, पटु, प्रवीन, निष्णात।
पर बिदग्ध नागर, कोऊ जानै रस की बात ॥१६१॥

(अपराध)

अघ, आगस, हेलन, अहित, अवगुन जो हैं पीय।
कूप छाँह जिमि राखिए,[3] यौं न भाखियै तीय ॥१६२॥

(प्रेम)

दोहद, हार्द सनेह, हित, प्रनय, राग, अनुराग।
कित गो तेरो प्रेम वह, हे भामिनि बड़भाग ॥१६३॥

(पर्वत)

अग, नग, भू-भृत, दरीभृत, शृंगी, सिखरी होइ।
सैल, सिलोच्चय, गोत्र, हरि, अचल, अद्रि पुनि सोइ ॥१६४॥
गिरि गोबर्धन बाम कर धरयौ स्याम अभिराम।
तुव उर तैं वह धुकधुकी अबलौं मिटत न भाम ॥१६५॥

(भुजंग)

पन्नग, नाग, भुजँग, उरग, जिम्हग, भोगी, सर्प।
चक्षुश्रव, हरि, सरीसृप, काकोदर, गर दर्प ॥१६६॥
आसी-विष, विषधर, फनी, मनी विलेशय, व्याल।
चक्री, दर्वी, गूढपा, लेलिह, केवल काल ॥१६७॥
काली अहि-गंजन-समैं, मैं राखी गहि बाँहि।
नँद-नंदन पिय-प्रेम बस, परत हुती दह माँहि ॥१६८॥

---

१. राखि उर।

(पीड़ा)

बाधा, बिथुरा, बिथा, रुज, आरति, पीड़ा, ग्लानि।
अब जु न परसति पीर बलि, कित सीखी यह बानि ॥१६६॥

(असुर)

दानव, दनुज, दैत्य, पुनि, सुर-रिपु, निपट असंत।
माया-रूपी रैनि दिन, डोलत असुर अनंत ॥१७०॥

(संध्या)

संध्या, निसिमुख, पितृ-प्रसु, सायंकाल, प्रदोष।
साँझ परी है छैल चलि, छिमा करिहु तजि रोष ॥१७१॥

(कानन)

कानन, बिपिन, अरन्य, बन, गहन, कक्ष, कांतार।
अटवी में इकलै दई मोहन नंद कुँवार ॥१७२॥

(विष)

गरल, हलाहल, गर, अमृत, कालकूट, रस, मार।
रस में विष जिन घोरि बलि, चलि अब करि न अबार ॥१७३॥

(पपीहा)

कल सुकंठ, दात्यूह, हरि, चातिक सारँग नाँव।
घन सों रूठे पपिहरे, नहिंन बने बलि जाउँ ॥१७४॥

(रजनी)

छनदा, छपा, तमस्वनी, तमी तमिस्रा होइ।
निसि, सर्वरी, बिभावरी, रात्रि, त्रिजामा सोइ ॥१७५॥
सुखद सुहाई सरद की, कैसी रजनी जाति।
चलि बलि मोहन लाल पै कत बैठी अनखाति ॥१७६॥

(आकाश)

अंबर, पुहकर, नभ,[1] वियत, अंतरिक्ष, घनबास।
व्योम, अनंत, बिहायसी, प, सुरवर्त्म, अकास ॥१७७॥
गगन जु उडुगन बनि रहे नैंक चहौ तजि रोप।
देखन तेरौ रूप जनु सुरतिय किए झरोप ॥१७८॥

(अल्प)

तुच्छ, अल्प, लव, सूक्ष्म, तनु, निपट कृशोदर तोर।
कहि बलि एतौ मान सँचि राख्यौ है किहि ओर ॥१७९॥

(नख)

करज, पुनर्भव, नखर, नख, हे रँगभीनी भाम।
कबकी छितहि जु खनति बलि, नहि कछु नख सौं काम ॥१८०॥

(संग्राम)

आयोधन, रन, आजि, मृध, आहव, संग, समीक।
संपराइ, संगर, समर, संजुग, कलह, अनीक ॥१८१॥
सुरति जुद्ध जब पीय सौं, तोहि बनैगो भाम।
नख नाराचनि बिनि कुँवरि, करिहौ कहा प्रनाम ॥१८२॥

(मकरी)

लूता, सुत्रा, मर्कटी, उर्णनाभि पुनि होइ।
जनु कहुँ मकरी गुरु करी पकरी बिया सोइ ॥१८३॥

(मार्ग)

वर्त्तम, अध्वा, सरणि, पथ, संचर, पदवी, द्वार।
मग देखत ह्वैहै दई, मोहन नंदकुमार ॥१८४॥

---

१. विष्णुपद।

(कृपा)

मया, दया, किरपा, घृणा, अनुकंपा, अनुक्रोस।
करुना करि करुनानिधे, राधे जिन करि रोस ॥१८५॥

(खड्ग)

रिष्ट, कुशेय, कृपाण, असि, मंडलाग्र, करवाल।
दृग जेतौ तेतौ कहा घाइकरन कह्यौ बाल ॥१८६॥

(दिशा)

कान्या, काष्टा, ककुभ, गो, आसा, दिसि वहि ओर।
कबके चितवत हैं दई नागर नंद किसोर ॥१८७॥

(नदी)

सरिता, धुनी, तरंगिणी, तटिनी, ह्रदिनी होइ।
स्रोता, श्रवती, निम्नगा, पगा, द्विरेफा सोइ ॥१८८॥
शैवालनि, श्रोतस्वनी, द्वीपंती, जलमाल।
आपगान को बाट में सोच कहा है बाल ॥१८९॥

(तात)

तात, जनक, सविता, पिता, बबा तोर गुनधाम।
तोहि पहिलें नँद-नंद कौं, देत हुतौ हे भाम ॥१९०॥

(विवाह)

पाणिग्रहन [1] अरु परिणयन, उद्वह, विहित विवाद।
सांति परी जु भयौ नहीं, दुरा देती वहि नाद ॥१९१॥

(मदिरा)

मधु, माध्वी, मदिरा, इरा, सुरा, वारुणी होय।
आसव, मय, कादंबरी, मधुधारा मैरेय ॥१९२॥

---

१. कर पीडन पानिग्रहन।

मिरा, प्रसन्ना, बुद्धिहा, हाला, सिंधु-प्रसूति।
मद पीयें ज्यों बकत कोउ, कहा बकति है दूति ॥१९३॥

(स्वभाव)

प्रकृति, निसर्ग, सहज अति, विश्वस सील सुभाव।
कवन टेव टेढ़ी परति सुंदरि, सरल कहाव ॥१९४॥

(अंधकार)

अंध, तिमिर, अनकाव, तम, ध्वांत, कुहर, नीहार।
सो तेरें देख्यौ कुँवरि, सौ मन तेल, अंध्यार ॥१९५॥

(वृक्ष)

पत्री, दली, फली, वरहि, वृक्ष, महीरुह गोइ।
शाखी, विटपी, अनोकह, कुज, द्रुम, पादप होइ ॥१९६॥
कल्पतरु तरें तल्प रचि, कब के विलपत[1] पीय।
तदपि न तनिक दया कहूँ, उपजति[2] निर्दय हीय ॥१९७॥

(पत्र)

पत्र, पर्ण, दल, बर्ह, छद, खरकत जब तरु-पात।
तुव आगम-भ्रम चौंकि पिय, उठि उठि उत लौं जात ॥१९८॥

(पवन)

श्वसन, सदागति, मरुत अरु, मारुत जगत परान।
अनिल, प्रभंजन, गंधवह, विवस्वान, पवमान ॥१९९॥
तुव तन परिमल परसि जब, गवनत धीर समीर।
ताकौं बहु सनमान करि, परिरंभत बलबीर ॥२००॥

(ध्वनि)

नाद, निनद, निस्वन,[3] सरद, सुस्वर[4] मुखर रुत, राव।
वे वशीं में कहत प्रिय, हे प्रानेश्वरि आव ॥२०१॥

---

१. हेरत। २. आवत निरदय जीय। ३. धुनि, रव। ४. स्वन सुघोष।

(कृपा)

मया, दया, किरपा, घृणा, अनुकंपा, अनुक्रोस ।
करुना करि करुनानिधे, राधे जिन करि रोस ॥१८५॥

(षड्ग)

रिष्ट, कुशेय, कृपाण, असि, मंडलाग्र, करवाल ।
दृग जेतौ तेतौ कहा घाइकरन कह्यौ बाल ॥१८६॥

(दिशा)

कान्या, काष्टा, ककुभ, गो, आसा, दिसि यहि ओर ।
कबके चितवत हैं दई नागर नंद किसोर ॥१८७॥

(नदी)

सरिता, धुनी, तरंगिणी, तटिनी, ह्रदिनी होइ ।
श्रोता, श्रवती, निम्नगा, पगा, द्विरेफा सोइ ॥१८८॥
शैवालनि, श्रोतस्वनी, द्वीपंती, जलमाळ ।
आपगान को बाट मैं सोच कहा है बाल ॥१८९॥

(तात)

तात, जनक, सविता, पिता, यथा नोर गुनधाम ।
तोहिं पहिलें नँद-नंद कौ, देत हुतौ हे भाम ॥१९०॥

(विवाह)

पाणिग्रहन [1] अरु परिणयन, उद्वह, विहित विवाह ।
साँवि परी जु भयौ नहीं, दुरत देती वहि नाह ॥१९१॥

(मदिरा)

मधु, माध्वी, मदिरा, इरा, सुरा, वारुणी होय ।
आसव, मय, कादंबरी, मधुधारा मैरेय ॥१९२॥

---

१. कर पीड़न पानिग्रहन ।

भिरा, प्रसन्ना, बुद्धिहा, हाला, सिंधु-प्रसूति।
मद पीयें ज्यों बकत कोउ, कहा बकति है दूति ॥१६३॥

(स्वभाव)

प्रकृति, निसर्ग, सहज अति, विश्वस सील सुभाव।
कवन टेव टेढ़ी परति सुंदरि, सरल कहाव ॥१९४॥

(अंधकार)

अंध, तिमिर, अनकाव, तम, ध्वांत, कुहर, नीहार।
सो तेरें देख्यौ कुँवरि, सौ मन तेल, अंध्यार ॥१९५॥

(वृक्ष)

पत्री, दली, फली, बरहि, वृक्ष, महीरुह गोइ।
शाखी, विटपी, अनोकह, कुज, द्रुम, पादप होइ ॥१९६॥
कल्पतरु तरें तल्प रचि, कब के बिलपत[1] पीय।
तदपि न तनिक दया वहूँ, उपजति[2] निर्दय हीय ॥१९७॥

(पत्र)

पत्र, पर्ण, दल, बर्ह, छद, खरकत जब तरु-पात।
तुव आगम-भ्रम चौंकि पिय, उठि उठि उत लौं जात ॥१९८॥

(पवन)

श्वसन, सदागति, मरुत अरु, मारुत जगत परान।
अनिल, प्रभंजन, गंधवह, विवस्वान, पवमान ॥१९९॥
तुव तन परिमल परसि जब, गवनत धीर समीर।
ताकौं बहु सनमान करि, परिरंभत बलबीर ॥२००॥

(ध्वनि)

नाद, निनद, निस्वन,[3] सबद, सुस्वर[4] मुखर रुत, राव।
वे वंशी में कहत प्रिय, हे प्रानेश्वरि आव ॥२०१॥

---

१. हेरत। २. आवत निरदय जीय। ३. धुनि रव। ४. स्वन सुघोष।

(आज्ञा)

वय, आदेश, निदेश पुनि, आज्ञा, शासनि योग।
आयसु है अब जाहु फिरि, लहै प्रीति[1] के लोग ॥२०२॥

(अति)

भृस, अतिसय अलवेलि अलि, अधिक, अत्यंत, नितंत।
अति सर्वत्र भलो नहीं, कहि गे संत अनंत ॥२०३॥

(समूह)

निकर, प्रकर,[2] निकुरंब, व्रज, पूर, पूग, चय, व्यूह।
कंदल,[3] जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय,[4] संदूह ॥२०४॥
व्रात, अनेक, कदंब, गन, ग्राम, तोम, बहु, वृंद।
हौं अनेक वातें कहीं, भई तवा को बुंद ॥२०५॥

(थोरा)

दर, स्तोक, ईखत, अलप, रचक, मंद, मनाक।
तब प्रिय सहचरि तन चितै, मुसकी कुँवरि तनाक ॥२०६॥

(दुख)

कदन, विधुर, अक, दून, तुद, गहन, मजिन पुनि आहि।
दुख जिनि दै, अब जान दै, जिन[5] बैठी इतराहि ॥२०७॥

(अर्द्ध रात्रि)

निशि, निशीथ अरु महानिशि, हौंन लगी अध रात।
कौंन चलै सखि सोइ रहु, जैहैं वठि परभात ॥२०८॥

(वज्र)

असनि, कुलिश, निर्घात, पवि, वलका सो तं नाहि।
परौ बुरे के वज्र सिर विरस करै रस माहि ॥२०९॥

---

१. सुप्रीतम लोग। २. व्यूह संदोह ,नि कुज स्तोम समुदाय।
३. चय दल। ४. जूथ समवाय। ५. मत।

(लज्जा)

ह्री, लज्जा, व्रीडा, त्रपा, सकुच न करि बिनु काज।
चलि बलि प्यारे पीय पैं, श्रोखद खात न लाज ॥२१०॥

(उपानह)

पादत्रान, उपानही, पाद-पीठ मृदु भाइ।
पनही मनही भावती, आगें धरी बनाइ ॥२११॥

(अटा)

सौध, हर्म्य, प्रासाद तें चली जु[1] तिय गति मंद।
महल[2] धौरहर तें मनों अवनी उतरत चंद ॥२१२॥

(हिमकर चांदनी)

जोतिस्ना पुनि कौमुदी बहुरि चंद्रिका नाँउ।
जोन्ह सि पसरति वदन तें, थोरौ हँसि बलि जाँउ ॥२१३॥

(बीथी)

पुन्य प्रतोली, वीथिका, रथ्या कहियै ताहि।
इहि बीथी बलि जाउँ चलि, निपट निकट पिय आहि ॥२१४॥

(उपवन)

कृत्रिम[3] बन, उद्यान पुनि उपबन सो आराम।
यह वृंदाबन बाग तुव दिखि बलि छबि कौ धाम ॥२१५॥

(बसत)

कुसमाकर, रितुराज, मधु, माधव, सुरभि, बसंत।
माली जिमि जुगवत सदा यातें अधिक लसंत ॥२१६॥

(खग)

द्विज, संकुत, पक्षी, शकुनि, अंडज, बिहग, बिहंग।
बियग, पतत्री, पत्ररथ, पत्री,. पतग, पतंग ॥२१७॥

---

१. जुवति। २. सोभित मुरज जनु गगन तें। ३. कृतारण्य।

रटत[1] विहंगम रँग भरे, कोमल कंठ सुजात।
तुव आगम आनंद जनु, करत परस्पर बात ॥२१८॥

(पीपर)

चलदल, पीपल, गजअसन, बोधिवृत्त, अश्वत्थ।
पीपर दै वलि दाहिनौ, जोरि हत्थ धरि मत्थ ॥२१९॥

(पाडर)

थाली, पाटलि, फलरुहा, स्यामा, वामा नाम।
अंबु-वसा, मधु-दूति यह पाडर करति प्रणाम ॥२२०॥

(आम्र)

पिक-वल्लभ, कामांग पुनि, मदरासरस, सहकारि।
यह रसाल की माल वलि, नै जु रही फल भार ॥२२१॥

(महुवा)

माधव, मधुद्रुम, मधुश्रवा, मधुष्टीव, गुडफूल।
ये बंधूक के फूल वलि कछु तुव गंडन तूल ॥२२२॥

(दाड़िम)

रक्तबीज, दालिक, करक, शुक-प्रिय, कुट्टिम, मार।
ए दाड़िम इत देखि वलि कछु तुव दसन अकार ॥२२३॥

(कदली)

रंभा, मोचा, गजवसा, भानु-फला सुकुँवार।
ए कदली जिन में कछू तुव ऊरू उनहार ॥२२४॥

(विल्व)

सुरभि, शिलूषी, सदाफल, वाल, विल्व, मालूर।
ए श्रीफल तुव कुचन सम कहत बहुत कवि कूर ॥२२५॥

---

१. नटत निहँग अनंग भरि।

(तमाल)

कालकंध, तापिच्छ पुनि तिङ्क सहज तमाल।
बैठे हे जहँ कालिह बलि तुम्र अरु मोहनलाल ॥२२६॥

(कदंब)

तूल, नीप, प्रिय-भ्रंग सो मदिरा-गंध, सुवाह।
यह कदंब बलि कान्ह जिहि चढ़ि कूदे दह माँह ॥२२७॥

(किंसुक)

वात, पोथ पुनि ब्रह्मद्रुम, किंसुक, पर्ण, पलास।
टेसू बिरही जननि कौं नाहर नहन त्रिलास ॥२२८॥

(बहेरा)

अक्ष, विभीतक, कर्षफल, संवर्त्तक, कलिवृक्ष।
भूतावास बहेर तर है जिनि चलि मृग-अक्षि ॥२२९॥

(नारियल)

बानरमुख, लांगूर पुनि नारिकेलि, शुभ काम।
अहो नारि वर नारियर तोहि करत परनाम ॥२३०॥

(सुपारी)

घोटा, क्रमुक, गुवाक पुनि पूँग, सुपारी आहि।
वारी वारी कहत बलि रंचक इन तन चाहि ॥२३१॥

(केंवाच)

कोलि वल्लिका, कपिलता, विसर श्रेयसी नाउँ।
कंडु करति यह अंग मैं कै छिन छू बलि जाउँ ॥२३२॥

(मिर्च)

तिक्ता, उष्णा, कोलिका, कृष्णफला पुनि नाँव।
मिरच लता पाँ परि कहति भली करी बलि जाउँ ॥२३३॥

(पीपर)

कोला, कृष्णा, मागधी, तिग्म, तुंडला होइ।
वैदेही, स्यामा, कणा, ऊठी कहियै सोइ ॥२३४॥
यह पीपरि वलि पग गहै कहति बहुत परकार।
अब तें इतनी करि कुँवरि प्रीतम प्रान-अधार ॥२३५॥

(हर्रे)

अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतक होइ।
कायस्था, विजया, जया, शिवा, श्रेयसी सोइ ॥२३६॥
यहि हरीतकी पग गहति हरति उदर के रोग।
ज्यौं तू गिरिधर लाल कौं बाल सकल सुख जोग ॥२३७॥

(सोंठि)

विश्वा, नागर, जगभिषक, महा औषधी नावँ।
यह सोंठी लुटि पगन तर कहति कि बलि बलि जावँ ॥२३८॥

(विद्रुम)

सुषिरा, नटी, नलीधमणि, कपोलांघ्रि, परवाल।
तुव अधरन सम कहत कवि, पै नहि मृदुल रसाल ॥२३९॥

(दाप)

माठी, मँडुका, मधुरसा, कालमेखका होइ।
गुडा, प्रयाला, गोस्तनी, चारु फला पुनि सोइ ॥२४०॥
यह द्राक्षा बलि पाँ परति रंचक इहि तन चाहि।
नाहिन गुसीली बाल सी, निपट रसीली आहि ॥२४१॥

(केसरि)

कासमीर, कुंकुम, रुधिर, देवबल्लभा नाउँ।
यह केसरि द्रग भरि कहति भली करी बलि जाउँ ॥२४२॥

(जूथी)

हरिनी, गनिका, जूथिका, हेम-पुष्पका, जाइ।
यह जूथी गूँथी छबिनि, ठाढ़ी लेत बलाइ ॥२४३॥

(राजवल्ली)

अंबिष्टा, प्रिय-बादिनी, राजपुत्रिका आहि।
तुवहि देखि फूली जु बलि रंचक इन तन चाहि ॥२४४॥

(मालती)

सुमना, जाती, मल्लिका, उत्तम-गंधा आस।
कछु इक तुव तन बास सौं मिलति जासु की बास ॥२४५॥

(संजीवनी)

जीवा, जीवनि, मधुश्रवा, जीवंती पुनि नाउँ।
यह सँजीवनी-मूरि बलि, जैसी तू बलि जाउँ ॥२४६॥

(दुपहरी)

बंधुजीव, बंधूक पुनि, जपा कुसुम पुनि आहि।
दुपहरिया के फूल बलि निसि फूले तुहि चाहि ॥२४७॥

(गुंजा)

काकचिंचिका, कृष्णला, गुंजा करति प्रनाम।
मुख[1] जु स्याम जनु स्याम कौं लेति नाम अभिराम ॥२४८॥

(केतकी)

ताल खजूरी[2], तृनद्रुमा, केतकि पकरति पाइ।
तुव आगम आनंद बलि फूली अँग न समाइ ॥२४९॥

(लवंग)

देवकुसुम, श्री संग्य पुनि जाचक[3] जाकौ राउ।
ललित लवंगलता इतहि पगनि परति बलि जाउँ ॥२५०॥

---

१. मुखद स्याम छवि धाम कौं। २. क्रकचच्छद। ३. जायक जाकौं नाउँ।

(एला)

चंद्र-कन्यका, निष्कुटी, त्रिपुटी पुलकनि बेलि।
इत एला पग परति बलि इहि रंचक मुख मेलि ॥२५१॥

(माधवी)

बासंती पुनि पुंड्का, मुक्तफला अरु नाउँ।
इतहि माधवी पाँ परति तनक चितै बलि जाउँ ॥२५२॥

(नागवल्ली)

तांबूली, अहि-वल्लरी, द्विजा, पान की बेलि।
सरस भई तुव दरस सें बलि रंचक मुख मेलि ॥२५३॥

(बट)

जटी, कपर्दी, रक्तफल, बहुपद, ध्रुव, निग्रोध।
यह बंसीबट देखि बलि सब सुख निरवधि रोध ॥२५४॥

(सरोवर)

ह्रद, पुष्कर, कासार, सर, सरसी, ताल, तड़ाग।
यह देखौ बलि मानसर फूल्यौ तुव अनुराग ॥२५५॥

(कालिंदी)

जम-अनुजा, रविजा, जमी, क्रस्ना, स्यामल-आप।
यह जमुना सब समुद फिरि आवति तुव परताप ॥२५६॥

(तरंग)

भंग तरंग, कलोल पुनि बीची, ऊर्मि सुभाइ।
लहरी हाथ पसारि जनु जमुना पकरति पाइ ॥२५७॥

(उपकंठ)

कूल, पुलिन, उपकंठ, तट, घोष, रोध अभ्यास।
वेला[१], सीमा, तीर चलि ये आये पिय पास ॥२५८॥

---

१. नीर तीर चलि जाउँ बलि।

(वेत)

वेत, सीत, मिदुलरथी, अभ्रपुष्प, वानीर।
मंजुल मंजुल कुंज तर, मैठे हैं बलबीर ॥२५९॥

(कोकिला)

परभृत, कलरव, रक्तदृग, पिक ध्वनि तहँ रस पुंज।
जनु पिय-आरति निरखि तुहि टेरति बलि एहि कुंज ॥२६०॥

(इंद्री)

गो, हृषीक, रव, करन, गुन, इंद्री ज्यौं असु पाइ।
यों राधा माधव मिलै परम प्रेम हरषाइ ॥२६१॥

(माला)

माला, स्रक्, स्रज, गुनवती, यह जु नाम की दाम।
जो नर कंठ करैं सुनैं जानैं श्री घनस्याम ॥२६२॥

(जुगल)

जमल, जुगल, जुग, द्वंद्व, द्वै, उभय, मिथुन, विवि, बीय।
जुगल-किशोर सदा बसौ, 'नंददास' के हीय ॥२६३॥

बिन जाने घनस्याम के आवागमन न जाइ।
तातें हरि, गुरु, वैष्णवन, भज निसि दिन चित लाइ ॥२६४॥

इति श्री मानमंजरी नाममाला संपूर्ण

परिशिष्ट (क)

(सीघ्र)

अवलंबत, रव, जव, चपल, रंहसि, रय, त्वर, वाज।
सहसा, सत्वर, रभ, तुरा, तुरन, वेग के साज ॥१॥

(धाम)

गेह, वेस्म, संकेत, लय, मंडप, धिस्म, आसपद्य ।
मठ, निकाय, मंदिर, अयन, निकेतायतन पद्य ॥२॥
निवृति, निसांतऽरु उद्वसित, सरण, परुय, आवास ।
अवसथ, वसति, रुआवसति, धाँम, कुंज सुपवास ॥३॥

(स्वर्ण)

रुक्म, रुद्र-रोदन, कनक, जांबूनदऽरु सुवर्ण ।
हेम, हिरन्य, कलधौत हरि, सातकुंभ पुनि स्वर्ण ॥४॥
जातरूप कैं सदन सब मानिक-गच छबि देत ।
जहाँ निरपि नर नारि सब झाँई झुकि झुकि लेत ॥५॥

(सिंघ)

बाघऽरु हरि, जछ, केसरी, द्वीपी, व्याघ्र, गजारि ।
सेर सूर भनि सारदुल पळ-भछ, सिंघ, मृगारि ॥६॥

(राजा)

नर नामन तें पति जुरे, परवृढ, इन, ईसान ।
भू-भुज, धरनी-कंत, विभु, नरपति, ईस सुजान ॥७॥

(देवता)

सूपर्पक, अदिविज, दिवौ (कस), दानवारि, रिभु सोइ ।
क्रतु-भुज, अरिभय, अम्रत्या, सुप्रा, आदित होइ ॥८॥

(स्वर्ग)

स्वर्ग, नाक, स्वर, द्यौ, त्रिदिवि, दिव, तिरिविष्टप होइ ।
तहँ वास कहियें अमर तिन पति इंद्र जु कोइ ॥९॥

(दूत)

सहस्राक्ष, अपसर्प, चर, गूढ़ परप पुनि चारु ।
प्रणधि, दूत, जासूस ए छवि पावत हलकार ॥१०॥

(तिलक)

सन्नर अरु पुन्नाग कहि, तिलक विशेषक नाम।
उत्तमांग, कं, मूरधा, मस्तक छबि अभिराम ॥११॥

(स्याम)

काल, श्याम, मेचक, असित, चिबुक नीलकन ऐंन।
मनो रसीले आंब की मुहकरि मूँदी मैंन ॥१२॥

(पानी)

नीर, छीर घर जुरि मकर, दजुरें जलद उदोत।
जः रुइ जल जोरत कमल, धि जुरें सागर होत ॥१३॥

(जुवती)

जोषा, कुल्या, गेहनी, वामलोचना, दार।
वधू, भीरु, जोषत, चपल, रामा, महिला, नारि ॥१४॥

(ब्रह्मा)

क, परमेष्टी, प्रजापति, कमलासन, हंसेश।
विरँचि, विधाता, आत्मभू, हिरणगर्भ, लोकेश ॥१५॥

(सुंदर)

हृद्य, सौम्य, मंजुल, मधुर, चारु, ललित, सुकुँवार।
सुग्ध, प्रसस्त, अपीच्य पुनि सुष्ठु, मंजु रससार ॥१६॥

(अर्जुन)

सव्य-साँच अरु स्वेत-हय, सब्द-भेदि वृषसेन।
दैत्य-रिपु रु कहि कर्ण-रिपु, कृष्ण-मित्र सुष देन ॥१७॥

(भीम)

भीम, वृकोदर, वायु-सुत, गदा-पाणि, रिपु-साल।
ज्यौं सोहै बलकी अवधि, त्यौं तुव रूप रसाल ॥१८॥

(कमल)

उत्पल, राजिव, कोकनद, सितांभोज, जलजात।
इंदीवरऽरु महोत्पल, बिस-प्रसून] सतपात ॥१६॥
सरसीरुह, जलरुह, वनज, अंबुज, वारिज सोइ।
सहसपत्र, परदंड कहि नीरज, सरसिज होइ ॥२०॥

(चंद्रमा)

ग्लौ, मृगांक, आत्रेय, हरि, जीव, उडुप, उडुराज।
चंद्र, चंद्रमा, निसाकर, तारापति, द्विजराज ॥२१॥
औसधीस, सुरपेय पुनि, रोहिणि-धव, श्री-बंधु।
शसधर, मयँकऽरु सिंधु-सुत, सारँग, कुमुद जु बंद ॥२२॥

(मेघ)

नीरद, क्षीरद, अंबुवह, वारिद, जलद, प्रजन्य।
घनाघनऽरुघन बिछुरि बिजु, इमि देखति बलि धन्य ॥२३॥

(समान)

सदृस, सजाति, सवर्ण, सम, सदृक्, सदृच्छ, सधर्म्म।
तुल्य, सरूप, समान पुनि, उपमा भिद, सम कर्म्म ॥२४॥

(मैत्री)

सौहृद अरु सौहार्द पुनि, हृद्य, सख्य कहि नाँऊ।
मैत्री, सौरभ, इष्टता, मति सहास्य रसठाँऊ ॥२५॥

(पुत्र)

तन, नामन सों ज जुरें, बालक, अर्भक होत।
प्रजा, तोक, उत्तानसय, उद्वह, दारक, पोत ॥२६॥

(भर्ता)

प्रिय, कॉमी, कामुक, रमण, इष्ट, प्राणपति, कंत।
भर्ता, प्यौ, धव, प्रेष्ट, वर, है ब्रजराज अनंत ॥२७॥

(गरुड़)

गरुत्मान, तारक्ष, गरुड़, वैनतेय, शकुनीश।
सुपरण, अहि-रिपु, इंद्रजित, ताहि चढ़े जगदीस ॥२८॥

(उग्र, सूँड़)

उल्वण, दारुण, घोर अरु, उत्कट, उग्र, कराल।
पुष्करकर, हस्तऽरु पद्मकर, काढ़यौ गहि नंदलाल ॥२६॥

(नक्षत्र, कीर्तन)

धिष्ण, तार, नक्षत्र, उड़, तारक, अच्छ भिरात।
साहस-धानुक-गुणावलि, साध बाध ज्यों ख्यात ॥३०॥

(जन्म)

भव, उद्भव, उद्गम, जनन, जनि, उत्पति है भाम।
जन्म सुफल तबही जबै, भजिये सुंदर स्याम ॥३१॥

(सत्रु)

वैरि, अराति, अमित्र, अरि, द्विट्, सपत्न, द्विष, द्वेष।
रिपु, दुर्जन, भातृव्य, खल, सत्रु- अहित ए लेपि ॥३२॥

(उद्धत)

उद्धत, मानी, स्तब्ध पुनि, उज्जीवन, सौंडीर।
दृप्त, अहंकृत, गर्वगरु, उद्धऽरु गर्व-सरीर ॥३३॥

(कुरंग)

कृष्णसार, गोकर्ण, रिस, रोहत, संबर, न्युंक।
अष्टापद, रौहस, सिरभ, चॅवर प्रसत रुरु अंकु ॥३४॥

(महादेव)

उग्र, कपर्दी, भूत-पति, कृत्तवासो शितकंठ।
ईसानऽरु मृत्युंजयऽरु, वृषभध्वज, श्रीकंठ ॥३५॥

(स्वामिकार्तिक नाम)

सक्तिमातु, गुह, षट-षदन, सिषि-वाहन, षट-मात।
क्रौंचि-भेदि, गिरिजातनय, महासेन, सिवतात ॥३६॥
कार्तिकेय, सरवन-जनम, स्कंद, विसाष, कुमार।
सेनानी, स्वामी, सदा ध्यान न पावत पार ॥३७॥

(सूर्य)

विध्र, विरोचन, विभावसु, मार्तंड त्रयि-श्रंग।
श्रंबरमनि, दिनमनि, तरनि, सविता, सूर, पतग ॥३८॥
अर्क, श्रंसुमाली, तपन, श्रातप, श्रादित जानि।
दिनेसर्जमा पूपनऽरु द्युमणि, चंडकर, भानु ॥३९॥

(सागर)

वारिधि, अगम, अमृतोद्भव, पारावार, पयोधि।
जलधि, समुद, जल-रासि, दधि, नाम नदी-पति सोधि ॥४०॥

(चोर)

आगारिक, तस्कर, प्रणधि, स्तेन, निसाचर, चोर।
प्रतिरोधक अरु गूढ़ नर, हेरिक फिरै किसोर ॥४१॥

(पृथ्वी)

श्रौनि, ओक, गो, गहरी, धर जोरें गिरि ठाँम।
पति जोरें राजा प्रगट, रुह जोरें तरु नाँम ॥४२॥

(कर्कस नाम)

स्तब्ध, कठिन, कर्कस, परुष, अरु कठोर, अरलीढ।
दृढ़ काहल पुनि फल्गु जो होति तियँ तजि सील ॥४३॥

(पंडित)

मेधावी, बिद्वान, अभि-रूप, विचच्छन, सूर।
प्राज्ञ- रि ज्प, बुध, वागमी, आचारज दुरत दूर ॥४४॥

(बलवंत)

बली, मनस्वी, तेजस्वी, सूर, तरस्वी जानि।
ऊर्ज, प्रवरिण, भारवर, सुभट, राधे जिन करि मान ॥४५॥

(धन)

द्रविण, द्रव्य, वसु, वित्त, वल, राय अर्थ सुप श्लोक।
धन जेतौ ब्रज नंद कें तितौ नहीं तिहुँ लोक ॥४६॥

(गुफा)

कंदर, गह्वर, कंदरा, गुहा, गुफा, दरि जानि।
सांन प्रस्थ तजि सिखर कूँ, करि बैठी मन मानि ॥४७॥

(भिल्ल नाम)

दुर्गम चिर जोरें सबर, दस्यु, निषाद, पुलिंद।
धानुक, भिल्ल, किरात ये फिरत पाप के वृंद ॥४८॥

(नीचे)

निम्न, निगातन, कुब्ज, अघ, अवच, अजस की खानि।
नीचें नार न डारि वलि नेंक कह्यौ तौ मानि ॥४९॥

(उपाय)

विक्रम अरु उत्साह भनि, अध्यवसाय, उद्योग।
अभिजोगऽरु व्यवसाय पुनि उद्यम करि हरि जोग ॥५०॥

(दूती)

सपरसाऽरु अभिसारिका, संबल, स्वैरिणि, दूति।
परउपदेसनि, कुट्टनी, फिरै जु परघर कूत ॥५१॥

(वेस्या)

दासी, दारिक, लज्जका, खला, पुंश्चली होइ।
रूपा, जीवा, कामुका, पुन्य-जोषिता सोइ ॥५२॥

बारमुखी, जग-वल्लभा, कहत संभली जाहि।
मुँह सम्हारि किनि बोलिये, इहँ कोउ गनिका नाहिं ॥५३॥

(पतिव्रता)

साध्वी, सती, मनस्विनी, सूचरिता, सुचिहीय।
पतिव्रता - तुव नाम लै, होत जगत में तीय ॥५४॥

(दिशा)

कान्या, काष्ठा, कुकुभ, गो, आसा, दिशा, प्रतीचि।
प्राच, वाच, प्राची, हरित, दक्षसुताऽरु उद्दीचि ॥५५॥
गज पावक अंबर जुरें दिग सौं नाम समाज।
कब के चितवत हैं दई, कृष्ण कुँवर ब्रजराज ॥५६॥

(समूह)

वूट, समाज, सँदोह, घन, व्रात, जूथ, संघात।
अखिल, निवह, समुदय, विरक्त, सन्वय, ओघऽरु जात ॥५७॥

(चंपक)

चांपेय, - चंपक, सुरभि, हेम-पुष्प सुकुँवार।
यह चंपा पाँ परति यलि लियें पुष्प उर हार ॥५८॥
दो सत पैंसठ ऊपरें, दोहा श्री नँददास।
रामहरी बाकी किये, कोश धनंजय वास ॥५९॥
संतन की बानी बढ़ी, रामहरी मतिमंद।
अपने समुफन को लिये, बनवें बिच दिये सद ६०॥
मान बिना नहिं नेह कछु, नेह बिना नहिं मान।
छोन संग लागै रुचिर, जे हैं रस मिष्टान ॥६१॥
जितौ नेह तित मान बन निनहि नेह बिन मान।
रसना रस छूवत कठिन मान सरकरा जान ॥६२॥

परिशिष्ट (ख)

(हृदय)

उर वत्सल पुनि वच्छ कहि, पिय हिय लखि निज काय।
यातें बढ्यो जो मान हित, आन तिया के भाय ॥ १ ॥

(धाम)

मंदिर, मंडप, आयतन, वसति, नीक अस्थान।
भवन भूप वृषभानु के, गई सहचरी ल्यान ॥ २ ॥

(सुवर्ण)

सोने ही के सदन सब, मानिक गच सज देत।
जहाँ तहाँ नरनारि सब, झाँईं झुकि झुकि लेत ॥ ३ ॥

(इन्द्र)

सहस्राक्ष, वृद्धश्रवा, तुरापाह, सुर-भूप।
सुनासीर पुनि दिवसपति, लेखर्षभ सु अनूप ॥ ४ ॥

(ठोढ़ी)

चिबुक चारु मधि नीर[1] कन, यों राजत छवि ऐन।
मनहुँ रसीले आम को, मुद्कर मूँदे मैन ॥ ५ ॥

(पानी)

अपक, अमय अरु वारि पुनि, पानो पुष्कर होय।
लिखे यथा मति नाम ये, संख्या चौंतिस जोय ॥ ६ ॥

(स्त्री)

श्यामा, महिला, भावती, मत्त कामिनी जान।
वामलोचना नारि पुनि, योपित, योषा मान ॥ ७ ॥

(ब्रह्मा)

शतधृति, द्रुहिण, स्वयंभु पुनि, वेधा, ब्रह्मा जोय।
छवि सुंदरता जगत की, रही-सो वैधी सोय ॥ ८ ॥

---

१. नील।

(चंद्रमा)

बिधु, सुधांसु, सुभ्रांसु पुनि, औषधीश, निसिनाथ।
रजनीकर, निसिकर, शशी, कुमुदबंधु, द्विजनाथ ॥ ९ ॥
दुजराजा, शशधर, उदधि-तनय, ससांक, मृगांक।
नछत्रेश, कलंकधर, तुव मुख उपमा शंक ॥१०॥

(मेघ)

घन बिछुरी ज्यों बीजुरी, रही अनलमनि होय।
मैं तोहि देखत भामिनी, कहु बलि कारन सोय ॥११॥

(जोगेश्वर)

सन्यासी यर व्याज भनि, जटली, मुंडी होय।
दण्डधारु भगवान भनु, निर्बानी पुनि सोय ॥१२॥

(दुर्गा)

अजा, शिवा, मैना-सुता, सिद्धेश्वरि अति कांत।
ते तुअ पिय-परताप तें, रचत बिस्व बहु भाँत ॥१३॥

(सूर्य)

भानु, बिभाकर, बिभावसु, सविता, सूर्य, पतंग।
अंबरमनि, दिनमनि, रवी, सूर, पुत्र त्रयअंग ॥१४॥

(अग्नि)

बृहद्भानु आश्रय बहुरि, अहै बसन्तर जोय।
बीतिहोत्र पुनि उपर्बुध, धूमकेतु कह सोय ॥१५॥

(पवन)

मरुत, बात अरु गंध-बह, बिश्वासन, पवमान।
बायू बहुरि समीर कहि, पवन नाम ये जान ॥१६॥

रूपमंजरी

दोहा

प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय, परम जोति जो आहि।
रूपत पावन रूपनिधि, नित्य कहत कवि ताहि ॥ १ ॥

चौपाई

परम प्रेम पद्धति इक आही। 'नंद' जथामति बरनत ताही ॥
जाके सुनत गुनत मन सरसै। सरस होय रस बस्तुहिं परसै ॥
रस परसे बिनु तत्व न जानै। अलि बिनु कँवलहि को पहिचानै ॥
पुनि प्रनऊँ परमातम जोई। घट घट बिघट पूरि रह्यो सोई ॥
ज्यों जल भरि बहु भाजन माहीं। इंदु एक सबहीं मैं छाँहीं ॥
इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे। जैसिय वस्तु प्रकासक तैसे ॥
जो कछु मान सरसि की झाँई। सो न छुद्र छीलर छबि पाई ॥
तरनि-किरन सब पाहन परसै। फटिक माँझ निज तेजहिं दरसै ॥
स्वाति बूँद अहि-मुख बिष होई। कदली-दल कपूर होय सोई ॥
जुबन रूप सँग सोभा पावै। सोइ कुरूप ढिग बदन दुरावै ॥
एकै पट अनेक रँग गहै। सुरँग रंग सँग अति छबि लहै ॥
पुनि जस पवन एक रस आही। वस्तु कै मिलत भेद भयो ताही ॥
रवि-कर परसि अगिनि जिहि होई। सोइ दर्पन जग बिरलौ कोई ॥

दोहा

जगमग जगमग करै नग, जौ जराय सँग होइ।
काच करकचन विचि रचे, भलौ कहै नहिं कोइ ॥१४॥

चौपाई

पैवे कों प्रभु के पंकज-पग। कविन अनेक प्रकार कहे मग॥
तिन में इह इक सूखिम रहै। हौं तिहि चलि जो इहि चलि चहै॥
जग में नाद अमृत मग जैसो। रूप अमीकर मारग तैसो॥
गरल अमृत इकंग करि राखै। भिन्न भिन्न कै बिरले चाखै॥
छीर नीर निरवारि पिवै जो। इहि मग प्रभु पदई पावै सो॥
दृष्टि अगोचर कमल जु होई। बास खोज परि पैये सोई॥

दोहा

इंदुमती मतिमंद पैं, अवर नहिंन निबहंति।
नागर नगधर कुँवर-पग, इहि मग छुट्यौ चहंति॥२३॥

चौपाई

रसमय सरसुति के पग लागौं। अस अच्छर यो इहि वर माँगौं॥
सुंदर कोमल बचन अनूठे। कहत सुनत समुझत अति मीठे॥
नाहिन बघरे गूढ़ न ऐसे। मरहठ देस-बधू-कुच जैसे॥
पुनि कवि अपने मन में गुनै। मो कवित्त कोउ निरस न सुनै॥
रस बिहीन जे अच्छर सुनहीं। ते अच्छर फिरि निज सिर धुनहीं॥
बाला-स्मित कटाच्छ अरु लाजा। अँधरे बालम के किहि काजा॥
ज्यों तिय सुरत समय सितकारा। निफल जाहिं जौ बधिर भतारा॥
कवि-अच्छर अरु बरुनि-कटाछैं। ए दोउ सुलग लगैं हिय आछैं॥
जो हिय अच्छर-रस नहिं भिदै। सो हिय अर्जुन-बान न छिदै॥
कवि तौ तेइ पाहन सम मानै। नहिंन पखान पखान बखानै॥
इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौं। प्रभु तुम अपनो जस कै मानौ॥
तुव जस रस जिहि कवित न होई। भीति-चित्र सम चित्र है सोई॥

दोहा

हरि जस रस जिहि कवित नहि, सुनै कवन फल ताहि।
सठ कठपूतरि संग धुरि, सोए कौ सुख आहि॥२४॥

चौपाई

अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही। जो कछु मो उर-अंतर आही॥
धर पर इक निर्भय पुर रहै। ताकी छबि कबि का कहि कहै॥
नए धौरहर सुखद सुपासा। जनु धर पर दूसर कैलासा॥
ऊँचे अटा घटा बतराहीं। तिन परि केकी केलि कराहीं॥
नाचत सुभग सिखंड डुलत यौं। गिरिधर पिय की मुकुट-लटक ज्यों॥

दोहा

गुड़ी उड़ी छबि देत अति, अस कछु बनि रह्यो बान।
देखन आवत देव जनु, चढ़ि चढ़ि बिमल बिमान॥४१॥

चौपाई

आसपास अमराय बरारी। जहँ लग फूल तिती फुलवारी॥
चुनहिं फूल मालिनि छबि भरी। अवनी उतरि परी जनु परी॥
बोलहिं सुक सारिक पिक तोती। हरिहर चातक-पोत कपोती॥
मीठी धुनि सुनि अस मन आवै। मैन मनौं चटसार पढ़ावै॥
फलन के भार नमित द्रुम ऐसे। सपति पाय बड़े जन जैसे॥
का कहिये कासार निकाई। सारस हंस बंस छबि छाई॥
निर्मल जल जनु मुनि-मन आही। परसत छन तन पातक जाहीं॥
फूल फूलि रहे जलज सुदेसे। इंदीवर, राजीव कुसेसे॥
पानी पर पराग परि ऐसी। बीर फुदक भरी आरसि जैसी॥
पदमिनि कहुँ जब पौन डुलावै। तब लपट अलि बैठि न पावै॥
जनु ननुकारति मानिनि तिया। आन जुवति रत जान्यौ पिया॥

दोहा

कज कंज प्रति पुंज अलि, गुंजत इमि परभात।
जनु रबि उर तम तजि भज्यो, रोवत ताके तात॥५३॥

चौपाई

धर्मधीर तहँ कर बड़ राजा। प्रगट्यो धर्म धरन कै काजा॥
जस की धनुप राव कर सोहै। कीरति-पनिच-मनक मन मोहै॥
अनगन गुनिजन बान बखाने। निसदिन रहहिं पनिच संधाने॥
पनिच जाय उत देसहि पारा। सर आवहिं इत राजदुवारा॥
अस अहेर दिन खेलै सोई। जो देखै सो अचरिज होई॥
ताकैं इक कमनीय सुकन्या। जिहि अस जनी जननि सो धन्या॥
नाम अनूप रूपमंजरी। अंग अंग सुभ लच्छिन भरी॥
सो सोहति अस बैस कुमारी। हिम गिरिवर जनु हिमवत बारी॥
लटकि लटकि खेलत लरिकाई। लरिक समै जनु भूपन पाई॥
मृग की मानों चंचल छौनी। पावन करति फिरति छबि औनी॥
देखि रूप घन छाया करहीं। पसु पंछी सब मोहन फिरहीं॥
अस कछु लखिये लखन लपेटी। दुसरी मनहुँ समुद की बेटी॥

दोहा

ता भूपन के भवन कोऊ, दीप न धारत साँझ।
बिन ही दीपहि दीप जिमि, दिपय कुँवरि घर माँझ॥६६॥

चौपाई

सहज सुगंध साँवरी अलकैं। बिनहिं फुलेल चलेल सो झलकैं॥
नीरस कवि जे रसहि न जानैं। व्याल-वाल सम बाल बखानैं॥
भौंहन की छबि रहि मो मनही। बालक मनमथ की जनु धनुही॥
छुटी खुमी सुमी जगमगी। काम कलभ जनु दँतिया उगी॥
उज्जल होंन लगे अँग नीके। कंचन भूपन हैं चले फीके॥
सब कोउ कहै कि अजहूँ होनौं। अंग अंग कछु अबहीं टोनौं॥
जब कोउ या तन तनक निहारै। ताकौं निधरक पँचसर मारै॥
लोग कहैं कोउ काम-पियारी। तनुजा आदि कि अनुजा थारी॥

बाला बैसँधि मैं छवि पावै। मन भावै मुँह कहत न आवै॥
नाहिंन बलहे उरज उदारा। पै मधि लुठन लगे मोति हारा॥
कुच अंकुर अंचल नहिं घले। नैनन माँझ लाज गहि चले॥
खेलत कान तहाँ दै रहै। जहँ कोउ काम कथा कछु कहै॥
गुड़ा गुड़ी के ब्याह बनावै। लाज गहै जब सेज सुवावै॥

दोहा

बाला बैसँधि रूप जनु, दीप जग्यो जग रैन।
उड़ि उड़ि परहि पतंग जिमि नर नारिन के नैन॥८०॥

चौपाई

ब्याहन जोग जानि पितु माता। कीन्हेउ मंत्र बोलि सब ज्ञाता॥
रूपवंत गुनवंत उदारा। सीलवंत जसवंत सुढारा॥
अस कोउ पइये राजकुमारा। ताकौं दीजिय इहै बिचारा॥
करि बिचार निज बिप्र बुलायो। बार बार सब बिधि समुझायो॥
अहो बिप्र धन लोभ न कीजै। या लाइक नाइक कौं दीजै॥
लोभी द्विज कुबुद्धि अस कीनी। कूर कुरूप कुँवर कहुँ दीनी॥
सत्रु भलौ जौ होय सयाना। मूरख मित्र जु अहित समाना॥
सहस गुन भरयौ जो नर आही। रंचक लोभ बिगारै ताही॥
कर मींड़ै सहचरि पछिताई। कूर बिधाना कौन बनाई॥

दोहा

सब जन जुरि चिंतन करत, परत न कछू बिचार।
करम करी किधौं द्विज करी, किधौं करी करतार॥६०॥

चौपाई

तिय तन रूप बढ़त चल्यो ऐसे। दुतिया चंद कलनि करि जैसे॥
जुबन-राव जब उरपुर लयो। सैसव-राव जबन-बन गयो॥
अरन लगे तब दोऊ नरेसा। छीन परयौ तब तिय-मधि देसा॥

तिय-तन-सर बालापन पानी । जोवन तरनि किरनि अधिकानी ॥
जिमि जिमि सैसव-जल थ्थुराने । तिमि तिमि नैन-मीन इतराने ॥
सो अज्ञात जोवन वर बाला । राजत नख सिख रूप रसाला ॥
सखि जब सर स्नानहि लै जाहीं । फूले अमलनि कमलनि माहीं ॥
तिय तन परिमल जो लखि पावै । अंबुज तजि सब अलि चलि आवै ॥
इंदुमती जब भँवर उड़ावै । इंदुवदनि अन्हान तब पावै ॥
पोंछि डारति रोम की धारा । मानति बाल सिवाल की डारा ॥
चंचल नैन चलत जब कीनै । सरद कमल दल ही तैं लीनै ॥
तिनहि श्रवन बिच पकरयो चहै । अंबुज दल से लागे कहै ॥

दोहा

नवला निकसत तीर जब, नीर चुअत वर चीर ।
जनु अँसुअन रोवत बसन, तन बिछुरन की पीर ॥१०३॥

चौपाई

अब कछु ताकौ सहज सिंगारा । बरनौं जगपातक छैकारा ॥
गौर वरन तन सोभित नीकौ । ओटे कंचन कौ रँग फीकौ ॥
चपक कुसुम कहा सरि पावै । बरनहु हीन घास धुरि आवै ॥
उबटन उबटि अँगन अन्हवाई । यौपी दामिनि लोपी माई ॥
सीस-पुहुप गुंथिन छबि ताही । मनहुँ मदन मृग कानन आही ॥
बेनी घनी कि सँपनि सुहाई । बुरी दृष्टि देखै तिहि खाई ॥
सोहत बेंदि जराय की ऐसी । भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी ॥
भुव-धनु देखि मदन पछितयो । हर के समर समय किन भयो ॥
अब याकैं बल करउँ लराई । हरउँ छनक मैं हर हरताई ॥
लरिकपना - पग - चंचलताई । चली छबीली नैननि आई ॥
इन दल चहनि चलनि अनुरागे । याव करन कानन सौं लागे ॥
सुदियत दृगनि के अवरिज भारे । चलहि आन तन थानहि मारे ॥

दोहा

मृगज लजे, खंजन लजे, कंज लजे छवि छीन।
दृगन देखि दुख दीन है, मीन भये जल लीन ॥११६॥

चौपाई

नासिक नथ जनु मनमथ पासी। हासी हरि देव कि माया सी ॥
मृदु कपोल छवि बरनि न जाही। झलकै अलक खुभी जिन माँही ॥
अधर मधुर मधि रेख सुढारी। अरुन पाट जनु पुई पवारी ॥
लसति जु हँसत दसन की जोती। को है दारिम, को है मोती ॥
चिवुक-कूप-छवि चमकै जोई। जगत-रूप पुनि परइ न सोई ॥
कंठ लीक छवि पीक की धारा। फीक परी सब छवि संसारा ॥
छरा निचोरी दिखि भई बौरी। जगत ठगौरी जनु इक ठौरी ॥
ससि समान जे वदन कराँही। अस क्यौं कहो कि तिन बुधि नाहीं ॥
बाँके नयन मुसकि जब चाहै। ए छबि ससि मैं कहहु कहा है ॥

दोहा

रूपमंजरी वदन-विधु विधना जग मैं टेकि।
परसन बाढ़यो ससि नभसि मानो डारयो छेकि ॥१२६॥

चौपाई

सुंदर कर राजत रँग भीने। एक कमल के जनु बिधि कीने ॥
मंडल दै जु उठे कुच दोऊ। आव न उपमा आँखि तर कोऊ ॥
श्रीफल कुंभ संभु सभ माने। सरस कठिन तेऊ परवाने ॥
तब की सुख कि रासि बिधि करी। रवनी-उर-अवनी पर धरी ॥
रोम-राजि अस दीन्हि दिखाई। जनु उत तें वेनी की झाँई ॥
किधौं नीलमनि किंकिनि माँही। रोमावलि तिहि जोति की छाँही ॥
किधौं लटी कटि दिखि करतारा। रोम-धार जनु धरयो अधारा ॥
राजत कटि किंकिनी रसाला। मदन-सदन मनु बंदनमाला ॥

पाइन मनिमय नूपुर धुनी । कंज पिंजर मनु मनमथ-मुनी ।

दोहा

जहँ जहँ चरन धरै तरुनि, अरुन होति सो लीह ।
जनु धरती धरती फिरै, तहँ तहँ अपनी जीह ॥१३६॥

चौपाई

दुति लावन्य रूप मधुराई । कांति रमनता सुंदरताई ॥
मृदुता सुकुमारता जे गाई । नहिं जनियत इत कित तें आई ॥
दुति तिय तन अस दीन्हि दिखाई । सरद चंद जस झलमलताई ॥
ललना तन लावन्य लुनाई । मुकताफल जस पानिप झाँई ॥
बिनु भूषन भूषित अँग जोई । रूप अनूप कहावै सोई ॥
निरखत जाहि तृपति नहिं आवै । तन मैं सो माधुरी कहावै ॥
ठाढ़ी होति आँगन जब आई । तन की जोति रहति छिति छाई ॥
राजति राजकुँवरि तहँ ऐसी । ठाढ़ी कनक अवनि पर जैसी ॥
देखत अनदेखी सी जोई । रमनीयता कहावै सोई ॥
सब अँग सुमिल सुठौनि सुहाई । सो कहिए तन सुंदरताई ॥
परसत ही जनु नाहिंन परसी । अस मृदुता प्रमदा-तन सरसी ॥
अमल कमल-दल सेज बिछैये । ऊपर कोमल बसन डसैये ॥
तापर सोवत नाक चढ़ावै । सो वह सुकुमारता कहावै ॥

दोहा

रूपमंजरी छवि कहन, इंदुमती मति कौन ।
ज्यौं निर्मल निसिनाथ कौं, हाथ पसारै बौन ॥१४०॥

चौपाई

सखि अस अद्‌भुत रूप निहारै । मोसति मन कोसति करतारै ॥
कहत कि कछु इक करउँ उपाई । जो इह रूप अफल नहिं जाई ॥
रसनि मैं जो उपपति रस आही । रस की अवधि कहत कवि ताही ॥

सो रस जौ या कुँवरिहि होई । तौ हौं निरिखि जिऊँ सुख सोई ॥
ऐं परि जौ या लाइक पैये । सो नाइक दिरि आनि मिलैये ॥
जाहि मिलत पुनि ऐसियौ रहै । दइ अस नाइक कोऊ कहै ॥
जँह जँह नरवर सुरवर सुने । देखि फिरी अरु मन मन गुने ॥
देखत के सब उज्जल गोरे । हार काम नहिं आवत वोरे ॥

दोहा

सुर नर धाम के धाम सब धुवहि बीच बिकराल ।
तिन मैं इह कैसे बसे, छैल छबीली बाल ॥१५६॥

चौपाई

इक सुनियत सब लायक नायक । गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक ॥
हौं तिय तिनहिं कवन बिधि पाऊँ । क्यौं या कुँवरिहि आनि मिलाऊँ ॥
जा कहुँ संभु समाधि लगावै । जोगी-जन मनहूँ नहिं आवै ॥
निगमहिं निपट अगम जो आही । अवला किहि बल पावै ताही ॥
इक बौना अरु नीचै आवै । ऊँचे फल कौं हाथ चलावै ॥
क्यौं फल पैये दूरि निवासी । हेरनहार करहिं सब हाँसी ॥
जो चहि जानै सो फल पावै । कै फल आप दया करि आवै ॥
सखि इक दिन गिरि गोधन जाई । गिरिधरपिय प्रतिमा दिख आई ॥
तब तें यौं उर अंतर राखो । ज्यौं गुरुदेव दया करि भाखो ॥
साखा ढिग है चंद बतैये । सो सूछिम तबहिं लखि पैये ॥
ये तौ उनही की उनहारी । नहि अचिरज हितु चहिए भारी ॥
सहचरि कै चित चैन न परै । अनुदिन तिन सौं बिनती करै ॥
अहो अहो गिरिधर परम उदारा । करताहू के तुम करतारा ॥
भवसागर तरिबे कहुँ यहु तरि । पाइ हुती कहुँ कहुँ क्रम क्रम करि ॥
सो तरि बूड़ति है मधि धारा । गिरिधर लाल लँघावहु पारा ॥

दोहा

निसिदिन पिय बिनती करति, और न कछू सुहाय।
मन के हाथनि नाथ के पुनि पुनि पकरति पाय ॥१८७॥

चौपाई

इक निसि सखि सँग राजकुमारी। पौढ़ी हुती कनक चितसारी ॥
सपुन माँझ इक सुंदर नाइक। पायो कुँवरि आपुनी लाइक ॥
तनमन मिलि तासौं अनुरागी। अधर सधर खंडन में जागी ॥
लै सितकार सखिनिहिं धुरि गई। सहचरि निरखि ससकित भई ॥
क्यों बलि बलि कहि छतियनि लाई। दसा देखि अति संभ्रम पाई ॥
भूत लगाय मनो है आई। कै कछु क्रूर ग्रहगत माई ॥
इह संसार असार अपारा। तामहिं तनक हुती आधारा ॥
अब किहि धरिहौं परिहौं पारा। बैर पन्यो पापी करतारा ॥
प्रात उठी पिय लखित लजौंही। चितइ न सकै सहचरी सौंही ॥
पूछति प्यार भरी सखि ग्याता। कहि बलि आज कहा इह बाता ॥
लोइन लौने ललित लजौने। चलि चलि हँसत है काननि कौने ॥
देखति हौं बलि नहिं तुव बसके। जस कहुँ प्रीतम रस के चसके ॥

दोहा

को सुकृती अस जगत में, जो निरख्यो इन नैन।
मो हिय जरत जुड़ाय बलि, सींचि अमी रस बैन ॥१८८॥

चौपाई

जब अति सखिन बूझनी लई। तब हँसि कुँवरि गोद लुठि गई ॥
बात कहन कछु मान है आवै। बहुरि लजाय जाय छबि पावै ॥
कुँवरि कौ अस सुंदर मुख रहै। मुँह तें बात न निकस्यो चहै ॥
निरखि सहचरी कौ अति तपनौ। कहन लगी तब अपनौ सपनौ ॥
इकै ठाँव इक बन है मानौं। ताकी छबि हौं कहा बखानौं ॥

आनहि रंग पुहुप मैं देखे। अपनी धारी नहिन सुपेखे॥
औरहि भाँति भँवर-रव राजै। ठौर ठौर कछु जंत्र सो बाजै॥
रूखन देखि भूख भजि जाई। इह उपखान साँच है माई॥
रटहि बिहंगम इमि मन हरैं। जनु द्रुम अपमैं बातैं करैं॥
गहवर कुंज मंजु अति सोहै। मनिमय मंडप छबि तहँ को है॥
पुहुप बितान बान अस बानें। चंद चदौंवे की जनु तानें॥
तिन तर सेज सुपेसल ऐसी। आल बाल रति-बेलि की जैसी॥
नीली नदिया निकटहि बही। फूलि फूलि नव अंबुज रही॥

दोहा

इक अंबुज जनु तोरि कै दीनौं मेरे हाथ।
सूँघत सूँघत ताहि हौं चली अली के साथ॥२०२॥

चौपाई

तामैं अस कछु बास बसाई। सूँघत मोंहि ऊँघसी आई॥
तू जनु आगे तें कछु भई। हूँ अकिली ठाढ़ी रहि गई॥
चकित भई परि भय नहि पाई। द्रुम बेली कछु मीत से माई॥
इत तें इकु कोउ नवकिसोर सौं। मनमथ हू के मन को चोर सौं॥
मुसकत मुसकत मो ढिग आयो। नैनन मैं कछु चौंध सौं लायो॥
मोहि हँसि बूझन लाग्यौ तहाँ। इंदुमती तेरि सहचरि कहाँ॥
हौं लजाय मुरि रही अमोली। बहुत करी पै नाहिन बोली॥
तब इक सुखम कुसुम लै माई। मो कपोल पै खैंचि लगाई॥
मन जनु उनहीं सौं अनुराग्यो। गुरुजन डर डरि चोर सौं भाग्यो॥
मधुर बचन लगि आच सुहाई। धीरज राग सो ढरक्यौ माई॥
आगे सुधि बुधि रही न मोही। का हौं बरनि सुनाऊँ तोही॥

दोहा

गड़्यो जु मन पिय प्रेम रस क्यों हूँ निकस्यो जाय।
कुंजर ज्यों चहलै पर्‍यो छिन छिन अधिक समाय॥२१४॥

चौपाई

सखि कह वारि फेरि हौं डारी। कंचुक कहि बलि पिय उनहारी॥
जिन लछिननि ढूँढ़हुँ हौं पाऊँ। अपनी प्यारिहिं तुरत मिलाऊँ॥
कहति है कुँवरि मुसकि मधु बानी। किन पाई या सपन कहानी॥
बिजननि बातनि कवन अघाये। काके हाथ मनोरथ आये॥
मृगतृष्णा कब पानी भई। काकि भूख मन-लडुवन गई॥
तब बोली सहचरि सुखदाता। क्यों कहिए बलि ऐसी बाता॥
जौ अनुकूल होय करतारा। सपने साँच करत नहि बारा॥
मृगतृष्णा हू पानी करै। मन के लडुन भूख पुनि हरै॥
इक हुती ऊषा मेरी अली। सपनै काम-कुँवर सौं मिली॥
ऐसे लछिनन जौ लखि पाई। तौ सखि सौं सब बात जनाई॥
ताकी सखि बिचित्र चित्ररेखा। गई द्वारिका सूखिम वेषा॥
बुधि ही बुधि अनिरुध लै आई। परतछि आनि कै ऊषा मिलाई॥
ऐसे ही जौ तोहि मिलाऊँ। इंदुमती तौ नाम कहाऊँ॥

दोहा

प्रेम बढ़ावै छिनहि छिन, पूछि पूछि उनहारि।
ज्यों मथि काढ़ी अगनि कन, क्रम क्रम देइ पजारि॥२२८॥

चौपाई

कुँवरि कहै सखि किहि बिधि कहिये। रूप बचन कै नाहिन लहिये॥
रूप कौ रस जानैं ये नैना। तिनहि नहिन बिधि दीनै बैना॥
अरु वह रूप अनूपम जेतौ। नैननि गह्यो गयो नहिं तेतौ॥
ज्यों सुंदर घन स्वाति कौ माई। चातक चंचुपुटी न समाई॥

दोहा

कह्यो चहति पुनि नहि कहति, रहति डरपि इहि भाय।
मोहन मूरति हीय तें, कहत निकसि जिनि जाय॥२३३॥

चौपाई

घटपटि परी सहचरी हिये। पूछति बहुरि बलैया लिये॥
कहन लगी तब पिय-बनहारी। राजत लाज सौं राजकुमारी॥
स्याम बरन तन अस रस भीनौ। मरकत रस निचोय जस कीनौ॥
मोर चंद सिर अस कछु लौनौ। मानहुँ अली टटावक टौनौ॥
सोहति अस कछु बाँकी भौंही। मो मन जानै कै पुनि हौंही॥
चुनि चुनि सरद कमल दल लीजै। तिन कहुँ मोती पानिप दीजै॥
ता मोहन के नैनन आगैं। अलि तेऊ अति-फीके लागैं॥
नासिक मोती जगमग जोती। कहती तौ मति होती ओती॥
पीत बसन दुति परति न कही। दामिनि सी कछु थिर ह्वै रही॥
लाल कै लाल कछनि छबि ऐसी। लालनि चोप रँगी होय जैसी॥
मुरली हाथ सुहाई माई। बिनिहि बजाई राग चुचाई॥

दोहा

ताकै रूप अनूप रस बौरी हौं मेरी आलि।
आज तनक सुधि परन दै सबै कहौंगी कालि॥२४५॥

चौपाई

सुनतहि मुरझि परी सहचरी। आनँद भरी अचंभै भरी॥
बड़ी बेर जागी अनुरागी। मनही माँझ कहन यौं लागी॥
कहँ हौं कुटिल कुचील कुहिय की। कहँ इह दया साँवरे पिय की॥
अनेक जनम जोगी तप करै। मरि पचि चपल चित्त कहुँ धरै॥
सो चितु लै चहि वोर चलावै। तौ वह नाथ हाथ नहि आवै॥
अब गोपिन कौं सो हितु होई। तब कहुँ जाय पाइये सोई॥
कवन पुन्य या तिय कै माई। नंद-सुवन पिय सौं मिलि आई॥
निरवधि रमारमन बिस्रामा। तातैं बसी लसी इह बामा॥
मज जुवतिन कौ दर्पन जोई। तामैं मुँह झँकि आई सोई॥

दोहा

सहचरि भूली सी रही, फूली अंगन आय।
अंध रहे चकचौंधि जिमि, सुंदर नैना पाय ॥२५५॥

चौपाई

कुँवरि कहति हे सजनि सयानी। सपन की बातनि क्यों मुरझानी
सखी कहै इह सपन न होई। सत्य आहि अब सुनि लै सोई
तेरो रूप अनूप सुभाइक। जान्यो जात विरथ विनु नाइक।
तौ मैं इह इक देव मनायो। सो बलि तो कहुँ सपनै आयो।
बहुतनि बहुत भाँति तप तायो। पै इह नाइक विरलै पायो।
देखि कै बलि तुव भाग बड़ाई। तातैं मो कहुँ मुरछा आई॥
मुसकि कुँवरि सहचरि सौं कहै। तौ वह देव कहा है रहै॥
सखी कहै जिहि बन तैं पायो। तै ही बन एक गाँव सुहायो॥
गोकुल गाँव जाउँ बलिहारी। जगमगाय छबि जग तें न्यारी॥
तहँ को नंद गोप वह राजा। सदा सरबदा एकहि साजा॥
जसुमति रानी सब जग जानी। भाग भरी सुर नरनि बखानी॥
रमा उमा सी दासी जाकी। ठकुराइति का कहिये ताकी॥
तिनको सुत सो कुँवर कन्हाई। का कहौं छबि तू देखिहि आई॥

दोहा

तिय-हिय-दर्पन तन-रुई रही हुती पुट पागि।
प्रीतम-तरनि-किरनि परसि लागि परी तिहि आगि ॥२६६॥

चौपाई

निर्विकार तिय-हिय मैं सपनैं। उपज्यो भाव सुभावहि अपनैं॥
प्रथमहि प्रिय सौं प्रेम जु आही। कवि जन भाव कहत हैं ताही॥
रूपमंजरी तिय को हियो। गिरिधर अपनो आलय कियो॥
इंदुमती तहँ [illegible]ति अनरागी। ताही मैं प्रम पु[illegible]न लागी॥

जहँ जहँ जो कछु उत्तम पावै। सो सब आनि कै ताहि चढ़ावै ॥
बान बान पै पान खवावै। मंद हिंडोरहि डोर झुलावै ॥
छिन छिन भाव बढ़त चलो ऐसे। सरद द्वैज ससि-कलानि जैसे ॥
भाव बढ़्यो क्यों जानिय सोई। और वस्तु कहुँ ठौर न होई ॥
भाव तैं बहुरि हाव छवि भई। सहचरि निरखि बलैया लई ॥
रूप जोति सी लटकति डोलै। सब सौं बचन मनोहर बोलै ॥
अँग अँग पेम उमँग अस सोहै। हेमछरी जराय जरि को है ॥
नैन बैन जब प्रगटै भाव। ताकहुँ सुकवि कहत हैं हाव ॥
हाव ते बहुरि जु उपजै हेला। सखि कहुँ परम अमी रस बेला ॥
बार बार कर दर्पन धरै। कुंतलहार सँवारयो करै ॥
अति शृंगार मगन मन रहै। ता कहुँ कवि हेला छवि कहै ॥
ता पाछैं उपजी रति नई। सखिन बारि मनिमाला दई ॥
उचित सु धाम काम तौ करै। जानै नहिंन कवन अनुसरै ॥
भूख पियास सबै मिट गई। लाय कछू गुरजन की लई ॥
मन की गति पिय पै इहि ढारा। समुद मेळि जस गंग की धारा ॥
उमक दै नैन नीर भरि आवहि। पुनि सुखि जाय महा छवि पावहि ॥
पुलक अंग स्वरभंग जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै ॥
बिबरन तन अस देइ दिखाई। रूप बेलि जस घाम मैं आई ॥
तनक बात जौ पिय पै पावै। सौ बेरियाँ सुनि तृपति न आवै ॥

दोहा

रूपमंजरी तिय हियहिं, पिय झलकै इमि आय ।
चंद्रकांति मनि माँझ जिमि, परति चंद की झाँय ॥२६३॥

चौपाई

प्रगट मिलन कौं अति अरबरै। रहसि बैठि तिय जतननि करै ॥
दर्पन लै उर आगैं धरै। मति इहं झाँई पिय की परै ॥

बाल अर्क सम बिरह जनायो। तिय तन तनक तपति है आयो॥
आन की ढिग स्वास नहिं लेई। मूँदे मुँह तिहि ऊतरु देई॥
तपत स्वासनि जौ कोउ लहै। बाला बिरहिनि का तब कहै॥
जो कोउ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धरवावै॥
अपने कर जु बिरह जुर तावे। मति कुरि जाहि डरति तिय यातें॥
सहचरि मन मैं करइ बिचारा। यह कीजै अब हो करतारा॥
यह अब प्रगट पीय कहुँ चहै। निगमहि अगम सु निकट न अहै॥

दोहा

मन मन बूझै सहचरी, सूझै नहि कछु और।
आर्नव-नाव-बिहंग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर॥३०२॥

चौपाई

ऐसहि मैं पावस ऋतु आई। सहचरि निरखि महा भय पाई॥
धूँधरि दिसनि देखि भय बढ़ी। मैन-सैन-खुर रेनु सी चढ़ी॥
पावस गहरी गरजनि सुनी। जनु कंदर मैं केहरि-धुनी॥
सखी-अंक मैं दुरि गई ऐसी। मृगी-अंक मृगछौनी जैसी॥
उमड़े बादर कारे कारे। बड़डे बहुरि भयानक भारे॥
घुमड़नि मिलनि देखि डर आवै। मनमथ मानौं हथी लरावै॥
पवन-महावत लै लै धावै। अंकुस-छटनि छोह उपजावै॥
भामिनि भागि भवन दुरि जाई। गिरि परिहै कोउ कुंजरु माई॥
घन मैं तनक जो पिय-उनहारी। तिहि लालच देखै वर नारी॥
बगनि की माला नैन बिसाला। मानत पिय-उर पंकज माला॥
दामिनि दमक देखि दृग नावै। पिय पट पीत छोर सुधि आवै॥
दिन तौ इहि अवलंब घरावै। रैनि मैं रवनि महा दुख पावै॥
घन हरधौरै पवन झकोरै। दादुर झींगुर कानन फोरै॥
पटबिजना तहँ अधिक खसावै। छटनि तें छुटि चिनग जनु आवै॥

पुनि तहँ पापी पपिहा दहै। तासौं इंदुमती इमि कहै ॥
अरे सकुनि, बिनु अगिनि दहै रे। बंचक रंचक चुरकै रहि रे ॥
मरतु तृषा बरषा बरसै ही। तौ सठ चातक पातक चे ही ॥
कुँवरि कहै सखि को यह आही। पिउ पिउ बोलत बरजत नाहीं ॥
सखि कहै बलि इक पंछी अहै। भाषा इहै जु पिउ पिउ कहै ॥
ऐ परि याकौ नेम सुनहि जौ। लाडिली अचिरज लाइ रहै तौ ॥
जब कब तब घन स्वातिन बरसै। तब भल जाय चुंचु जल परसै ॥

दोहा

प्रेम एक इक चित्त सौं, एकहि संग समाय।
गंधी कौ सौंधौ नहीं, जन जन हाथ बिकाय ॥३२५॥

चौपाई

कुँवरि कहै कछु साँच है अली। किधौं सपन की सपनहि मिली ॥
सखी कहै बलि बरखा बीतै। तब हौं लाय मिलाऊँ मीतै ॥
अब निसिदिन घन बरस्यो करै। ऊँच नीच कछु सुधि नहि परै ॥
घाट घाट तृन छादित ऐसे। बिनु अभ्यास बलि बिद्या जैसे ॥
अरु बलि जाउँ कहै सब कोई। धीरै धीरै सब कछु होई ॥
कवन भाँति धनि धीरज धरै। श्वाँवा अगिनि जिमि अंतर जरै ॥
सब निसि प्रान निहोरत बीते। का कहिये दुख या दुखही ते ॥
राजकुँवरि जब अति दुख पावै। सहचरि लै तब बीन बजावै ॥
पानी होय तौ जाय बुझाई। घी सींची किन आगि सिराई ॥
पिय मूरति जु आनि उर अरै। कामिनि कलमल कलमल करै ॥

दोहा

सूधौ जौ कछु उर गड़ै, सो न कढ़ै दुख होय।
ललित त्रिभंगी जिहि गड़ै, सो दुख जानै सोय ॥३३६॥

चौपाई

जबहिं सरद स्वानो जानो। कुँवरि सहचरी तन मुसुकानी ॥
सखी कहै मैं पठये चारा। आजि कालिह ऐहै समचारा ॥
कुँवरि कहै सुरुखन दिसि अहै। जहँ वह साँवर पीतम रहै ॥
जो दिसि हाथ कै सखिन बताई। सो दिसि जीवनि मूरि सी पाई ॥
पक्जपत्रनि पख बनावै। उड़न लगै सो क्यों उड़ि आवै ॥
मन सौं कहै कुटिल तू आही। अकिलौई उठि पिय पै जाही ॥
रचक नैनन हू सँग लै रे। मोहन-मुख दिखि आवन दै रे ॥
साँवरे पियहि सुमिरि वर बाला। भरइ उसास उसास बिहाला ॥
ते ऊसास अगिनि की रूपी। कुँवरि क ह्वैगो ज्वालामुखी ॥
अंजन बिनु दिखि नैन सुहाये। खजन दुरे कहूँ तें आये ॥
निरखि कुँवरि को बदन उदासा। इंदु मुदित ह्वै उदित अकासा ॥

दोहा

निरखि मलिन मुख नलिन कहुँ, फूले कमल कसार।
बैरी चीत्यौ जगत मैं, तू जिनि करि करतार ॥३४८॥

चौपाई

द्वैज चंद दिसि भै भरि भारी। उगी गगन जनु काम कटारी ॥
टूटि तार अगार बगावै। कामभूत जनु मोहि डरावै ॥
पुनि पूरन ससि कहुँ दिखि डरी। आवत मैन लिये जनु फरी ॥
धवन समय आयो इह सजनी। इदु अनल बरसै सब रजनी ॥
भली करहि जो इन दिन माँहीं। प्रानपियारे आवहि नाहीं ॥
कुँवरि कहति सखिया ससि रौंहै। राहु रात क्यों गिलिगिलि छाँहै ॥
सखि यह राहु अमृत जब पियो। तेरे कंत खंड सिर कियो ॥
उदर नहिन जामैं इह पचै। निकसि निकसि बिरही जन तचै ॥
कुँवरि कहै दुहु खंडनि माई। जरा आनि किन लेहि जुराई ॥

दोहा

कै अद्दरनि पर धरि मुकुर, सुकर लोह घनु लेहि ।
जवहि आनि परै तहाँ, तवहि ता सिर देहि ॥३५८॥

चौपाई

इमि इमि करतहि हिम रितु आई । तामै तरनि तरुन दुखदाई ॥
बड्डी रैनि तनक से दिना । क्यों भरिए पिय प्यारे विना ॥
जाड़ राँड़ जब अति तन दहै । साँवरे सर धुरि सोयो चहै ॥
नैन मूँदि निसि नींद अनावै । मति वह सुपन बहुरि हू आवै ॥
नींद न आवै तव कहै दई । नींद मनो कहुँ सोय है गई ॥
अति सिसु जोवन कैसे रहै । पीतम अधर दूध कहुँ चहै ॥
बिलपत देखि दया जब आवै । भरि भरि नैना नीर पिवावै ॥
कबहूँ मृगमद लै मृगनैनी । रहसि बैठि रचि मूरति मैनी ॥
मीन करै कर साइक धरै । पाइन परि परि बिनती करै ॥
अहो अहो मैन, देव तुम बड़े । जाके सर सिव के उर गड़े ॥
ते सर छाँड़त अबलन माँही । पुरुष-राव इह पौरुष नाहीं ॥

दोहा

तिय तन बितन जु पंच सर, लगे पंच ही घाट ।
चुंबक साँवरे पीय बिनु, क्यों निकसहि ते नाट ॥३७०॥

चौपाई

हिम रितु बीत सीत रितु आई । भीत भई जिमि बाघ तैं गाई ॥
इक दिन तिय निज जिय सौं कहै । इहि तुसार तू कहूँ न रहै ॥
बिधि सौं पूत मीत रबि ताकौ । जल सौं जनक जगत जस जाकौ ॥
तू को आहि हितू को तेरौ । एक मीत सो नाहिन नेरौ ॥
पुनि सहचरि कर बचन सँभारा । बोली पुलकि सुधा की धारा ॥
कहति कि तू जौ पावस बीते । तब हौं आनि मिलैहौं मीते ॥

पावस बीति सरद ऋतु बीती । हिम रितु बीती सीत समीती ॥
अब बसंत रितु आगम आयो । कापै जैहै जीव जिवायो ॥
चितन बसंत सखा दोउ ऐसे । पावक पवन मिले जग जैसे ॥

दोहा

अकथ कथा मनमथ बिथा, तथा उठी तन जागि ।
किहि बिधि राखे, क्यौं रहै, रुई लपेटी आगि ॥३८०॥

चौपाई

तबई लोगनि होरी धरी । सुनतहि निपट डरी सहचरी ॥
चाँचरि दैन लगे नर नारी । बाजे डफ अरु करवल तारी ॥
पट नारिनि रँगु अस उरजायो । फाग मनौ पहपटिया आयो ॥
बन बन फूले फूल सुहाये । मानहुँ सिगरे लोग हँसाये ॥
कुँवरिहि साथिन खेलन जाही । होरी खेलन खेल उमाही ॥
खेलन चली नवीन किसोरी । होरी कहत धन्य हो होरी ॥
रँग रँग रली चली सँग अली । छबि सौं छिरकत पुर की गली ॥
कंठनि हीरा आनन बीरा । पाइन बाजत मंजु मँजीरा ॥
छबि सौं छुटै कनक पिचकाई । मनहुँ मैन-फुलझरी सुहाई ॥
बाजहिं सुरमंडल डफ झीना । ताल पखावज आवज बीना ॥

दोहा

रंग रंग छिरके बसन, बरनत बनति न बात ।
जनु रति ब्याहन रहसि भरि, आई बिज्जु-बरात ॥३८१॥

चौपाई

मरहि परसपर नर अरु नारी । ठाढ़ी निरखै राजकुमारी ॥
किहि छिरकै कापै छिरकावैं । पुरुष न कोउ आँखी तर आवैं ॥
दिनमनि जगमगाय ढिग जाकै । दीपक कहाँ आँखि तर ताकै ॥
नगर के लोग सबै यह भागे । मिलि मन लीला गावन लागे ॥

तिन में गिरिधर पिय सनहारी। चक्रित भई सुनि राजकुमारी ॥
माथे मोर के चंदा सुने। कुँवरि के मन में घुन जिमि घुने ॥
मुरली पीत बसन जब गाये। चपरि के चपल नैन भरि आये ॥
सखि तन कुँवरि फनापन चहै। मन मन मुरझै अरु इमि कहै ॥

दोहा

इक तौ गिरवर-धर कुँवर, मेरे प्रीतम जौन।
जाकौं गावति ये जुवति, सो गिरिधर धौं कौन ॥४००॥

चौपाई

इक कोउ नारि निकट जगमगी। ताहि कुँवरि दुरि पूछन लगी ॥
सुंदर गीत सुहावन माई। काके हैं, को कुँवर कन्हाई ? ॥
सो सब कहन लगी ब्योहारा। जाकौ है इह सब संसारा ॥
घर अबर ससि सूरज तारे। सर सरिता साइरि गिरि भारे ॥
हम तुम अरु सब लोग लुगाई। रचना तिनही देव बनाई ॥
बहुरि कुँवरि हँसि तासौं कहै। तौ वह देव कहाँ है रहै ॥
तब तिन में कोउ और सयानी। बोली परम मनोहर बानी ॥
वह देखै उहि लखै न कोई। पंडित कहहिं कि सब ठाँ सोई ॥
ज्यों बलि दृष्टि कुंभ कहुँ देखै। कुंभ तौ नहिन दृष्टि कहुँ पेखै ॥
कुंभ मैं दृष्टि होय जब जाई। दृष्टि भलै तब देव दिखराई ॥
पैपरि कवि इक ठौर बतावैं। जब बलि ये कछु गाथा गावैं ॥
गोकुल गाँव कहूँ इक कोई। तामें बसत सदा सखि सोई ॥
नंद पिता जसुमति है माता। गिरिधर लाल जगत बिख्याता ॥

दोहा

सो सखि सुख अरु सपन सुख सोई सुनि जग जागि।
कितहिं बुझावै का करै तिहि घर लेती आगि ॥४१४॥

चौपाई

फिरि गये नैन मूरछा आई। बहुरि सहचरी कंठ लगाई ॥
घिरि आईं तिय लेईं बलाई। कहा भयो या कुँवरिहिं माई ॥
सहचरि चतुर बात बहरावै। टेव है याहि मूरछा आवै ॥
कह जानौं कछु छाया पाई। दूध भात घर खाय ही आई ॥
साथिनि हाथनि पाइनि मींजैं। पुनि पुनि इदुमती पर खीजैं ॥
जुवति कहैं जिहि ऐसे जीजै। नागर नगधर नीकैं कीजै ॥
सब कोउ कहै डीठि है लागी। निपट अनूप रूप रस पागी ॥
घैर तें डरपि सखी घर लाई। घरहू बड़ी बेर सुधि आई ॥

दोहा

भूत छिये मदिरा पिये, सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधारस जो पिवै, तिहि सुधि रहै न कोय ॥४२३॥

चौपाई

मात सुनत जननी उठि धाई। धाछी पर जस आछी गाई ॥
इदुमती पर अति रिसि आई। आजि कालि तैं कहाँ खिलाई ॥
चतुर सहचरी बात दुरावै। बात की घात मात नहिं पावै ॥
मोहिं बरजत बहेर तर गई। ना जानौं कछु तहँ तै भई ॥
छाति लगाय जननि इमि कहै। कवन भूत जो तो तन चहै ॥
गोकुलनाथ की पूत हमारै। भूत के भूतनि ही धरि मारै ॥
एक पहर यों अबुध ह्वै रही। पुनि निज मात बात अस कही ॥
जस कोउ मदिरा मत अस आही। तामै भूत लगै पुनि ताही ॥
बहुरि नारि नौहरि सी लई। जननी निरखि ससंकित भई ॥
भूतावेस अबसि है माई। दौरहु कछु इक करहु उपाई ॥
सखी कहै कहु बोलिकिहिं आनौ। एक मंत्र अरु हौंहू जानौ ॥
कहति है दुरत अकुलानी रानी। अब लग तूही झारि सयानी ॥

दोहा

कान लागि सहचरि कहै, जागि छबीली बाल।
वै आये बलि देखि उठि, मोहन गिरिधर लाल ॥४३६॥

चौपाई

उठि बैठी भइ राजकुमारी। ढिग बैठी देखी महतारी॥
मा-तन चितै निपट लजि गई। जानी होय बात जिनि दई॥
निरखि सुता कौ सहज सुहायो। जननी जठर जीव तब आयो॥
सहचरि निपट सयानी जानी। रानी तिहि छिन अति सनमानी॥
उर ते काढ़ि हार पहिराई। हित अनहित सब बात जनाई॥
सखि यहँ मोहि दोस कछु नाहीं। निपट अनूप रूप इन माहीं॥
छिन छिन माँझ डीठि ह्वै जाई। छिन नीकी छिनही मुरझाई॥
सौंधौ याकै अँग न लगाऊँ। फूल फुलेल न मूँड़ चढ़ाऊँ॥
दर्पन देखि न दै उन सौंही। डरौं आपनी डीठि तैं हौंही॥
मा कहै मेरी कौ रूप सुभाइक। सुंदर गिरिधर लाल की लाइक॥
ऐ पर अपनौ करम री माई। भुगते बिनु न तीर ह्वै जाई॥
बिहँसि कुँवरि जनु हिय घुरि जाई। जनु याही मैं कुँवर कन्हाई॥

दोहा

हौं जानौं पिय-मिलन ते, बिरह अधिक सुख होय।
मिलते मिलियै एक सौं, बिछुरें सब ठाँ सोय ॥४४६॥

चौपाई

ता पाछैं बसंत रितु महा। आई सो दुख कहिए कहा॥
तामैं मैन नृपाई पाई। पिक बोली जनु फिरत दुहाई॥
किसुक कलिन देखि भय पाई। नाहर की सी नहुरैं माई॥
राती राती रुधिर भरी सी। बिरही जन उर ह्वै निकरी सी॥
सब बन फूल फूलि अस भयो। आनि अनंग राव जनु छयो॥

बड्डे कुंज महल अस बनें। ऊँचे द्रुम बितान जनु तनें ॥
बन बाहिरि जु कुंज छुट छुटी। ते जनु छठी नटिन की कुटी ॥
अकिले घूमत तर अस अंधे। मनु मदमाते हाथी बँधे ॥
इक दिन राव अखेटक चढ़यो। बिरही मृग मारन रिस बढ़यो ॥
पुहुप कौ चाप पनिच अलि किये। पंच बान पाँचौ कर लिये ॥
सोखन दहन उचाटन छोभन। तिन मैं निपट बुरौ संमोहन ॥
त्रिगुन पवन तुरंग चढ़ि धायो। दलमलि देस कुँवरि ढिग आयो ॥
रूपमंजरी दिखि हँसि परी। बदन सुबास निकसि अनुसरी ॥
सो सुबास जब भौंरन पाई। टूटि पनिच सब तहँ चलि आई ॥
इतनेहिं माँझ उबरि गई माई। नातरु मार मारि तिहि जाई ॥

दोहा

कुसुम धूरि घूघरि दिसा इंदु उदै रस पौन।
कुहु कुहु जौ कोकिल करै बिरही जीयै कौन ॥४६४॥

चौपाई

तातैं बहुरि जु ग्रीषम आई। अति भीषम कछु बरनि न जाई ॥
बड्डे तपत पहार से दिना। चढ़े जायँ पिय प्यारे बिना ॥
दुपहरि तहँ डाइन सी आवै। ताहि निरखि तिय अति दुख पावै ॥
बाल के बालक जिय कहुँ लहै। कब लग बाल दुकाये रहै ॥
अति निदाघ मैं अस सुधि नाहीं। दादुर रहत फनी-फन छाँही ॥
तातैं सतगुन बिरह कि आगी। रूपमंजरी तब मन लागी ॥
चंदन परचें अति परजरै। इन्दु-किरनि घृत बुंद सी परै ॥
घनसारहिं दिखि मुरझति ऐसे। मृगीवंत जल दरसे जैसे ॥
हार के मुतिया उर झर माँहीं। तचि तचि तरकि लखा है जाँहीं ॥
दिखि दिखि इन्दुमती अरबरै। थोरे जल जिमि माछरि फिरै ॥
सहचरि अति अकुलानी जानी। करति समोध कुँवरि मधु बानी ॥
कत सोचति सखि तू मद माता। तू जस आहि अस न पितु माता ॥

दोस न तेरौ दोस न मेरौ। यह सब थान बिधाता केरौ॥
अब मोपै छिनु जियो न जाई। जो हौं कहौं सु करहि री माई॥
सुंदर सुमनन सेज बिछाई। अरगज मरगजि डसनि डसाई॥
चंदन चरचि चंद उगवाई। मंद सुगंध समीर बहाई॥
पिक गवाय केकी कुहकाई। पपिहा पै पिउ पीउ बुलाई॥
मधुर मधुर तू बीन बजाई। मोहन नंदसुवन गुन गाई॥
यौं कहि कुँवरि ग्रीव जब गोई। घरहराय तब सहचरि रोई॥
कहत कि अहो अहो गिरिधर लाला। प्रभु तुम कैसे दीनदयाला॥
माछरि उछरि पुलिन जौ परै। जल जड़ तदपि दया अनुसरै॥
बूड़त रुंड गहै जो कोई। ताहि बहत गहि राखै सोई॥
तुम सब लाइक त्रिभुवन नाइक। सुखदाइक सुभकरन सुभाइक॥
अरु तुमहूँ अपने मुख कही। सौ सब पूरी रही है मही॥
जिहि जिहि भाय भजै जौ जोई। तिहि तिहि बिधि सौं पूरन होई॥
इतनी कहत कुँवरि उयबानी। सहचरि दौरि उसीसी आनी॥
दै उसीस पर सुंदर बाँहीं। सुंदरि सोय गई सुख माहीं॥
जौ देखै तौ वह बन आही। सपन की संपति सब अवगाही॥
जमुना पुलिन कल्पतरु तरै। ठाढ़े कर कल बंसी धरै॥
देखे मोहन गिरिधर पिया। साँवरे जगत-सदन के दिया॥
पियहि निरखि तिय लज्जित भई। सखि पाछै आछै दुरि गई॥
हँसत हँसत पिय तिहि ढिग आये। काम ते कोटिक ठाँव सुहाये॥
सखि सौं वह लपटनि अलबेली। अरुझी हेमपेम जनु बेली॥
लाही कै रस ताहि मनावै। मोहनलाल महा छबि पावै॥
बनिता लता सहजि सुखदाई। ऐंचे सरस निरस ह्वै जाई॥

दोहा

नेह नवोढ़ा नारि कौं बारि-बारुका न्याय।
थलराये पै पाइये नीपीड़े न रसाय॥४०१॥

चौपाई

बोलि बोलि मादक मधुबानी। कुँवरि निहोरि कुंज में आनी॥
का कहिये तिहि कुंज निकाई। जनु सुख पुंजन ही करि छाई॥
तामें सेज सुपेसल ऐसी। आल बाल रति-बेली जैसी॥
कछु छल कछु बल कछु मनुहारी। लै बैठे तहँ लाल बिहारी॥
मन यह रम्यो यहै तन भग्यो। कामिनि के इक कौतुक लग्यो॥
जो पारद कहुँ कर थिर करै। सो नवोढ़ बाला उर धरै॥
पुहुपनिही के दीपग जहाँ। जगमग जोति लगी रहि तहाँ॥
प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया॥
दीप न बुझहि बिहँसि बर बाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला॥
भोजन भूख मिलत मैं लहै। ऐ परि इन सरि परत न कहै॥
प्रेम पुलक अंतर तिहि काला। सो अंतर सहि सकति न बाला॥
चित बिबधान सहति नहि सोई। रूपमंजरी अस रस भोई॥

दोहा

चुंबन समै जु नासिका बेसरि मुती मुलाय।
अधर छिड़ावन पीव पै मानो हाहा खाय॥ ५१४॥

गाथा

गुथि गण गुणाण गणियं मह्यामगा विहँग मारेहा।
तिय रस पेम पमाणं जाणं जीघणं जपियं जीहा॥ ५१५॥

चौपाई

सब निसि के जागे अनुरागे। रंचक सोय गए उर लागे॥
तबहीं भोर के लच्छिन भये। तार हार सीतल ह्वै गए॥
दीपग फीके फूल ऐलाने। परकिय तियनि के हिय अकुलाने॥
कुरकुट सुनि घुरकट भई माला। लीनै उससि उसास बिसाला॥

दोहा

जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की बात।
सूर उदोत करोत सम, चीरि किये बिबि गात ॥५२०॥

चौपाई

जागि कुँवरि अपने घर आई। अपने गौने कुँवर कन्हाई ॥
सेज ते उठति सुरत रस माती। सखि तन मधुर मधुर मुसकाती ॥
सगबगि अलकैं श्रमकन झलकैं। सोहति पीक पगी द्रग-पलकै ॥
राजत नैन पीक रस पगे। हँसि हँसि हरि प्रीतम मुख लगे ॥
फूलमाल जो पिय पै पाई। कुँवरि के कंठ चली सो आई ॥
तब तें रूपमंजरी बाला। छिन छिन औरै रूप रसाला ॥
पारस परसि पितल होय सोनू। पाहन तें परमेस्वर औनू ॥

दोहा

तिहूँ काल मैं प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलि काल।
तातें सपनो ओट दै भेंटे गिरिधर लाल ॥५२८॥
जो यौं छित ही रैनि दिन सो कीनी करतार।
महामनोरथ-सिंधु तरि सहचरि पहुँची पार ॥५२९॥

चौपाई

इहि विधि कुँवरि रूपमंजरी। सुंदर गिरिधर पिय अनुसरी ॥
इंदुमती जाकी सहचरी। सो पुनि तिहि संगति निस्तरी ॥
तिनकी इह 'लीला रस भरी। 'नंददास' निज हित कै करी ॥
जो इह हित सौं सुनै सुनावै। सो पुनि परम प्रेम पद पावै ॥

दोहा

जदपि अगम तें अगम अति, निगम कहत है जाहि।
तदपि रँगीले प्रेम तें, निपट निकट प्रभु आहि ॥५३४॥
कथनी नाहिंन पाइये, पइये करनी सोय।
बातन दीपग नां बरै, बारे—दीपग होय ॥५३५॥

रसमंजरी

दोहा

नमो नमो आनंदघन, सुंदर नंद-कुमार।
रस-मय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार ॥ १ ॥

चौपाई

है जो कछू रस इहि संसार। ताकहुँ प्रभु तुम ही आधार ॥
ज्यौं अनेक सरिता जल बहै। आनि सबै सागर मैं रहै ॥
जग मैं कोउ-कबि बरनौ काही। सो जसु-रस[1] सब तुम्हरी आही ॥
ज्यौं जलधर तैं जलधर जल लै। बरषै इरपि आपनैं कलै[2] ॥
अगनि तैं असगन दीपक बरैं। बहुरि आनि सब तिन मैं ररैं ॥
ऐसेहि रूप प्रेम रस जो है। तुम तैं है तुम ही करि सोहै ॥

दोहा

रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग मैं आहि।
सो सब गिरिधर देव कौं, निधरक बरनौं ताहि ॥ ७ ॥

चौपाई

एक मीत हम सों अस गुन्यो। मैं नाइका-भेद नहिं सुन्यो ॥
अरु जु भेद नाइक के गुनें। ते हू मैं नीके नहिं सुनें ॥
हाव भाव हेलादिक जिते। रति समेत समझावहु तिते ॥
जब लग इनके भेद न जानै। तब लग प्रेम न तत्व पिछानै ॥
जाको जहँ अधिकार न होई। निकटहि वस्तु दूरि है सोई ॥
मीन कमल के ढिग ही रहै। रूप रंग रस मधुलिह लहै ॥
निकटहि निरमोलिक नग जैसें। नैन हीन तिहि पावै कैसें ॥
तासौ 'नंद' कहत सब ऊतर। मूरख जन मन मोहित दूतर ॥

---

१. पाठा०—जु सुरस। २. पाठा०—आप मैं मिलै।

यात अवर कछु अवरहि बूझै। अलप ग्यान गुनि अनमन दूझै॥
अब सुनि लै मूरख मन फैसौ। बरनि सुनाऊँ तो कहुँ तैसौ॥
महा नक्र-मुख जो मनि होई। ताही कर करि काढ़ै कोई॥
कुपित भुजंगम सिर पग धरै। हाथनि पाथ-रासि पुनि तरै॥
तेल लहै करि धूरि की घानी। मृगतृष्णा तैं पीवै पानी॥
खोजि ससा के शृंगनि पावै। पै मूरख मन हाथ न आवै॥
तू तौ सुनि लै रसमंजरी। नख सिख परम प्रेम रस भरी॥

दोहा

रसमंजरि अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार।
बरनत बनिता-भेद जहँ, प्रेम सार बिस्तार॥२४॥

चौपाई

जग मैं जुवती त्रय परकार। करि करता निज रस-बिस्तार॥
प्रथम स्वकीया पुनि परकीया। इक सामानि बखानी तिया॥
ते पुनि तीन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार॥
मुग्धा हू पुनि द्वै बिधि गनी। ज्यौं उत्तर उत्तर रस सनी॥
प्रथमहि मुग्ध नऊढ़ा होय। पुनि विश्रब्ध नऊढ़ा सोय॥

मुग्धा नवोढ़ा

जिहि तन नव जोवन अंकुरै। लाज अधिक तन मन संकुरै॥
अति आधीन होय रति जाकैं। भूषन रुचि तैसी नहिं ताकैं॥
प्रीतम जब कर-पंकज धरै। बल करि सेज निवेसित करै॥
मोड़ी फरि सब अंगनि गहै। तदपि सुतिय यह गबन्यो चहै॥
तन करि भागै मन करि रमै। कहि न जाय जस बैसँधि समै॥
जो पारिहि कहुँ कर थिर करै। सो नऊढ़ बाला उर धरै॥

विश्रब्ध-नवोढ़ा

अँग अँग जोबन जोति संचरी। कंचन ढरी[1] मनो नग जरी॥

---

१. पाठ०—छरी।

उपजी कछुक दृगनि आतुरी। लज्जित जहँ खंजन चातुरी॥
तन लावन्य झलक परि ऐसी। मुक्ताफल नव पानिप जैसी॥
पिय सँग सोवति अति छवि लहै। कर करि कलित कुचस्थल गहै॥
नीवी बंधन दृढ़ कै धरै। ऊरू जमल बाँधि इक करै॥
अध मुंदित नैनन छबि पावै। मृग छौनहिं मनो औंघ सी आवै॥
कोमल कोप कबहुँ जो गहै। कुप छाँड़ जिमि हिय ही रहै॥
इहि-परकार परखिये जोई। है विश्रब्ध नवोढ़ा सोई॥

दोहा

गाढ़ालिंगन पीय सौं, दै न सकै तिय सोय।
नव अनंग अंकुर हिये, डरति भंग जिनि होय॥४४॥

अज्ञात यौवना

सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माँहीं॥
पौंछे वारति रोम की धारा। मानति वाल सिवाल की डारा॥
दीरघ नैन चलति जब कोनें। सरद कमल-दल हू तैं लोनें॥
तिनहिं श्रवन विच पकर्यो चहै। अंबुज-दल से लागे कहै॥
इहि परकार तिया जो लहिये। सो अज्ञात जौवना कहिये॥

ज्ञात यौवना

सहचरि के उरजन-तन चहै। अपने चहै मुसकि छबि लहै॥
सखी कहै यलि तुव कुच नये। इकठे उमय संभु से भये॥
सो सुकृती यह निज नख धरिहै। इन कहुँ चंद्रचूड़ जो करिहै॥
मुसकि सखी कौं मारै जोई। ज्ञातजोबना कहिये सोई॥

मध्या

लज्जा मदन समान सुहाई। दिन दिन प्रेम चोप अधिकाई॥
पिय सँग सोवत सोय न जाई। मनमन इमि सोचै सुखदाई॥
सोयें प्रीतम सोहन मुख की। हानि होय अवलोकनि सुख की॥
सोइ न सकै न जागन कहै। अति मध्या सु नवोढ़ा अहै॥

प्रौढ़ा

पूरन जोबन है गहगोरी। अधिक अनंग लाज तिहि थोरी॥
केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद-गज जिमि चहै॥
दीरघ रैनि अधिक कै भावै। भोर कौं नाम सुनत दुख पावै॥
अति प्रगलभ वैनी रस रैंनी। सो प्रौढ़ा प्रोतम सुख दैंनी॥

अन्य भेद

तहँ केई धीरा केइ अधीरा। केइ धीराधीरा रस भीरा॥
मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन। प्रगट नहीं पै लखैं बिचच्छिन॥
ज्यों सुंदर तरु अंकुर माँहीं। दल फल फूल डार सब ताहीं॥
मध्या मैं ते प्रगट जनावैं। पल्लव कली फून होय आवैं॥

मध्या धीरा

सापराध पिय कौं जब लहै। बिंगि कोप के बचननि कहै॥
जगत-निकुंज-पुंज मैं मोहन। तुम अति श्रमित भये पिय सोहन॥
बैठहु बलि काहे कौं खीजौ। नलिनी दल बिजना करि बीजौ॥
रंचक भौंह करेरी लहिये। सा तिय मध्या धीरा कहिये॥

मध्या अधीरा

जागे तुम निसि प्रानपियारे। अरुन भये ये नैन हमारे॥
अधर सुधा सब पिय तुम पियो। घूमत है इह हमरो हियो॥
प्रखर नखन सर लगे तिहारे। पीर होत पिय हिये हमारे॥
बन मैं श्रीफल बनि गये तुमकौं। काम क्रूर मारत है हमकौं॥
बचन अबिंगि कहै रिस भोय। है अधीर मध्या तिय सोय॥

मध्या धीराधीरा

प्रीतम कौं जब सागस लहै। ब्यंगि अब्यंगि बचन कछु कहै॥
अहो अहो मोहन सोहन पिया। नव अनुराग चुचात है हिया॥
चतुर-सिरोमनि नंद के लाला। नव जोबन गुन रूप रसाला॥
यों कहि द्दग भरि आवै जोय। धीराधीरा मध्या सोय॥

प्रौढ़ा धीरा

सागस जानि साँवरे पिया। गूढ़ मान करि बैठी तिया॥
प्रीतम तासौं विनय जु करैं। बार बार कर-अंबुज धरैं॥
बोलति क्यों न सुधा सी धारा। डोलति क्यों न रूपसी डारा॥
केतकि कुसुम मग रमस भगोरी। सेज मान लाजति क्यों भोरी॥
भृकुटि भ्रमर जिमि भ्रमनि जु लहिये। सो तिय प्रौढ़ा धीरा कहिये॥

प्रौढ़ा अधीरा

पिय उर मुकुर समान सुहाय। तामैं निरखि आपनी झायँ॥
अन तिय की जिय संका मानै। रंचक पिय सौं रूठन ठानै॥
पुनि अवधारै को पुनि हारै। हँसि हँसि ता प्रतिबिंबहि मारै॥
इहि परकार परखिये जोई। है अधीर प्रौढ़ा तिय सोई॥

प्रौढ़ा धीराधीरा

सागस जानि रसीले लाला। कोमल मान गहे वर बाला॥
प्रेम भरे सुनि बचन पिया के। हँसहिं कपोल सलोल तिया के॥
राते दृग रिस रस सौं भोये। मानहुँ मीन महावर धोये॥
कछु मन दिढ़ कछु अदिढ़ लहीये। प्रौढ़ा धीराधीरा कहिये॥

सुरतिगोपना

सखि सौं कह सखि यहि गृह अंतर। अब ते हौं सोऊँ न सुतंतर॥
सासु लरौ मैया किन लरौ। मैया जो भावै सो करौ॥
आँगु धरन हित दुष्ट मँजारी। मो परि उपरि परी दइमारी॥
दै गई तीखन नख दुखदाई। कासौं कहौं दरद सो माई॥
इहि छल छतनि छिपावै जोई। परकिय सुरतगोपना सोई॥

पाकीया वाग्विदग्धा

अहो पथिक अति बरसत घामा। रंचक कहूँ करौ बिश्रामा॥
इहँ तें निकट कलिंदी तीर। सीतल मंद सुगंध समीर॥

गहवर तरु तमाल है तहाँ। प्रफुलित बल्लि मल्लिका जहाँ॥
छिनक छाँह लीजै रस पीजै। बहुरयो उठि मारग मन दीजै॥
पियहि सुनाय पथिक सौं कहै। याकू विदग्धा परकिय सु है॥

लक्षिता परकीया

लच्छन चिह्नन जो लखि पाई। बुधि बल छल न छिपाई जाई॥
सतर भौंह गुरजन की सहै। जो पूछै तासौं इमि कहै॥
जु कछु भई सुभई गति भली। हौंनी आहि सु ह्वैहै अली॥
अरु जु होति है होहु सु सिरपर। पेट पातरैं नहिंन बचै सर॥
निधरक भई कहति इम लहिये। सा परकिया लच्छिता कहिये॥

नायिका भेद

प्रोषितपतिका अरु खंडिता। कलहंतरिता, उत्कंठिता॥
अवर विप्रलब्धा नाइका। वासकसज्जा, अभिसारिका॥
पुनि स्वाधीन-वल्लभा गुनी। नवमी प्रीतम-गवनी सुनी॥

प्रोषितपतिका

जाको पति देसांतर रहै। अति संताप बिरह-जुर सहै॥
दुर्बल तन मन व्याकुल होई। प्रोषितपतिका कहिये सोई॥

मुग्धा प्रोषितपतिका

मुग्धा बिरहबिथा हिय सहै। सखि जन हूँ सौं नाहिंन कहै॥
सीतल सेज सँवारि बिछावै। सोय न सकै लाज जिय आवै॥
गद्गद कंठ रहै अकुलानी। नैनन माँह न आनै पानी॥
जामिनि सँग मनसिज दुख पावै। सो मुग्धा प्रोषिता कहावै॥

मध्या प्रोषितपतिका

मध्या पिय जब बिरह जुर दहै। इहि परकार सखी सों कहै॥
सखि हो वहै वहै कर चलै। ऐपरि कर करिये नहिं चलै॥
बसन तेई कटि किंकिनि सोई। छिन छिन आधि अधिक क्यों होई॥

कवन समय आयो इह सजनी । इंदु अनल बरषै सब रजनी ॥
इहि परकार कहति जो लहिये । मध्या प्रोषितपतिका कहिये ॥

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

पिय परदेस धीर नहि धरै । पीर भीर कछु सुधि नहि परै ॥
तरुन अनंग तरुन दुख बढ़्यो । अँग अँग महा गरल जिमि चढ़्यो ॥
बिरह लहरि जब चढ़ि मुरझावै । बाहु की बलय ढरकि कर आवै ॥
जनु इह बलय नायिका लहै । जियति है किधौं मरि गई अहै ॥

परकीया प्रोषितपतिका

प्रानपियारे पियहि न पेखै । सो तिय सब जग सूनौं देखै ॥
आन की ढिग उसास नहि लेई । मूँदै मुख तिहि ऊतरु देई ॥
तपत उसासन जो कोउ लहै । परकिय बिरहिनि कातर वहै ॥
सखि जौ कमल फूल पकरावै । हाथ न छूवै निकट धरावै ॥
अपने कर जु बिरह-जुर ताते । मति जरि जाँहि डरति तिय याते ॥
उँवा अगनि जिमि अंतर दहिए । सा परकीया प्रोषित कहिए ॥

दोहा

प्रेम मिटै नहि जनम भरि, उत्तम मन' की लागि ।
जौं जुग भरि जल में रहै, बुझै न चकमक आगि ॥१२६॥

खंडिता

प्रीतम अनत रैनि सब जागे । अँग अँग रति-रस-चिन्हन पागे ॥
भोर भयें जाके गृह आवै । सो बनिता खंडिता कहावै ॥

मुग्धा खंडिता

अंकन पिय उर उरज पिछानै । कुंभ चिन्ह से कछु जिय जानै ॥
नख छत छती चितै चकि रहै । वे प्रीतम कौं पूछ्यौ चहै ॥
पिय हँसि बाहि पकड़ लपटावै । सा मुग्धा खंडिता कहावै ॥

मध्या खंडिता

प्रीतम-उर कुच-चिन्हन चहै। जानै परि कछु बैन न कहै॥
पुनि तिन मैं नख रेखै देखै। साँस न भरै कनाखिन पेखै॥
चपरि चखनि तें जो जल आवै। इहि परकारि तिया जु जनावै॥
मुख धोवन मिस ताहि मिलावै। इहि प्रकार त्रिय प्रीति जनावै॥
सा 'मध्या खंडिता कहावै। सुनै सुनावै सो सुख पावै॥

प्रौढ़ा खंडिता

भोर ही आये मोहन लाल। तिय-पद-जावक अंकित भाल॥
नैन नीर नैनन अवधारे। प्रात अमंगल तें नहिं डारे॥
दर्पन लै पिय आगे धरै। व्यंगि बचन बोलै नहिं डरै॥
देखहु छती नख दिखि इन ऐसौ। राति प्रीति कौ अंकुर जैसौ॥
ऐपरि इमि दिखि इत रँग भरयो। गाढ़ालिगन टूटि है परयो॥
इहि परकार कहति रिस सानी। सा प्रौढ़ा खंडिता बखानी॥

परकीया खंडिता

पिय कर कंकन मुद्रा लहै। गंडनि श्रम-कन पुनि पुनि चहै॥
नमित बदन कै ठाढ़ी रहै। प्रीति-भंग भय कछुव न कहै॥
दूती-तन करि नैनन वारै। भरइ उसास दुसासन डारै॥
टपक टपक दृग अँसुवा परै। कमलदलनि जनु मोती झरै॥
इहि परकार प्रेम रस सानी। सा परकिय खंडिता बखानी॥

दोहा

सब काहू सौं देखिये लाल तिहारी प्रीति।
जहाँ डारिए तहँ बढ़ै अमर बेलि की रीति॥१५१॥

कलहांतरिता

प्रथमहि पीय अनादर करै। पीछे फिरि पछितावै मरै॥
साँस भरै उर अति संताप। अरुझै सुरुझै करै प्रलाप॥

सोचति सीस धुनति जब लहिए। सो तिय कलहंतरिता कहिए ॥

मुग्धा कलहांतरिता

प्रीतम अनुनय करि कर गहै। वह लजि लपटि न तासौं रहै ॥
पाछे मलय पवन जब बहै। तब पिय घर धुरि सोयो चहै ॥
मन मन सीस धुनति जो लहियै। मुग्धा कलहांतरिता कहियै ॥

मध्या कलहांतरिता

रवन आनि अनुनय अनुसरै। रूप के गरब अनादर करै ॥
पाछे वह दुख पहुत लजाई। कहैं बिना हिय पीर न जाई ॥
चकित भई सहचरि सौं कहै। बात आन अधरन मैं रहै ॥
बैठि अधोमुख सोचै जोई। मध्या कलहंतरिता सोई ॥

प्रौढ़ा कलहांतरिता

आये जब मोहन रँग भरे। क्यों मो नैन तरारे करे ॥
कच लट गहत धनखि क्यों परी। क्यों कुच छुवत कलह मैं करी ॥
अली अदिष्ट नष्ट भई फोई। पाई निधि जिहि कर तें खोई ॥
इहि परकार प्रलापति लहियै। प्रौढ़ा कलहंतरिता कहियै ॥

परकीया कलहांतरिता

जार्के लिये पतिन मैं पेपे। गरुए गुर हरुये करि देपे ॥
धीरज धन मैं दीन्ह लुटाई। नीति सहचरी सो फिरराई ॥
लाज तिनक जिमि तोरि ही दोनी। सरिता-बारि बुंद सरि कीनी ॥
सुपिय आज मैं अति अवमाने। सखि अब विधि विकुल पै जाने ॥
इहिविधि विलपति प्रलपति लहियै। सा कलहंतर परकिय कहियै ॥

दोहा

रसहूँ लगि पल कंत सौं, कलह न कीजै काउ।
का नहि जो ऊनी करै, सो सोनौं जरि जाउ ॥१७१॥

उत्कंठिता

चहि संकेत पीव नहिं आवै। चिंता करि तिय अति दुख पावै ॥
आरति कंप सँताप जुदाई। तनु तोरति अरु लेत जँभाई ॥
भरि भरि नैन अवस्था कहै। उत्कंठिता नाइका सुहै ॥

मुग्धा उत्कंठिता

प्रानपियारे पिय जु न आये। हूँ जानौं किन ही बिरमाये ॥
लाज तें सखि कौं नाहिंन बूझै। चिंता करि मन ही मन सूझै ॥
चकित भई घर आँगन फिरै। कौंने जाय उसासनि भरै ॥
दुख ते मुख पियरी परि आवै। मुग्धा उत्कंठिता कहावै ॥

मध्या उत्कंठिता

करि बिचार मन ही मन भई। क्यों नहिं आये प्रीतम दई ॥
कै इह सखी गई नहि लैना। कै कछु डरपे पंकज-नैना ॥
भरि आवे जब लोचन पानी। धूम पर्‌यो तब कहै सयानी ॥
सोचति इमि जल मोचत लहिए। मध्या उत्कंठिता सु कहिये ॥

प्रौढ़ा उत्कंठिता

प्रीतम अन आये जब लहै। ठाढ़ी कुंज-सदन मैं कहै ॥
अहो निकुंज, भ्रात इव सुनि धौं। हे सखि जूथि-बहन, मन गुनि धौं ॥
हे निसि मात, तात अँधियारे। पूछति हौं तुम-हितू हमारे ॥
हो तमाल, हौं बंधु रसाला। क्यौं नहि आये मोहन लाला ॥
ऐसे बिलपति मलपति लहिये। प्रौढ़ा उत्कंठिता सो कहिये ॥

परकीया उत्कंठिता

जिहि मनमोहन पिय-हित माई। अकिलो मन धन वसि न सराई ॥
कवन कवन तप मैं नहि कियो। धारि दवारि अन्हैवो लियो ॥
मनसिज देव सेव दृढ़ कीनी। लाज तहाँ मैं दछिना दीनी ॥
सुपिय आज दृग अतिथि न भये। भोरे किनहू भोरे लये ॥
यौवन मैं मन मैं दुख पावै। परकीया उत्कंठिता कहावै ॥

विप्रलब्धा नायिका

पिय संकेत आप दुख पावै। तहँ प्रीतम कहुँ नाहिन पावै ॥
साँस भरै लोचन जल भरै। प्रिय सहचरि सौं झुकि झुकि परै ॥
मन वैराग धरै दुख पावै। जुवति विप्रलब्धा सु कहावै ॥

मुग्धा विप्रलब्धा

कपट सौंह करि करि सखि जाकौं। लै आवहु निकुंज मँह ताकौं ॥
तहँ प्रीतम कौं नाहिन पावै। छुभित होय छबि नहि कहि आवै ॥
सतर भौंह भौंरनि मुहरावै। मुग्धा विप्रलब्ध सु कहावै ॥

मध्या विप्रलब्धा

पिय संकेत आय वर वाला। पावै पियहि न रूप रसाला ॥
अध मूँदित नैनन थकि रहै। आधी बात बदन छवि चहै ॥
आधी बीरी दसनन धरै। ठाढ़ी गूढ़ उसासन भरै ॥
कछु इक मन वैरागहि पावै। मध्या विप्रलब्ध सु कहावै ॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा

कुंज सदन सूनौं जब देखै। सखि जानहु को संग न पेखै ॥
कुटिली कामदेव तें डरै। वामदेव सों विनती करै ॥
भो संभो सूलिन सिव संकर। हर हिमकर-धर हम भयंकर ॥
मदन-मथन गूढ़ अंतरजामी। त्राता होहु जगत के स्वामी ॥
करि करि नैन त्रिनैन मनावै। प्रौढ़ा विप्रलब्ध सु कहावै ॥

परकीया विप्रलब्धा

धीरज-अहि के सिर पग धरै। लज्जा तरल तरंगिनि तरै ॥
तिमिर-महागज हाथनि ठेलै। पति-दरन्नादर पाइन पेलै ॥
इहि विधि कुंज-सदन चलि आवै। तहँ मनमोहन पियहि न पावै ॥
लगा कर धरैं चिंता करै। साँस भरै लोचन जल भरै ॥
इहि परकार परचिये तिया। सु है विप्रलब्धा परकिया ॥

दोहा

धीर सघन घन माँझ है गुरजन डर गैबर ठेलि।
पति डर नाहर पेलि पग करै कबर सों केलि ॥२१३॥

वासकसज्जा

पिय आगमन जानि बर बाला। सुरत समग्री रचै रसाला ॥
दूती पूछै सखि सौं हँसै। करै मनोरथ बिकसै लसै ॥
नैननि निपट चटपटी लहिये। सा तिय बासकसज्या कहिये ॥

मुग्धा वासकसज्जा

छिपी हार गूँथै छबि पावै। छल करि कटि किंकिनी बनावै ॥
दीपहि बारि सदन मैं धरै। तिन महि तेल अधिक नहि करै ॥
सखि कहुँ सेज बिछावति लहै। घूँघट पट मैं मुसकै चहै ॥
छिन छिन प्रीतम को मग जोहै। मुग्धा बासकसज्या सोहै ॥

मध्या वासकसज्जा

पुहुप हारि गुहि सखिहि बतावैं। कहइ कि मो सम तोहिं न आवै ॥
मिस ही मिस पट भूषन धरै। सहचरि के अभरन सौं अरै ॥
हार चित्र देखन मिस बाला। पिय मग देखै रूप रसाला ॥
जाके चरित विलोकि मनोज। हँसि हँसि चूमै बदन सरोज ॥
इहि प्रकार हिय हुलसति लहिये। मध्या बासकसज्या कहिये ॥

प्रौढा वासकसज्जा

प्रगटहिं अंगनि अभरन सजै। सखि जन तें रंचक नहिं लजै ॥
सेज बसन सब धूपित करै। सौरभ करि दुर्दिन सौं अरै ॥
सखि सों सबै मनोरथ कहै। प्रौढ़ा बासकसज्या सो है ॥

परकीया वासकसज्जा

छल करि सुमुखि सास कौ स्वावै। छल ही छल गृह दीप सिरावै ॥
सोवत छल कैं बचन सुनावै। वा प्रिय कहु संकेत जनावै ॥

बार बार हँसि करवटि लेय। जौन्ह सौ बदन दिखाई देय ॥
सेज परी नूपुर रुनकावै। कर के कल कंकन कुनकावै ॥
इहि परकार जुवति जो लहिये। परकिय वासकसज्या कहिए ॥

अभिसारिका

समय जोग पट भूषन धारै। पिय अभिसारि आप अभिसारै ॥
रूप अधिक बुधि की अधिकाई। अधिक चोप तें अधिक सुहाई ॥
चढि चलै कहति पिया पै जोई। अभिसारिका कहावै सोई ॥

मुग्धा अभिसारिका

बोलनि आई दूती दामिनि। चलिहै संग सहचरी जामिनि ॥
भूत भविष कौं जाननिहारा। कहतु है वन सुभ गवन की वारा ॥
भौंगुरि मुख करि रटनि अधारा। मंगल ह्वैहै करि न विचारा ॥
त्रपा मुंच मुग्धे अभिराम। अभिसर चलि जहँ सुंदर स्याम ॥
इहि विधि ताहि सखी लै आवै। मुग्धा अभिसारिका कहावै ॥

मध्या अभिसारिका

निरखि सुमुखि अभिसार की वारा। सखि सँग गवने रुचिर बिहारा ॥
तिमिर मैं नील निचोल बनावै। बदन चंद पट ओट दुरावै ॥
मग के सर्पन तें नहिं संकै। तिनकी फनि मनि हाथ न टंकै ॥
चंद उदै चंदन तन धरै। जौन्ह सी आपुहि हँसि हँसि परै ॥
रीझि मदन जा तिय के बानै। सो पुनि कुंद कुसुम सर तानै ॥
इह परकार जुवति जो लहिए। मध्या अभिसारिका सु कहिए ॥

प्रौढ़ा अभिसारिका

एकाकी पिय पै अभिसरै। धनुधर मदन सहाइक करै ॥
रजनी कौं बासर सम जानै। तामैं घन तिहि दिनमनि आनै ॥
तिमिरहि तरनि-किरनि सम देखै। गह्वर बन सुभवन करि लेखै ॥
दुर्गम मगहि सुगम करि जानै। मदन मत्त डर की को आनै ॥

इहि विधि कुंज सदन चलि आवै। प्रौढ़ा अभिसारिका कहावै॥

परकीया अभिसारिका

उरज भार भंगुर गति जाकी। परिहै तूटि लटी कटि ताकी॥
चल नहिं सकति प्रेम के भारा। डारति काढ़ि मुक्ति को हारा॥
धमिल खोलि सखि कहुँ पकरावै। केलि कमल गहि दूरि बगावै॥
जब अति सिथिल होति सुकुमारा। टेकत चलै बारिधर धारा॥
जौन मनोरथ रथ तहँ होई। क्यों पहुँचै पिय पै तिय सोई॥
इहि बिधि मोहन पिय पै आवै। परकिय अभिसारिका कहावै।

स्वाधीनपतिका

जाकों पारिस पिय नहिं तजै। दिन दिन मदन महोत्सव सजै॥
नव नव अंबर अभरन धरै। बन बिहार रुचि पिय सँग करै॥
सबै मनोरथ पूरन लहिये। सा स्वाधीनवल्लभा कहिये॥

मुग्धा स्वाधीनपतिका

मो कटि तैसी कृस नहिं भई। अंग कांति कछु अति नहिं लई॥
उरजनि नहिन गरिमता तैसी। बचन चातुरी फुरी न वैसी॥
गति न मंद कछु भई सुहाई। नैनन नहिन बक्रिमाँ आई॥
पैपरि पिय मनमोही काँही। कारन कवन सुजानति नाँहीं॥
इहि विधि सखि प्रति बरसै सुधा। है स्वाधीनवल्लमा मुग्धा॥

मध्या स्वाधीनपतिका

हौं कछु रति उत्सव नहिं करौं। अंक धरत धरनी पर परौं॥
सँग सोवत नीवी गहि रहौं। चुंबन करत लाज जिय गहौं॥
मेरी बात अमी जिमि भावै। मोहि गद्गद स्वर बात न आवै॥
तदपि न पिय पारिस तजि जाई। तो कहि कहा करौं री माई॥
अरग अरग इमि सखि सों कहै। मध्या स्वाधिनवल्लभा इहै॥

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

हे सखि अभरन के जे पिया। बात सुनहि स्वकिया परकिया॥

मो प्रीतम मोहीं कहुँ जानै। आन जुवति सुपिनै न पिछानै॥
इहि परकार कहै रस बोढ़ा। सा स्वाधीन वल्लभा प्रौढ़ा॥

परकीया स्वाधीनपतिका

प्रीतम के घर बहुत सुकीया। मोहीं सौं हित मानत पिया॥
मधुबैनी वारिज-बर नैनी। हास बिलास रास रस रैनी॥
पैपरि बन पुर अटा अटारी। पिय की दृष्टि न मों ते न्यारी॥
इहि परकार कहै जो तिया। है स्वाधीनपिया परकीया॥

दोहा

अंजन मंजन पट पहिरि गरब करौ जिनि कोय।
अवरै प्रेम सुलच्छिनौ जिहि प्रीतम बस होय॥२७९॥

प्रीतमगमनी

जाको प्रीतम गवन्यो चहै। भीत भई कछु बैनहि कहै॥
गवन विघन कहुँ मन मन सोचै। लोचन तें जल नाहिंन मोचै॥
चित ही चित चिता परि लहिए। सो तिय प्रीतम गवनी कहिए॥

मुग्धा प्रीतमगमनी

गवन बात पिय की जब सुनै। सुनतहिं मन मैं घुन ज्यौं घुनै॥
वाकी सखी गुपत भई डोलैं। कुंजनि कल कोकिल है बोलैं॥
रूप लता सी मुरझत लहिए। मुग्धा प्रीतमगवनी कहिए॥

मध्या प्रीतमगमनी

पिय कहुँ चलत जानि घर बाला। बोलै नहि कछु रूप रसाला॥
भरइ न दीरघ स्वाँस सयानी। नैनन माँझ न आनै पानी॥
धरि रहै हाथ माथ के धोरै। मनहुँ आप अच्छर टटोरै॥
इहि परकार परखियै जोई। मध्या प्रीतमगवनी सोई॥

प्रौढ़ा प्रीतमगमनी

हो श्रीपति पति पूछति तोहि। सत्य कहो संदेह मोहि॥

तन त्यागे हूँ जुवति न कहिया। इह वियोग जारत किन हिया ॥
अरु ए कुसुमित घोर पटीर। देत जु बंधु मरे पहुँ नीर ॥
जो परलोक हु गरल समान। क्यों हैं देत बंधु अज्ञान ॥
ऐसे कहिके चुपके रहे। प्रौढ़ा प्रीतमगवनो सु है ॥

परकीया प्रीतमगमनी

प्रानपिया कहुँ गवन जु लहै। रहसि पाय पिय सों इमि कहै ॥
तुम हित कौन दुकृत नहिं किए। पन्नग-फन परि मैं पग दिये ॥
पति द्विज देव सेव सब तजी। नीति तजी कुल लाज न लजी ॥
तिनके फल ते नरक बताये। ते सब मोकहुँ जीवत आये ॥
तपन जापना आई तन कौं। कुंभीपाक पराभव मन कौं ॥
महाघोर रौरव जु बतायो। क्रोध रूप ह्वै नैनन आयो ॥
जुगत आहि पिय गवनत तोहि। क्यों न होय ऐसी गति मोहि ॥
इहि परकार कहत तिय जोई। परकिय प्रीतमगवनी सोई ॥

दोहा

चलन कहत है कालि पिय, का करिहौ मेरी आलि।
बिधना ऐसो करि कछू, जैसे होय न कालि ॥२०३॥

नायक भेद

नाइक बरनें चारि प्रकार। प्रमदा प्रेम बढ़ावनहार ॥
एक धृष्ट, इक सठ, एक दच्छिन। इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन ॥

धृष्ट नायक

करि अपराध प्रिया ढिग आवै। निधरक भए बात बहरावै ॥
ताकहुँ प्रिया कटाछिन तारे। हारनि बाँधे कमलनि मारे ॥
मारि बिठारि द्वार पहुँचावै। सोवति जानि बहुरि फिरि आवै ॥
जो पिय कनक कहूँ करुनावै। पाटी तरै परयो तिहि पावै ॥
चपरि सेज पर सोवै जोई। नाइक धृष्ट कहावै सोई ॥

सठ नायक

बाल-भाल में तिलक बनावै। गुहि गुहि फूल माल पहरावै॥
मकर पत्रिका रचै कपोल। मोलत जाय भावते बोल॥
किंकिनि बंधन मिस करि टोरै। छल करि नीवी बंधन छोरै॥
इहि बिधि रमनी-रमन जु होई। कहत है कबि सठ नाइक सोई॥

दक्षिण नायक

जब ललना मंडल में आवै। अति अनुराग भर्‍यो छवि पावै॥
कहतु किए अनेक छबि ऐना। मेरे अनगन हैं बिधि नैना।
कित कित ह्वै निवेसित कीजै। बदन चंदन सुख कैसें लीजै॥
नैंन मूँदि तब तिन में रहै। भीतर ही सब सुख सुख लहै॥
रोमांचित तन दिखिये जाकें। दच्छिन नाइक लच्छिन ताके॥

अनुकूल नायक

नित ही तिय के रस बस रहै। अवर सुंदरी सपन न चहै॥
करकस ठौर प्रिया जब चलै। तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै॥
ज्यौं श्रीराम चले बन घन मैं। सिय कैं चलत कहत यौं मन मैं॥
हे अवनी तुम मृदु तन धरौ। हे दिनकर तुम तपति न करौ॥
अहो पवन तुम सून न बहाऊ। रे नग मग तें बाहरि जाऊ॥
रे दंडक बन निबरो आय। चलि न सकति सिय कोमल पाय॥
इहि परकार रहै रसमान्यो। सोइ नाइक अनुकूल बखान्यो॥

भाव

प्रेम की प्रथम अवस्था आई। कवि जन भाव कहत हैं ताई॥
भाव बढ़्यो क्यों जानिए सोई। अवर बस्तु कहुँ ठौर न होई॥

हाव

नैंन बैन जब प्रगटै भाव। ते मत सुकवि कहत हैं हाव॥

हेला

खन खन बाँनि बनायौ करै। बार-बार कर दर्पन धरै॥
अति श्रृंगार मगन मन रहै। तापहु कवि हेला छवि कहै॥

रति

जाके हिय मैं रति संचरै। निरस बातु सब रसमय करै॥
जैसे निघादिक रस जिते। मधुर होंहि मधु मैं मिलि तिते॥
जदपि बिघन आवहि बहु भारे। जारति रस के भेदनहारे॥
तदपि न भृकुटी रंचक मटकै। एक रूप चित रस कहुँ प्रगटै॥
स्तंभ स्वेद पुनि पुलकित अंग। नैननि जलकन अरु स्वरभंग॥
रुच बिबरन हिय कंप जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै॥
इहि प्रकार जाकौ तन लहिए। सो बहु रंग भरी रति कहिये॥

दोहा

इहि बिधि यह रस मंजरी, कही जथामति 'नंद'।
पढ़त बढ़त अति चोप चित, रसमय सुख कौ कंद॥३३६॥

विरहमंजरी

दोहा

परम प्रेम उच्छलन इक, उदयौ जु तन मन मैन।
ब्रजबाला बिरहिनि भई, कहति चंद सौं बैन ॥ १ ॥
अहो, चंद रस-कंद[1] हो, जात आहि उहि देस।
द्वारावति नँदनंद सौं, कहियो बलि[2] संदेस ॥ २ ॥

चौपाई

चले चले तुम जैयो जहाँ। बैठे होहिं साँवरे तहाँ ॥
निधरक कहियो जिय जिनि डरौ। हो हरि अब ब्रज आवन करौ ॥
तुम बिनु दुखित भई ब्रजबाला। नागर नगधर नंद के लाला ॥
प्रसन भये किधौं सुंदर स्यामा। सदा बसौ बृंदावन धामा ॥
याके बिरह जु उपज्यो महा। कहौ नंद, सो कारन कहा ॥
नंद समोधत ताकौ चित्त। ब्रज कौ बिरह समुझि लै मित्त ॥
ब्रज मैं बिरह चारि परकारा। जानत हैं जो[3] जाननहारा ॥
प्रथम प्रतच्छ बिरह तू गुनि लै। तातैं पुनि पलकांतर सुनि लै ॥
तिसरौ बिरह बनांतर भए। चतुरथ देसांतर कै[4] गए ॥
प्रतछि बिरह के सुनि अब लच्छिन। चकित होत तहँ बड़े बिचच्छिन ॥

प्रत्यक्ष-विरह वर्णन

ज्यौं नवकुंज सदन श्री राधा। बिहरति पिय सँग रूप अगाधा ॥

---

१. प्रति ख में 'मुसकत तुम'।
२. प्रति ख में 'जाइ'। ३. प्रति ख में 'उहि जे'।
४. प्रति ख में 'बिरह देसांतर गए'।

पौढ़ी पीतम अंक सुहाई। कछु इक प्रेम लहरि सो आई॥
संभ्रम भई कहत रस ललिता। मेरे लाल कहाँ री ललिता॥

दोहा

भूत छिये, मदिरा पिए, सब काहू सुधि होय।
प्रेम-सुधा-रस जो पिए, तिहि सुधि रहै न कोय॥१०॥

पलकांतर विरह

सुनि पलकांतर विरह की बातैं। परम प्रेम पहिचानत तातैं॥
सोमा-सदन बदन अस लोनौ। कोटि मदन छबि करि नहि होनौं॥
सो मुख व्रज अवलोकन करे। सब जु आइ विचि पलकैं परे॥
व्याकुल ह्वै भारी व्रजनारी। तिहि दुख देत विधातहिं गारी॥

दोहा

बड़ौ मंद अरविंद-सुत, जिहि न प्रेम पहिचानि।
पिय-मुख देखत दृगन कै, पलक रची विचि आनि॥१३॥

वनांतर विरह

बिरह वनांतर कौ सुनि लीजै। गोपिन के मन मैं मन दीजै॥
जब वृंदावन गोगन गोहन। जात हैं नंद-सुवन मनमोहन॥
तब की कहि न वनति कछु बात। इक इक पलक कलप सम जात॥
इक टक दृगनि छिसी सी डोलै। बोलै जब जनु पुतरी बोलै॥

दोहा

नैन बैन मन श्रवन सब, जाय रहत पिय पास।
तनक प्रान घट मैं रहै, फिरि आवन की आस॥१६॥

देशांतर विरह

सुनि देसांतर बिरह-बिनोद। रसिक जनन-मन बढ़वन मोद[1]॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—'रसिकनि मनहिं बढ़ावन मोद।

नंद सुवन की लीला जिती। मथुरा द्वारावति बहु भँती॥
सुमिरत तदाकार है जाहीं। इहि वियोग इहि विधि ब्रज माहीं॥
ज्यों मनि कंठ बाँधि कै कोई। बिसरैं बन बन ढूँढ़ै सोई॥
सो यह बाला रूप रसाला। साँझ मिले हैं मोहनलाला॥
पियहि फूल माला दी दीनी। सुंदर अंग राग रस भीनी॥
ताहि पहिरि कै कनक अटारी। पौढ़ि रही भरि आनँद भारी॥
रही हुती रजनी कछु थोरी। जागि परी जु सहज बर गोरी॥
द्वारावति लीला सुधि भई। ताही छिन जु बिकल है गई॥
दृष्टि परि गयो चंदा नैन। लागी वाहि संदेसा दैन॥
द्वादसमास बिरह की कथा। बिरहिनि कौं दुखदाइक जथा॥
छिनक माँझ बरनी तिहि बाला। महाबिरहिनी है तिहि काला॥

दोहा

निपट अटपटी चटपटी, ब्रज को प्रेम बियोग।
सुरझाएँ सुरझै नहीं, अरुझै बड़डे लोग॥२३॥

सोरठा, बारहमासा, चैत्र

चैत चलौ जिनि कंत, बार बार पाँ परि कहौं।
निपट असंत बसंत, मैन महा मय मंत जहँ॥२४॥

चौपाई

तदपि न रहे चलेई चले। कहियो चंद भले जू भले॥
सब ही कुहुक कोकिला कियो। सुनतहि दहकि महकि गयो हियो॥
जनु किलकार मैन मोहिं दई। जु कछु कहत ही सोई भई॥
मदन-जाल गोलक से भौंरा। फिरि गए चपरि ठौर ही ठौरा॥
सुखद-जु हुतौ तुम्हारे संग। सो यह बैरी भयो अनंग॥
नव पुहुपन के धनुष बनावे। मधुप-पाँति तिनि तंति चढ़ावे॥

नूत के नूतन अंकुर खाना। सकि सकि मरम[1] करत संधाना॥
अरु इह त्रिगुन पवन कितहू कौं। पुहुप पराग लिये फर थूकौं॥
फागु सो खेलत बन मैं फिरै। रस अनरस सब काहू भरै॥
पंचबान के प्रान समान। तिन अति चंचल किये परान॥

दोहा

जलचर ज्यों जलभीर मैं, जानत नाहिंन पीर[2]।
बिछुरि परै जब नीर तैं, सब सचु जानै नीर[3]॥२०॥

सोरठा, वैशाख

आयहु बलि बैसाख, दुख-निदरन सुख-करन पिय।
उपज्यो मन अभिलाष, बन बिहरन गिरिधरन सँग॥२१॥

चौपाई

कुसुम धूरि धूँधरी सुकुंजै। मधुकर निकर करत तहँ गुंजै॥
गुहि गुहि नवल मालती-माला। मोहि पहरावहु मोहनलाला॥
ललित लवंग लतनि की छाँही। हँसि बोलौ डोलौ गहि[4] बाँही॥
पुलिन कलिंदी कौ अति रम्य। त्रिगुन पवन ही को तहँ गम्य॥
किसलय सयन सुपेसल कीजै। सिर तर सुमन उसीसा दीजै॥
इकपट ओट बोटि सुख कीजै। आवहु बलि छिन छिन छबि छीजै॥
द्रुमनि सौं लपटि प्रफुलित बेली। जनु मोहि हँसति है देखि अकेली॥
जौ कबहूँ पिय ध्यानहि धरयो। परिरंभन चुंबन पुनि करयो॥
रंचक सुख बहुरयौं दुख भारी। काहि बिससिये दसा हमारी॥

दोहा

इहि बिधि बलि बैसाख इह, बीत्यो दुख सुख लागि।
सँड़सी भई लुहार की, छिन पानी छिन आगि॥३७॥

---

१. पाठा०—'मार मकर'। २. प्रति ख में पाठा०—'परसति नहिं तन पीर।' ३. प्रति ख में पाठा०—'तब जान्यो सचु नीर।' ४. प्रति ख में पाठा०—'गर'।

सोरठा, ज्येष्ठ

रही न तनक अमेठ, तुम बिन नंदकुमार पिय।
निपट निलज इह जेठ, धाय धाय बघुवनि गहै ॥४३॥

चौपाई

नृप की तपति तपति अति बई। घर बन अनलमई सब भई॥
तैसिय विरह बिथा तन नई। अगिन मैं अगिन और ज्यों दई॥
चंदन घरचे अति परजरै। इंदु-किरनि घृत-बूँद सी परै॥
चंदन चंद तौ तिनकौं सियरे। जिन तैं नंदसुवन पिय नियरे॥
अहो चंद, मो दुख तन झाँकौ। मंद मंद ए मृग जिनि हाँकौ॥
झलकि जाय हरि पियहि सुनाई। करिहौ कहा बहुरि ब्रज आई॥
दावानल जु-पान हो करयौ। सो वह बहुरि बिपिन संचरयो॥
अरु कहियो सब ही दुख पायो। काली फिरि कालिंदी आयो॥
वेगि जाहु ब्रज-बिपतिहि हरौ। गुन अवगुन कछु[१] जिय जिनि धरौ॥

दोहा

छीर-समुद के मीन जिमि, बसत चंद ढिग आहि।
चंदहि मंद न जानहीं, जलधर मानत ताहि ॥४४॥

सोरठा, आषाढ़

दिपत न बरनी जात, दई जु मास असाढ़ मोहि।
औचक आधी राति, पीय पीब पपिहा करयौ ॥४५॥

चौपई

वह दुख वह रजनी ए जानै। कासौं कहौं कहैं को मानै॥
कौनहि भाँति भोर जब भयो। दुख ही मैं दुख उपज्यो नयो॥
पावस-सैन मैन लै चढ्यो। बिरही जन मारन रिस बढ्यो॥
बदर बनैत चहूँ दिस धाये। बूँद बान घन बरसत आये॥

---

१. प्रति ख में पाठा० 'रि कछू जिय धरौ'।

घन में चमकति अति दामिनि। मौन मैं भाजि दुरति है भामिनि॥
घेरी मैन-सैन दुखदाइक। तुम बिन कौन छुड़ावन लाइक॥

दोहा

मोर सोर निसि सुंदरी, डरी खरी सुनि ताहि।
काहू बिरहिनि पर मनौं, मैन परयौ रतवाहि॥४९॥

सोरठा, श्रावण

हो, मनभावन पीव, सावन आवन कहत सब।
अवगुन कवन जु सीय, आयो नहीं जु सन भवन[1]॥५०॥

चौपाई

अब देखिब रमगी घनमाला। जनु मदगत मदन की ढाला॥
छुटे जु बंधन तोरि मरोरी। धनुष घने जनु पँचरँग डोरी॥
बगनि की पाँती चढ़े दंत। धुरवा मद के पटा महंत॥
गरजनि गूँजनि सुनि सुनि महा। दलकत[2] हिय दुख कहिये कहा॥
भरि भरि सुंडनि डारत पानी। डारत मोहि करत नकबौनी॥
घूमत चलत महा मतवारे। ढाहत पिय के अवधि-करारे॥]

दोहा

अवगुन होय जो मित्त मैं, मित्त न चित्त धरंत।
केतकि-रस बस मधुप जिमि, दुख-कंटक न गनंत॥५४॥

सोरठा, भाद्रपद

भादौं अति दुख-दैन, कहियो इंदु गोविंद सौं।
घन अरु तिय के नैन, होड़नि बरसत रैन दिन॥५५॥

चौपाई

गति विपरीत रची सब मैन। गरजै घन बरसैं तिय नैन॥

१. प्रति ख में पाठा०—'नहि जु सन भवन'। २. प्रति ख में पाठा०—बरकत।

सींचत भुज-मूलनि दृग नाईं[1]। छिन छिन[2] बिरह-बेलि अधिकाई॥
भादौं रैन अँध्यारी भारी। तिन मैं तिय अति होति दुखारी॥
घन हर घोरैं पवन झकोरैं। दादुर झींगुर काननि फोरैं॥
आँगन बीज करत मनु चोटैं। घर मैं अति अँधार घट घोटैं॥
इकली देहरी ठाढ़ी रहै। मद्दि गई रैनि बदन नहिं कहै॥
अहो चंद गतिमंद न गहौ। सुंदर गिरिधर पिय सौं कहौ॥
इंद्र कोप कीनौं पुनि थयै। जल-व्याकुल गोकुल है सबै[3]॥
आवहु बलि बिलंब जिनि करौ। बहुर्यौ फिरि गोवरधन धरौ॥

दोहा

प्रान रहे घट आय इमि, जिमि जब अंकुर बोय।
घन आवन जु प्रबल पवन, हर पर है पिय सोय॥६१॥

सोरठा, थ दिरन

कहियो उडुप उदार, सुंदर नंदकुमार सौं।
अस कछु[4] कीनी कार, हार मार तें डारि दिय॥६२॥

चौपई

खंजन प्रगट किये दुख दैना। संजोगिनि तिय के से नैना॥
निरमल जल महँ जलजहु फूले। तिन पर लंपट अलिकुल भूले॥
सुधि आवत वा मोहन-मुख की। कुटिल अलक जुत सीवाँ[5] सुख की॥
मोरनि नव तन चंद्रव धारे। देखि देखि दृग होत दुखारे॥
आवहु बलि वे सिर पर धरौ। पंख पुरातन व्हाँ ते करौ॥
साँझ समै धन तैं बनि आवो। गो-रज-मंडित बदन दिखावो॥
वा छबि बिन ये नैन हमारे। जरत हैं महा बिरह-जुर जारे॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—जाई। २. प्रति ख में पाठा०—त्यों त्यों। ३. प्रति ख में पाठा०—जलनि व्याकुल गोकुल सबै। ४ प्रति ख में पाठा०—कुछ। ५. प्रति ख में पाठा०—ग्रीवाँ।

दोहा

और ठौर की आगि पिय, पानी पाय बुझाय।
पानी मैं की आगि यति, काहे लागि सिराय ॥६७॥

सोरठा, कार्तिक

प्रीतम परम सुजान, कातिक जौं नहि आयहौ।
तौ ये चपल परान, पिय तुम ही पै आयहैं ॥६८॥

चौपाई

अहो चंद यलि चलि जिनि मंद। जाहु वेग जहँ पिय नँदनंद ॥
समौ पाय कहियो अरुगाई। जैसे यलि बलि उनहि सुहाई ॥
आई सरद सुहाई राती। प्रफुलित बलित मल्लिका जाती ॥
उदित उहै उडुराज सदा कौं। रहत अखंडित मंडल जाको ॥
छुटि रहि ज्योति विमल चंदिनी। सुभग पुलिन कलिंद-नंदिनी ॥
सीतल मृदुल बालुका सच्यौ। जमुना सुकर तरंगनि रच्यौ ॥
कलपतरु तरे[1] रे मंजुल मुरली। मोहन मधुर सुधा रस जुरली ॥
ठाढ़े है पिय बहुरि बजाओ। वाकरि ब्रज सुंदरी बुलाओ ॥
मिलि खेलौ बलि[2] रास विलासा। परिरंभन चुंबनहु परिहासा ॥
सहज सुगंध रावरी बाहु। कंठनि मेलि मिटायो दाहु ॥

दोहा

प्रजरि परत अब अंग सब, चोवा चंदन लागि।
विधि-गति जब विपरीत तब, पानी ही मैं आगि ॥७४॥

सोरठा, मार्गशीर्ष

अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर-ससि।
दीजे दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यबल ॥७५॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—'तरु तरें'। २. प्रति ख में पाठा०—'बलि'।

चौपाई

बिछुरन जोग बनि गयो आय। बिरह-राहु को बनि गयो दाय ॥
पूरब बैर सुमिरि रिस भरयौ। मो तन-चंद आनि कैं धरयौ।
दिये जु दंत बिधुंतुद गाढ़े। ते[1] क्यों हूक कढ़त नहिं काढ़े ॥
बहत न रहत नयन इकसारा। ते जनु चलत अमृत की धारा।
पिय दरसन जु सुदरसन आही। रंचक आनि दिखावहु ताही ॥
हो ससि जौ पिय नंदकिसोर। अवगुन कहन लगै कछु मोर।
तौ तुम तिन सौं कहियो ऐसैं। बहुरि कहूँ न अभ्यासै जैसे ॥

दोहा

मित्त जु अवगुन मित्त के, नहिंन अनत भाषंत।
कूप छाँह जिमि आपनी, हिय ही मधि राखंत ॥८०॥

सोरठा, पौष

बिपति[2] परी इहि पूस, अहो चंद नँदनंद बिन।
सबै तापनी फूस, बिन धुरि सोए स्याम उर ॥८१॥

चौपाई

बड़ी रैन तनक से दिना। क्यों भरिए पिय प्यार[1] बिना।
महाबकी जिमि आवति राति। झट दै मोहिं लीलि है जाति ॥
मदन दाढ़ बिच दै दै चंपे। तिहि दुख ताकौ तन मन कंपे।
रबि जौ तनक न लेय छुड़ाई। तौ मोहिं निसा-बकी गिलि जाई ॥
मास दिवस के हे जब पीय। तब तुम हती हुती इह तीय।
अब तो बलि बलवंत पियारे। कंस केसि चाँनूर सँघारे ॥

दोहा

अहो चंद ब्रजचंद बिनु, पर सबै दुख आय।
सदन अघासुर से भये, तिन तन चह्यो न जाय ॥८२॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—'ताही पै अति कढ़त न काढ़े'।
२. प्रति ख में पाठा०—'बिपरीतनि इहि पौंस'।

सोरठा, माघ

मकर जु दारुन सीत, कहियो ससि पिय सों रहसि।
घर आमहु हरि मीत, छिन छिन छति सों लागि कैं ॥८६॥

चौपाई

कपि गुंजा सों जतन बनावै। तिन तें अधिक अधिक दुख पावै।
बेदन आन औषधी आन। क्यों दुख मिटै जान-मनि जान ॥
दिन अरु रजनी परै तुसारा। सीतल महा अगिनि की झारा।
मृदुल बलि की ब्रज की बाला। सुरभि बलों हो गिरिधर लाला ॥
अरु कहियो बलि हरि सों ऐसें। देखे जात दुखहि तुम जैसे।
जौ कबहूँ हठि नींद अनैये। साँवरे पिय सुपने मैं पैये ॥
तदपि न सुख तहँ परिये जागि। प्रजरत महा आगि ते आगि।
क्यों चकई निज झाँई चाहि। मुदित होत पति मानत ताहि ॥
प्रबल पवन पुनि आय डुलावै। चकई बिछपि परम दुख पावै।
तैसो इह कहिये अय[1] कौन। दाधे पर जस लागत लौन ॥

दोहा

मास मास के दिवस[2] करि, मास रह्यो नहिं देह।
साँस रह्यो घट लागि कैं, बदन चहन कै नेह ॥९२॥

सोरठा, फाल्गुन

जौ इह फागुन पीय, फाग न खेलहु आय ब्रज।
कै हों कै इह जीय, कोउक तुम पै आय है ॥६३॥

चौपाई

मोहि तौ लै चलि चंदा मंदा। जहँ मोहन सोहन नँदनंदा।
कहा करैंगे गुरुजन मेरो। दुरजन क्यों न हँसो बहुतेरो ॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—दुख। २. प्रति ख में पाठा०—फदन।

जाके अंग रोग है महा। औषध खात लाज है कहा॥
इह विधि परि इक रही पटपटी। बात प्रेम की निपट अटपटी॥
यहुरयो व्रज लीला सुधि आई। जामैं नित्य किसोर कन्हाई॥
सुपने कोच दुख पावत जैसे। जागि परे सुख पावत तैसे॥
तबही कान्ह बजाई मुरली। मधुर मधुर पंचम सुर जुरली।
गैयाँ मिलवन मिस वहि ओर। गइगोरी गवनी वहि ठौर॥
ठाढ़े निकसि कुँवर वर पौरी। बनै[1] हरि-भाल चँदन की खोरी।
लटपटि पाग कछुक झुकि रही। सो छवि परति कौन पै कही॥
आरस रस भरे चंचल नैन। जिनहिं निरखि मुरझत मन मैन॥
इकले प्रानपियारे पाये। देखि हरष भरे नैन सिराये॥
ताकों निरखि नैन अरबरे। सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे॥
समाचार जाने तिहि तिय के। अंतरजामी सबके हिय के॥
इहि परकार बिरह मंजरी। निरवधि परम प्रेम रस भरी॥
जो इहि सुनैं गुनैं हिय लावैं। सो सिद्धांत तत्व कौं पावैं॥

दोहा

अवर भाँति ब्रज को विरह, बनै न क्यौं हू 'नंद'।
जिनके मित्र विचित्र हरि, पूरन परमानंद॥१०२॥

---

१. प्रति ख में पाठा०—बनि रहि निखि की चंदन खोरी।

भ्रमर-गीत

उद्धव का कृष्णसंदेश

ऊधौ कौ उपदेस सुनौ ब्रज-नागरी।
रूप, सील, लावन्य सबै गुन आगरी॥
प्रेम-धुजा, रस-रूपिनी, उपजावनि सुख[1]-पुंज।
सुंदर स्याम-विलासिनी, नव वृंदावन कुंज॥
सुनौ ब्रजनागरी![2] ॥ १ ॥

कहन स्याम-संदेस एक मैं तुम पै आयौ।
कहन समै संकेत कहूँ औसर नहिं पायौ॥
सोचत ही मन मैं रह्यौ कब पाऊँ एक-ठाँव।
कहि सँदेस नँदलाल को, बहुरि मधुपुरी जाँव॥
सुनौ ब्रजनागरी! ॥ २ ॥

ब्रजबालाओं का प्रेम

सुनत स्याम कौ नाम बाम[3] गृह की सुधि भूली।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलक रोम सब अँग भए भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे गदगद गिरा बोल्यो जात न बैन॥
बिवस्था प्रेम की॥ ३ ॥

---

१. पाठा०—रस-पुंज। २. पाठा०—क. बदन करत हीं। ख. सुनौ ब्रजवासिनी। ३. पाठा०—ग्राम।

कथोपकथन

अर्घासन बैठाय बहुरि परिकरिमा दीनी।
स्याम-सखा निज जानि बहुत हित सेवा कीनी॥
बूझत सुधि नँदलाल की बिहँसत सुख ब्रज-बाल।
ब्रज०—नीके हैं बलवीर जू, बोलति बचन रसाल॥
सखा! सुनि स्याम के॥ ४॥

उद्धव—कुसल स्याम अरु राम कुसल सगी सब उनके।
जदुकुल सिगरे कुसल परम आनंद सबनि के॥
बूझन ब्रज कुसलात कों हौं आयौ[1] तुम तीर।
मिलिहैं थोरे दिवस में जनि जिय होहु अधीर॥
सुनौ ब्रजनागरी!॥ ५॥

सुनि मोहन-संदेस रूप सुमिरन ह्वै आयौ।
पुलकित आनन कमल[2] अंग आवेस जनायौ॥
बिह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रज-बनिता मुरझाय।
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय॥
सुनौ[3] ब्रजनागरी!॥ ६॥

उद्धव—वे तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ।
अखिल बिस्व भरि पूरि रूप[4] सब उनहिं बिसेखौ॥
लोह दारु पाषान में जल थल मही अकास।
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म-परकास॥
सुनो ब्रजनागरी!॥७॥

ब्रज०—कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासों कहै ऊधौ?
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधौ॥

---

१. पाठा०—पठयौ। २. पाठा०—अलक। ३. पाठा०—प्रेमयुत ज्ञानमय। ४. पाठा०—ब्रह्म सब रूप बिसेखौ।

नैन, बैन स्रुति, नासिका मोहन रूप दिखाइ।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम-ठगौरी लाइ॥
सखा! सुनि स्याम के॥ ८॥

उद्धव—सगुन [1] सबै उपाधि * रूप निर्गुन लै [2] उनकौ।
निराकार निर्लेप लगत नहिं तीनों गुन कौ॥
हाथ पाँय नहिं नासिका नैन बैन नहिं कान।
अच्युत ज्योति प्रकासिका, [3] सकल बिस्व के प्रान॥
सुनौ ब्रजनागरी! ॥ ९॥

ब्रज०—जो मुख नाहिन हुतो कहौ किन माखन खायौ?
पायन बिन गो संग कहौ को बन बन धायौ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोवरधन लियौ हाथ।
नंद-जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ॥
सखा सुनि स्याम के॥१०॥

उद्धव—जाहि कहौ तुम कान्ह ताहि कोउ पितु नहिं माता।
अखिल अंड ब्रह्मंड बिस्व उनहीं में जाता॥
लीला को अवतार लै धरि आए तन स्याम।
जोग जुगुत ही पाइयै पारब्रह्म-पद-धाम [4]॥
सुनौ ब्रजनागरी!॥११॥

ब्रज०—ताहि बताओ जोग जोग ऊधो [5] जेहि पावौ।
प्रेम सहित हम पास नंदनंदन गुन गावौ॥
नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरिपूरि।
प्रेम पियूषै छाँड़िकै कौन समेटै धूरि॥
सखा! सुनि स्याम के॥१२॥

---

१. यह सब सगुन उपाधि। २. है। ३. प्रकास है।
४. पर ब्रह्म पुर धाम। ५. ऊधो तहँ आवौ।

उद्धव–धूरि बुरी जौ होइ ईस क्यों सीस चढ़ावै।
धूरि छेत्र मैं आइ कर्म करि हरिपद पावै॥
धूरिहि तें यह तन भयो धूरिहि सों ब्रह्मंड।
लोक चतुर्दस धूरि के सप्त दीप नव खंड॥
सुनौ ब्रज नागरी ! ॥१३॥

ब्रज०–कर्म-धूरि की बात कर्म-अधिकारी जानैं।
कर्म-धूरि कौं आनि प्रेम-अमृत मैं सानैं॥
तबही लौं सब कर्म है जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्म बंध[1] सब विस्व के जीव बिमुख है जाहिं॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥१४॥

उद्धव–कर्महि[2] निंदौ कहा कर्म तें सदगति होई।
कर्मरूप तें बली नाहि त्रिभुवन मैं कोई॥
कर्महि तें उतपत्ति है कर्महि तें सब नास।
कर्म किए तें मुक्ति होइ पारब्रह्म-पुर बास॥
सुनौ ब्रज नागरी ! ॥१५॥

ब्रज०–कर्म, पाप अरु पुन्य, लोह सोने की बेरी।
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है, नीच कर्म तें भोग।
प्रेम बिना सब पचि मुये विषयवासना रोग॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥१६॥

उद्धव–कर्म बुरौ जो होइ जोग कोउ काहे धारैं।
पद्मासन[3] सब द्वार रोकि इंद्रिन कौं मारैं॥
ब्रह्मअगिन जरि सुद्ध है सिद्धि समाधि लगाइ।
लीन होइ साजुज्य में जोतैं जोति समाइ॥
सुनौ ब्रज नागरी ! ॥१७॥

---

१. बंधु। २. तुम कर्म बस निंदत। ३. बन मन आसन सेइ।

ब्रज०—जोगी जोतिहिं भजै भक्त निज रूपहिं जानै।
प्रेम पियूषै प्रगटि स्यामसुन्दर वर आनै॥
निर्गुन गुन जो पाइयै लोग कहैं यह नाहिं।
घर आए नाग न पुजैं बाँबी पूजन जाहिं॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥१८॥

उद्धव—जो हरि के गुन होइ वेद क्यों नेति बखानै[1]।
निर्गुन सगुन आतमा[2] उपनिषद जो गानै[3]॥
वेद पुराननि खोजिकै नहिं पायो गुन एक[4]।
गुनही के जो होहि गुन कहि अकास किहि टेक ?॥
सुनो ब्रज नागरी ! ॥१९॥

ब्रज०—जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तें।
बीज बिना तरु जमें मोहि तुम कहौ कहाँ तें॥
वा गुन की परछाँह री माया दरपन बीच।
गुन तें गुनन्यारे नहीं अमल वारि मिलि कीच॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥२०॥

उद्धव—माया के गुन और और गुन हरि के जानौ।
वा गुन को इन माँझ आनि काहे को सानौ॥
जाके गुन अरु रूप कौ जान न पायौ भेद।
तातें निर्गुन ब्रह्म को बदत उपनिषद वेद॥
सुनौ ब्रज नागरी ! ॥२१॥

ब्रज०—वेदहु हरि के रूप स्वास मुख तें जो निसरै।
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पहिली सुधि बिसरै॥
कर्म मध्य ढूँढ़ै सबै किनहिं न पायौ देखि।
कर्म-रहित ही पाइयै तातें प्रेम बिसेखि॥
सखा ! सुनि स्याम के ॥२२॥

---

१. बतावें। २. रिचा ३. गावै। ४. पायी किनहु न एक।

उद्धव—प्रेमहि[1] के कोउ वस्तु रूप देखत लौं लागे।
वस्तु दृष्टि बिन कहो कहा प्रेमी अनुरागे॥
तरनि चंद्र के रूप को नहिं पायौ गुन जान।
सो उनकौ कहा जानियै गुनातीत भगवान॥
सुनौ ब्रज नागरी! ॥२३॥

ब्रज०—तरनि प्रकास प्रकास जाहि में रह्यौ दुराई।
दिव्य दृष्टि बिनु कहौ कौन पै[2] देख्यौ जाई॥
जिनके वे आँखें नहीं देखैं क्यों वह रूप।
क्यौं उपजै विश्वास जे परे कर्म के कूप॥
सखा! सुनि स्याम के ॥२४

उद्धव—जब करियै निज कर्म भक्ति हू या में आई।
कर्मरूप तें कहौ कौन पै छूट्यो जाई॥
क्रम क्रम कर्म के किये[3] कर्म नास ह्वै जाय।
तब आत्मा निहकर्म ह्वै निर्गुन ब्रह्म समाय॥
सुनौ ब्रज नागरी! ॥२५।

ब्रज०—जौ हरि के नहिं कर्म कर्मबंधन क्यों आयौ।
तौ निर्गुन होइ वस्तु मात्र परमान बतायौ॥
जो उनको परमान है तौ प्रभुता कछु नाहिं।
निर्गुन भए अतीत के सगुन सकल जग माहिं॥
सखा! सुनि स्याम के ॥२

उद्धव—जे गुन आवैं दृष्टि माहिं नस्वर हैं सारे।
इन सबहिन तें वासुदेव अच्युत हैं न्यारे॥
इंद्री दृष्टि बिकार तें रहित अधोक्षज-जोति।
सुद्ध सरूपी ग्यान की प्रापति तिनको होति॥
सुनौ ब्रज नागरी! ॥२

---

१. ब्रह्महु २. दृष्टि हो रूप भजै यह। ३. कर्म कर्म ही किए

ब्रज०—नास्तिक हैं जे लोग कहा जानें निज रूपे।
प्रगट भानु कों छाँड़ि गहत परछाईं धूपे॥
हमरें तो यह रूप बिन और न कछू सुहाय।
जो करतल आमलक के[1] कोटिक ब्रह्म दिखाय॥
सखा! सुनि स्याम के॥२८॥

कृष्ण-प्रति उपालंभ

ऐसे में नँदलाल-रूप। नैननि के आगे।
आय गयौ छबि छाय बने बोरी अरु बागे[2]॥
ऊधौ सौं मुख मोरिकै कहत तिनहिं सौं बात।
प्रेम-अमृत मुख तें स्रवत अंबुज-नैन चुचात॥
तरक रसरीति की॥२९॥

अहो! नाथ! रमानाथ और जदुनाथ गुसांई!
नँदनंदन बिहरात फिरत तुम बिनु बन गाई॥
काहे न फेरि कृपालु ह्वै गौ ग्वालन सुख[3] लेहु।
दुख-जल-निधि हम बूड़हीं कर-अवलंबन देहु[4]॥
निठुर ह्वै कहा रहे?॥३०॥

कोउ कहै अहो दरस देत पुनि लेत दुराई।
यह छलबिद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई॥
हम परबस[5] आधीन हैं तातें बोलत दीन।
जल बिनु कहि कैसे जियैं पराधीन जे मीन॥
बिचारी रावरे!॥३१॥

कोउ कहै पिय दरस देहु कौ[6] बेनु सुनावौ[6]।
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लोन लगावौ॥

---

१. ज्यों करतल आमास को। २. बने पियरे उर बागे। ३. सुधि।
४. करि अवलंब न लेहु। ५. मदरस। ६. पुनि बेनु बजावौ।

दलयल जोरि बरात कौं ठाढ़ी हो छबि बाढ़ि।
इन छल करि दुलही हरी दुधित मास मुख काढ़ि॥
आपुने स्वारथी ॥४१॥

इहि विधि होइ अवेस परम प्रेमहिं अनुरागी।
और रूप पिय चरित तहाँ सब देषन लागी॥
रोम रोम रहे ब्यापि कै जिनके मोहन आय।
तिनके भूत भविष्य कौं जानत कौन दुराय॥
रँगीली प्रेम की ॥४२॥

देखत इनकौ प्रेम नेम[1] ऊधौ को भाज्यौ।
तिमिर भाव आवेस बहुत अपने जिय लाज्यौ॥
मन मैं कहि रज पायँ की लै माथै निज धारि।
परम कृतारथ ह्वै रहौं त्रिभुवन-आनँद वारि[2]॥
बंदना जोग ए ॥४३॥

कबहुँ कहै गुन गाय स्याम के इन्हैं रिझाऊँ।
प्रेम-भक्ति तौ भले स्यामसुंदर की पाऊँ॥
जिहि किहि बिधि ये रीझहीं सो हौं करौं उपाय।
जातैं मो मन सुद्ध होइ दुबिधा ग्यान मिटाय॥
पाय रस प्रेम कौ ॥४४॥

ताही छिन एक भँवर कहूँ तैं उड़ि तहँ आयौ।
ब्रज-बनिता के पुंज माँझ गुंजत छबि छायौ॥
बैठ्यौ चाहै पाय पर अरुन कमल-दल जानि।
सो[3] मन ऊधौ को मनौं प्रथमहि प्रगट्यो आनि॥
मधुप कौ भेष धरि ॥४५॥

१. मरम। २. तरौं यु भवनिधि पार।
३. मानहुँ मन ऊधौ यहै।

भ्रमर-प्रति उपालंभ

ताहि भँवर सों कहत सबै प्रति उत्तर बातैं।
तर्क वितर्कन जुक्त प्रेम रस रूपी घातैं॥
जनि परसौ मम पाय हो गयौ अनँद-रस-चोर[1]।
तुमहीं सौं कपटी हुतो नागर नंदकिसोर॥
इहाँ तें दूरि हो ॥४६॥

कोउ कहै रे मधुप तुमैं लाजौ नहिं आवत।
स्वामी[2] तुम्हरौ स्याम कूबरी दास[3] कहावत॥
इहाँ ऊँचि[4] पदवी हुती गोपीनाथ कहाय।
अब जदुकुल पावन भयो दासी-जूठन खाय॥
मरत[5] कहा बोल कौं ॥४७॥

कोउ कहै अहो मधुप कौन कहै[6] तुमैं मधुकारी।
लिये फिरत विष जोग[7] गाँठि प्रेमी-बधकारी॥
रुधिर पान कियौ बहुत कें अधर अरुन रँगरात।
अब ब्रज में आये कहा करन कौन कौं घात॥
जात[8] किन पातकी! ॥४८॥

कोउ कहै रे मधुप भेष उनकौ क्यों धारयौ।
स्याम पीत, गुंजार बेनु, किंकिनि झनकारयौ॥
वापुर[9] गोरस चोरिकै फिरि आयो या देस।
इनकौ जिनि मानौ कोऊ कपटी इनको[10] भेस॥
चोरि जिनि जाय कछु ॥४९॥

---

१. पाठा० तुम मानत हम चोर। २. साथी। ३. नाथ। ४. नीचि। ५. मरत। ६. तुमको यह मधुकर। ७. गाँठि प्रेम मिस मनहुँ बाँधिकर। ८. जाति के। ९. वा पुर को रस। १०. को यह।

हमकों तुम पिय एक ही तुमकों हमसो कोरि।
बहुताइत के रावरे प्रीति न डारो तोरि॥
एकही वार यों॥३२॥

कोउ कहै अहो स्याम कहा इतराय गए हौ।
मथुरा[1] को अधिकार पाय महराज भए हौ॥
ऐसे कछु प्रभुता अहो जानत कोऊ नाहिं।
अब ढा सुधि सुनि हरि गई बली डरें जग माहिं॥
पराक्रम जानिकै॥३३॥

कोउ कहै अहो स्याम बहुत मारन जो ऐसे।
गोबरधन कर धारि करी रच्छा तुम कैसे?
व्याल, अनल, विष ज्वाल तें राखि लई सब ठौर।
विरह-अनल अब दाहिहौ हँसि हँसि[2] नंदकिसोर॥
चोरि चित लै गये[3]॥३४॥

कोउ कहै ये निठुर इन्हें पातक नाहिं ब्यापै।
पाप पुन्य के करनहार ये ही हैं आपै॥
इनके निरदै रूप मैं नाहिन कोऊ चित्र।
पय प्यावत प्रानन हरे पुतना बाल चरित्र॥
मित्र ये कौन के?॥३५॥

कोउ कहै री आज नाहिं आगे चलि आई।
रामचंद्र के रूप माहिं कीनी निठुराई॥
जग्य करावन जात हे बिस्वामित्र समीप।
मग मैं मारी ताड़का रघुबंसी-कुलदीप॥
बालही[4] रीति यह॥३६॥

---

१. मधुपुरि। २. हाँसी। ३. होयगी जगत में। ४. प्रथम की।

कोउ कहै ये परम धर्म इन्द्रीजित पूरे।
लछ[1] लाघव संधान धरें आयुध के सूरे॥
सीताजू के कहे तें सूपनखा पै कोपि।
छेदे[2] अंग बिरूप करि लोगनि लज्जा लोपि॥
कहा वाकी कथा॥३७॥

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली।
बलिराजा पै गए भूमि माँगन बनमाली॥
माँगत बामन रूप धरि, परबत भयौ अकाय।
सत्त धर्म सब छाँड़िकै धर्यौ पीठ पै पाय॥
लोभ की नाव ये॥३८॥

कोउ कहै इन परसुराम ह्वै माता मारी।
फरसा कंधा धारि भूमि छत्रिन संघारी॥
सोनित कुंड भरायकै पोषे अपने पित्र।
तिनकै निरदय रूप में नाहिन[3] कोऊ चित्र॥
मिलत कहा मानिये॥३९॥

कोउ कहै अहो कहा हिरनकश्यप तें बिगर्‍यौ।
परम ढीठ प्रह्लाद पिता के सनमुख झगर्‍यौ॥
सुत अपने कौं देत हो सिच्छा दंड[4] बँधाय।
इन वपु धरि नरसिंह का नखन बिदार्‍यौ जाय॥
बिना अपराध ही॥४०॥

कोउ कहै सखि कहा दोष सिसुपाल नरेसै।
ब्याह करन को गयौ नृपति भीषम के देसै॥

---

१. हत्यौ बालि बलवान बान आयुध लै सूरे। २. तब लछमन के बान तें कटी नासिका लोपि। ३. अचल कहा अस चित्र। ४. खंभ

कोउ कहै रे मधुप कहा मोहन गुन गावै।
हृदय कपट सों परम[1] प्रेम नाहिन छवि पावै ॥
जानति हौं हरि भाँति कै सरबसु लियो चुराय।
ऐसी[2] बहु ब्रजबासिनी को जु तुमैं पतियाय ॥
लहे हम जानिकै ॥५०॥

कोउ कहै रे मधुप कहा तू रस की जाने।
बहुत कुसुम पैं बैठि सबन आपुन रस माने ॥
आपुन सों हमकों कियौ चाहतु है मतिमंद।
दुबिधा रस उपजाय कै दूषित प्रेम अनंद ॥
कपट के छंद सों ॥५१॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेमपद[3] को सुख देख्यो।
अबलौं याहि बिदेस माहि कोउ नाहि बिसेख्यो ॥
द्वै[4] सिंघ आनन पर जमे कारो पीरो गात।
खल अमृत सब पानहीं[5] अमृत देखि डरात ॥
बादि यह रस कथा[6] ॥५२॥

कोउ कहै अहो मधुप बहुत निरगुन इन जान्यो।
तरक बितरकन जुक्ति बहुत उन ही में मान्यो ॥
ये इतनी नहिं जानि हीं वस्तु बिना गुन नाहिं।
निरगुन भए[7] अतीत के सगुन सकल जग माहिं ॥
मूक जो ग्यान हो ॥५३॥

कोउ कहै रे मधुप होहिं तुम से जो संगी।
क्यों न होइ तन स्याम सकल बातन चतुरंगी ॥

---

१. प्रगट। २. अस न होय। ३. प्रेम षटपद पशु। ४. है सुरंग न समुहि। ५. सम मानहीं। ६. रसिकता। ७. सक्ति जो स्याम की सगुनता।

गोकुल में जोरी कोऊ पावत[1] नाहिं मुरारि।
मनों त्रिभंगी आपु हैं करो त्रिभंगी नारि॥
रूप गुन सील[2] की ॥५४॥

कोउ कहै रे मधुप स्याम जोगी तुम चेला।
कुबुजा तीरथ जाइ कियौ इंद्रिन कौ मेला॥
मधुबन सुधिहिं बिसारिकै आये गोकुल माहिं।
इत सब प्रेमी बसत हैं तुमरौ गाँहक नाहिं॥
पधारौ राबरे[3] ॥५५॥

कोउ कहै री[4] सखी साधु मधुबन के ऐसे।
और तहाँ के सिद्ध लोग हैहैं धौं कैसे॥
औगुन ही गहि लेत हैं अरु गुन डारैं मेटि।
मोहन निर्गुन क्यौं न हौं इन साधुन कौं भेंटि॥
गाँठि कौ खोइकै ॥५६॥

कोउ कहै यह मधुप ग्यान उलटौ लै आयौ।
मुक्ति परे जे रसिक[5] तिन्हैं फिरि कर्म बतायौ॥
वेद उपनिषद सार जौ मोहन गुन गहि लेत।
तिनको आतम सुद्ध करि फिरि फिरि संथा देत॥
जोग चटसार मैं ॥५७॥

कोउ कहै सखि बिरह माहिं जेतिक हैं कारे।
कपट कोटि[6] के परम कुटिल मानुस बिषवारे॥
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग।
ता पाछे फिरि मधुप यह लायो जोग भुअंग॥
कहा इनको दया ॥५८॥

---

१. पाइ न होइ। २. आगरी। ३. खोट जो ज्ञान की। ४. रे मधु..। ५. फेरि। ६. कपट कुटिल की कोटि परम मानष डँसि हारे।

कोउ कहै रे मधुप कहैं अनुरागी तुमकों।
कौने गुन धौं जानि परम अचरज है हमकों॥
कारौ तन अति पातकी मुख पियरौ जग निंद।
गुन अवगुन सब आपुने आपुहि[1] जानि अनिंद॥
देखि लै आरसी॥५९॥

इहि बिधि सुमिरि गोविंद कहत ऊधौ प्रति गोपी।
भृंग संग्या करि कहत सकल कुल लज्या लोपी॥
ता पाछें एक बारही रोईं सकल ब्रजनारि।
हा! करुनामय नाथ हो! केसौ! कृष्ण! मुरारि!
फाटि हिय दृग चल्यौ[2] ॥६०॥

उमग्यो ज्यों तहँ सलिल सिंधु लै तन की धारन।
भींजत अंबुज नीर कंचुकी भूषन हारन॥
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधौ चले बहाय।
भले ग्यान की मेंड़ हौं ब्रज में प्रगट्यौ आय॥
कूल के तृन भये[3] ॥६१॥

उद्धव की प्रेमदशा

प्रेम[4] बिवस्था देखि सुद्ध यों भक्ति प्रकासी।
दुबिधा ग्यान गलानि मंदता सगरी नासी॥
कहत भयौ[5] निरचै यहै हरि रस की निजपात्र।
हौं तो कृतकृत ह्वै गयौ इनके दरसन मात्र॥
मेटि मल ग्यान को ॥६२॥

---

१. हरी जानि अमंद। २. हियरो चल्यौ। ३. सकल कुल तरि गयो। ४. प्रेम प्रसंसा करत सुद्ध जो। ५. कहत मोहि बिरमे भयौ हरि की पै।

पुनि पुनि कह हरि कहन बात एकांत पठायो ।
मैं इनको कछु मरम जानि एकौ नहिं पायो ॥
हौं कह निज मरजाद की ग्यान रु कम निरूपि ।
ये सब प्रेमासक्त होइ रहीं लाज कुल लोपि ॥
धन्य ये गोपिका ॥६३॥

जे ऐसी मरजाद मेटि मोहन कौं ध्यावैं ।
काहे न परमानंद प्रेम[1] पदवी को पावैं ॥
ग्यान जोग सब कर्म तें परे प्रेम ही साँच ।
हौं या पटतर देत हौं हीरा आगे काँच ॥
विषमता बुद्धि की ॥६४॥

धन्य धन्य ये लोग भजत हरि कौं जे ऐसे ।
और कोऊ[2] बिनु रसहि[3] प्रेम पावत है कैसे ॥
मेरे वा लघु ग्यान कौं उर में मद होइ व्याधि ।
अब जान्यौं ब्रज-प्रेम की लहत न आधो आधि ॥
वृथा स्रम करि मरयौ ॥६५॥

पुनि कहि परसत पायँ प्रथम हौं इनहि निवारयौ ।
भृंग संग्या करि कहत निंद सबहिन तें डारयौ ॥
अब ह्वै रहौं ब्रज-भूमि को मारग में की धूरि ।
बिचरत पग मो पर धरैं सब सुख जीवनमूरि ॥
मुनिनहू दुर्लभ जो ॥६६॥

कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं ॥
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय ।

---

१. प्रेम पद पी को पावैं। प्रेम पदवी सचु पावैं। २. और को पा०५ प्रेम बिना पावत कोउ कैसे। ३. रसिक।

मोहन होहिं प्रसन्न जो यहि बर माँगौं जाय ॥
कृपा करि देहि जो ॥६७॥
पुनि कहै सब तें साधु संग उत्तम है भाई।
पारस परसे लोह तुरत कंचन ह्वै जाई ॥
गोपी[1] प्रेम प्रसाद सों हौं ही सीख्यौ आय।
ऊधौ तें मधुकर भयौ दुविधा जोग मिटाय ॥
पाय रस प्रेम कौं ॥६८॥

मथुरा प्रत्यागमन

ऐसे मग अभिलाष करत मथुरा फिरि आयौ।
गदगद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ ॥
गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन-गुन गयौ भूलि।
जीवन कौं लै का करौं पायौ जीवनमूलि ॥
भक्ति कौ सार यह ॥६९॥
ऐसे सोचत स्याम जहाँ राजत तहँ आयौ।
परिकरमा दंडौत प्रेम[2] सौं हेत जनायौ ॥
कछु निरदयता स्याम की करि क्रोधित दोउ नैन।
कछु ब्रजबनिता-प्रेम की बोलत रस[3] भरे बैन ॥
सुनौ नँद लाड़िले ॥७०॥

गोकुल का वृत्तांत

करुनामयी रसिकता है तुम्हरी सब झूठी।
तब[4] हीं लौं कहो लाख जबहि लौं बाँधी मूठी ॥

---

१. स्वाति बूँद सीपहि मिले मुकुता होत सुभाय।
नीर छीर के सँग मिले विसद रूप दरसाय ॥
संग को गुन लखौ ॥ २. बहुत आवेश।
३. गद्गद। ४. छ्वबनिता दुख दियो सबन मन करि निज मूठी ॥

मैं जान्यौ ब्रज जायकै निरदय तुम्हरौ रूप।
जे तुमको अवलंबई तिनकौं मेलौ कूप॥
कौन यह धर्म है! ॥७१॥

पुनि पुनि कहैं हे स्याम जाय वृंदावन रहियै।
परम प्रेम को पुंज जहाँ गोपी संग लहियै॥
और संग सब छाँड़िकै उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यौ जात है अबहीं नेह[1] सनेहु॥
करोगे तौ कहा? ॥७२॥

सुनत सखा के बैन नैन आए भरि दोऊ।
बिबस प्रेम-आवेस रही नाहिन सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गईं साँवरे गात।
काम तरोवर[2] साँवरो ब्रजबनिता ही पात॥
उलहि अँग अँग तें ॥७३॥

उद्धव को उपदेश

ह्वै सुचेत कहि भले सखा पठये सुधि लावन।
औगुन हमरे आनि तहाँ तें लगे दिखावन॥
उनमें मोमैं हे सखा छिन भरि अंतर नाहिं।
ज्यौं देख्यौ मो माँहि वे हौं हूँ उनहीं माहिं॥
तरंगिनि बारि ज्यौं ॥७४॥

गोपी आप दिखाइ एक करिकै बनवारी।
ऊधौ[3] के भरे नैन डारि ब्यामोहक जारी॥
अपनो रूप बिहार को लीन्हो बहुरि दुराय।
'नंददास'[4] पावन भयौ सो यह लीला गाय॥
प्रेम रस पुंजनी ॥७५॥

---

१. सिगरो नेहु। २. कल्पतरोवर। ३. ऊधौ भ्रमहि निवारि डारि मुख मोह'की जारी। ४. जनमुकुंद।

गोवरधन-लीला

श्रीगुरु चरन-सरोज मनावौं । गिरि गोवरधन-लीला गावौं ॥
कलि-मल-हरनी मंगलकरनी । मनहरनी श्री सुक मुनि बरनी ॥
जग्य करन जब गोप कलोले । दिन प्रति साँवर सुंदर बोले ॥
कहौ तात, यह बात कहा है । सुघन भाव आनंद महा है ॥
सपन कबहुँ घर मकरै दू की । सोइ उपाय कर मकरै लू की ॥
मंद मंद हँसि नंद महर तब । अपन तात सौं बात कही सब ॥
मघवा है मेघनि कौ राजा । यह उद्दिम सब उनके काजा ॥
बरषै जल तिन उपजै चारो । गाइनि के गन होंई सुखारी ॥
तब बोले निज नाम उमाहे । मुरलीधर गिरधर भयौ चाहे ॥
जहँ यह गिर गोवरधन सोहै । इन्द्र बराक या आगे को है ॥
पूजौ याहि भलौ जौ चाहौ । बिनु माँगे फोतवु उर गाहौ ॥
इही मेघ है बरषा बरषै । काल रूप है यह आकरषै ॥
हमरे मते यहै मति कीजै । सब मिलि लै गोवरधन दीजै ॥
सुनतहि मोहन मुख मृदु बानी । भली भली कहि सबहिन मानी ॥
जाकी रचना याके आगें । चाँय-चाँय सारे भै भागें ॥
कुल मंडन सपूत सुखदेना । सबके जीवनि सबके चेना ॥
घर घर बरा पकवान कराए । बिंजन षट रस सकट भराए ॥
चले गोप अति ओप बिराजे । भेरी मंदर कंदर बाजे ॥
सोहत सीसनि पाग जरकसी । सुरपति उर की कठिन करकसी ॥
सकटनि चढ़ि चढ़ि छबिली गोपी । गावहि पिय जस अति रस ओपी ॥
मागनि भरी जसोमति रानी । बैठी सकट न परत बखानी ॥
रमा उमा सो दासी जाकी । सुरपति-रवनी कौन बराकी ॥

पूत गोद मैं कान्ह तहाँ है। सुंदर सुत गुन गान जहाँ है ॥[1]
पहिलैं गोधन पूजा कीनौं। तब बलि लै गोवरधन दीनौं ॥
पूजा करि पाँइ परि बिनवे। सैल रूप धरि तब हरि निकवे ॥
कान्ह कहै देखौ तुम काजा। प्रगट भयौ है गिरि कौ राजा ॥
जितनौं भोजन ब्रज तैं आयौ। गिरि रूपी हरि सगरौ खायौ ॥
भइ परतीति मरे मद भारी। दैंहि प्रदच्छिन नर अरु नारी ॥
इक मूरति हरि भोजन करई। इक लोगन सँग फेरी फिरई ॥
फिरत जु छबि धारी तिहि काला। गोवरधन मनु पहिरी माला ॥
गिरिवर बड़ौ कहू मैं नाहीं। फूले गोप न अंग समाहीं ॥
सुन्यौ इंद्र मेरौ जग मेटा। यह मद मत्त नंद कौ बेटा ॥
कान्ह के बल मोसौं करी खाती। हरिहै कहा, गोप किहिं भाती ॥
जौ कोऊ बन पछ कर धारै। तीन्यौ चहै सुख सींव अपारै ॥
मूँढ की जौ कोउ नाव बनावै। मूँठ तहाँ लै कुटुंब चढ़ावै ॥
ऐसैं ही गोप श्रीकृष्ण भरोसैं। महा बैर कीन्हौं हैं मोसैं ॥
अब देखौं कैसो बिरझाऊं। गोकुल गाँवहि खोदि बहाऊँ ॥
बोले मेघन के गन सोई। जिनके जल जग परलै होई ॥
घेरि जाहु जहँ नंद कौ गोकुल। दूरि करौ तहँ तें सबकौ कुल ॥
कान्ह कौ डर जिनि जिय मैं आनौं। पाछैं मोहि आयौ ही जानौं ॥
कारी घटा डरावनी आई। पापिनि साँपिनि सी धरि छाई ॥
बिजुरी लपकि लपकि यों आवै। मानों उरगन जीभ चलावै ॥
फन फुंकार पवन अति ताते। हरि न होय तौ सब जरि जाते ॥
गरजनि तरजनि अनु अनु भाँती। फूटै काँन अरु फाटै छाती ॥
परन लगी नान्हीं बुंद बारी। मोटे थंमन हूँ तैं भारी ॥
तब ब्रज जन जहँ तहँ तैं धाए। सुंदर नंद-सुवन पैं आए ॥

---

१. इसके अनंतर यह टुकड़ा मिलता है—सकट श्री गिरि पर सरद चंद ज्यों।

बोले हरि बिलोकि- तिन माहीं। छिन मैं करत इहाँ मैं नाहीं॥
आतुर इंद्र महा अभिमानी। हम पैं कोप कियो यह जानी॥
बिहँसन लगे नंद के लाला। और न कछू कियो तिहिं काला॥
सकल सृष्टि जा चितवन माहीं। कोटिक उपजै कोटिक जाहीं॥
ऐसे प्रभु पैं कौन हँकारे। तौं तौं बढ़े गुपाल पियारे॥
चलि आए ब्रजराज कुँवर वर। झट दै उचकि लियो गिरि कर पर॥
नाहिंन कछु स्रम सहजहिं ऐसैं। साप खेलना कौं सिसु जैसें॥
गोपी गोप गाय थञ्ज जेते। अपने सुख रहे तिहिं तेते॥
जलद जु बरषन लागे पानी। कहा कहिय कछु अकथ कहानी॥
घरहराइ अति बरखा करई। कोटि कोटि मन को सिल परई॥
तरकि तरकि अति बज्र से डारें। मदमत इंद्र ठढ़ौ फटकारें॥
यह तौ इंद्र की करनी बरनी। अब गिरि कथा सुनौं मनहरनी॥
ऊपरि खग मृग अरु तरु बेली। तिन पैं फुही न परैं अकेली॥
नाँचैं मोर कुलाहल कीजैं। इंद्र की छाती लौंन सौं मींजैं॥
देखि देखि सुख सुरपति मरई। दौरि दौरि घन पाँइन परई॥
पाँख पेक मोरनि कौं मारौ। कोइक पाट दुर मन तैं न्यारौ॥
पावन मारौ, पासन टारौ। मेघ सरद घन सब पचि हारौ॥
इंद्रहु अपनौ बज्र चलायौ। पान लगे तेहूँ नहिं आयौ॥
ये खग मृग कहुँ घट मैं नाहीं। इंद्र के आतप जिहि लागो जाहीं॥
जो अंतरजामी ढिग आँहीं। का करि सकै इंद्र इन ताँहीं॥
सात दिवस अद्भुत झर ठान्यौं। ब्रजवासी तनकौ नहिं जान्यौं॥
सुंदर बदन बिलोकनि आगे। भूख-प्यास उर कौं नहिं लागे॥
निकसे सब जब गिरिधर भाख्यौ। गोबरधन फिर तहँ ही राख्यौ॥
प्रेम भरी बनिता जुरि आईं। वारैं अमरन लेत बलाईं॥
घुरि रहि जसुमति लेत बलाई। इत घुरि रह्यो बड़ो बलि माई॥
ऊपरि ठाढ़ो नंद अनंदे। मुदत अपने आनँदकंदे॥

यह नागर नगधर की लीला। सुधा सींव सम सुन्दर डीला॥
मन क्रम बचन जु यो अनुरागै। ताहि मुकुति अति फीको लागै॥
अरथ धरम अरु काम जीत सुख। निपट कुटंक ते कौन धरै मुख॥
अधिकारी धौं भलौ रस जानैं। अलि-बिन कमलहिं को पहिचानैं॥
नवल किसोर सुँदर गिरिधारी। स्रवन नैन (मन) अमृत रुप भारी॥
'नंददास' कौं इतनौं कीजै। पावन गुन-गावन रति दीजै॥

स्याम-सगाई

इक दिन राधे कुँवरि, स्याम-घर खेलनि आई ;
चंचल और विचित्र देखि, जसुमति मन भाई ।
नंद महरि ने तब कह्यो, देखि रूप की रास ;
इहि कन्या मैं स्याम कौं गोविंद पुजवैं आस ।
—कि जोरी सोहती ॥ १ ॥

जसुमति मद्यप्रवीन, एक द्विज-नारि बुलाई ;
लीनी निकट बिठाय, मरम की बात सुनाई ।
जाय कहौ वृषभानु सौं, करियो बहु-मनुहारि ;
इहि कन्या मैं स्याम कौं, माँगौ गोद-पसारि ।
—कि जोरी सोहनी ॥ २ ॥

द्विज-नारी उठि चली, पौरि बरसानैं आई ;
जहँ राधे की माय, बैठि तहँ बात चलाई ।
जसुमति रानी नंद की, हौं पठई तुम पास ;
बहुत भाँति बंदन कही, बहुतहि करि अरदास ।
—कृपा करि दीजियै ॥ ३ ॥

नीकी राधे कुँवरि, स्याम इत मेरो नीकौ ;
तुम्ह किरपा करि करौ, लाल मेरे कौं टीकौ ।
सब भाँतिन सौं होइगी, हम-तुम बाढ़ै प्रीति ;
और न कछु मन मैं चहौं, यही जगत की रीति ।
—परसपर कीजियै ॥ ४ ॥

रानी उत्तर दयौ, सु हौं नहिं करौं सगाई;
सूधी राधे कुँवरि, स्याम है अति धरवाई।
नँद-ढोटा लंगर महा, दधि माखन को चोर;
कहति, सुनति, लज्जा नहीं, करति औरही और।
—कि लरिका अबपलौं ॥ ५ ॥

द्विज-नारी पुनि आइ, महरि सों बात कही सब;
सुनि करि कै करतूत, मनहिं मन सोचि रही तब।
अंतरजामी साँवरो, तिहीं घेर गयो आइ;
पूँछनि लाग्यो माय तें, क्यों जु रही सिर नाइ।
—बात मो सों कहौ ॥ ६ ॥

जसुमति लालहिं कहति, लाल! हौं नाकौं आई;
जहँ करियतु तो बात, तहाँ तेरी होति बुराई।
मैं पठई वृषभानु कें, करनि सगाई तोय;
तिनहूँ यहि उत्तर दियौ, बाढ़ी चिंता मोय॥
—कहौ कैसी करौं ॥ ७ ॥

मैया तैं मुसकाइ कहत यौं नंद-दुलारौ;
नाहिन करिहौं ब्याह, करौ जिनि लाड़ हमारौ।
जो तुम्हरैं इच्छा यही, उनहीं की हम लैंइ;
तौ मैं ढोटा नंद को (जो) पाँइन परि परि दैंइ।
—सोच नहिं कीजिये ॥ ८ ॥

मोर-चन्द्रिका धारि, सुनटवर-भेष बनाई;
बरसाँने के बागहिं, मोहन बैठे जाई।
सब सखियन के झुंड में, देखति चली गुपाल;
अरस परस दोऊ भये, कुँवरि किसोरी, लाल।
—मनहिं फूले फिरैं ॥ ९ ॥

मन हरि लीनो स्याम, परी राधे मुरिझाई;
भई सिथिल सब देह, बात कछु कही न जाई।
दौरि सखी ! कुंजन चलीं, नैननि ढारति नीर;
अरी बीर ! कछु जतनि करि, हिरदैं धरति न धीर।
—हर्यौ मन मोहना ॥ १० ॥

सखियन ऊँचे बैन कहे, पै कुँवरि न बोलै;
पूँछति बिबिध प्रकार, लड़ैती नैन न खोलै।
बड़ी बेर बीती जबै, तब सुधि आई नैकु;
स्याम स्याम रटिबे लगी, पकुहि बेर जु ऐंकु।
—बदति ज्यौं बावरी ॥ ११ ॥

सखी कहैं सुनि कुँवरि ! तोइ इक जतन बताऊँ;
चुप रहिकैं सुनि लेहु बठौं अब घर लै जाऊँ।
कहियो कारौ नागनैं, जो पूँछै तो माइ;
हम हैं मीत गुपाल की, तैहैं तुरत बुलाइ।
—कहैंगी पीर बहु ॥ १२ ॥

कर गहि लई उठाइ, पकरि गृह भीतरि लाई;
बिबस दसा लखि माइ, दौरि कैं कंठ लगाई।
कहा भयो मो कुँवरि कौं, कहौ तनक समुझाइ;
हौं बरजति ही लाड़िली, दूरि खेलनि जिनि जाइ।
—कह्यौ मानैं नहीं ॥ १३ ॥

गई घरी द्वै बीति, कुँवरि जब नैन उघारे;
लै लै बड़े उसास, डसी मैया मोहिं कारे।
नाग डसी मैया सुनत, गिरी धरनि मुरझाइ;
बार बार यौं भाँखही, कोउ जडरी करौ उपाइ।
—अरे ! कोउ दौरियो ॥ १४ ॥

सखी कहति समुझाइ, कहौ तौं गोकुल जाऊँ;
मनमोहन घनस्याम, तुरत वाकौं लै आऊँ।
वह ढोटा अति सोहनौं, पठवै वाकौ माइ;
बड़ौ गारुड़ी नंद कौ, तुरत भलौ करि जाइ।
—बड़ौ ही चतुर है॥ १५॥

अरी बीर! बलि जाउ, कहौ इहि बिनती मेरी;
जो जीवैगी कुँवरि, बीर मैं, करिहौं तेरी।
बेगि पठै नँदलाल कौं, जीवदान दै मोहि;
पाँय लगौं, बिनती करौं, जग जस आवै तोहि।
—रावरी सरन हौं॥ १६॥

एकु चली, द्वै चार चलीं, गोकुल में आईं;
जसुमति बैठी जहाँ, बैठि तहँ बात चलाईं।
पाँय लगी कीरति कह्यौ, तुम जसुमति किन लेव;
जो तुम्हरी इच्छा यही, तो कुँवर संग करि देव।
—सगाई लीजियौ॥ १७॥

जसुमति-मन आनँद, दौरि नँदलाल बुलाए;
सुनि मैया की टेर, चले मनमोहन आए।
कहि गुपाल ग्वारनि लगे, मैया सों मुसक्याइ;
ए तो नारि गँवारि हैं, मति बहिकै तू जाइ।
—ठगनि आई यहाँ॥ १८॥

मैं वारी, मेरे लाल! तेरी हौं लेहुँ बलैया;
जित बरसानो गाम, सुनित तैं आईं भैया।
एक कुँवरि वृषभाँनु की कारे डसी कुठौर;
व्याकुल ह्वै धरनी परी, नैन पूतरी मोर।
—लाल तहँ जाइयौ॥ १९॥

कौनें बाइगी सुनें[1], ताहि दिन मोंहि बतायौ;
परपंचिनि तुम ग्वालि! झूठ ही मोंहि बुलायौ।
को राजा वृषभानु हैं, कित बरसानो गाम;
कौन तिहारी कुँवरि है, हौं जानत नहिं नाम।
—कान्ह उत्तर दयौ॥ २०॥

सुनो नद के लाल! साँवरे-कुँवर-कन्हाई;
बरसानो वह ग्राम, जहाँ तुम मुरलि बजाई।
नटवर भेष बनाइ कैं, बैठे आसन मारि;
धुनि सुनि मोही राधिका, औ ब्रज सिगरी नारि।
—मनौं टौंना कर्‍यौ॥ २१॥

अहो महरि के पूत! साँवरे कुँवर कन्हाई;
जो न चलौगे वेगि, कुँवरि जीवन की नाई।
कारी नाग जु नाथियो, तुम सों और न कोइ;
वृन्दावन में साँवरे, कहा सिखावत मोइ।
—बात जानति सबै॥२२॥

वह राजा वृषभाँनु! एक ही ढोल गढ़ावै;
मोइ कुँवरि बैठारि, सखिन पै मोंटा चावै।
अरथ, दान इच्छा नहीं, पान, पात नहिं लेंडँ,
जो इतनौं कारज करै, तो कुँवरि मती करि देंडँ।
—बात एतौ घटै॥ २३॥

जो माँगौ सो लेउ, साँवरे कुँवर कन्हैया;
बिनु माँगे ही देहि तुम्हैं राधा की मैया।
इहि सुनि सुंदर साँवरे! लीने सखा बुलाइ;
सिघ पौरि वृषभाँनु की, ततछिन पहुँचे जाइ।
—लगन है नेह की॥ २४॥

---

१. पाठा०—पहौं।

सब रानी उठि दौरि, पौरि तें मोहन ल्याई;
सिंघासन बैठाइ, हाथ गहि कुँवरि दिखाई।
दरस-फूँक दै बिष हरयो, निज सनमुख बैठाइ;
बहु बिधि आरति ए सखी! मुदित कुँवरि की माइ।
—धन्न है इहि घरी ॥ २५ ॥

सुनति बचन तत्काल, लड़ैती नैनि उघारे;
निरखति ही घनस्याम, बदन तें केस सँवारे।
सब अपने ढिग निरखि कै पुनि निरखी ढिग माइ;
अंचरा डारयौ बदन पै मधुर-मधुर मुसिकाइ।
—सकुच मन में बढ़ी ॥ २६ ॥

देखि दोउन कौ प्रेम जु, कीरति मन मुसिकाई;
जोरी जुग जुग जियौ, बिधाता भली बनाई।
सखी कहैं जुरि बिप्र सों पुहुपन तें बनमाल;
राधे के कर छ्वाइकैं गर मेलौ नँदलाल।
—बात अच्छी बनी ॥ २७ ॥

सुनति सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले;
नाचत गावत चले, प्रेम रस में अनुकूले।
जसुमति रानी घर सच्यौ मोतिन चौक पुराइ;
बजति बधाई नंद कै 'नंददास' बलि जाइ।
—कि जोरी सोहनी ॥२८॥

रुक्मिणी मंगल

श्री गुरुचरन-प्रताप सदा आनन्द बढ़ै उर।
कृष्ण-कृपा तैं यथा कहूँ सुख पावत नर सुर ॥ १ ॥
रुक्मिनि-हरन पुनीत चित्त दै सुनैं सुनावैं।
जाहि मिटै जम त्रास, वास हरि के पद पावैं ॥ २ ॥[1]
'सिसुपालहि कौं देत' रुक्मिनी बात सुनी जब।
चित्र लिखी सी रही[2] दई यह कहा भई अब ॥ ३ ॥
चकित चहूँ दिसि चहति, बिछुरि[3] मनु मृगी माल तैं।
भयौ बदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तैं ॥ ४ ॥
भरि आए जल नैन, प्रेम रस ऐन सुहाये।
जनु सुंदर अरबिंद अलिंदन[4] बैठ हलाये ॥ ५ ॥
अलि पूँछत बलि बाल! कहौ नैननि क्यों पानी।
पुहुप रेनु उड़ि परयौ, कहत तिनसौं मधु बानी ॥ ६ ॥
काहू के ढिग कुँवरि बढ़हि बढ़ स्वासनि लेई।
कहत[5] बात मुख मूँद मूँद उत्तर तिहि देई ॥ ७ ॥
जो कछु वपत-उसास, उदास बदन तैं कहिहैं।
कन्या कन्या-बिरह-दुःख कौं - कासौं कहिहैं[6] ॥ ८ ॥

---

१. १-२ पद हस्त० क में नहीं है। २ पहली पंक्ति में 'रुक्म' शब्द अधिक था इसलिए निकाल दिया गया। पाठा०—चित्र लिखित सम भई। ३. छुटी। ४. अलिन दल। ५. पूछें सुंदर मुख मूँदे। ६. कन्या रुक्मिनि बिरह दुःख काका सौं कहिहैं।

सुभग कुसुम की माल सखी जब जब गुहि लावैं।[1]
कर सौं कुँवरि न परसै, धर सौं निकट धरावैं ॥ ९ ॥
अपने कर जो विरह जरैं जानत अति तावैं।
अति मुरझाय सो माल, वाल डरपति[2] है यावैं ॥१०॥
मिटी भूख अरु प्यास, पास कोउ और न आवै।
कोनैं जाइ उसास भरै दुख कहत न आवै ॥११॥
दुरी[3] रहति क्यों प्रिय-रति प्रकटहि ऐत दिखाई।
पुलक अंग, सुर भंग, स्वेद कबहूँ जड़ताई ॥१२॥
थर थर थर अति कँपत अपत[4] जब कुँवर कन्हाई।
कबहुँ टकी लगि जाइ, कबहुँ आवत मुर्छाई ॥१३॥
ह्वै गयो कछु विवरन-तन, छाजत यौं छवि-छाई।
रूप अनूपम वेलि, तनक मनु घाम में आई ॥१४॥
मंगल दुंदुभि सुनैं धुनैं-धुन जो • मन माँहीं।
निरखि निरखि कर कंकन दृग जल भर-भर आहीं ॥१५॥
टप-टप[5] टप-टप, टपकि नैन सौं अँसुआ दरहीं।
मनु नव नील कमल-दल तैं मल मुतिया झरहीं ॥१६॥
उपजि विरह-दुख दवा, अँवा तन तावत येहैं।
कोउ कोउ हार के मोतिया तचि-तचि लाल भये हैं ॥१७॥
कबहुँ मनहि मन सोचत, मोचत स्वास-उरारे।
मोहन सोहन-स्याम, न ह्वैहैं पिया[6] हमारे ? ॥१८॥
करत विचार मनहि मन अब यौं कैधी कीजै।
लोक-लाज कुल कानि किये मोहि सरबसु छीजै ॥१९॥

---

१. सुसम कुसुम के हार उदार सखी गुहि ल्यावैं। २. सकुचति। ३. दुरि न रहत पिय आरत। ४. कँपत। ५. टपटप छबिले नैननि हूँ ते। ६. कंत।

ज्यों पिय हरि अनुसरौं सोई अब जतन करौं हठि ।
गाव, तात अरु भ्रात, बन्धु-जन सबै परौ भट ॥२०॥
आगि लागि जरि जाहुँ लाज जो काज बिगारै ।
सुंदर नंदकुँवर नागर सौं अंतर पारै ॥२१॥
पति परिहरि हरि भजन गई गोकुल की गोपी ।
तिनहुँ सबै बिधि लोपि परम-प्रेमै-रस ओपी ॥२२॥
जिनके चरन-कमल-रज अजहू बाँछन लागे ।
सनक, सनंदन, सिव, सारद, नारद अनुरागे ॥२३॥
इहि बिधि धरि मन धीर धीर अँसुवन सिराचकै ।
लिख्यो पत्र सु विचित्र, चित्र रुक्मिनि[1] बनायकै ॥२४॥
तब इक द्विज-बर बोलि, खोलि निज बात कही सब ।
अहो देव ! जदु-देव[2] पिया पैं तुरत जाहु अब ॥२५॥
यह पाती मो नाथ, हाथ पै तुमहीं दीजो ।
काहू नाहिं पतीजो, चलि-चलि पती कीजो ॥२६॥
द्विज न गयो निज-भवन, गवन किय धरि जु पवन-गति ।
आरति लखि रुकमिनी ओर श्रीकृष्ण-चरन रति ॥२७॥
पुरी परम-माधुरी, बिप्र लखि रह्यौ चकित चित ।[3]
श्रीनिवास कौं निज-निवास छबि का कहियै तित ॥२८॥
बन उपबन के रूख भूख भाजै तिहि देखैं ।
अमृत-फलन सौं फले फरे सुर बर गन लेखैं[4] ॥२९॥
ललित-लतनि की फूलनि, मूलनि अति छबि-छाजैं ।
जिन पर अलि बर राजैं मधुरे जम मे बाजैं ॥३०॥

---

१. नाना । २ द्विज-देव ।
३. पुरी परम छबि दुरी चाहिकै चकित भयो चित ।
४. अमृत फरन कर फरे टरे सुर द्रुम न निसेधे ।

सुक, पिक, चातक, सवद सुमीठी धुनि अस रटहीं।
मनों मार-चटसार सुढार पटा से पढ़हीं ॥३१॥
और विहंगम रंग भरे बोलत हिय हरहीं।
मनु तरुवर रसमरे परसपर बातें करहीं ॥३२॥
सुभग सुगंध सरोवर निरमल मुनि मन जैसें।
प्रफुलित बरई इंदु सरोवर राजत तैसें[१] ॥३३॥
कुंज-कुंजप्रति पुंज भँवर गुंजत अनुहारे।
मनु रवि-डर तम भजे तजे रोवत हैं बारे ॥३४॥
उज्जल मानि-मय अटा, घटा सों बातें करहीं।
जगमग-जगमग ज्योति होति रवि ससि सों अरहीं ॥३५॥
चपल पताका फरकैं झलकैं अरक-किरन जहँ।
घाम न कबहूँ परसै जित ही छाँह रहत तहँ ॥३६॥
जाल रंध्र मुख अगर धूम जनु जल-घर धुरवा।
आनन्द भरि भरि हरखा, नाचत मधुरे मुरवा ॥३७॥
बगर बगर सब नगर रहीं नव-गुड़ी बढ़ी छवि।
मनों गगनमें अंग चौखटे-चंद रहे फबि ॥३८॥
जैसेई देव बिमाननि चढ़ि द्वारावति आए।
देखि देखि मन हरषे बरषे सुमन सुहाये ॥३९॥
कृष्ण माधवी पुरी, निरखि द्विज हरख भयो अस।
जगत द्वन्द्व तें छुट्यौ, ब्रह्म-आनन्द मिल्यो जस ॥४०॥
सिंह पौरि छवि सौरि कहत कछु नहिं बनि आवै।
अर्थ, धर्म औ काम, मोक्ष जिहि निरखत पावै ॥४१॥
जहँ अनेक परिचार मार से बनि बनि ठाढ़े।
कृष्ण-कल्पतरु-सुंदर, सीतल-छाँह के गाढ़े ॥४२॥

---

१. प्रफुलित चंद्र तवर इंद्री अरु जीव हूँ तैसे।

ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्र वृन्द की भीर भुलावैं।
भीतर जान सुपावैं जिहि हरि देव बुलावैं ॥४३॥
चल्यौ गयौ तहँ विप्र छिप्रगति कितहुँ न अटक्यौ।
प्रभु जान ब्रह्मन्य, पौरिया पायनि लटक्यौ ॥४४॥
जदुपति कों लखि द्विजपति, मनमें अति सचु पायौ।[1]
जनु उडुपति उडुमंडल तैं महिमंडल आयौ ॥४५॥
किधौं कमल-मंडल मैं अमल दिनेस बिराजैं।
कंकन, किंकिनि, कुंडल करन महा छवि छाजैं ॥४६॥
द्विजहि दूरि तैं निरखि-निरखि हरि हरखित होई।
प्रिय सन्देस कहैया है· यह द्विजवर कोई ॥४७॥
उठि नँदनंदन जगबंदन, पगबंदन करिकैं।
लै चले घर द्विजवर कों हरि कर पै कर धरि कैं ॥४८॥
दुग्ध फैन सम सैन रमा मनो ऐन सुहाई।
ता ऊपर बैठाय, पाँय धोये जदुराई ॥४९॥
अष्ट गंध वसनोदक सों असनान कराये।
मंजुल मृदुल महीन नवीन सुपट पहिराये ॥५०॥[2]
खान पान, बहु मान, पान निज पानि खवाये।
कहौ कहाँ ते आये, बोले बचन सुहाये ॥५१॥
तब रुक्मिनि की कागर नागर नेह नवीनौं।
बसन-छोरि तैं छोरि, विप्र श्रीधर-कर दीनौं ॥५२॥
मुद्रा खोलि गुविन्दचन्द जब पाँवन आँचे।
परम[3] प्रेम रस साँचे अच्छर परत न बाँचे ॥५३॥
श्री हरि हियो सिरावत लावत लै लै छाती।
लिखी विरह[4] के हाथ सुपाती अजहूँ ताती ॥५४॥

१. जदुपुर लखि के मध्य देखि जदुपति सुख पायो। २. यह पद १० क में नहीं है। ३. प्रेम प्रीति के साँचे। ४. बिरहिनी हाथनि पाती।

हिय[1] लगाय सचु पाय, बहुरि द्विजवर कौं दीनी।
रुकमिनि अँसुवन-भीनी, पुनि हरि अँसुवन भीनी ॥५५॥
पढ़न लग्यौ द्विज् गुनी रुकमिनी वचन सुहाये।
तब हरि के मन नैन सिमटि सब स्रवनन आये ॥५६॥
सिद्धि श्री श्री-निवास, पास स्रुतवास[2] सहायक।
सुंदर सुचिवर, श्री गुविंद तुम सब बरदायक[3] ॥५७॥
नृप विदर्भ की कन्या रुकमिनि, अनुचरि गनियै।
ताकौं प्रथम प्रनाम बाँचि पुनि बिनती सुनियै ॥५८॥
बिलगु मानियैं नाहि जानियैं अपनी करिकैं।
मग्न होत दुख-जलनिधि में, उधरो कर धरिकैं ॥५९॥
जब तैं तुम्हरे गुनगन सुनि जन नारद गाये।
तब तैं औरु न भाये अमृतैं अधिक सुहाये ॥६०॥
मैं तुम मन करि बरे कुँवर गिरिधरन पियारे।
हौं भई तुम परिचारि, नाथ! तुम भये[4] हमारे ॥६१॥
अब[5] बिलंब नहिं करौ, बरौ त्रिभुवन-पति सुंदर।
नाथ[6] परम सुखधाम, स्याम सुखभोग[7] पुरंदर ॥६२॥
औरु सबै दुखभरे सरे अंतर ही अंतर।
काल कूट से करे, परे छिन छिन परतंतर ॥६३॥
देखत के सब गोरे नव नव पानिप घोरे।
हार काजु नहि आवैं जैसे उज्जल ओरे ॥६४॥
तिन मैं इक सिसुपाल ताहि सुहि देत रुकुम सठ।
तात, मातु पचि हारि होत नाहिन घटवैं मट ॥६५॥

---

१. छतियाँ लाय सचुपाय करि द्विजबर कर दीनी। २. सुखदास। ३. सुर नर मुनि गधर्व यक्ष किन्नर विधि नायक। ४. नाथ। ५. अब नाहिन हित कन्यौ बन्यौ त्रिभुवन मन सुंदर। ६. नित्य परम अभिराम। ७. सुखधाम.।

उचित होय सो करिय[1] करत लाजहि नहिं मरियैं।
मारन-वृंद बिदारन बलि गो मायन[2] हरियैं ॥६६॥
महा-हंस जदुवंस, मीर जु[3] मनहि बिचारौ।
है यह तुमरो भाग काग सिसुपाल बिडारौ[4] ॥६७॥
परत परेवा नभ तें पर कर देखत याकौं।
तुम सब लायक अछत छुए सिसुपाल-छिया कौं[5] ? ॥६८॥
जो नगधर, नँदलाल मोहि नहि करिहौ दासी[6]।
तो पावक पर जरिहौं, चरिहौं तन विनका सी ॥६९॥
जरि मरि-धरि-धरि देह न पैहौं, सुंदर हरि वर।
पै यह कबहुँ न होय स्यार सिसुपाल छुएँ कर ॥७०॥
सुनि रुकमिनि की पाती, छाती पुनि लगायकैं।
सारथि पैं रथ माँगि रुक्म पै अति रिसायकैं ॥७१॥
तुरत चढ़े छबि बढ़े चढ़त मानक बनि आयौ।
हरबर में खसि परथौ पीत-पट द्विज पकरायौ ॥७२॥
कहत[7] विप्र सौं हँसत लसत बिकसत सुंदर सुख।
जनु कुमुदिन घर चल्यौ चंद्रमा, देन परम सुख ॥७३॥
हो द्विजवर ! सब दटमहि रुकमिन ल्याऊँ ऐसें।
दारु-मथन कर सार-थगिन को काढ़त जैसें ॥७४॥
जानि प्रिया की आरति हरि अरबर सौं धाये।
मन को सी गति करें चले कुंडिनपुर आये ॥७५॥
उहाँ दुलहिनि तरफरैं फिरत घर-आँगन ऐसैं।
रवि तेजहि[8] सौं, दुखित मछरि थोरे जल जैसें ॥७६॥

---

१. करियै मरियैं लाज यहै तो। २. माय यहै तो। ३. निज मनस बिचारैं। ४. जुठारौ। ५. तुम तो सब बिधि लायक अछित छुवौ न छिया कौं। ६. नागर नगधर नरकुँवर मोहि करहु न दासी। ७. चले विप्र-सँग। ८. जहाँ कुँवरि। ९. कर तपत करी।

चढ़ि चढ़ि अटनि, झरोखनि झाँकत नवल किसोरी।
चंद उदै बिनु[1] जैसे आतुर, त्रिषित चकोरी ॥७७॥
फरकन लागी भुजा बाम, कंचुकि बँध तरकन।
हिय तें[2] सूल गयो सरकन, उर अंतर धरकन ॥७८॥
तिहि छिन द्विजवर चल्यौ-चल्यौ अंतःपुर आयौ।
मदन उहडह्यौ देखि कछू[3] मन धीरज पायौ ॥७९॥
पूँछि न सक मुख बात दई यह कहा कहैगो।
कै [4]अमृत सों सींच, किधौं विष देह दहैगो ॥८०॥
निकसि प्रान तब तन तें द्विज के बचननि आये।
तबहि कह्यो हरि आये, मनु फिर बहुरयौं पाये ॥८१॥
दियौ चहै कछु द्विजहिं नहीं देख्यौ तिहि लायक।
तब उठि पायन परी भरी आनंद महा इक ॥८२॥
सुर, नर जाकों सेवत सेवतहू नहिं लहिये।
सो लक्ष्मी जिहि पाय परत[5] ताकी का कहिये ॥८३॥
पुर के लोगन सुनि कै[6] श्री सुदर बर आए।
जँह[7]-तँह तें आये देखनि हरि विसमय पाये ॥८४॥
कोटि काम-लावन्य, जग सुख[8] दैन जु हित के।
जे तित दौरे परे भये ते तित ही तित के ॥८५॥
जो अलकन छवि उरझे, ते अजहूँ नहिं सुरझे।
लाग्रिन लसैं सिर पागु तकैं तक तँह तँह मुरझे[9] ॥८६॥

---

१. ज्यों चाहत। २. सौ दुख। ३. नैंक धीरज सो। ४. अमी बचन सींचिहै कि तरल गरल नहिं दहैगो। ५. परी तिहि कूँ कहा कहिये। ६. सुनी कि हरि मनमोहन आये। ७. जहाँ तहाँ ते धाये देखत विसमय पाये। ८. हरि सोवर पिय के। ९. कोऊ लटपट पगिया लखि कर तेऊ मुरझे।

कोउ फटीली भौंह निपट ही बिबस करे हैं।
कोउ दगन छबि गिनत-गिनावत हार परे हैं ॥८७॥
कोउ ललित ललित कपोलन मधुरी बोलन मटके।
परे ज्यों मद-गज पहले दहले फेर न मटके ॥८८॥
कोऊ श्रवननि कुंडल मंडल चंचल जोती।
निरखत ही मिलि गए भए जलनिधि के मोती ॥८९॥
कोउ रीझे श्रीवत्स बच्छ की अमल लुनाई।
मृदु मरकत मणि कोटि नैक जस धामिनि छाई ॥९०॥
कोउ जु रहे चकचौंध, रुचिर पीतांबर छबि पर।
मनौं छबीली छटा रही थकि सुंदर घन पर ॥९१॥
कोउ इक नैननि अटकि गये हैं लोभ लुभारे।
भरे मथन के चोर भये बदलत ही हारे ॥९२॥
कोउ जु रुचिर चरनारविंद-मकरंद लुभाये।
चंपमाल सिसुपाल परस अलि[२] बहुर न आये ॥९३॥
कोऊ कहै 'यह नायक रुकमिनी याके लायक'।
मनि बाँधी कपि-कंठ सुनहु-रुक्मी दुखदायक ॥९४॥
कोऊ कहै, बड़ भलो, बीर-बर याही बरिहैं।
जरासिंधु, सिसुपाल-स्याल मुरत धूरि जु परिहैं ॥९५॥
पुनि सब भूपन सुनी कि हरिमद-मथन पधारे।
परे बिखाद जिय भारे, मिट गए[३] ओज उचारे ॥९६॥
भलौ कियौ मिलि इनहूँ किनहू भेद बतायौ।
महाबली अतिछली भली नहिं जो यह आयौ ॥९७॥
जहँ देवी अंबिका, नगर बाहर मठ कंचन।
है आई कुल रीति चली दुलही तिहि पूजन ॥९८॥

---

१. कोउ और तें और अग के। २. चित्र कमल संसार निरखि फिरि। ३. बुझि गए ज्यों अँगारे।

भेरी मंदिर बजैं गगन में नभ-घन गाजैं।
बहिर बरम, असि, चरम धरे भो सुभट बिराजैं॥ ९९॥
सावधान ह्वै चले घेरि दुलहिन कौं ऐसे।
गरुड़-वेग भयभीत सुधा ढिग बिषधर जैसे॥१००॥
देवी द्वारं पखारि पाय दुलहिनी सुहाई।
यलहि अलज से चरनन चालि देवालय आई॥१०१॥
बिधिवत देवी अरचि चरचि बहु चंदन करिकै।
बिनती कीनी कुँवरि गौरि[1]-पद-पकज परिकै॥१०२॥
अहो! देवि, अंबिके! गौरि, ईश्वरि, वय लायक।
महा-माय, वरदाय, सु संकर सुमरे नायक॥१०३॥
तुम सब जिय की जानति तुम सौं कहा दुराऊँ।
गोकुल-चंद, गुबिंद, नंदनंदन पति पाऊँ॥१०४॥
है प्रसन्न अंबिका कहत है रुकमिनि सुंदरि!
पैहौ अबहि गुबिंद-चंद जिय जिन बिषाद करि॥१०५॥
पाय मनोरथ बिकसी निकसी सुंदरि[2] मठ तें।
वेगि चलो अब यहै मकें तिन सौं निज हठ तें॥१०६॥
मंद मंद पग धरे चंदमुख किरन बिराजै।
मनिमय नूपुर बजै बीन मनमथ की बाजै॥१०७॥
कदन चरन प्रतिबिम्ब अवनि मैं यौं छनमानी।
जनु धर अपनी जीभ धरत पग कोमल जानी॥१०८॥
देखति छबि सौं छली अपन बर आरत छलही[3]।
निरखत नरपति सगरे हरपत नैंकु न दुलही॥ १०७॥
घूँघट पट दियो[4] हुवो सु खोल्यो बदन डहडहौ।
जनु अंबर तें अब ही निकस्यौ चंद गहगहौ॥ ११०॥

---

१. सीस। २. दुलहिनि। ३. ये सब छबि छल अपनी हरि को अर्पन हलही। ४. गयो छूटि निकसि गयो बदन डहडह्यो। जनु जलधर

सोभा सदन सुबदन रदन की छबि दुति[1] ऐसी।
अरुन बदरि मैं दमकत दामिनि अंकुर जैसी ॥ १११ ॥
स्रवननि सुंदर खुभी, चुभी सबके मन ऐसे।
काम कलभ की अबहीं बज्रही दतियाँ जैसे ॥ ११२ ॥
अली अंस भुज दिये निहारति अलक[2]-सुधारत।
सर[3] कटाच्छ सन भरे सुतकि सकि भूपन मारत ॥ ११३ ॥
परे जहाँ तहँ मुरछि भूप सब बरछि बरेछा।
पच सरन छिद डारि किए मनमथ को पेछा ॥ ११४ ॥
दृष्टि परे जब मोहन सोहन कुँवर कन्हाई।
विहि छिन दुलहिनि-दसा भई जो बरनि न जाई ॥ ११५ ॥
अरबराइ मुरझाय कछू न बसाय तिया पै।
पंख नाहि तन बने[4], नतरु उड़ि जाय पिया पै ॥ ११६ ॥
हरैं[5] हरैं पग धरैं हरी रुकमिनी नियराई।
इक टक सब नृप लखैं मनौं ठगमूरी खाई ॥ ११७ ॥
इमि दुलहिनि चलि आई हरि लै रथ बैठाई।
घन तें बिछुरी बिजुरी मनु घन मैं फिरि आई ॥ ११८ ॥
लै चले नागर नगधर नवल तिया कौं ऐसे।
माँखिन-आँखिन धूरि-पूरि मधुहा मधु जैसे ॥ ११९ ॥
गरुड़ हरी जिमि सुधा दर्प सरपन कौं सब हरि।
तैसे हरि लै चले आपुनो सहज खेल करि ॥ १२० ॥
लसत साँवरे सुंदर-सँग सुंदरि आभासी।
जनु नव नीरद, निकट चारु-चद्रिका प्रकासी ॥ १२१ ॥

निकस्यो थिकस्यो चद लहलह्यो। १. भिलमिलत। २. कंचन। ३. बैंक ग्राछुनि करत मारि तिन। ४. पख नाहिनै उरत। (१२७) प्रति क में नहीं है। ५. छवि सा रथहि चलाव आन रुकमिनि जब आई।

'हरी हरी दुलहिनि' यों कहि सब लोग पुकारे।
किव-गद वे सब भूप जूप लारे बजमारे॥ १२२॥
जरासिंध तें आदि[1] नृपति सजि-सजि कैं दौरे।
महासिंह के पाछें ,कूकत कूकुर बौरे॥ १२३॥
देखे रिपु दलभारे, तब बलदेव सँभारे।
गदराज ज्यों सर पैठि कमल कों दलिमलि डारे॥ १२४॥
मरन सों अधिक जु मान-भंग मागध दुख पायौ।
जहँ दूलह-सिसुपाल वहाँ मन रोवन धायौ॥ १२५॥
कर-कंकन दुख दूनों दुख करि रोय जु चीनौं।
चपल चखन कों काजर बहि मुखकारौ कीनौं॥ १२६॥
तब निकस्यौ नृप रुक्मि, धरैं सिर कंचन कुलही।
रंचक तुम ठहराहु आनि देहौं तुम दुलही॥ १२७॥
भ्रमि कहि रिस भरि धायौ हरि पैं आयौ ऐसे।
दुरबल अग पतंग प्रबल पावक पर जैसे॥ १२८॥
जो कोऊ मतिमंद चंद पैं धूरि उड़ावै।
उलटि दृगनि तब परै मूढ़ कों तब सुधि आवै॥ १२९॥
जितिक छोंहु हरि-हियैं हुतो, तेतिक नहिं कीने।
मूँद मूँडि सत-चुटिया रखि पुनि छोरि जु दीने॥ १३०॥
इहि बिधि सब नृप जीति हरी रुकमिनि लै आये।
विधिवत् कियौ बिवाह तिहूँ पुर मंगल गाये॥ १३१॥
जो यह मंगल[2] गाय चित्त दै सुनै-सुनावै।
सो सब मगल पावै हरि-रुकमिनि मन भावै॥ १३२॥
हरि रुकमिनि मन भावै सो सब के मन भावै।
'नंददास' अपने प्रभु कौ नित मंगल गावै॥ १३३॥

---

१. नृपति सब पाछे दौरे। २. लीला।

सुदामा चरित

द्विजवर एक सुदामा नामा। पुरी द्वारिका ढिग बिसरामा।
जामैं बसै जु अलिपति ऐसैं। सरवर में सरसीरुह जैसैं।
परम अकिंचन कछु नहिं चहै। जथा लाभ संतोषित रहै॥
लीन कृष्ण-चरननि रति सरसै। इहि संसार बयार न परसै॥
जानै जिय सब विषम-बगर सौं। देखन कौं गंधर्व नगर सौं॥
इह ममता सपनौं सौं लागै। माया सब सपनो सौं जागै॥
नेह न देह गेह सन कबहूँ। उपसम चितन समता सबहूँ॥
सखा आपुने श्री जदुनाथा। गुरुकुल पढ़े एक ही साथा॥
तातैं भिक्षा अनी न बिचारै। बिषयन हीन देह प्रतिपारै॥
तातै दुरबलता तनु ताकैं। नाहिंन कछुक दरिद्रता जाकैं॥
तिय ताकी पतिब्रता अहै। पति ही पोख्यो तोख्यो चहै॥
जानत सब सेवा के घर मैं। और बिभूति नहीं कछु घर मैं॥
निपटहि लटयो देखिकै गातैं। कहन लगी कंत सौं बातैं॥
इत तैं निकट जदुपुरी ज्यौंही। तनक चाह ह्वै आओ तौंही॥
तहँ प्रभु कमलापति पियारे। तुम जु कहत है सखा हमारे॥
कीजै दरस आरस नहिं कीजै। जीवन सफल सफल करि लीजै॥
बिप्र कहत नहिं घर कछु धाजा। तिन्हैं मिलत मोहिं आवत लाजा॥
तीय कहै वे त्रिभुवन-स्वामी। अखिल लोक के अंतरजामी॥
रीझत देरि कछू नहिं आनैं। केवल प्रीत-रीति पहिचानैं॥
कहत जदपि जदुपति हैं ऐसे। चक्रपानि प्रभु परसहुँ कैसे॥

सब तिय उठी चकत पिय जाने। माँगि मूँठि द्वै चिरवा आने॥
बीर लपेटि सु पिय पकराए। नीकैं लिएँ सु द्विज उठि धाए॥
दृष्टि परी जदु-पुरी सुहाई। जगमगात छवि बरनि न जाई॥
बन उपवन फल फूल सुहाई। सब रितु रहत समान सुहाई॥
सरवर की छवि बरनि न जाई। मलिन होत सुमलिनता आई॥
ऊँचे कनकभवन जगमगाहीं। चखन माँहि चकचौंधा लगाहीं॥
लगे जु नग जगमग रहे ऐना। मानहुँ सरस भवन के नैना॥
तापर चपल पताका चमकै। बिनु घन जनु दामिनि सी दमकै॥
सुंदर सुथरी डगर जो पुर की। चोवा चंदन बंदन बुरकी॥
हाथी हय रथ गई सुसंचर। निकसि न सकत अटनि तनु अंबर॥
महा बिभूति कछु न सुधि परहीं। क्रम क्रम द्विजबर मग अनुसरहीं॥
पहुँचे पौरि पौरि तहँ छवि की। बरनि न सकै महामति कवि की॥
जहँ शंकर नारद मुनि ठाढ़े। औ सुरपति नरपति अति बाढ़े॥
समय स्याम कों नाहिंन अबहीं। रोकैं रहत पौरिया सबहीं॥
ठाढ़ो भयो द्वार पै द्विजबर। एक पौरिया आइ गह्यौ कर॥
लै गयो जहँ रुकमिनि को मंदिर। बैठे तहँ जदुनायक सुंदर॥
चँवर चारु ढोरत ह्वै ठाढ़ी। पिय मुख निरखति अति रति बाढ़ी॥
जद्यपि सहस दस दासी आहीं। प्रेम बिबस रस देति न काहीं॥
दृष्टि परे द्विजबर तहँ जबहीं। अरबराइ हरि दौरे तबहीं॥
भले मिले कहि अति मृदुबानी। भेंटत भरि आए दृग पानी॥
अपुने आसन द्विज बैठारे। निज कर-कंजनि चरन पखारे॥
पोंछत रुचि कर पग जगनायक। अपुने पियरे पट सुखदायक॥
चरन माँहि पट अटक रहत जब। रमा सुंदरी मुसकि परत तब॥
सुदर भोजन बिबिध प्रकारी। आनि धरे भरि कंचन थारी॥
जे सपने कबहूँ नहिं दरसे। श्रीपति-ललना निज कर परसे।
ताहि पाइ द्विज सुख नहिं मान्यौं। परमानंदकंद रस सान्यौं॥

लै यैठे पुनि श्री जदुनाथा। सुधि कीनी गुरुकुल की गाथा॥
अहो मित्र जब इंधन आनन। गुरु पतनी पठए तब कानन॥
तोरत इंधन घन घिरि आए। अमित जोर सों जल बरखाए॥
बरसत बरसत परि गई रजनी। किहु नगर की डगर सुन जनी॥
भूले फिरे रैन तहँ सगरी। तऊ न गुरु की पाई नगरी॥
भयो प्रभात तब गुरु पै आये। धरि इंधन तब सीस नवाए॥
वे दिन भले हुते अहो तब तों। बँट गए ठौर ठौर चित अब तों॥
भली भई फिरि मिले हे तुमकों। भाभी कछू दियो है हमकों॥
चिरवा छोरि चीर तें लीने। भर मुठी निज मुख में दीने॥
तिसरी बेर बहुरि मन कीने। तव उठि रमा, रमन गहि लीने॥
करत बात पौढ़े द्विज राती। खान पान करि नाना भाँती॥
प्रात होत निज धाम सिधारे। रहे नाहिं बहुतक पचि हारे॥
करत चवाव जात निज घर कों। मन में कहत कहा कहौं हरि कों॥
पुनि पुनि कहैं अविहि भल कीनों। जो हरि हमकों कछु नहिं दीनों॥
राखि लयो अपुनों करि जान्यो। परम अनुग्रह इतनों (हम) मान्यो॥
अब मद तें धन-मद दुखदाइक। नहिं पायौं भर पुन सहाइक॥
आँधरो करै बधिर पुनि करहीं। उत पथ चलत बिचार न टरहीं॥
दिन न चैन निसि नींद न परहीं। मोद-मुदित मन अति सुख भरहीं॥
मन सों बात करत चलि आए। चकित भए निज ठौर न पाए॥
कहन लगे इहि भवन कौन के। ऐसे हैं वहाँ रमा-रमन के॥
अब कों इहाँ हुतो नहिं ऐसो। अबहीं इहाँ भयो है जैसो॥
कहन लगे पुनि संभ्रम पायो। कै हौं बहुरि द्वारिका आयो॥
देखत इन्हें सु-सेवक धाए। अमरनि तें वे अधिक सुहाए॥
छटा चढ़ी अवलोकत तिरिया। टिकत धाम बाम प्रिय भरिया॥
आतुर तिय लखि पियहिं सु चमकी। जनु सुमेर तें दामिनि दमकी॥
मुदित बदन छबि कौन बखानै। अवनी उतरति उडुपति जानै॥

चहुँघ चली लिएँ संग सुंदरी । उडुगन मधि राजत ज्यौं चंद री ॥
करि आरति निज भवन सु लीने । सबै मनोरथ पूरन कीनें ॥
बहु बिभूति हरि द्विज कौं दीनी । दया भक्ति यतनी सुभ कीनी ॥
ऐसैं जो कोउ हरि कौं भजै । हरि-उदारता तैं सुख सजै ॥
दीनन कौं बरदायक नित ही । रहत अधीन भक्त के हित ही ॥
चरित स्याम को इहि है ऐसौं । बरन्यौ 'नंद' जथामति जैसौं ॥
दशमस्कंध बिमल सुख खानी । सुनत परीछित अति रति मानी ॥
परम चरित्र सुदामा नित सुनि । हृदय-कमल में राखौं गुनि गुनि ॥
'नंददास' की कृति संपूरन । भक्ति मुक्ति पावै सोइ तूरन ॥

भाषा दशम स्कंध

प्रथम अध्याय

नव लच्छन करि लच्छ जो, दसयें आश्रय रूप।
'नंद' बंदि लै प्रथम तिहि, श्री कृष्णाख्य अनूप॥ १ ॥

परम बिचित्र मित्र इक रहै। कृष्ण-चरित्र सुन्यौ सो चहै॥
तिन कही 'दशम स्कंध' जु आहि। भाषा करि कछु बरनौ ताहि॥
सबद ,संसकृत के हैं जैसें। मो पै समुझि परत नहिं तैसें॥
तातें सरल सु भाषा कीजै। परम अमृत पीजै, सुख जीजै॥
तासौं 'नंद' कहत हैं तहाँ। अहो मित्र! एती मति कहाँ॥
जामैं बड़े बड़े कबिजन अरुझे। ते ते अजहूँ नाहिंन सुरझे॥
तहँ हौं कवन निपट मतिमंद। मीना पै पकराबौ चंद॥
अरु जु महामति श्रीधर स्वामी। सब ग्रंथन के अंतरजामी॥
तिन जु कहे यह भागवत ग्रंथ। जैसैं दूध-उदधि कौ मंथ॥
तामैं यह श्री 'दशम स्कंध'। आश्रय बस्तु कौ रसमय सिंधु॥
तिहि मधि हौं किहि बिधि अनुसरौं। क्यौं सिद्धांत रतन उद्धरौं॥
मित्र कहत है तौ यह ऐसैं। अहो 'नंद'! तुम कहत हौ जैसैं॥
पै परि जथासक्ति कछु कीजै। अमृत को एक बुंदही जीजै॥

ज्यौं गुरु गिरिधर देव कौ, सुंदर दया दरेर।
गुंग सकल पिंगल पढ़ै, पंगु चढ़ै गिरि मेर॥ ८॥

प्रथम कहौं नव लच्छन कौन। जिन कौं नीके समुझत हौं न॥
जब लगि इन कौ भेद न जानै। आश्रय बस्तु सु क्यौं पहिचानै॥

'नंद' कहत सौ सुनि नव लच्छन। जैसैं बरनत बड़े बिचच्छन॥
'सर्ग','बिसर्ग','स्थान' अरु 'पोषन'। 'ऊति' 'मन्वंतर' 'नृपगन तोषन'॥
इक 'निरोध' अरु 'मुक्ति' सुलच्छन। आश्रय बस्तु के ये नव लच्छन॥
महत्वादिक जे कारन वर्ग। तिन की सृष्टि जु कहियै 'सर्ग'॥
कारज बिस्व सृष्टि जो आहि। बिदुष 'बिसर्ग' कहत हैं वाहि॥
सुरजादिक मरजाद बिधान। वाहि सु 'स्थान' कहत कबि ज्ञान॥
जदपि भगत मरयो बहु दोषन। ताकी रच्छा कहियै 'पोषन'॥
साधु-असाधु वासना जहाँ। 'ऊति' बिभूति समझि लै तहाँ॥
समीचीन धर्म की प्रवृत्ति। सो कहियै 'मन्वंतर' वृत्ति॥
मुचुकुंदादि नृपति की कथा। सो ईसान कथा है जथा॥
दुष्ट नृपति को हरन अबोध। बुधजन ताकौं कहत 'निरोध'॥
अन्य रूप की त्यागन जुक्ति। निज स्वरूप की प्रापति 'मुक्ति'॥
इन लच्छन करि लच्छित जोई। आश्रय बस्तु कहावै सोई॥
सो आश्रय इहि दसम निकेत। प्रगट आहि भक्तन के हेत॥
दसयें मधि जु निरोध बखान्यौ। दुष्ट नृपन-दलन सब हौ जान्यौ॥
अवर निरोध भेद हैं जिते। अति अद्भुत तू सुनि लै तिते॥
भक्तहि इतर बिषै ते निरोध। उतहि मोच्छ सुख तैं अवरोध॥
सुद्ध प्रेम मधि प्रापति करै। इक निरोध इहि बिधि बिस्तरै॥
ज्यौं ब्रजबासिन मोक्ष दिखाइ। महानंद बहुरि लै जाइ॥
मधुर मूर्ति बिन जब अकुलाने। तब फिरि बहुरयौ ब्रज ही आने॥
अवर निरोध भेद सुनि मित्र। बरनत ना कहुँ परम बिचित्र॥
जदपि कोटि ब्रह्मांड के कर्ता। अरु तिन के भर्ता-संहर्ता॥
परम सनेह भक्ति होइ जाके। ईस्वरता सो फुरै न ताके॥
ज्यौं जसुमति मुख में जग पेख्यौ। सुत ईस्वर करि नाहिंन लेख्यौ॥
ललित बाल लीला लपटानी। सो वह भूत-क्रिया सी जानी॥
अब सुनि कृष्ण-बिषैक निरोध। जदपि अनंत अखंडित बोध॥

सो सब रंचक ताहि न फुरै। जब इठि मातरतंतु अनुसरै॥
अवर निरोध भेद जो आहि। रस-लीलनि मैं लीयौ चाहि॥
अब सुनि भक्त परीच्छित बातैं। श्री भागवत प्रगट है जातैं॥
सुंदर हरि मूरति जो आहि। उदर मध्य सो आयौ चाहि॥
सब ठौं कृष्ण परीछित लह्यौ। तातैं नाउँ परीच्छित कह्यौ॥
जे उत्तम श्रोता रस-सने। तिन मैं मुख्य परीच्छित गने॥
बिसरे जाहि अहार-बिहार। केवल हरिगुन-श्रवन-अधार॥
तैसेंई उत्तम वक्ता बने। श्री सुक परम प्रेम-रस सने॥
कृष्ण ललित लीला अनुरागी। ब्रह्म तें निकरि भये बैरागी॥
तिन सौं प्रश्न परीच्छित करे। नख-सिख कृष्ण-चरित रस भरे॥
हो प्रभु! तुम कह्यौ रवि-ससि-बंस। नीके कह्यौ रह्यौ नहि संस॥
अरु जे उभय बंस के भूप। तिन के जे जे चरित अनूप॥
ते सब पाछे आछे बरने। मनहरने, जग-मंगल करने॥
अरु जदु धर्मसील को बंस। सो पुनि तुम करि भले प्रसंस॥
धर्मसास्त्र-मत निर्मल हियौ। पितु हितु अपनौ जोबन दियौ॥
तिहि कुल मैं ईस्वर अवतरे। अंत कला बिभूति करि भरे॥
मच्छ-कच्छ अवतार बिभावन। भुवनि के भावन, मनभावन॥
सो प्रभु इहि जदुकुल मैं आइ। कीने जे जे कर्म सुभाइ॥
ते बिस्तर सौं मो सौं कहौ। हे मुनि उत्तम! अलस न गहौ॥
कृष्ण-गुनानुबाद के बिषै। सब अधिकारी अपनी इषै॥
मुक्त, सेव गावत रस-भीने। जदपि सकल एष्ना करि हीने॥
मुमुच्छु कौं भव औषधि यहै। जातैं संसृति रोग न रहै॥
बिषई जन-मन अति अभिराम। जातैं सब ही रस कौ धाम॥
बिना पसुघ्नहि पुरुष सु कौन। कहै कि हरि गुन हौं न सुनौं न॥
पसुघन सो जो करम दिढ़ावै। कृष्ण-गुनानुबाद नहिं भावै॥
हमरें तौ हरि कुल के देव। तुम सब नीके जानत भेव॥

अर्जुन आदि पितामह मेरे। जब कुरुसेना-सागर घेरे ॥
अमरन करि जु न जीते जाहीं। भीषमादि अतिरथि जिनि माहीं ॥
तेई तहाँ तिमिंगिल मारे। अपनी जाति के भच्छनहारे ॥
'तिमि' इक जाति मीन की आहि। सत जोजन विस्तर है जाहि ॥
ताहि गिलत जो जलचर लहिये। ताको नाउँ 'तिमिंगिल' कहिये ॥
तिन करि महा दुरत्यय सोई। जो देखै सो अचरज होई ॥
तहँ श्री कृष्ण सु नौका भये। कव्र यों तिनहिं पार लै गये ॥
अरु केवल तेई नहिं तारे। मेरेऊ तन के रखवारे ॥
द्रोन-पुत्र को बान अन्यारो। अगिनि तें ताती, राती भारो ॥
जब आयौ तब मैया मेरी। दौरी, सरन गई तिहिं केरी ॥
मेरे हित करिबे हरि कैसे। कुखित उदर-दरी में पैसे ॥
कुरुवन की तौ संतति मात्र। पांडवन की भक्ति कौ पात्र ॥
सो यह मेरौ अंग सुहायौ। भसम भयौ पुनि फेरि जिवायौ ॥
तिन के चरित अमृतमय जिते। हे सर्वज्ञ! सुनावहु तिते ॥
तुम करि वे संकर्षन अर्भ। प्रथमहिं कह्यौ देवकी गर्भ ॥
महुर्यौ ताहि रोहिनी जने। देहांतर बिनु कैसें बने ॥
अरु ईस्वर भगवान मुकुंद। परमानंदकंद स्वच्छंद ॥
ते काहे तें पितु गेह तें। ब्रज आये सु कवन नेह तें ॥
ब्रज बसि कवन कवन पुनि कर्म। कीने परम धरम के मर्म ॥
पुनि मधुपुरी आइ नँदनंद। बरषे कवन कवन आनंद ॥
अरु साच्छात मात कौ भ्रात। सो वह कंस हयौ किहि बात ॥
कितिक बरस द्वारावति बसे। कितिक ललित ललना में लसे ॥
जदपि तज्यौ है मैं जल अन्न। तदपि न ह्वैहै मो तन खिन्न ॥
तुव मुख-कमल हरिचरित सार। चलिहै परम अमृत की धार ॥
पान करत अस रस अनयास। काके छुधा कौन के प्यास ॥
या राजा को करि सनमान। बोले वैयासिक भगवान ॥

कही कि धन्य धन्य नृप सत्तम। नीके करि निश्चै मति उत्तम॥
जातें कृष्णकथा रसमई। तातें उपजी अति रति नई॥
प्रश्न जु कृष्णकथा को जहाँ। वक्ता, श्रोता, पृच्छक तहाँ॥
पावन करें सबन कों ऐसें। गंगाजल-धारा जग जैसें॥

निगम-कल्पतरु कौ सु फल, बीज न बकला जाहि।
कहन लगे रस रँगमगे, सुंदर श्री सुक ताहि॥

भूप रूप ह्वै असुर विकारी। कीनी भूमि भार करि भारी॥
तब यह गाइ रूप धरि धरती। क्रंदन करती अँसुवन भरती॥
बिधि पों जाइ कही सब बात। सुनि कलमल्यौ कमल कौ तात॥
अमर निकर संकर सँग लये। छीर छीरसागर के गये॥
देव देव पुरुषोत्तम जहाँ। स्तुति करि बिनती कीनी तहाँ॥
गगन में भई देव की धुनी। सो ब्रह्मा समाधि मैं सुनी॥
सुनि कै बोल्यो अंबुजतात। सुनहु अमरगन मो तें बात॥
आग्या भई बिलंब न करौ। जदुकुल विषे जाइ अवतरौ॥
श्री बसुदेव धाम अभिराम। प्रगटहिंगे प्रभु पूरनकाम॥
सेष सहसमुख सब सुख-दाता। ह्वैहै प्रभु कौ अग्रज भ्राता॥
अरु जु जोगमाया गुनमई। ताहू कौं प्रभु आग्या दई॥
इहि बिधि बिधि बिबुधन सौं कही। पुनि आस्वासित कीनी मही॥
मथुरा जादव की रजधानी। श्री गोविंदचंद की मानी॥
जितक आहि ब्रह्मांड अनेक। अंतन करि निवसत हरि एक॥
जिहि ब्रह्मांड मधुपुरी लसै। पूरन ब्रह्म कृष्ण तहँ बसै॥
जब हरि क्रीड़ा इच्छा करें। जगत मैं प्रथम भक्त अवतरैं।
तिन कै प्रभु कौ परिकर जितौ। प्रगट होत लीला हित तितौ॥
सब श्री कृष्ण अवतरहिं आइ। सिद्ध करें भगवान के भाइ॥
सूरसेन जादव इक नाम। परम भागवत सब गुन धाम॥
ताके निर्मल निगम सरूप। प्रगट्यौ सुत बसुदेव अनूप॥

जाके जन्मत अमर नगर मैं। दुंदुभि बाजी बगर बगर मैं ॥
देवक जादव के इक कन्या। देवमई देवकी सु धन्या ॥
सब सुभ लच्छन भरी, गुन भरी। आनि-ब्रह्म-बिद्या अवतरी ॥
स्याम बरन तन अस कछु सोहै। इंद्रनील मनि की दुति को है ॥
राजति रुचिर जनक के ऐना। चंद सौ बदन, डहडहे नैंना ॥
बोलत हँसति, हरति इमि हियौ। जनु बिधि पुतरी मैं जिय दियौ ॥
ब्याहन जोगु जानि छबिमई। सो देवक बसुदेवहि दई ॥
भयौ बिवाह परम रँग भीनौं। देवक बहुत दाइजौ दीनौं ॥
षटसत रथ कंचन के नये। गज सत चारि मत्त छबि छये ॥
पंद्रह सहस सुभग किक्यान। कनक भरे, नग जरे पलान ॥
बर बरनी, तरुनी रँग भीनी। दासी तीनि तीनि सत दीनी ॥
भई बरात बिदा है सजे। भेरी मंदर-कंदर बजे ॥
उग्रसेन देवक कौ भ्राता। ताकौ पूत कंस बिख्याता ॥
भीनौ नव कुंकुम के रंग। कंचन रथ अनेक जिहि संग ॥
भगिनी-रथ कौ सारथि भयौ। प्रीति बिबस सुदूरि लौं गयौ ॥
बानी भई गगन मैं गूढ़। रे, रे कंस! महा मतिमूढ़ ॥
जाकौं तू भयौ जात है जंता। अठयौं गर्भ सु तेरौ हंता ॥
सुनतहि पापरूप यह कंस। धाइ गह्यो देवकी नृसंस ॥
सुंदर बदन बिमन भयौ ऐसैं। राहु के छुवत छपाकर जैसैं ॥
काढ़ि खरग मारन कौं भयौ। आनकदुंदुभि तब तहँ गयौ ॥
महाराज जिनि करि अस काज। जा काज तैं होइ जग लाज ॥
भगिनी, बाला, अरु यह समै। तू बड़भागि, न करि अस भ्रमै ॥
जौ तू कहहि मरन-भय भारी। हौं आपनो करौं रखवारी ॥
तौ यह मरन न ढिग है जाइ। बिधना लिख्यौ लिलार बनाइ ॥
अबहिं मरौ कि बरष सत बीतें। छुटै न कोउ काल बली तें ॥
तातैं पापाचरन न करियै। रंचकसुख बहुत्यौ दुख भरियै ॥

मागध जरासिंध यल-धंध । तासौं जाहि ससुर संबंध ॥
जादवन कौं देन दुख लागे । ते तजि देस-बिदेसन[1] भागे ॥
केइक रहे ताही अरगाने । अक्रूरादिक अनखनमाने ॥
देवकि के षट सिसु सब कंस । हते महा खल, महा नृसंस ॥
सप्तम गर्भ बिष्णु कौ धाम । भयौ अनंत जाहि है नाम ॥
देवकि तहाँ अति न परकासी । हर्ष-सोक दोऊ मिलि भासी ।'
कछु फूली, कछु नाहिंन फूली । जैसें प्रात कमल की कली ।
यदुकुल को दुख दिखि भगवान । व्याकुल भये जानमनि जान ।
बोलि जोगमाया मनहरनी । तासौं प्रभु सब बातें बरनी ॥
हे भद्रे ! बड़भागिनि महा । भाग महिम तुव कहियै कहा ॥
जातें तू अब गोकुल जैहै । देखव निरवधि सुख कौं पैहै ॥
गोपी-गोपन करि अति मंडित । तामैं नित्यानंद अखंडित ॥
राजत गोपराइ तहँ नंद । मूरति धरे सु परमानंद ॥
ताके घर बसुदेव की घरनी । दुरी रहति रोहिनि घर-बरनी ॥
देवकी जठर गर्भ जो आहि । रोहिनी उदर ताहि लै जाहि ॥
गर्भ-भरन संका जिनि करै । मेरौ अंस न कबहूँ मरै ॥
तदनंतर तिहि जठर अनूप । पैहैं हम परिपूरन रूप ॥
तू उहि नंद गोप के धाम । सुकृति गेहिनी जसुमति नाम ॥
तू तहँ नाममात्र होइ कै । करि सब काज सबन मोइ कै ॥
ह्वैहैं भुवि तेरे बहु नाम । पूरन करिहैं सब के काम ॥
भवा, भवानी, मृडा, मृडानी । काली, कात्याइनी, हिमानी ॥
ऐसें प्रभु की आग्या पाइ । माया तुरत महीतल आइ ॥
रोहिनी दिपै देवकी गर्भ । आन्यौ करषि तबहिं सो अर्भ ॥
नगर मैं, बगर बगर ह्वै गयौ । देवकि गर्भ बिर्संसृत भयौ ॥

---

१. पाठा०—देस कौं ।

तब ईश्वर सब अंसन भरे। आनकदुंदुभि मन संचरे॥
वसुदेव तिहि छिन अतिसै सोहे। भानु समान परत नहिं जोहे॥
मन हीं करि देवकि मैं धरे। न कछु धातु संबंधहि ररे॥
ज्यौं गुरु शिष्य शिष्य के हेत। हृदगत वस्तु दया करि देत॥
हरि घर धरि देवकि अति सोही। अपने रूप आप ही मोही॥
वे परि घर ही घर आभासी। बाहिर कहुँ न तनक परकासी॥
जैसैं घट मैं दीपक-ज्योति। भीतर जगमग जगमग होति॥
अरु ज्यौं बंचक मैं सरस्वती। पर उपकार करत नहिं रती॥
ऐसैं जगमगाति ही जहाँ। आयौ कंस पापमति तहाँ॥
कहत कि मेरौ हुंता जोई। अब फैं निश्चै आयौ सोई॥
जातैं पाछे हुती न देखी। राजति तेजरासि सी बेखी॥
को बध्धिम करियै इहि काल। सुता, गुर्विनी, बहुरचौ बाल॥
याकौ बध न श्रेय कौं करै। आयु, कीर्ति, संपति सब हरै॥
अरु ज्यौं सब कोउ धृग धृग करै। मरे महा रौरव मैं परै॥
इहि परकार बिचारहि आइ। फिरि गयौ घर पै, कछु न बसाइ॥
निसि दिन जनम-प्रतीच्छा करै। थर-थर डरै, नींद नहि परै॥
बैठत-उठत, चलत, थकि रहै। मति ह्वत ही सैं उठि मोहि गहै॥
अंबर आरि सेज पर सोवै। भोजन करत चीथ टकटोवै॥
बैर-भाव जिय अति बढ़ि गयौ। सब जग जाहि बिष्णुमै भयौ॥
तदनंतर संकर, अज, सारद। अधर अमर बर, मुनिवर नारद॥
दरसन हित आये अरबरे। अति मुद भरे, अचंभे भरे॥
जाके उदर मध्य जग सबै। सो देवकी जठर मैं अबै॥
केई रवि केइ ससि से गये। आगे दिन दीया से भये॥
देवकि जठर झलमलत ऐसैं। रतन-मँजूषा नव नग जैसैं॥
करि दंडवत महा मुद भरे। इकहि बेर सब पाइन परे॥
पुनि पुनि उठि चरनन लटपटे। कोटन के जु कोटि कटपटे॥

पुनि नहि दूरि जबहिं यह मरै। तब ही और देह कौं धरै॥
ज्यौं तृन-जोंक तृनन अनुसरै। आगे गहि पाछे परिहरै॥
ऐसे कर्मबिवस ये जंत। देह धरत दुख भरत अनंत॥
इन बातन सु कंस क्यौं मानै। आसुर ग्यान प्रतच्छ प्रमानै॥
तब बसुदेव दया बिस्तारै। साम बचन कहि कहि समझावै॥
यह तेरी अनुजा बर बाला। पुतरी सी बिधि रची, रसाला॥
न करि अमंगल मंगल काल। जावै तू बड़ दीनदयाल॥
तदपि न ताके रंचक ब्यापी। केवल पापी, महा सुरापी॥
निपटहि ताकौं निग्रह जान्यौ। तब बसुदेव अवर मंत ठान्यौ॥
नीपहि सुत अर्पिबौ दिढाऊँ। मीच के मुख तैं याहि छुड़ाऊँ॥
जब मेरे उपजहिंगे तात। धाता की अनेक हैं बात॥
ज्यौं बन नगर अगिनि परजरै। ढिग के रहैं दूरि के जरैं॥
तब बसुदेव बिहँसि कै कहै। हे राजन रंचक इत चहै॥
डर तौ तोहि अठयें गर्भ कौ। नहि याकौ नहि अवर अर्भ कौ॥
हौं तोहि दैहौं सिगरे तात। छुये कहत यह तेरौ गात॥
करि प्रतीति जिय बसुदेव की। छाँड़ि दई हँसि कै सु देवकी॥
प्रथमहि कीर्तिमंत सुत भयौ। बसुदेव ताहि लयें ही गयौ॥
सत्यप्रतिग्य अनृत तैं डरयौ। लालनादि लालच परिहरयौ॥
अरु साधुन के दुरसह कौन। जिनके नहिं ममता, मति मौन॥
अति कोमल बिलोकि कै बाल। कंस भयौ तिहि काल दयाल॥
घर लै जाहु देव! इहि अरभै। दीजौ मोहि आठयें गरभै॥
चल्यौ सदन, पै बदन उदास। लोचन कौ कछु नहि बिसवास॥
बसुदेव घर लौं जान न पायौ। नारद तबहि कंस पै आयौ॥
कंस के सांति होइ जो अबै। देव-काज तौ बिगरयौ सबै॥
आइ कही तासौं सब बातैं। अहो कंस! कछु समझत घातैं॥
बसुदेवादिक जादव जिते। गोकुल मैं नंदादिक तिते॥

ये तो सबै देवता आहि । राजन् ! रंचक जिनि पतियाहि ॥
कहि कै गयौ वचन इहि विधि कौ । घट-घट-घालक,बालक विधि कौ॥
तब ही सो सिसु फेरि मँगायौ । वसुदेव ताहि बहुरि लै आयौ ॥
डारयौ पटकि न उपजी मया । जे खल क्रूर, तिन के को दया ॥
देवकी बिषै बिष्णु अवतरिहैं । मेरे वध कौ उद्दिम करिहैं ॥
पहिले कालनेम हौं हुतो । विष्णु सदा कौं बैरो सुतो ।
अब कै ऐसें जतनन जतौं । विष्णु है गर्भ पोच ही हतौं ॥
तब बसुदेव देवकी आनि । पाइनि सुदृढ़ शृंखला बानि ॥
राखे निकट, बिकट थल ठौर । जहँ कोउ जान न पावे और ॥
जोई जोई बालक उपजत जात । सोई[१] सोई हतै न-बूझै बात ॥
बिष्णु जन्म की संका करै । मति इन ही मैं है संचरै ॥
बंधु-मित्र जादव है जिते । बल करि बंधन कीने तिते ॥
उग्रसेन अपनी महतारी । सो बाँध्यौ, दोनो दुख भारी ॥
महा बली अरु महा नृसंस । राजा भयौ मधुपुरी कंस ॥

'नंद' जथा मति क तथा, बरन्यौ प्रथम अध्याइ ।
जाके रंचक सुनत सब, कर्म-कपाट नसाइ ॥

द्वितीय अध्याय

अब सुनि लै द्वितीय अध्याइ । जामैं ब्रह्मादिक सब आइ ॥
गर्भस्तुति करिहैं सिर नाइ । चरन-कमल बैभव दिखराइ[३] ॥
जे हैं नीच बुरे ही बुरे । ते सब आनि कंस पै जुरे ॥
अघ, बक, बकी, प्रलंब, अरिष्ट । तृनावर्त, खर, केसी नष्ट ॥

---

१. प्रति क में नहीं है । २. पाठा०—जोई ।
३. प्रति क में इन दो चौपाइयों के बदले निम्नलिखित दोहा है—
अब सुनि द्वितीय अध्याइ यह ब्रह्मादिक सब आइ ।
करिहैं गर्भ-स्तुति महा भक्ति बिभव, दिखराइ ॥

बनी जु मुकुट रतन की जोति । जनु श्री हरि की आरति होति ॥
गदगद कंठ, प्रेम-रस भरे । अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरे ॥
कहत कि अहो सत्य-संकल्प । सब बिधि सत्य, नित्य, बड़ कल्प ॥
तुमहिं प्रपन्न भये हम सबै । रच्छा करहु हमारी अबै ॥
जौ तुम कहहु तुमहु सब लाइक । जगनाइक अरु सब फलदाइक ॥
क्यों बोलत लिलात से बैन । तहँ तुम सुनहु कमल दल-नैन ॥
तुम परमेस्वर सब के नाथ । बिस्व समस्त तिहारे हाथ ॥
छिनक मैं करौ, भरौ, संहरौ । ऊर्नंनाभि लौं फिरि बिस्तरौ ॥
तुम तैं हम सब उपजत ऐसैं । अगिनि तैं बिस्फुलिंग गन जैसैं ॥
ये अद्भुत अवतार जु लेत । बिस्वहिं॰ प्रतिपालन के हेत ॥
जौ दिन दिन दिनमनि न उघाइ । तौ सब अंध-धुंध ह्वै जाइ ॥
अरु अपने भक्तन के हेतु । दुर्लभ मुकति सुलभ करि देत ॥
तुव पदपंकज-नौका करि कै । पार परे भवसागर तरि कै ॥
पदपंकज के सन्निधि मात्र । तब ही भये मुक्ति के पात्र ॥
तिन कौं भवसागर भयौ ऐसौ । गो-बछ-पद कौ पानी जैसौ ॥
सो पदपंकज सुन्दर नाह । इत ही राखि गये भरि माह ॥
जैसैं इतर तरहिं भव-सिंधु । परम सुहृद वे सब के बंधु[1] ॥
जे बिमुक्त, मानी, मद-भरे । तुव पद कमल निरादर करे ॥
ते ऊँचे चढ़ि कै लरहरे । धमकि धमकि नरकन मैं परे ॥
जिन करि चरन-कमल आदरे । ते कबहूँ न उलटि हूँ परे ॥
जग मैं जे बिघननि के राइ । तिन के सीसनि धरि धरि पाइ ॥
बिचरत निरभै भगत तिहारे । तुम से प्रभु जिनके रखवारे ॥
ते पै तुम्हरे चरन-सरोज । या अवनी पर परिहैं खोज ॥
ठौर ठौर तिन कौं देखिहैं । जोबन-जनम सुफल लेखिहैं ॥

१. पाठा—जाके सुंदर सब ही बंधु ।

तब देवकि आस्वासित करी। सुग सी को है भागनि भरी॥
जाकी कूख विषै भगवान। जो साच्छात पुरान पुमान॥
आयौ रच्छक जदुवंस को। धुंसक असुर बंस कंस को॥
पुनि बंदन करि भरे अनंद। चले घरनि वृंदारक-वृंद॥
गर्भस्तुति हरि अर्भ की, सुनै जु द्वितिय अध्याइ।
सो न परै फिरि गर्भ-मल, नर निर्मल ह्वै जाइ॥

तृतीय अध्याय

सुनि लै तृतिय अध्याइ अब, सुंदर परम अनूप।
प्रेम भरे जग प्रगटिहैं, हरि परिपूरन रूप॥
पहिले उपज्यौ सुंदर काल। सब गुन भरयौ, जु परम रसाल॥
अति सोहन रोहिनी नछत्र। जाके सब ग्रह ह्वै गये मित्र॥
ठौं ठौं मंगल पूरित मही। बहुतक नदी दूध-घृत बही॥
सब के मन प्रसन्न भये ऐसैं। निधन महाधन पायें जैसैं॥
भादौं सलिल सुच्छ अस भये। जैसैं मुनि-मन निर्मल नये॥
सरनि मध्य सरसीरुह फूले। तिन पर लंपट अलिकुल भूले॥
दिसा प्रसन्न सु को छबि गनौं। दिसि दिसि चंद उगहिंगे मनौं॥
कुसुमित बनराजी अति राजी। ऐसी नहिंन बसंत बिराजी॥
बुझे अगिनि आवुहि बरि उठे। हँसि हँसि मिले, हुते जे रुठे॥
मंद सुगंध पवन अस बहै। जिहि सुबास त्रिभुवन चकि रहै॥
मंद मंद अंबुद गन गजे। धर्म के जनु कि दमामे बजे॥
तैसिये बजत देव-दुंदुभी। दुर्जन मन कंटक जिमि चुभी॥
हरषे मुनिबर अमर पुरंदर। बरषै सुमन सु सुंदर सुंदर॥
निर्तति देवनटी छबि-जटी। छटकै जनु कि छटन की छटी॥
सुंदर अर्द्ध रैनि जब गई। अति सिंगार-मई छबि-छई॥
तब देवकि तैं प्रगटे ऐसैं। पूरब तैं पूरन ससि जैसैं॥

पूर्ण[1] जठर मधि नहि कछु फंद । बालमात्र अस देवकि-नंद ॥
अद्भुत सिसु कछु परत न कह्यौ । आनकदुंदुभि पहि चकि रह्यौ ॥
माथे मनिमय मुकुट सुदेस । सचिक्कन सुंदर घुँघरे केस ॥
कुंडल मंडित गंड सलोल । मंद हँसनि श्री करत कलोल ॥
कंचन-माल, मुकत की माल । झिलमिलात छवि छाती बिसाल ॥
सुंदर कंठ सु[2] कौस्तुभ लसै । निकर-निसाकर दुति कौं हँसै ॥
गंध लुब्ध जे अद्भुत भृंग । ते आये बनमाला संग ॥
छवि बावरी साँवरी बाहु । मिटि गयौ हेरत हिय कौ दाहु ॥
कटि किंकिनि, चरननि वर नूपुर । हौं बलि बलि कीनौ तिन ऊपर[3] ॥
बसुदेव देखि सु मन मन गुनै । ऐसौ बालक होत न सुनै ॥
पुनि कीनौ श्रुति-सार-बिचार । मेरे घर ईस्वर अवतार ॥
कह्यौ हुतौ सु भयौ यह अबै । पूर्न मनोरथ मेरे सबै ॥
बढ्यौ जु आनँद-सिंधु सुहायौ । ताही मैं बसुदेव अन्हायौ ॥
दस सहस्र गैया रँग भीनी । मन हीं करि संकल्पित कीनी ॥
सुद्ध बुद्धि, बत्सल रस भरे । अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरे ॥
कही कि हो प्रभु ! मैं तुम जाने । प्रकृति तें परे जु पुरुष बखाने ॥
कहहु कि याहि कहा तुम लह्यौ । पुरुष तें प्रकृति परे हूँ कह्यौ ॥
सहूँ तुम सुनहु कमल-दल-नैन । जहाँ न पहुँचैं श्रुति के बैन ॥
मुनि मन जिहि समाधि पथ हेरें । सो साच्छात दगन-पथ मेरें ॥
प्रभु जु आनि मेरें अवतरे । परम गहन करुना करि भरे ॥
नृप-दल फौर बढ़ि असुर बिचारी । कीनी भूमि भार करि भारी ॥
तिनहिं निदरिहौ भू-भर हरिहौ । संतन की रखवारी करिहौ ॥

---

१. पाठा० बात । २ पाठा० तैसियै मनिवर । ३. क प्रति में इसके अनंतर यह अधिक है—
मदर वर पीतांबर धरें । संख चक्र आयुध कर करें ॥

ऐ परि सावधान इहि बीच। निपटहि बुरौ कंस यह नीच ॥[1]
तुम्हरे जनमहि सुनि कै अबै। ऐहै आयुध लीने सबै ॥
तदनंतर देवकि अवहेरे। महापुरुष लच्छन सुत केरे ॥
मंद मंद मधुरे मुसकाइ। कीनी स्तुति थोरियै धनाइ ॥
महा निरीह जोति अविकार। सत्तामात्र जगत-आधार ॥
अरु अध्यातम दीव जु कोई। बुध्यादिक परकासक सोई ॥
सो साच्छात परतु तुम आहि। मैं-संका त्यौं कहियै काहि ॥
अरु जब लोक चराचर जितौ। लीन होत माया मैं तितौ ॥
तब तुम ही यह रहत अकेले। छेमधाम निज रस मैं झेले ॥
अरु यह मृत्युरूप जो ब्याल। संग फिरत नित महा कराल ॥
जो कोउ सकल लोक फिरि आवै। यातैं अभै न कित हूँ पावै ॥
कौनहुँ भाँति जोग करि कोई। तुव पद-पंकज आवत होई ॥
तब भले मीच नीच फिरि जाइ। चरन सरन गये कछु न बसाइ ॥
प्रभु यह तुम्हरौ अद्भुत रूप। ध्यान जोग्य, निपट ही अनूप[2] ॥
अरु प्रभु मो तैं जनम बिहारी। जिनि जानै यह कंस हत्यारौ ॥
रूप अलौकिक उपसंहरौ। हे सुंदर वर! नर बपु धरौ ॥
जौ कहहु कि मो सौं सुत पाई। पैहौ जग मैं बड़ी बड़ाई ॥
तब तुम सुनहु कमल-दल-नैन। या अनूप रूप सौं बनै न ॥
जाके जठर मध्य जग जितौ। जथावकास रहत है तितौ ॥
सो मम गर्भ-भूत जो सुनिहै। हँसिहै मोहि, असंभव[2] मनिहै ॥
तब बोले श्री हरि मुसकात। जो तुम या कंस तैं डरात[3] ॥
तौ मोहि तहि गोकुल नंद के। लै राखौ आनंदकंद के ॥

---

१. प्रति क में यह अधिक है—
या छबि की मोहि लगी बलाइ। चर्म चषनि करि जिनि दिखराइ ॥
२. पाठा०—अचमो। ३. पाठा०—मोरी बात सुनो एक तात।

[1]इतनी कहि कै मोहनलाल। देखत भये तनक से बाल॥
देवकि दौरि कंठ लपटाये। प्रान तें अधिक पियारे पाये॥
बसुदेव कहैं बिलंबु न लाइ। दै मोहिं सुत-रिपु जैहै आइ॥
लै लटि रही कंठ लपटाइ[1]। अति सुंदर सुत दियौ न जाइ॥
पुनि कंस तें महा डर डरी। पिछले पूतन की सुधि करी।
लीनौ तनक पयोधर प्याइ। फूल सौं जिनि मग मैं कुम्हिलाइ॥
पुनि पुनि बदन-चंद्रमा चूमि। दीनौ सुत पै अति दुख घूमि॥
लयौ लपेटि सु पट पर बाल। बसुदेव चले तुरत तिहिं काल॥
आपुहिं उघरे कुटिल किवार। भोर भये ज्यौं भजत अँध्यार॥
पौरिनु परे पहरुवा ऐसैं। अति मादक मद पीये जैसैं॥
घुरि आये घन करि अँधियारी। जान्यौ परै न ज्यौं रवि बारी॥
फुही फूह से परत सुदेस। ते बहि सक्यौ न सेवक सेस॥
प्रेम-मगन सु गगन मैं आइ। छयौ फननि कौ छत्र बनाइ॥
बसुदेव सुत-मुख के उजियारे। चल्यौ जाइ भरि आनँद भारे[2]॥
क्रम-अनुजा की ढिग जो जाई। बाट न घाट, रही जल छाई॥
हटिहिं जु लहरि सुधि न कछु परै। चढ़ी गगन सौं बातैं करै॥
दृष्टि परि गये मोहन जब हीं। मधि तें इत-उत ह्वै गई तब हीं॥
दीनौ प्रभु कौं मारग ऐसैं। सीतापति कौं सागर जैसैं॥
इत सोचति देवकि महतारी। ह्वैहै मेरो ललन दुखारी॥
भरि भादौं की रैनि अँध्यारी। लहलहात बिज्जुरी बजमारी॥
बढ़ुर्‌यौ बीच कलिंदी कारी। भरि रही नीर भयानक भारी॥
चंद सौं बदन दुरयौ नहिं रहिहै। दैया कोऊ दूरि तैं लहिहै॥
डोलत बहुत कंस के दूत। दैव कुसर सौं जैहै पूत॥
यौं बिललाइ देवकी माई। कहति कि हो हरि तुमहिं सहाई॥

---

१. पाठा०—हगनि जल नाइ। २ पाठा०—मारग चले गए सुखियारे।

जदपि पूतपरभाऊ। तदपि प्रेम की यहै सुभाऊ॥
व गोइल मैं गये। देखे सब निद्रा-बस भये॥
ति की ढिग धौंदाइ। सुता परी तहँ तें इक पाइ॥
फिरि ताही बाट। तैसैंइ जुरि गये कुटिल कपाट॥
पहिरि पग बेरी। ज्यौं कोउ गाढ़ि धरे जन ढेरी॥
। कोउ जोति ब्रह्ममय, रसमय सब ही गाइ।
। प्रगटित निज रूप करि, इहि तिसरे अध्याइ॥

चतुर्थ अध्याय

अब चतुर्थ अध्याइ सुनि, परम अर्थ कौं देन।
सि परी जहँ कंस जिय, चंद चंद्रिका मैन॥

नि सुनि परी जु रौर। उठे पहरुवा ठौरहि ठौर॥
ये कंस के बेन। अठयौं गर्भ महा भय देन॥
उठयौ तलपते कंस। कहत कि आयौ काल नृसंस॥
बार, सु पगरे बार। न कछु सँभार, महा बिकरार॥
परत, सु बिह्वल भयौ। डरत डरत सूती-गृह गयौ।
ठी देवकि छबिमई[1]। भैया न डर भनेजी भई॥
मारि देखि दिसि मेरी। हौं अनुजा मनुजाधिप तेरी॥
हैं तैं हति बहुतेरे। पावक की उपमा सुत मेरे॥
मो कौं माँगी दीजै। बलिबलि, अति अनीति नहिं कीजै॥
के को सुहृद सुभाव[2]। तामैं यह नीचन को राव॥
छतीं तें लई छड़ाइ। पकरि पाइ ऊँचे उचकाइ॥
पटकन कौं भयौ जबै। कर तें निकसि गई सो तबै॥
गन मैं देवी भई। महा तेज छाजति छबिछई॥
राजिबदल से नैना। बोली बिहँसि कंस सौं बैना॥

पा० ०—स [1] । २ पा० ०—

रे दे मंद। न करि जिय गारी। उपज्यौ है तुव मारनहारी॥
ताके बचन सुने जब कंस। बिसमय भयौ, परचौ जिय संस॥
कहत कि देवी बानी महा। झूठ परी सो कारन कहा॥
देवकि बसुदेव दीने छोरि। बिनती करत कंस कर जोरि॥
अहो भगिनि! अहो भगिनीभर्ता। मो सम नहिंन पाप को कर्ता॥
राच्छस ज्यौं अपने सुत खाइ। सो मैं कीनी नीच सुभाइ॥
ज्यौं महाहा जीवत ही मरचौ। देवी हौं हूँ बिधना करचौ॥
नर तौ जनौ अनृत ही पगे[1]। अमरौ अनृत बकन पुनि लगे।
जिहि बिस्वास सुता के तात। सौनक ज्यौं मैं कीनी घात॥
जिनि सोचहु उनके अनुराग। जातें तुम सम नहिं बड़ भाग॥
निज प्रारब्ध कर्म करि बौरे। रहत न सदा जंत इक ठौरे॥
तातें सोक तजहु सुखमई। कर्म-बिबस जु भई सो भई॥
छिमा करहु मेरो अपराध। जातें दीनबंधु तुम साध॥
यसें कहि लोचन जल भरचौ। दौरि सुता के पाइन परचौ॥
सांत भयौ देवकि कौ रोष। बसुदेवहु पुनि कीनौ तोष॥
आग्या पाइ जाइ घर कंस। कन्या-बचन परी जिय संस॥
रजनी गये भयौ परभात। मंत्रिन सौं बरनी सब बात॥
सुनि नृप-बचन असुर भहराने। अमरनि पर निपटहि रिसियाने॥
कहन लगे जो देवें आहि। महाराज तौ डरौ न ताहि॥
दस दस दिन के बालक जिते। हम सब मारि डारिहैं तिते॥
का उहिम करिहैं सब देव। जानत हैं हम उन के भेव[2]॥
अभय ठौर तौ बल्गन करें। भीर परें तें थर थर डरें॥
सुरपति कवन अल्प बल जाहि। महा अपुरो तपसी आहि॥

---

१. पाठा०—मनुष तो जनौ झूठ ही पगे। २. पाठा०—हम सब नीके जानत भेव।

संभु न कछू, तियनि तैं बुरौ। रहत इलावृत बन मैं दुरौ॥
विष्णु कहूँ इकंत है परयौ। है राजन तेरे डर डरयौ॥
ऐंपरि रिपुहिं अलप न जानियै। मर्म दुखद बहुतै मानियै॥
किलक्ष होत है फंटक जैसैं। चरन मध्य कसकत है कैसैं॥
अरु ज्यौं अंग रोग अंकुरै। तब हीं जो न जतन अनुसरै॥
तौ बढ़ि जाइ न कछू बसाइ। तातैं कीजै तुरत [1] उपाइ॥
प्रथमहिं उत्तम मति इह करौ। घरि घरि रूप धरनि संचरौ॥
गाइन मारौ मखन बिगारौ। रिषिजन पकरि मछनकरि डारौ॥
विष्णु के बध कौ इहै उपाइ। हतियै विप्र, वेद अरु गाइ॥
मंत्रिन मिलि जब यह मत ठान्यौ। दुर्मति कंस महा हित मान्यौ॥
संतन कौ विद्वेस जु आहि। मृत्युमात्र जिनि जानहु ताहि॥
आयु, कीर्ति, संपति सब हरै। अवर बहुत अनरथ कौं करै॥
आग्या पाइ चले सब सठ, वे। ज्यौं कोउ कूकन अजन प्रति पठवै॥

बुरी होन कौं होइ जब, तब उपजत ये भाइ।
वेद-विप्र निंदा करैं, कह्यौ चतुर्थ अध्याइ॥

पंचम अध्याय

अब पंचम अध्याय सुनि जो है माथें भाग।
नंद महोछौ नवल घन बरषैगो अनुराग॥ १॥

नंद महर घर जब सुत जायौ। सुनतहिं सबन प्रान सो पायौ॥
परम उदार नंद मुद भरे। फूले नेननि राजत खरे॥
पूत उदय ज्यौं पयनिधि पेखि। बढ़तु है रंग तरंग बिसेषि॥
बोले ब्रज के द्विज बड़ भागी। जिनके हुती यहै लौ लागी॥
आपुन सुचि सुगंध जल न्हाये। विप्रनि चंदन तिलक बनाये॥
नंद के भूषन दिखि मन भूल्यो। मनों अनंद महीरुह फूल्यो॥

---

१. ८ १—अवहि।

निरखि जु उठे नंद भरि नेह। ज्यौं प्राननि के आयें देह ॥
जैसें मीत मिलन है कह्यो। सो बसुदेव नंद कों लह्यो ॥
बैठे परम प्रेम रस पागे[1]। बसुदेव बात कहन तब लागे ॥
अहो भ्रात यह मंगल भयौ। बिधना तुम्हरें पूत जु नयौ ॥
बड़े भये हे करत बिलास। कौने हुती पूत की आस ॥
अरु हम मिले भयौ मन भायौ। फिरि कै बहुरि जनम सो पायौ ॥
अब है आयें अपने द्वार। मीत-मिलन दुर्लभ संसार[2] ॥
जौ कबहूँ काहू संजोग। आनि मिलहिं जो मीतम लोग ॥
तौ ये नाना कर्म बिचित्र। इकठे रहन न पावैं मित्र ॥
जैसे नदी तरंगनि पाइ। मिलत है काठ काठ महि आइ ॥
बहुरि जु कोउ लहरि उठि आवै। पकरि पलटि धौं कितहि बहावै ॥
पुनि पूछत सुत की कुसलात। गदगद कंठ फुरत नहिं बात ॥
अहो भ्रात वह सात हमारौ। नीकौ है रोहिनी पियारौ ॥
तुम करि तोषित पोषित गात। तुमही मानत[3] ह्वैहै तात ॥
जदपि अर्थ धर्म अरु काम। इन करि मन्यौ पुरुष को धाम ॥
अहो नंद तदपि न सुख कोई। सुहृदन कौ बियोग जहँ होई ॥
नँद समोधत ताकौ चित्त। सब अदिष्ट बस होतु है मित्त ॥
जौ तौ निपट बिकूल बिधाता। केते हते कंस तुव ताता ॥
कन्या एक जु पाछैं भई। सु पुनि अदिष्ट लई उड़ि गई ॥
है सब उहि अदिष्ट के धोरें। बिछुरे मिलये मिले बिछोरे ॥
नंद की बानी देवी मानी। मिलिहैं सुत मोहिं यौं जिय जानी ॥
तब कह्यो अहो बेगि घर जाहु। पूतहिं रंधक जिमि पतियाहु ॥
ए देखि फरकत मेरे गात। ब्रज मैं आहि कछुक उतपात ॥
सुनतहिं बचन नंद कलमले। कवन पवन ऐसी गति चले ॥

१. पाठा० रँगमगे। २ यह पंक्ति प्रति क में नहीं है।
३. पाठा० समभत।

प्रेम रपट जु परी चित आइ। रंचक सूधे परत न पाइ॥
इहि बिधि यह पंचम अध्याय। जु कोऊ सुने स्त्रवन मन लाय॥
हीयमान मुक्तिहिं नहिं गहै। और छुद्र सुख की को कहै॥
जद्दपि नित्य किसोर हरि बदत बेद इमि बैन।
सबै बयस ब्रज देन सुख प्रगटे पंकज नैन॥

षष्ठ अध्याय

सुनि लै छठौ अध्याय अब अहो मित्र अति चित्र।
जहाँ सकल मल को हरन बकी चरित्र पवित्र॥ १॥
सोचत चले नंद मग माहीं। बसुदेव बचन मृषा लौ नाहीं॥
हो हरि ईस्वर सरन तुम्हारी। या सिसु की कीजहु रखवारी॥
इक लौ सहजहि हुतो नृसंस। पुनि चेरी करि प्रेरो कंस॥
चली पूतना सिसुन सँघारति। केइ पटकनि केइ खाइहि डारति॥
इहि बिधि बिचरति बिपरति बकी। इक दिन ब्रज आई सकल की॥
श्रीशुक यों जब कही सुनाइ। राजा सुनत बिकल ह्वै जाइ॥
ताको समाधान सुक करै। हो राजन्! इहि डर जिनि डरै॥
नाम मात्र जिहि प्रभु को जहाँ। ऐसे को प्रभाव नहिं तहाँ॥
सो साक्षात नंद को धाम। भय संका को ह्याँ का काम॥
अद्भुत बनिता बेष बनाइ। अँग अँग रूप अनूप चुचाइ॥
ललित सुभूषन ललित दुकूल। खसि खसि परत सीस ते फूल॥
कंठ में हीरा, आनन बीरा। पाइनि बाजत मंजु मँजीरा॥
लटकि चलति तब को छबि गनौ। परिहै टूटि लटी कटि मनौ॥
कमल फिरावति नैन ढुरावति। मधुर मधुर मुसकति छबि पावति॥
गोप रहे सब जोहे मोहें। जानहि नहिन कछु हम को हैं॥
गोपी चरित चाहिकैं ताहि। कहन लगीं कि रमा यह आहि॥
अपने पिय को देखति डोलति। याते नहिन काहु सों बोलति॥
लरिकनि लहति लहति छबि छई। नंद के सुंदर मंदिर गई॥

विधिवत जात कर्म करवाई। लागे दान देन ब्रजराई॥
द्वै लख धेनु सबच्छ बहु दूधी। प्रथम प्रसूता सुंदर सूधी॥
कंचन सींग मढ़ी सोहनी। कंचन की बहुडी दोहनी॥
बहुरी तिल अरु रतन मिलाइ। कीने बडडे सैल बनाइ॥
ऊपर कंचन छादन छाइ। दीने ब्रज के द्विजन बुलाइ॥
अपर बहुत दीनौ ब्रजराज। अपने कुल मंडन[1] के काज॥
तिहिं छिन नंद सदन की सोभा। नहिं कहि परति लगति जिय लोभा॥
इत जु वेद धुनि की छबि बढ़ी। मंगल बेलि सी त्रिभुवन चढ़ी॥
इत मागध सुबंस जसु पढ़ैं। इत बंदीजन गुन गन रढ़ैं॥
गावत इत जु रागिनी राग। चुवैं परत जिनकैं अनुराग॥
आनँदघन जिमि दुंदुभि बजैं। जिन सुनि सकल अमंगल भजैं॥
सुनिकैं गोप महामुद भरे। चले सु बनि बनि रंगनि ररे॥
पहिरें अंबर सुंदर सुंदर। जे कबहूँ निरखे न पुरंदर॥
मंगल भेंट करन में लियें। मैन से लरिकनि आगें कियें॥
गोपी मुदित भयो मन भायौ। महरि जसोदा ढोटा जायौ॥
चलीं तुरत सजि सहज सिंगार। छतियनि उछरत मोतिन हार॥
स्रवननि मनि कुंडल झलमलैं। बेगि चलन कौं जनु कलमलैं॥
चले जु चपल नयन छबि बढ़े। चंदनि मनहुँ मीन ह्वै चढ़े॥
सुघग कुसुम सीसनि तें खसैं। जनु आनद भरे कच हँसैं॥
हाथनि थार सु लागत[2] भले। कंजनि जनु कि[3] चंद चढ़ि चले॥
मंगल गँवनि गावति गावति। चहुँ दिसि तें आवति छबि पावति॥
नंद अजिर में लगीं सुहाई। जनु ए सब कमला चलि आईं॥
सौंपति सबनि हरद अरु दही। तब की छबि कछु बरति न कही॥
सुंदर मंदिर भीतर गईं। जसुमति अति आदर करि लईं॥

---

१. पाठा०—पुत्र उदय। २. पाठा०—लगत अति।
३. पाठा०—मनहु।

लै लै अंचल ललित सुहाई। पूजे सवनि सासु के पाई॥
पीछे ललन जसोमति आगें। झीनें पट में नीके लागें॥
बदन उघारि उघारि निहारें। देहिं असीस अपनपौ वारें॥
हो हरि! यह लरिका चिरजीजौ। बहुत काल हमको सुख दीजौ॥
ब्रज की छबि कछु कहत बनै न। जहँ आये श्री पंकजनैन॥
घर औरे अंगन छबि और। जगमग जगमग ठौरहि ठौर॥
नग जु बने यौं लगे सुहाये। गृहनि के मनहुँ[2] नैन ह्वै आये॥
मुक्ता बंदनमाल जु लसैं। जनु आनद भरे घर हँसैं॥
धाम धाम प्रति सुजन की सोमा। जनु निकसी ब्रज छबि की गोभा॥
जितिक हुतीं ब्रज गो, बछ, बाछी। वेल दरद करि आछी काछी॥
माथें मनिमय पटी बनाई। कंचन दाम सवनि पहिराई॥
तब नंद जू गोपगन जिते। बैठारे मनि आँगन विते॥
नव-अंबर सुंदर मनिमाला। पहिराये सब जन तिहिं काला॥
पुनि जितीक गोपीजन आईं। ते रोहिनी सबहिं पहिराईं॥
कंचन पट पदिकनि के हरा। सुंदर गजमोतिन के हरा॥
औरो जन जे, कौतुक आये। नंद महर ते सब पहिराये॥
मंगत जन परिपूरन भये। दारिदहू के दारिद गये॥
तब तैं ब्रज छबि अस कछु लसी। रमा रीझि के तहँई बसी॥
मास दिवस के मोहनलाल। भये कछुक मुँह चढ़े रसाल॥
सुंदर बदन बिलोकैं नंद। छिनु छिनु पावैं परमानंद॥
ऐसेहि माँझ महासुख पायौ। कंस कौं कर देनी दिन आयौ॥
रक्षक राति चोव यौं भले। मथुरा नगर नंद जू चले॥
तनु आगें मनु पाछैं ऐसें। दंड के संग पताका जैसें॥
तुरत जाइ नृप कौं कर दयौ। ब्रजपति ब्रज चलिबे कौं भयौ॥
समाचार बसुदेव जु पाये। सखहिं मिलन मिलानहिं आये॥

आछौ बनक कनक को पलना। पौढ़े वहाँ तनक से ललना ॥
स्यामल अंग सु को छवि गनौं। मृदुल नीलमनि पुतरी मनौं ॥
यल मांझ में दुरि रहे ऐसें। तीछन अगिनि भसम मधि जैसें ॥
आपति चकी थकी जब ऐना। मूँदे नैन कमलदल-नैना ॥
मेरे हेरत भेस कपट को। रहिहै नहिं पूतना अपटको ॥
यातें मूँदि रहे दृग नाथ। बिस्व चराचर जाके हाथ ॥
मुसकति मुसकति तहँ चलि गई। लालहिं लरकि लेति ही भई ॥
देखत कौं सो छुटनो पार्स। ऐ परि आहि काल कौ काल ॥
सोवत परयो भुजंगम ऐसें। रज्जु-बुद्धि कोउ गहतु है जैसें ॥
अस कछु रूप प्रेम करि छई। जसुमति पुनि न निवारति भई ॥
कैसें असि तीछन करवार। ऊपर रतन जटित परिवार ॥
जसुमति कहति चाहिके ताहि। हौं जननी कि जननि यह आहि ॥
आई ही क्यों जुगति बनाइ। तरल गरल दुहुँ थननि लगाइ ॥
प्यार सौं ललन खिवावन लगी। चूमति जाति कपट रस पगी ॥
इक कुच मुख, इक कर में लियें। पियत गोबिंदचंद हित[1] दियें ॥
अकिलौ बिष अपथ्य दुखदायी। छीने ताके प्रान मिठाई ॥
पियत भये सुंदर नंदनंद। मुसकत जात मंद छबिकंद ॥
अंग अंग बिथकित[2] भइ भारी। कहति कि छाँड़ि छाँड़ि हौं हारी ॥
छाँड़त क्यों है भूखो बालक। जगपालक ऐसे घरघालक ॥
छुटइ न सिसु अपनौ सो पची। कनक सौं जनु किनील मनि खची ॥
तब धरि अपुनो रूप बिचारी। भयौ जु नाद भयानक भारी ॥
सुरग रसातल भूतल जितौ। सब हलमल्यौ कलमल्यौ तितौ ॥
दोउ कुच पकरि चचकि वह नारी। लै डारी गोकुल तें न्यारी ॥
पट कोस के लता द्रुम जिते। चूरन ह्वै गए तिहिं तर तिते ॥
जे द्रुम लता निपट प्रतिकूल। हुते न गोकुल कहुँ अनुकूल ॥

१. पाठा०—मनु। २ पाठा—अँग अँग बिथति।

ते विदि तन तर चूरन करे। उनरे जे भ्रज हित करि भरे॥
प्रथमहिं याके नाद जु परे। भ्रजजन जहँ तहँ गिरि गिरि परे॥
पाछैं उठि उठि देखन धाये। देख रूप अति त्रासहिं पाये॥
मुँह बाये जु परी बिकरार। तपत ताम्र से बगरे बार॥
गिरि-कंदर सम नासा अंत। हल-दंड से बड्डे दंत॥
अंध कूप से नैन गँभीर। बैठि जु गये प्रान की पीर॥
उदर भयानक लागत ऐसो। बिनु जल महा सरोवर जैसो॥
जघन सघन जु भयानक भारे। महानदी के जनु कि करारे॥
ताके ऊपर[1] सुंदर बाल। खेलत अभै सुनैन बिसाल॥
जे पद रहत भगत जन हियैं। लालति ललित भाँति श्री लियैं॥
मुनि मन जिनहिं परसात न रती। ते पद बिलुठत ताकी छती॥
गोपी परम प्रेम-रस बौरी। फिरति पूतना, तन पर दौरी॥
ललहिं उठाइ छती लपटाई। लै गाई जहँ जसुमति माई॥
भ्रजरानी अनेक धन वारति। पुनि पुनि राई लौन उतारति॥
गोमूत्र लै ललहिं न्हवाई। गोरज गोमय अंग लगाई॥
हरि के द्वादस नामनि करिकैं! रच्छा करी भ्रजतियनि डरिकैं॥
नीकौ भयौ, पयोधर प्यायौ। जननी जठर जीव सम आयौ॥
बदन चूमि जसुमति यौं भाष्यौ। आजु पूत परमेसुर राख्यो॥
तब लौं नंदादिक भ्रज आये। ताहि निरखि अति बिसमय पाये॥
लै लै तीछन धार कुठार। छेदे ताके अंग करार॥
करपि कढ़ोरि दूरि लै गए। बहुत काठ दै दाहत भए॥
उठ्यो जु धूम पूतना-तन कौं। परम सुगंध हरन मुनि मन कौं॥
बगर बगर सु अगर से खये। अमर नागरहू मोहित भये॥
अचिरज नहिंन कृष्ण भगवान। जाकौं कियो पयोधर पान॥
सिसु घातिनी परम पापिनी। संतनि की डसनी जु साँपिनी॥

१. पाठा०—उर पर।

बहुरयो हरि कौं मारन गई। सुविय मुक्ति की रानी भई॥
जे जन श्रद्धा करि अनुसरैं। मधुर वस्तु लै आगे धरैं॥
तिनकी कौन कहि सकै कथा। गोकुल की गो गोपी जथा॥
सूँघत सूँघत मजजन जिते। नंद महर घर आये तिते॥
समाचार सुनि बिस्मय पाये। ललहिं निरखि दृग जरत जुड़ाये॥
नंद परम आनंदहिं पाय। लीनौ तनय कंठ लपटाय॥
कह्यौ कि जहँ गयो बहुरि न आयौ। वहँ तें मैं यह ढोटा पायौ॥
कीनी बहुरि बधाई नंद। दीने बहु धन गोधन बृंद॥
यह जु पूतना चरित विचित्र। छठौ अध्याय सु परम पवित्र॥
जो यहि हित सौं सुनै सुनावै। सो गोबिंद बिषै रति पावै॥

दानव-कुल भोजन विविध कियौ चहत भगवान।
प्रान पूतना के मनौ कियौ प्रथम सोपान॥
नंद न डरि, हिय हेतु करि उर धरि छठौ अध्याइ।
पूत भई जहँ पूतना प्रभुहिं अपेय पियाइ[1]॥

सप्तम अध्याय

अब सप्तम अध्याय सुनि सुंदर श्रुति कौ सार।
जामैं लाल रसाल को बालचरित मधु धार॥१॥

सुनि सप्तम अध्याय उदारा। जामैं बाल चरित मधु धारा॥[2]
जिहिं रस सिंधु मगन भयो राजा। फिरि पूछत सुक अति सुख साजा॥
हो मुनि![3] हरि की बाल चरित्र। अति अद्भुत[4] अरु परम पवित्र॥
पियत नृपति नहिं मानत कान। औरौ कहौ जानमनि जान॥
फुरे जु बाल चरित रस रंग। कहन लगे सुक पुलकित अंग॥
इक दिन करवट आपुहिं लई। जननी निरखि मुदित अति भई॥

---

१. यह दोहा प्रति क में नहीं है। २. यह पंक्ति प्रति क में नहीं है। ३. पाठा०—प्रभु। ४. पाठा०—विचित्र।

मोहि सबै गोकुल की बाला। उच्छव कियौ महा तत्काला॥
अकट के अध धरि कंचन पलना। सुतहि सुवाई नंद की ललना॥
बिदा करन लोगन कौं लागी। डोलति सुत सनेह रँगमगी॥
रतन मिलै तिल चावरि कीनी। भरि भरि गोद सबनि कौं दीनी॥
पूत बदृय के हित ललचाई। मति कोउ मन मैलो करि जाई॥
लागी जु भूख ललन तब जगे। मधुर मधुर कछु रोवन लगे॥
जसुमति रुदन सुनत नहिं भई। अति आनंद मगन ह्वै गई॥
घरहँ घरति फिरति ज्यौं गाई। सब मैन बहुत बच्छ में आई॥
तहँ अभिचार असुर इक सटक्यो। शौरि कै सकट विकट मैं अटक्यो॥
ललन कौं ध्यान जबहिं यह नयौ। तब तहँ अद्भुत कौतुक भयौ॥
तनक जु बाम चरन यौं कन्यौ। उड़िकै जाय उड़नि मैं रन्यौ॥
यहाँ सकट जब उलटौ पन्यौ। दिखि सब लोग अचंभै भन्यौ॥
धाइ गई तहँ जसुमति मैया। कहति कि कहा भयौ यह दैया।
ता तर पूत कुवर सौं पायौ। जननी जठर जीउ तब आयौ॥
नंदादिक तहँ धाये आये। सकट विलोकि सुविस्मय पाये॥
तिन सौं कहन लगे सिसु बात। अहो महर! यह तेरो तात॥
तनक चरन ऐसें करि कन्यौ। सो यह सकट उलटि है पन्यौ॥
कहति कि कहा जानें ये बारे। उलटत कटु कमल के मारे॥
सबनि कही कि नंद बड़ भागी। तारिकहिं रखक आँच न लागी॥
तब तें नंद महर की ललना। पूतहिं पन्यौ परयाइ न पलना॥
इक दिन लरहिं लियें दुलरावति। लाल के बालचरित कछु गावति॥
तृनावर्त जान्यौ आवतौ। कियौ चहत वाकौ भावतौ॥
मातु सहित जो मोहि उड़ैहै[1]। तौ मेरी मैया दुख पैहै॥
तातें ललन भयौ अति भारी। चकित भई जसुमति महतारी॥
थँम्यो न सिसु[2] अपनो सो कन्यौ। तब धरनाधर धरनां धन्यौ॥

१. पाठा०—उधाये, पावे। २ पाठा०—सुत।

आयौ मातचक्र रिस भर्यौ। सुनि सुनि सब गोकुल थरहर्यौ॥
चक्रवत घूरि धरे काँकरी। सपनि के दृगनि परी साँकरी॥
लै गयौ हरिकहिं गगन चढ़ाई। तरफति फिरति जसोमति माई॥
मूँदे लोचन ढूँढ़त डोलति। रे कत गयौ पूत यौं बोलति॥
जितहिं धर्यौ हो तितहिं न पायौ। जसुमति-जिय यौं किनि बिरमायौ॥
परी धरनि धुकि यौं बिललाइ। ज्यौं मृतवच्छ गाइ डिडियाइ॥
जसुमति धुनि सुनि धाईं गोपी। आईं महा बिरह रस ओपी॥
गिरि गईं जसुमति ढिग ढिंग ऐसी। कंचन बेलि पवन बस जैसी॥
त्रिभुवन कौ जु भार हो जितो। श्रीहरि उदर धर्यो हौ तितो॥
बदियै सृनावर्त मल जुर्यौ। ऐसे लरिकहि लै नभ चढ़्यौ॥
थोरिक दूरि गयौ रँगमग्यौ। पुनि अति भार भर्यौ डगमग्यौ॥
कहत कि यह सिसु हाथ न आयौ। यह कोउ गिरिवर जाइ उड़ायौ॥
हरिकहिं डारन को अरबरै। लरिका डरपि धुरि गयो गरैं॥
गर कैं गहत निचेष्टित भयौ। दृगनि की बाट निकसि जिउ गयौ॥
तब वह असुर महा अरबर्यौ। ब्रज के बीच सिला पर पर्यौ॥
करच करच टूटि फुटि गयौ ऐसें। हर सर हत्यौ त्रिपुर रिपु जैसें॥
ताके उर पर सुंदर बाल। खेलत भये सुनैन बिसाल॥
गोपिन धाइ जाइ सिसु लयौ। आनि जसोमति[1] गोद मैं दयौ॥
सुनिकै सब जन धाये आये। निरखि रूप अति बिसमय पाये॥
चूमत बदन नंद बड़ भागी। पौंछत रैंनु तनय तन लागी॥
कहत कि कवन पुन्य हम कियौ। हरि अरचे कि दान बहु दियौ॥
काल के मुख मैं बालक गयौ। तहँ तैं बहुरि बिधाता दयौ॥
पापी अपने पापहि मरै। साधु की रच्छा ईस्वर करै॥

दीपक प्रगट्यो नंद घर निर्मल जोति अभंग।
उड़ि उड़ि परन लगे तहाँ दानव दुष्ट पतंग॥२६॥

---

१. पाठा०—अछोदा।

तृनावर्त आवनि में भाऊ। भयो जु अति भारी विहिं काल ॥
जननी के जिय संका रहै। हरि यह भार जनायौ चहै ॥
इक दिन लालहिं लियें गोद में। जसुमति मगन महा मोद में ॥
बैठी मधुर पयोधर प्यावति। मुँह अंगुरि दै दै मुसुकावति ॥
अरुन अधर दँतियन की जोती। जपा कुसुम मधि जनु सिवि मोती ॥
ललनहिं तनक जँभाई आई। तब जसुमति अति बिस्मय पाई ॥
धर अंबर ससि सूरज तारे। सर सरिता सागर गिरि भारे ॥
बिस्व चराचर है यह जितौ। सुत मुख मध्य बिलोक्यौ तितौ ॥
नैन मूँदि अति बिस्मय[1] भरी। बहुरि विचारि परी सुधि करी ॥
कहन लगी कि जु ईस्वर कोई। जाकी चितवनि में जग होई ॥
बहुरि उदर मधि राखत जोई। मेरे घर यह बालक सोई ॥
ऐसें करि जब जसुमति जानें। तब हरि हँसिकै गर लपटानें ॥
पुत्र सनेह भई रसमई। माया जननि उदर फिरि गई ॥

ईस्वरता कछु नहि दुरी सब कोउ जानत वाहि।
सो प्रभु सुत करि पाइयौ यह अति दुर्लभ[2] आहि ॥३७॥

अष्टम अध्याय

अथ अष्टम अध्याइ सुनि मित्र। नामकरन मनहरन पवित्र ॥
सुत-मुख-मध्य बिस्व-जग चह्यौ। सो जसुमति व्रजपति सौं कह्यौ ॥
व्रजपति हूँ के मन भय भयौ। नामकरन जु नाहिंनै भयौ ॥
तातें होति है छाया आइ। कीजै लरिकनि नाम धराइ ॥
तब ही गरग पुरोहित आयौ। नामकरन बसुदेव पठायौ ॥
ताहि निरखि अति हरखे नंद। बरखे तन-मन परमानंद ॥
प्रथमहिं धमों बचन करि अरचे। बहुरयौ चदन बंदन चरचे ॥
कह्यौ कि तुम परिपूरन नाथ। रिधि-निधि-सिधि सब तुम्हरे साथ ॥

---

१. पाठा०—रही अति भय। २. पाठा०—दुस्तर।

कवन वस्तु करि पूजा कीजै । ज्यौं दिनमनि कहुँ दीपकु दीजै ॥
महापुरुष जु चलत ठौर तें । नहिं कछु चाहत काहु और तें ॥
कृपन जु गृह-ममता करि बँधे । चलि न सकत दृढ़ फंदनि फँधे ॥
केवल तिनकौं करन कल्यान । दिखियत नहिंन प्रयोजन आन ॥
ज्योतिशास्त्र अति इंद्री ज्ञान । ताके तुम हौ बीज निदान ॥
पूरब जनम सुभासुभ करै । जा करि जंतु जगत संचरै ॥
आगें होनहार पुनि होई । प्रभु तुम सम्यक जानत सोई ॥
नामकरन लरिकनि कौ कीजै । कौन सुबिधि मोहि आयसु दीजै ॥
गर्ग कहत अहो मुनि ब्रजराज । यातें और न उत्तम काज ॥
पै परि हौं गुरु जदु बंस कौ । मोहि बड़ौ डरु या कंस कौ ॥
सुनि पावै नीचनि कौ राइ । तौ यह होइ बड़ौ अन्याइ ॥
नंद कहत तौ ऐसैं करौ । गृह मधि गुपित ठौर अनुसरौ ॥
नैंकु स्वस्तिवाचन करि लीजै । लरिकनि कछुक नाँव धरि दीजै ॥
गरगहिं आगे गए लै नंद । अगिनहोत्र करि मंदहिं मंद ॥
प्रथमहिं रोहिनि-सुत के नाम । धरन लगे द्विज सब गुनधाम ॥
याकौ एक नाम संकर्षन । जन हर्षन अघके मन-कर्षन ॥
बहुरयौ राम परम अभिराम । अति बल तें कहियै बलराम ॥
अब सुनि अपने सुत के नाम । अद्भुत अद्भुत गुन के धाम ॥
इक श्रीकृष्ण नाम अस है है । ससि सम सुधा स्रवनि पर च्वैहै ॥
कबहूँ पूर्व-जन्म सुत तेरौ । पूत भयौ हो बसुदेव केरौ ॥
तातैं बासुदेव इकु नाम । पूरन करिहै सबके काम ॥
याके अवर जु नाम अनंत । गनत गनत कोउ लहै न अंत ॥
कहतु है द्विजवर भरि आनंद । बहुत कहा कहियै हो नंद ॥
नारायन मधि हैं गुन जिते । तेरे सुत में अहाहव तिते ॥
ऋधि संपति कीरति रसमई । नारायनहू तें अधिकई ॥
सुनि करि नंद परम आनंदे । बार बार द्विज पर पद बंदे ॥

जसुमति ताहि बहुत कछु दयौ। गरग अरग लै मथुरा गयौ॥
अब सुनि सुंदर बाल बिनोद। देत जु नंद जसोमति मोद॥
जानु पानि डोलनि अगमगे। मनिमय आँगन रेंगन लगे॥
सोहैं सुंदर[1] कच घुँघरारे। कोहै मधुकर मद. मतवारे॥
अंजन-जुत नैना मनरंजन। मलि कीनें छबिहीने खंजन॥
लटकनि लटकत ललित सुभाल। बनि रहे रुचिर धखौंडा गाल॥
तनक तनक सी नाक नथूली। राजत नोल सुपीत झँगूली॥
जटित बघूली छतियनि लसै। द्वै द्वै चंद-कलनि कहुँ हँसै॥
कटि-तट किंकिनि, पैंजनि पाइनि। चलत घुटुरुवनि तिनके चाइनि॥
निज प्रतिबिंब निरखि थकि रहैं। पकरयो चहैं अधिक छबि लहैं॥
लपटि जु रही वहीं मुख-कंजनि। परत न कही महर मनरंजनि॥
बिबि केहरि-नख हरि-उर सोहत। छिन छिन दधिकन मो मन मोहत॥
नषत-मंडली भवि दुति लसी। जुरि निकसे द्वै द्वैज के ससी॥
किलकिर घुटुरुनि की धावनि। हरषि कै जननि-निकट फिरि आवनि॥
मैयन की बह गर-लपटावनि। चूमनि मधुर पयोधर प्यावनि॥
ठाढ़े होन लगे रँगमगे। धरत जु धरनि चरन डगमगे॥
आगुरि गहाइ सुमंदहि मंद। ललनहिं चलन सिखावत नंद॥
रुनुक रुनुक बहु पगनि की डोलनि। मधुर तें मधुर सुतुतरी बोलनि॥
आपुहि सहज चलन अनुरागे। दौरि दौरि लगि आवन लागे॥
अपने रंगनि खेलत मोहन। जसुमति डोलति गोहन गोहन॥
दिखि दिखि बाल चरित अभिराम। बिसरे सबनि धाम के काम॥
लै ब्रज-बालक अपनि बयस के। दधि माखन की चोरी चसके॥
मोहन मंत्र सों घर घर डोलत। दधि माखन चोरत, चितु चोरत॥
जब घर आवहिं मोहनलाल। अवर सहि न सकत ब्रज बाल॥
उरहन कैं मिस[2] नंद-निकेत। आवत मुख छबि देखन हेत॥

---

१ पाठा०—सहज सचिक्क। २ पाठा०—उरहन मिस मिलि।

यहँ पुनि सुतहिं लिये कर साँटी। डाँटति जौ न खाइ फिरि माटी॥
तब जसुमति अति संभ्रम भरी। इत उत चाहि बिचार अनुसरी॥
कहन लगी कि सपन नहिं होई। जागति हौं कछु नाहिन सोई॥
अरु नहिं हरि ईश्वर की माया। परसी सौ सबहिन पर छाया[1]॥
ज्यों दर्पन मैं दिखियतु जैसें। हँहै कछू यहाँ यह ऐसें॥
सो पुनि बनै न मन यों गुन्यौ। प्रतिबिंब मैं बिंब न सुन्यौ॥
है यह मो सुत को परभाव। और न कोऊ भाव अनुभाव॥
बहुर्यों हरें हरें पहिचान्यौ। अपुनौ सुत परमेसुर जान्यौ॥
बहुरि सनेहमई रसमई। माया जननि ऊपर फिरि गई॥

हरें जु जननि हाट तें साँट निरखि पुनि हाथ।
मुख मैं बिस्व दिखाइकै बचे नाथ इहि साथ॥६१॥

नवम अध्याय

अब सुनि मित्र नवम अध्याइ। जामैं अद्भुत अद्भुत भाइ॥
जोगीजन मन ढूँढत जाकौं। बाँधैगी हठि जसुमति ताकौं॥
इक दिन भोर उठी नँदरानी। आपुहिं मंजु मथानी आनी॥
थोरोई दूध पूत के हितहीं। राखति जसु जमाइ नित नितहीं॥
और जु नंद महर घर दह्यौ। कितकु आहि कछु परत न कह्यौ॥
प्रेरी जहाँ अनेकनि दासी। मंथन करैं सबै कमला सी॥
ठाँ ठाँ मधुर मथानी बाजैं। जनु नव आनँद-अंबुद गाजैं॥
मथत जु आय तहाँ नँदरानी। सोभा नहिं कछु परति बखानी॥
सुंदर गौर बरन तन सोहै। औटे कंचन कौ रँग को है॥
मृदुल उजल गंगाजल पहिरें। उठत जु तन तें छबि की लहरैं॥
पृथु कटि कल किंकिनि की बाजनि। बिलुलित बर कबरी की राजनि॥
नैन की फरकनि बदन की हरकनि। तैसियै सिर तैं कुसुम[2] सुबरखनि॥

---

१ इसके आगे प्र० बि० वि० की प्रति में चार पंक्तियाँ तथा दो दोहे अधिक हैं। २. पाठा०—सुमन।

आनन पर श्रमकन कन बनी । कनक कमल जनौं ओस की कनी ॥
किधौं चंद मधि प्रगटे मोती । आये जानि आपनो गोती ।
लाल के बाल चरित कछु गावति । भाग भरी सब राग रिझावति ॥
लगी जु भूख कुँवर वर जगे । मींजत नैन अलस रस पगे ॥
अरग अरग जननी ढिग जाइ । गही मधु मथन मथानी आइ ॥
जसुमति कहति बोलि मधु बानी । बलि बलि मोहन छाँड़ि मथानी ॥
नेत जु तजहु तुरत मथि लेउँ । अपने ललन कौं लौन्यौ देउँ ॥
नेत न तजहि ललन हठ ठानी । लै बैठी तब जसुमति रानी ॥
सुद भरि मधुर पयोधर प्यावति । प्यार सौं चूमति अति सचु पावति ॥
पूत कौ नित पियनो पय हुतौ । आँच लगैं अति उमग्यौ सु तौ ॥
यातें सुत कौं धरि कै धरनी । धाइ गई तहँ नंद की घरनी ॥
केइक कबि कहैं तृष्णा औरी । हरि परिहरि जु दूध कौं दौरी ॥
ते कछु प्रेम मरम नहिं जानें । जिहि बिधि श्री शुकदेव बखाने ॥
या करि ब्रह्मानंद सु हरवौ । भजनानंद दिखायौ गरवौ ॥
अतृपत सुत जु छुभित तब भयौ । माखन भाँजि भवन दुरि गयौ ॥
सुत के करम निरखि नँदरानी । मुसकी जनम सुफल्ला मानी ॥
बहुरि कहति अति लदिक न कीजै । लरिकहि तनक कछू सिख दीजै ॥
अरग अरग गई गृह में ऐसें । नूपुर धुनि सुनि भजे न जैसें ॥
साँट लिए जौ जसुमति आई । चढ़यौ उलूखल माखन खाई ॥
जननिहि निरखि भीत की नाई । उतरि भग्यौ तिहूँ लोक को साईं ॥
जसुमति मोहन गोहन लगी । तिहि छिन अद्भुत छबि जगमगी ॥
जसु पैं तैसें धाइ न जाइ । श्रोणी भर अरु कोमल पाइ ॥
खसत जु सिर तें सुमन सुदेस । मनु चरननि पर रीझे केस ॥
जोगी जन-मन जहाँ न जाहीं । इत सब वेद परे बिललाहीं ॥
ताकहुँ जसुमति पकरति भई । रहपट एक बदनहूँ दई ॥

१ ... श्रति ...

तिहि दिसि तिय सब लज्जित भईं। घटपट अपुने पट गहि गईं॥
ये दोउ नगन मगन अस भये। मद बाढ़े; ठाढ़े रहि गये॥
कहन लगे मुनि तिन तन चाहि। जग में बहुत अवर मद आहि॥
पै परि यह श्रीमद है जैसो। बड़ अनर्थकर अवर न ऐसो॥
मति-भ्रंसक सब धर्म बिधंसक। निरदै महा बिरथ पसुहिंसक॥
नस्वर देह सबै कोउ जानैं। ताकहुँ अजर अमर करि मानैं॥
रच्यो पाँच भौतिक यह देह। अंत कबै क्रिमि, बिष्ठा खेह॥
जाकहुँ कहत कि यह तन मेरौ। तामैं बहुरि बहुत अरुझेरौ॥
माँ कहै मेरो, पितु कहै मेरो। मोल लयो सु कहै मो चेरो॥
अन्न को दाता कहै-की मेरो। स्वान कहै अवर न किहि केरो॥
ऐसें साधारन यह देह। तिन सौं करिकै परम सनेह॥
भूत द्रोह आचरत न डरैं। धमक धमक नरकनि में परैं॥
श्रीमद करि जु अंध ह्वै जाइ। दारिद अंजन बड़ो उपाइ॥
तन दुर्बल मन दुर्बल रहै। अपनी उपमा करि सब चहै॥
कंटक चरन चुभ्यो होइ जाकें। और को दुख हिय कसकै ताकें॥
जाकें कंटक चुभ्यौ न होइ। का जानै पर पीरहि सोइ॥
पुनि मुनि बोले करुना भरे। क्यों तुम द्रुम ह्वै रहि गये खरे॥
-तब अति डरे दौरि पग परे। परम दयाल दया अनुसरे॥
मथुरा मंडल गोकुल जहाँ। अर्जुन द्रुम तुम उपजहु तहाँ॥
नंद के नंदन बालक ह्वैहैं। बँधे उलूखल तुमको छ्वैहैं॥
मो प्रसाद तें पुनि घर पैहौ। दुर्लभ बस्तु सुलभ ही पैहौ॥
वे दोउ तहाँ अर्जुन तरु भये। बढ़त बढ़त अंबर लौं गये॥
नारद बचन सुमिरि हरि आई। तनक में गिरि ते दिये गिराई॥
गिरत जु चंड सबद भयौ ऐसें। घर पर बज्रपात होइ जैसें॥
निकसे दिव्य रूप दोउ बीर। पहिरें अद्भुत भूषन चीर॥
जैसें दारु मध्य तें आगि। निर्मल जोति उठति है जागि॥

नंद सुवन के पाइनिं परे। अंजुलि जोरि स्तुति अनुसरे ॥
कहन लगे हरि तिन तन चाहि। तुम तो कोउ देवता आहि ॥
हम इहि गोकुल नंददुलारे। क्यों हौ परसत चरन[1] हमारे ॥
तब बोले अशका मौन के। हो प्रभु तुम बालक कौन के ॥
परम पुरुष सब ही के कारन। प्रतिपालन तारन संहारन ॥
व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप। वेद वदत प्रभु तुम्हरौ रूप ॥
तुम सब भूतनु को बिस्तार। देह प्रान इंद्रिय अहँकार ॥
काल तुम्हारी लीला श्रीधर। तुम व्यापी तुम अव्यय ईश्वर ॥
तुमहीं प्रकृति सुकृत सब तुमहीं। सत रज तम जे ले लै तुमहीं[2] ॥
तुमहीं जीवन तुमहीं जीव। तुमहीं सब[3] कोउ अवर न बीय ॥
घट पट ज्ञान बिषै है सब ही। हमरौ ज्ञान होइ किनि अब ही ॥
दुर्लभ महा सुलभ हो बनें। वहाँ कहँत कुबेर के तनैं ॥
इंद्रिनि करि तुम जात न गहे। प्रगट आहि पै परत न चहे ॥
जैसे दृष्टि कुंभ कों देखे। कुंभ सो नहिंन दृष्टि को पेखे ॥
कुंभ कें दृष्टि होइ जौ कबहीं। सो तुम दृष्टिहि देखै तबहीं ॥
तातैं तुमकों बंदन करें। जानि न परहु परे तें परे ॥
इहि बिधि स्तुति करि हरि देव की। प्रार्थित पंकज पद सेव की ॥
हो करुनानिधि करुना कीजे। अपनी भाव भगति रति दीजे ॥
बानी तुव गुन कथा में रहौ। श्रवन कथा रस में निरवहौ ॥
चरन कमल रस बस मन भौंर। सपनेहुँ जिनि सूझै कछु और ॥
हो जगदीस जसोदानंदन। सीस रहौ नित तुव पद बंदन ॥
तुम्हरी मूरति भक्त तुम्हारे। नितही निरखहु नैंन हमारे ॥
तब बोले हरि करुनाधाम। पूरन होहु तुम्हारे काम ॥

१.—पाठा० पकरत पाइ। २ पाठा०—पुरुष महतत्व। धर, अंबर, आडंबर, सत्त। ३. पाठा०—सब ठौं तुम।

नारद प्रियतम भक्त हमारौ। तुमकौं कियौ अनुग्रह भारौ॥
मो भक्तन कौ यहै सुभाव। जैसें उदित होतु दिनराव॥
सहजहि निबिड़ तिमिर कौं हरै। और बहुत मंगल बिस्तरै॥
पुनि बोले हरि सब सुख सींव। हे नलकूबर हे मनिग्रीव॥
अब तुम गवन भवन कौं करौ। मो माया डर तें जिनि डरौ॥
आज्ञा भई रह्यौ नहिं जाइ। पुनि पुनि पकरहिं सुंदर पाइ॥
बार बार परिकरमा देहिं। सुंदर बदन बिलोके लेहिं॥
अधिकारी पै रह्यौ न जाइ। चले ईस कौं सीस नवाइ॥
उत्तर दिसि नभ ह्वै उड़ि चले। भक्ति रसभरे लागत भले॥
अगिन के जनु निधूम द्वै रूक। किधौं बिभाकर के बिबि टूक॥

आपु तनक बंधन बँधे तासौं कछु न बसाइ।
दृढ़ बंधन संसार तें गुह्यक दिये छिड़ाइ॥३४॥

एकादश अध्याय

अब सुनि ग्यारहौ अध्याइ की कथा। सुंदर सुक मुनि बरनी जथा॥
सुनि द्रुम सबद सबै ब्रज डरयौ। कहत कि इहाँ बज्र जनु परयौ॥
नंदादिक तहाँ धाये आये। द्रुमनि निरखि अति बिस्मय पाये॥
पतन कौ कारन लगे बिचारन। प्रबल पवन नहिं नहिं घन दारन॥
कारन कवन जु ए तरु परे। दिखि सब लोक अचंभै भरे॥
तिनसौं कहन लगे सिसु बात। अहो महर यह तेरौ तात॥
आपुन इनके अंतर परयौ। ऊखल तनक तिरीछौ करयौ॥
द्वै उखारि हुवै द्रुम भारे। ए हम सिगरे देखनहारे॥
निकसे उभय पुरुष दुख भरे। या ढोटा के पाइनि परे॥
ऐसे जब उन लरिकनि कह्यौ। किनहू गह्यौ किनहु नहिं गह्यौ॥
तिन बिच हरि बैठे छबि ऐना। कांपे सिसु मृग के से नैना॥
अति बत्सल रस भरि ब्रजराइ। द्रुमनि मध्य तें लये उठाइ॥

बंधन छोरि छसी लपटाये। पौढ़त सुंदर अंग सुहाये ॥
जसुमति पर ब्रजराज रिसाइ। ऐसे सिसु कोउ बाँधत माइ ॥
पुनि बिहरन लागे ब्रज महियाँ। दैन लगे सुख अपनन कहियाँ ॥
कहुँ ब्रज नवल बधू नंदलालहिं। पकरि नचावहिं मैन बिसालहिं ॥
जे जे विकट भान उपजावहिं। ते ते सहज नाचि दिखरावहिं ॥
रीझि रीझि ब्रज की बर बाला। वारहिं भूषन कंचनमाला ॥
चुंबन करैं बलैया लेहिं। बहुरि नचावहिं माखन देहिं ॥
कबहुँ कबहुँ[1] टहल अनुसरैं। ब्रज की बधू कहैं सो करैं ॥
कोऊ कहै अहो मोहनलाला। मोहिं गुहि दै-बड़-फूल की माला ॥
कोऊ कहै लालन लाउ दोहनी। कोउ कहै मोहिं गहाउ सोहनी ॥
कोऊ कहै बलि माँचरी लावौ। बलि बलि मोहिं पिढ़ी पकरावौ ॥
अब लावो मुख चुंबन करैं। इहि विधि ब्रज-तिय सुख बिस्तरैं ॥
शिव-सर्वसु, सब श्रुति कौ हियौ। सो ब्रज तियनि खिलौना कियौ ॥
कबहूँ बिहरत जमुना तीर। धूरी धूसर सुभग सरीर ॥
तिनकौं लैन गई जसु मात। ठाढ़ी कहत मनोहर बात ॥
रे रे पूत पूतना-निपात। तोसौं कहि न सकति इक बात ॥
निस दिन रहत धूरि में सन्यौ। पूरब जनम को सूकर मनौ ॥[2]
मोर के आयें दोऊ, भइया। कीनों नहिन कलेऊ दइया ॥
भूले आहि चलि गई मइया। घर चलिहै मेरो भलो कन्हइया ॥
अरु दिखि यहि ये संग के बारे। मइयनि कैसी भाँति सिंगारे ॥
तुमहूँ कन्हाइ तनक कछु खाइ। बलि बलि बहुरि खेलिहौ आइ ॥
बैठे महर थार पर जाइ। मोसौं कह्यौ कन्हइया लाइ ॥
तुम बिन तात तनक नहिं खात। बलि बलि चलि मेरे साँवल गात ॥
न चलहि खेल मगन अति भये। बाँह पकरि तब जसुमति लये ॥

---

१. पाठा०—कहूँ। २. यह दो पंक्ति प्र स० में नहीं है।

मग मैं दहति जाति जसु माइ। सोइ राजा जु मथुरा गृह जाइ॥
महर के संग तनक कछु खाइ। चले पलाइ' गहे जसु माइ॥
उपटन उपटि अंग अन्हवाइ। पठये पट भूखननि बनाइ॥
इहि परकार महावन महियाँ। दै सुख नद जसोमति कहियाँ॥
अब चाहत बृंदावन गयौ। मंजु कुंज बिहरन मन भयौ॥
अंतरजामी अपनौ धर्म। ता करि प्रेरे सबके कर्म॥
इक दिन गोप सभा जुरि बैसे। अमरनगर में अमरन ऐसे॥
नंद सुवन के रस रँगमगे। ब्रज के हितहिं बिचारन लगे॥
इत उत्पात जगे इहि लैसे। देखे सुने न कबहूँ ऐसे॥
इनि लरिकनि की रछा करौ। ह्याँ ते बेग अनत अनुसरौ॥
वहाँ उपनंद नाम इकु कोई। ग्यानवृद्ध बयवृद्ध है सोई॥
कहन लग्यो कि कुसल है परी। इत तें चलहु अबहि इहि घरी॥
आई प्रथम बकी घरघालक। काल के मुख तें उबरयो बालक॥
अरु यह सकट बिकट भर भरयौ। या सिसु के ऊपर नहिं परयौ॥
पुनि यह चावचक्र है आइ। लै गयो लरिकहिं गगन उड़ाइ॥
बहुरयो आनि सिला पर नाख्यो। तब यह सिसु परमेसुर¹ राख्यो॥
जे द्रुम नभ सौं बातें करैं। ते तरु अकसमात भुइँ परैं॥
जो जगदीस सहाइ न होइ। तिन तर आयौ उबरै कोइ॥
जौ चाहत हौ ब्रज को भलौ। तौ तुम इत तें अबही चलौ॥
सुंदर बृंदावन इक नाम। सब गुनधाम परम अभिराम॥
जामैं गिरि गोबर्द्धन आहि। सब रितु सेवत संतत ताहि॥
गोपी गोप गाइ के लायक। सुखदायक सुभकरन सुभाइक॥
सुनवहि सब आनंद हिलोरैं। अपने सकट तुरतही जोरैं॥
गोधन बृंद धरि लयें आगें। धरे सरावन नीके लागें॥
कंचन सकटनि चढ़ि चढ़ि गोपी। चली जु नंद सुवन रस ओपी॥

१. पाठा०—बालक हरि ने।

कंठनि पदिक जगमगति जोती । लटकै ललित सु बेसरि मोती ॥
केसरि आड़ ललाटनि लसैं । चंद में चंदकला कहुँ हँसैं ॥
चंचल दृग अंजन छवि बढ़े । ससिन में जनु नव खंजन चढ़े ॥
लाल के बाल चरित जु पुनीत । लये बनाइ बनाइ सुगीत ॥
ठौं ठौं गोपी गान जु करैं । सीतल कंठ सबके हिय हरैं ॥
राज सकट बैठी जसु सोहै । उपमा कौं तिंह त्रिभुवन को है ॥
सुरपति-रवनी रमा की चेरी । सो वह चेरी जसुमति केरी ॥
गोद में सुत अति सोहति ऐसी । चंद-जननि चंदहि लियें जैसी ॥
सुत-गुन गोपी गावति जहाँ । दै रही कान जसोमति तहाँ ॥
इहि विधि श्रीवृंदावन आइ । निरखि अधिक आनंदहि पाइ ॥
सकट को थान बनायो ऐसो । सुंदर अर्द्ध चंद होइ जैसो ॥
बन वृंदावन गोधन गिरिवर । जमुना पुलिन मनोहर तरवर ॥
रस के पुंज कुंज नव गह्वर । अमृत समान भरे जल सरवर ॥
जदपि अलौकिक सुख के धाम । श्रीबलराम कुँवर घनश्याम ॥
रीझे तदपि निरखि छवि बन की । उत्तम प्रीति लग गई मन की ॥
औरै सुक सारिक पिक और । औरै अंबुज औरै भौंर ॥
रतन सिखर गिरि गोधन सोभा[1] । निकसी मनहु नई छबि गोभा ॥
तिन बिच सुंदर रास स्थली । मनि कंचन मय लागति भली ॥
गिरि तें झरैं सुनिर्झर सोहैं । निर्झर नगर अमृतमय को हैं ॥
औरै त्रिगुन पवन जहाँ बहै । सुख उचाइ हरि सूँघत रहै ॥
कहन लगे वृंदावन ऐसो । वह हमरौ बैकुंठ न जैसो ॥
खेलन लगे खेल तहाँ ऐसे । प्राकृत बालक खेलत जैसे ॥
ढिग ढिग बच्छ चरावन लगे । वेनु बजावत गावन लगे ॥
कबहूँ कृत्रिम वृषभ बनावत । तिनहिं लरावत अति छबि पावत ॥
असुर एक बछरा ह्वै आयौ । सो श्रीहरि तबहीं लखि पायौ ॥

---

१. पाठा०—देखत मन अति उपजत सोभा ।

चिदानंदमय अपने वच्छ। यह प्राकृत अरु निपट असुच्छ ॥
नैन सैन करि सबहिं जनाइ। अरग बरग बाकी ढिग जाइ ॥
पाइ पकरिकै धरि जु फिरायौ। अपुनौ कियौ तुरत ही पायौ ॥
निरखि सखागन अतिसै हरखे। सुर हरखे नव कुसुमनि बरखे ॥

इति वत्सासुर लीला

पुनि इक दिन बल अरु बलबीर। सखन सहित गये सरवर तीर ॥
पहिले पानी बछरन दियौ। ता पाछैं आपुन पय पियौ ॥
ता ढिग महाअसुर इक आइ। बैठ्यो बक कौ बेपु बनाइ ॥
कहन लगे बक होत न ऐसो। गिरि तें गिर्यौ शृंग होइ जैसो ॥
ऐसे ठाढ़े करत विचार। धाइ आइ गह्यो नंदकुमार ॥
सुंदर कोमल अंग सुहायौ। लीलि गयो कछु मरमु न पायौ ॥
जरन लग्यौ जु कंठ संठ कौ। विकल भयौ मन बक ठंठ कौ ॥
अब कै डारि चुंचु की मारि। तब लीजौं यह जीय विचारि ॥
डार्यौ उगिलि सुलच्छन बालक। जगपालक ऐसेइ घर घालक ॥
डारिकैं बहुरि भवनि कौं नयौ। तिहि छन अद्भुत कौतुक भयौ ॥
रचकि कैं रंचक बदन पसार्यौ। पकरि कै चंचु फारिही डार्यौ ॥
फटत पटेरहिं लागत बार। अस कछु कीनों नंदकुमार ॥
जय जय धुनि अंबर में भई। बरषत फूल सूल मिटि गई ॥
घुरि गये सखा प्रान सब पाये। हँसि हलधरहू कंठ लगाये ॥
बछरनि लै छबि सौं घर आये। समाचार सब सखन सुनाये ॥
सुनिकै गोपी गोप समेत। धाए आये नंद-निकेत ॥
ज्यौं कोउ मरि परलोकहिं जाइ। अवनेन बहुरि मिलतु है आइ ॥
तैसें कान्ह कुँवर तन चाहैं। प्रम भरे यौं बातें कहैं ॥
त्रिषित दृगनि सुख निरखत ऐसें। अमृतहिं पाइ जियत कोउ जैसें ॥
कहत कि दिखतु मृत्यु अति दारुण। आवत सिसु कहँ मारन कारण ॥
तेई फिरि मरि जात हैं ऐसें। पावक परि पतंगगन जैसें ॥

पूरब जन्म कियौ पुण्य कोई। राखतु है इहि लरिकहिं सोई ॥
तिनसौं नंद कहन अस लगे। गर्ग बचन हिय में जगमगे ॥
गरग अरग दै गोपौं कह्यौ। मैं तब सुत को लच्छन लह्यौ ॥
नारायण मधि गुन हैं जिते। तेरे सुत में सक्तरव तिते ॥
सुनिकैं सब आनंदहि भरे। नंद-सुवन कें पाइनि परे ॥
गोकुल गोपी गोप जितेक। कृष्ण चरित रस मगन तितेक ॥
कहत परस्पर करि निव नये। सब वेदन नहिं जानत भये ॥
इहि परकार कुमार बयेस के। करत बिहार उदार सरस के ॥
कोइ होइ मेष कोइ होहि पालक। आपुन होंहि चोर हरि बालक ॥

एकादश अध्याय यह अगदराज की धार।
पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग संसार ॥६१॥

द्वादश अध्याय

अब सुनि लौ द्वादस अध्याइ। महा सर्प बपु धरि अघ आइ ॥
गिलिहै पाछ बच्छ यह नीच। हनिहैं हरि तिहि बढ़ि गल बीच ॥
इक दिन बन-भोजन मन आनि। सोए सुंदर सारंगपानि ॥
बेनु बजाइ जगाये ग्वाल। सुनत उठे सब तेही काल ॥
जैसें कमल अमोदहिं पाइ। ठौं ठौं उठत मधुप अकुलाइ ॥
बन भोजन जु कान्ह मन आनी। बेनु बजावनि ही में जानी ॥
सुंदर बिंजन सुंदर छीके। काँधनि धरि लिये लागत नीके ॥
अपने बछरनि लैलै आये। कान्ह के बछरनि आनि मिलाये ॥
नंद सुवन सौं मिलिके चले। लागत सबै मैन से भले ॥
तिन मधि मोहन अति सुख दाइक। नग जराइ मधि ज्यौं मधि नाइक ॥
छीकनि तें व्यंजननि चुरावत। लेती इहि कछु और बनावत ॥
हँसि हँसि कहत कि देखि कन्हैया। कहा दयौ है याको मैया ॥
और खेल खेलत छबि पावत। महुअरि बेन बजावत गावत ॥

बगनि खिजावत खगनि खिजावत। केइ खग की छाया गहि धावत॥
केइ मधुमत्त मधुप सँग गावत। केइ मिलि कल कोकिल कुहुकावत॥
केइ मदमत्त मोर ज्यों नचैं। तैसेंहि नचैं तनक नहिं बचैं[1]॥
केइ बनचर के सनमुख जाइ। आवत तैसेहि ताहि खिजाइ॥
केइ फल फूल माल गुहि लावत। मोहनलाल कैं उरसि बनावत॥
ताके कैं गुंजमाल अति सोहै। लाल-माल तिन आगे को है॥
बृंदावन जु कुसुम की कली। गजमोतिन तें लागति भली॥
केइ अपनी प्रतिधुनि सों अरैं। गारि देहिं बहुरयौ हँसि परैं॥
देखत बृंदावन घन सोभा। जब हरि दूरि जात रस लोभा॥
तब ये ग्वाल बाल मिलि आछें। अंतर सहि न सकत पुनि पाछें॥
धावत बहुत अमी जनु बरसें। जोइ राजा जु प्रथमही परसे॥
अब सुक तिनकी भागु सराहत। नंदसुवन महिमा अवगाहत॥
जो बहु महा ब्रह्म-सुख आहि। बिदुषनि कौं परकासत ताहि॥
भक्तन हू के हिय अति सरसैं। तिनके नाथ भये सुख बरसैं॥
मायाश्रित संबंधीजन जे। नर-दारक करि समझत तेते॥
देत सबनि सुख अपनी ठौर। इन सम पुन्यपुंज नहिं और॥
जाकी पद-रज-हित तपु करिकै। बहुत जनम जोगी दुख भरिकै॥
करत चपल चित्त कौं चूरि। सो वह धूरि तदपि हू दूरि॥
सो साक्षात दृगनि के बहिये। कवन भाग ब्रजजन की कहिये॥
तदनंतर अघ नामा दुष्ट। आयौ सुख दिखि सक्यौ न नष्ट॥
बक अरु बकी दुहुन तें छोटौ। ऐं परि यह अन तें गुन मोटौ॥
जाके डर सुर घर घर डरैं। जदपि अमृत पानहू करैं॥
तदपि बहुत जब लौं अघ जीवै। तब लौं बहुत अमी को पीवै॥
सहज नृसंस कंस पुनि प्रेरयौ। गोप-बंस-ध्वंसहिं नेरयौ॥
हरि-तन चितै बहुत काकोदर[2]। याके उदर पोष मेरे सोदर॥

---

१. पाठा०— नचे। २. पा०—काको दर।

तातें भगिनि भइया की ठौर। पठऊँ इहि अरु ये सम और ॥
जो मैं इतै तिलोदक करे। ब्रज माँझ के सहजहि मरे ॥
प्रान गये ज्यों यहु दाम के। देह रहे तौ किहि काम के ॥
इहि विधि अघ बिचार पर परिकै। महा बड़ौ अजगर-वपु धरिकै॥
इक जोजन बिस्तर बिस्तर्यौ। आनि नीच मग बीचहि पर्यौ ॥
अध कौ अधर धरा पै धर्यौ। ऊर्द्ध अधर जलधर मैं कर्यौ ॥
बालक चकै चाहिकै ताहि। कहन लगे कि कहा यह आहि ॥[1]
कोउ कह कछु वृंदावन सोभा। तापर भैया अजगर ओभा ॥
है तौ यह परबत की दरी। अजगर-आनन-आभा धरी ॥
शृंग जु मनौ बने अहि दंत। निबिड़ तिमिर सुबदन को अंत ॥
मधि की मगु जनु रसना आहि। लपकति भिया लहत हौ ताहि[2] ॥
कर्कस पवन गुहा तें ऐसो। आवत अजगर तें मुख जैसो ॥
दव जु लगी कछु लगति न रोचन। राते राते जनु अहि लोचन ॥
कोउ कहै तुम्हरौ करिहै कहा। यह तौ केवल अजगर महा ॥
हमहिं सबन ग्रसिबे कें काज। मग में आनि पर्यौ सजि साज ॥
कोउ कहै जो है अजगर महा। तौ यह हमरौ करिहै कहा ॥
नंद-सुवन ऐसें कछु करिहैं। बक लौं यहौ नीच को मरिहैं ॥
सुंदर बदन निरखि मुद भरे। दै दै करतारी तहँ धरे ॥
अलबेले ईश्वर नँदनंदन। बालक नृप से सब जगबंदन ॥
जब सब अजगर मुख संचरे। तब हाँ हरि बिचार पर परे ॥
यह तौ सति ही अजगर महा। बरजे नाहिन कियौ हम कहा ॥
प्रभु पछतात अनमने भये। अपने कर अजगर मुख दये ॥
अब हाँ कौन जतन अनुसरौं। इहि मारौं अपनेन उद्धरौं ॥
आइ गई ईश्वरता ऐसें। बालक नृप के रक्षक जैसें ॥
ब्रजपति-सुवन तनिक मुसुकाइ। पैठे ताके आनन जाइ ॥

१. पाठा०—मई भाल हो हाहि।

अंबर माँझ अमरगन जिते । देखत हे घन ओटनि तिते ॥
हाहाकार करे अति डरे । कहत कि अब सिगरे हम मरे ॥
अजगर तुंड तनक जब नयौ । तिहि छन अद्भुत कौतुक भयौ ॥
नैंसुक सिसु मुख भारें करौ । रुंकि गयौ वाको सिगरौ गरौ ॥
भयौ निरोध प्रान घट घुट्यौ । ब्रह्मरंध्र ताकौ तब फुट्यौ ॥
निकसि जोति तब अंबर गई । दामिनि सी फिरि ठाढ़ी भई ॥
जब लगि नंद-सुवन गोविंद । बछरा अरु ब्रज बालक बृंद ॥
अमृत दृष्टि करि सींचि जिवाइ । लै आये बाहिर हरि भाइ ॥
तब लौं रही गगन में जोति । सब दिसि जगमग जगमग होति ॥
चपला ज्यौं तहँ ते उलटानी । आनंद भरि हरि माँझ समानी ॥
तदनंतर सुर मुनि सब हरषे । जय जय करि पुनि पुहुपनि बरषे ॥
रटन लगे गंधर्व जितेक । नटन लगीं अपछरा अनेक ॥
कोलाहल सुनि निज लोक में । ब्रह्मा आयौ ब्रज ओक में ॥
दिखि महिमा जसुमति तात की । सुधि-बुधि गई कमलजात की ॥
सो यह अजगर परम पवित्र । सूक्यौ बृंदावन मधि मित्र ॥
अति गह्वर तहँ ब्रज के बाल । लुका लुकी खेलें बहु काल ॥
यह कौमार बयस कौ कर्म । पायौ नाहिं किनहु कछु मर्म ॥
छठौ बरस जब सब निरवह्यौ । तब इनि सखनि आनि ब्रज कह्यौ ॥
आजु जु एक नंद- के लाल । मारयौ ब्याल सु केवल काल ॥
हम सब वाके मुख में गये । आये बहुरि जन्म धरि नये ॥
ताके तन तें उठी जु जोति । नखत टुटौ ज्यौं ज्वाला होति ॥
आइ गगन में थिरि ह्वै रही । हम देखी जो सबही सही ॥
कान्हहिं निरखि बहुरि उलटानी । आनि कै इनही माँझ समानी ॥
ऐसें जब इनि लरिकनि कह्यौ । सुनि सब लोग अचंभे भरयौ[1] ॥
अहो मित्र कछु चिंतन कीजे । हरि की महिमा में मन दीजे ॥

---

१. पाठा०—रयौ ।

इनकी जो कोउ प्रतिमा करै। एक बार बल करि हिय धरै॥
प्रह्लादादिक की गति जोई। सुपुरुष सहजहि पावै सोई॥
ते साक्षात् अघासुर हिये। आये अपने भक्तनि लिये॥
सूत कहत हैं भो भृगुनंदन। सुनिकै सुचरित दुरित-निकंदन॥
पुनि पुनि मुनि के गहि गहि पाइ। पूछे शुक जु परीछित राइ॥
हो सर्वज्ञ व्यास के तात। यह कौमार बयस की बात॥
पौगंड में चरित सब कहे। अब लौं ए सिसु केहाँ रहे॥
हाँ कछु हरि की माया आहि। सो प्रभु नीकें बरनहु ताहि॥
हम सम धन्य नहीं संसार। जातें कृष्ण कथामृत-धार॥
निगमसार ताको पुनि सार। पियत हैं हम तिहि बारंबार॥
बहुरि तुम्हारे मुख सुरभल तें। मधुर तें मधुर, अमल अमल तें॥
सूत कहत जब यौं नृप कह्यौ। श्रीशुक मूँदि नयन तब रह्यौ॥
फुरि आये जु चरित सब हिये। यौं कोउ अति मादक मधु पिये॥
बढ़ि जु गयौ उर अति आनंद। घूमत ज्यौं मदमत्त गयंद॥
बड़ी बेर जागे अनुरागे। राजा पुनि सुख बरसन लागे॥

नंद हियें धरि नेह भरि यह द्वादसयें अध्याइ।
अघ से मल निर्मल जहाँ परस कृष्ण पद पाइ॥

यह द्वादस अध्याय जो सुने तनक चित लाइ।
अघ न रहे अघ ज्यौं सुनत नंद अनघ है जाइ॥

त्रयोदश अध्याय

अब सुनि लै तेरहौ अध्याइ। हरिहि बिधि बछ-बालक आइ।
श्री हरि तैसेई फेरि बनाइ। खेलिहैं एक बरष इहि भाइ॥
भलौं प्रश्न कीनी नृप सत्तम। हे बड़भाग! भागवत उत्तम॥
जातें कृष्ण-कथा रसमई। सुनत हौं छिन ही छिन करि नई॥
जिन कें उपज्यौ हरि-रस-भाउ। हे नृप! तिन कौ यहै सुभाउ॥

रवि सौं कृष्ण-कथा अनुसरैं । छिन छिन प्रति नूतन सी करैं ॥
जैसैं लंपट बनिता बात । सुनत सुनत कबहूँ न अघात ॥
अब सुनि सावधान है कथा । बरनन करौं आदि यह जथा ॥
जदपि गोप्य रही मो हिये । कहौं तदपि तब हित के लिये ॥
सिष्य सनेहयंत जो रहै । तिन सौं गुरु गुपतौ पुनि कहै ॥
अघ-मुख तैं निबाइ बछ-बाल । लै गए जमुन-पुलिन नँदलाल ॥
भोजन कियौ चहत तिहि काल । करत पुलिन की स्तुति गोपाल ॥
कहत कि भैया भली यह ठौर । ऐसी नहिन पाइही और ॥
सीतल मृदुल बालुका स्वच्छ । इत ये हरे हरे तृन कच्छ ॥
इत ये सुंदर सरसिज फूले । तरबर फूल फूलि जल भूले ॥
खगनि की धुनि-प्रतिधुनि हिय हरै । मंद सुगंध पवन अनुसरै ॥
सब दिसि तैं ये परिमल लपटैं । आवति सहज सुखनि की दपटैं ॥
भूख लगी है भोजन करैं । इत ये बच्छ कच्छ मैं चरैं ॥
मंडल करि बैठे ब्रजबाल । मध्य बने तहँ मोहनलाल ॥
सोहत सब तैं सन्मुख ऐसें । कमल के बीच करनिका जैसें ॥
भोजन करत कुँबर साँवरे । छबि दिखि अमर भए बावरे ॥
भोजन बिबिध गुवालन ठने । फल दल छिल बलकल अति घने ॥
अपने ब्यंजन तिन मैं धरे । चखत चखावत अति मुद भरे ॥
तिन के मध्य बने नँद-नंद । उडु मंडल जस पूरन चंद ॥
पट अरु जठर बीच धौ बेनु । काख बेत, बपु लपटे रेनु ॥
दधि-ओदन कौ कवल सु किये । छबि सौं बाम करत हरि लिये ॥
अँगुरिनि मधि मधि धरि संधान । जिनहि निरखि बिधि भूल्यौ ग्यान ॥
तौ लै ब्यंजन चखनि चखावनि । हँसनि, हँसावनि, पुनि चहकावनि ॥
केवल बालकेलि अस करैं । ईस्वर सनक न जाने परै ॥
बछरा जब बन घन अनुसरे । दिठि सब ग्वाल-बाल भय भरे ॥
तिन कहँ कहत कमल-दल लोचन । अद्भुत सिसु भय के भय मोचन ॥

अहो मित्र, तुम भोजन करौ। अपने मन तनकी जिनि डरौ॥
बछरनि हम लै ऐसें आये। बैठे रहौ लहौ सुख सबै॥
ऐसें कहि बन गह्वर कुंज। तम करि भरी दरी तहँ पुंज॥
ढूँढ़त बच्छ बिस्व के नाथ। भोजन कवल लियें ही हाथ॥
ऐसें मांझ कुबुधि निधि आयौ। अघ तैं अधिक भयौ अनगायौ॥
कैसें य ईस्वर इमि कहै। तिन की महिमा चितयौ चहै॥
कच्छ तैं बच्छ लये सब आइ। जब लगि हरि वै देखन जाइ॥
तब लगि इत तें लै गयौ बाल। अकिले रहि गये मोहनलाल॥
दुहुँवनि बन बन ढूँढ़न लगे। डोलत प्रेम-पगे, रँगमगे॥
पुनि हँसि परे कछू रिस भरे। इते काम इनि विधना करे॥
जो अब हम इत चुप कै रहैं। तौ इन की जननी कहा कहैं॥
अरु जौ इन हीं कौं फिरि आनैं। तौ विधि मो महिमा कहा जानैं॥
हँसन लागे हरि सुंदर स्याम। कही कि ये सब बिधि के काम॥
हमरी महिमा देखन आयौ। होत सबै जब बाकौ मायौ॥
जितक हुते बछ-बाछी-बाल। आपु ही भए कुँवर नँदलाल॥
वैसेंई कंबर, अंबर, हार। वैसेंई सहज अहार बिहार॥
वैसेंई नाम, दाम गुन नीके। वैसेंई शृंग, बेनु, दल छीके॥
वैसियै हँसनि, चहनि पुनि बोलनि। वैसियै छटकनि, गटकनि, डोलनि॥
नूपुर, कंकन, किंकिनि, माल। सबै भये ईस्वर नँदलाल॥
बेद जु बदत बिस्व यह जितौ। सबै बिष्णुमय, भासत तितौ॥
ऐसें नाहिन परतु है पायौ। सो यह अर्थ प्रगट दिखरायौ॥
गंगाजल ज्यौं हिमकन पाइ। ठौं ठौं सहज जाइ ठहराइ॥
अपने बछरा आगें लये। अपने खरिकनि ही सब गए॥
अछु अछु करि लये अपनी माइनि। पौंछत रज मुख चूमत बाहनि॥
उबटि सुगंध सलिल अन्हवाये। मनमाये भोजन करवाये॥
उपज्यौ प्रेम तिन बिषै ऐसौ। पाछें नंदसुवन सौं जैसौ॥

अब सुनि लै गाइन की पेम । बिसरत जिहिं बिधि मुनि मन नेम ॥
खरिक निकट जब बछरा बोले । सुनतहिं गोधनवृंद कलोले ॥
हूँकि हूँकि आतुर गति आवनि । इत तें इनि बछरनि की धावनि ॥
चुपनि, चुवावनि, चाटनि, चूमनि । नहिं कहि परति प्रेम की घूमनि ॥
आपुहिं बछरा, आपुहिं बाल । ब्रज बन बिहरत मोहनलाल ॥
एकाकी जब खेलत कोई । खेलत ताहि कछु न सुख होई ॥
ऐसें बरस दिवस निरबह्यौ । संकर्षन हू नाहिन लह्यौ ॥
इक दिन गिरि गोधन पर गाइ । चरति ही चढ़ी आपनें चाइ ॥
ब्रज-समीप बछरन अवहेरि । चली जु ग्वाल सके नहिं फेरि ॥
स्वच्छ पुच्छ ऊँची करि लई । मानहुँ दुरत चँवर छबि छई ॥
अति गति पग डारनि, हुंकारनि । सींचति धरनि दूध की धारनि ॥
बखरे बछरनि पैं चलि आईं । मिलीं धाइ, कछु नहिं कहि जाईं ॥
पाछें गोप जु धाये आये । छोभ भरे अति श्रम करि पाये ॥
सुतन निरखि तब सब सुधि गईं । उपजी प्रीति नई, रसमई ॥
वा दिन बल कें भयौ संदेह । सिसुन बिषै दिखि ब्रज कौ नेह ॥
कहत कि पाछे हुतौ न ऐसौ । निरवधि नेह अबहिं है जैसौ ॥
अरु मेरे हू उपजत तैसौ । कान्ह कमल-लोचन सौं जैसौ ॥
ये बछबालक वे तौ नाहीं । पाछे हुते जु या ब्रज माहीं ॥
अब तौ नाम, दाम, दल अंबर । वेनु, बिषान, बेत, बल कंबर ॥
कंकन, किंकिनि, भूषन जिते । मोहिं श्री कृष्ण अभासत तिते ॥
जब हँसि हलधर हरि तन चह्यौ । हरि तब सब हलधर सौं कह्यौ ॥
संकर्षन हू नहिं सुधि परै । बिधि बावरौ जु पचि पचि मरै ॥
भर्य दिवस बीतें बिधि आयौ । निरखि बिनोद सु बिस्मय पायौ ॥
वेई बच्छ स्वच्छ ब्रजबाल । जमुन-कच्छ खेलत नँदलाल ॥
तिनहिं निरखि उत धायौ गयौ । वेतेई दिखि अति बिस्मय भयौ ॥
तैसेई उत के तैसेई इत के । कहत कि सत्य आहिं धौं कित के ॥

पुनि जो फिरि आयै इहि ठौर। है रही कछू और की और॥
बालक-बच्छ इहाँ हैं जिते। बेनु, बिषान, बेत्र दल तिते॥
गुञ्जावलि, गुंजावलि जु ही। नूपुर, किंकिनि, कंकन सुही॥
अंबर, कंबर, संबर जिते। निरखे चारु चतुर्भुज तिते॥
घन-तन, पीतवसन, बनमाल। अरुन कमल-दल-नैन बिसाल॥
कुंडल-मंडित गंड सुदेस। मनिमय मुकट सु घूँघर केस॥
कंबु-कंठ कौस्तुभ मनि धरे। संख-चक्र आयुध कर करे॥
छबि बलसी तुलसी की माल। बनि रही पदपंकज बिसाल॥
भिन्न भिन्न ब्रह्मांड बिराजै। तिन मधि इक इक मूरति भ्राजै॥
ब्रह्मादिक बिभूति जग जिती। अंड अंड प्रति दिखियत तिती॥
काल-करम महदादिक जिते। मूरति धरे उपासत तिते॥
सुधि गई बिधिहि अचेतन भयौ। हंस को अंस पकरि रहि गयौ॥
तिहि छिन ताहि फबी छबि ऐसी। चतुर्मुखी कोउ पुतरी जैसी॥
सरसुति-पति बिचार इमि करै। कहा आहि यह सुधि नहि परै॥
तब श्री हरि निज हिये बिचारी। अज पर अजा जवनिका डारी॥
यही कि ये अभिमानी लोग। मो महिमा नहि चाहन जोग॥
तब श्री हरि यह माया जिती। अंतरध्यान करी तहँ तिती॥
बड़ी बेर सुधि बिधि भई ऐसैं। मरि कै बहुरि उठत कोउ जैसैं॥
दृग उघारि कै बिघना चहै। तौ यह श्री वृंदावन अहै॥
जामैं सर सुंदर, तरु सुंदर। जे कबहूँ निरखे न पुरंदर॥
हरि अरु मृग जहँ इक सँग चरैं। छुतपियास नैंक न संचरैं॥
गुद भरि श्री हरि यौं नित चहै। काके काम-क्रोध-मद रहै॥
तहँ निरखे ब्रजराजकुमार। अव्यय ब्रह्म अनंत अपार॥
बहुरि अगाध बोध श्रुति बोलै। सो बछ-पालक ढूँढ़त डोलै॥
परयौ धरनि चरनन पर जाइ। सब मुकटन करि परसत पाइ॥
ज्यौं ज्यौं यह महिमा उर फुरै। उठि उठि पद-पंकज सो घुरै॥

श्री हरि कछु न कहत रिस भोये । हमरे खेल आनि इन खोये ॥
हरैं हरैं उठि हरि तन चहे । टपकि टपकि नैनन जल बहे ॥
थर थर कंपत सकल सरीर । कमल लिये ठाढ़े बलबीर ॥
नमित बदन दृग भरि रहे पानी । गदगद कंठ फुरै नहिं बानी ॥
सापराध बिधि निपटहि डरयौ । अंजुलि जोरि स्तुति अनुसरयौ ॥

बच्छ-हरन, बिधि-बुधि-हरन, सुनै जु इहि अध्याइ ।
'नंद' सकल मंगल करै, जग दंगल मिटि जाइ ॥५८॥

चतुर्दश अध्याय

अब सुनि लै चौदहौं अध्याइ । ब्रह्मस्तुति जहँ अद्भुत भाइ ॥
पाछैं अद्भुत निरखि बिधात । चक्यौ थक्यौ जहँ फुरै न बात ॥
सापराध बिधि थरथर डरै । हरि महिमा अवगाहन करै ॥
सुधि न परै जब जैसैं चहै । तैसैं नमस्कार करि कहै ॥
अहो ईड्य ! नव घन तन स्याम । तड़ित पीत बसन अभिराम ॥
मयुर-पिच्छ-छबि छाजति भाल । नैन बिसाल, सुंदर बनमाल ॥
रस-पुंज गुंजा अवतंस । कँवल, बिषान, बेत्र कर बंस ॥
मृदु पद पंकज बिपिन बिहार । नमो नमो ब्रजराज कुमार ॥
जो प्रभु यह तुम्हरो अवतार । सुक्षमहि प्रगट सकल श्रुतिसार ॥
मो पर परम अनुग्रह करयौ । किधौं भक्त की इच्छा धरयौ ॥
याकी महिमा नहिं कहि परै । मो से जौ अनेक पचि मरै ॥
जो साक्षात् धातु इक आहि । अवतारी अवलंबन जाहि ॥
सो तुम, ज्ञान परहु कौन पै । कबि न गह्यौ परतु मौन पै ॥
जौ कहहु कि हम अस दुर्लभ । पायौ परै न जाको भेय ॥
सौ प इतर दुतर संसार । कैसैं तरिहै, परिहै पार ॥
यहाँ कहत बिधि माथ नवाइ । सुनहु नाथ निज प्राप्ति उपाइ ॥

ग्यान विषै प्रयास परिहरै। तुम्हरी कथा विषै मन धरै॥
जे हैं सुंदर संत तुम्हारे। कथा-अमृत के बरपनहारे॥
तिन पै सुनै, श्रवन रस भरै। मन-वच-क्रम बंदन पुनि करै॥
बैठे ठौर कथा-रस पीवै। जे इहि भाँति जगत मैं जीवै॥
अहो अजित! तिनकरि तुम जीते। ग्यानी डोलत भटकत रीते॥
अब विधि कहत ग्यान है जोई। भक्ति बिना सोउ सिद्ध न होई॥
तुम्हरी भगति अमीरस-सरवर। मोक्षादिक जाके सब निर्झर॥
तिहि तजि जे केवल बोध कौं। करत कलेस चित्त सोध कौं॥
तिन कहुँ छिन ही छिन श्रम बढ़ै। और कछू न तनक कर चढ़ै॥
जैसैं कनविहीन लै धान। धमकि धमकि कूटत अग्यान॥
फल तहँ यहै बिरथ दुख भरै। खोटत हाथनि फोटक परै॥
अब विधि सदाचार-विधि लिये। करत प्रमान भक्ति दृढ़ हिये॥
हो प्रभु! पाछै बहुतै भोगी। तजि तजि भोग भये भल जोगी॥
विद अष्टांग जोग अनुसरै। ग्यान हेतु बहुतै दुख भरै॥
अति श्रम जानि तहाँ तै फिरै। तुम कहुँ कर्म समर्पन करै॥
तिन करि सुद्ध भयौ मन मर्म। तब कीने प्रभु तुम्हरे कर्म॥
कथा श्रवन करि पाई भक्ति। जाके संग फिरत सब मुक्ति॥
ता करि आतमतत्व कौं पाइ। बैठे सहज परम गति जाइ॥
अब विधि कहत कि निर्गुन ग्यान। तिहि समान दुर्घट नहि आन॥
छद्मी जदपि नित्य उर रहै। सो पुनि तनक कबहुँ नहि लहै॥
जाके रूप न रेख, न क्रिया। जिहि तातप अपलंमै दिया॥
तदपि केई तजि तजि सब वृत्ति। निर्मल करत चित्त की वृत्ति॥
सहजहि सून्य समाधि लगाइ। लेत हैं तामैं तुम कौं पाइ॥
पै यह सगुन सरूप तुम्हारौ। ह्यौं मन खोयौ नाव हमारौ॥
ये अद्भुत अवतार जु लेत। बिस्वहि प्रतिपालन के हेत॥
नाम, रूप, गुन, कर्म अनंत। गनत गनत कोउ लहै न अंत॥

धरनी के परमान जितेक। हिमकर अरु उडु गगन तितेक॥
कालहिं पाइ निपुन जन कोइ। तिनहिं गनै, अस समरथ होइ॥
ए परि सगुन रूप गुन जिते। काहू पै कहि परत न तिते॥
तातैं तव भगतिहि अनुसरै। तुम्हरी कृपा मनायौ करै॥
कब मो पर नँदनंदन ढरिहैं। मधुर कटाच्छ चितै रस भरिहैं॥
निज प्रारब्ध कर्म-फल खाइ। अनासक्त, नैंकु न ललचाइ॥
अरु अति तप कलेस नहिं करै। श्रवन-कीर्तन-रस संचरै॥
इहिं बिधि जियै सुभागहि पावै। मरयौ कहा कोउ अगरनि आवै॥
अपराधी बिधि थरथर डरै। निज अपराध निवेदन करै॥
देखहु नाथ दुजनता मेरी। महिमा चह्यौ चहौं प्रभु केरी॥
अगिनि तैं बिस्फुलिंग ज्यौं जगै। अगिनिहिं बिमौ दिखावन लगै॥
पटबिजना ज्यौं पख डुलाइ। छयौ चहत रवि मंडल छाइ॥
और सुनहु प्रभु उपमा आछी। गरुड़हि आँखि दिखावहि माछी॥
अब कहहु कि मेरौ अपराधु। छमा करहु, हौं निपट असाधु॥
रज गुन तैं उपज्यौ अग्यानी। तुम तैं भिन्न ईस अभिमानी॥
माया-द्वनमद ह्वै गयौ। सूझ न कछू, अंध तम छयौ॥
यातैं अनुकंपा हो करौ। भृत्य जानि कछु जीय न धरौ॥
धारयौ कुटी जु जन जानिये। ताकौं नाथ न बुरौ मानिये॥
जो कहहु कि कयौं इतौ छिठाहि। तुम हूँ तौ इक ईस्वर आहि॥
तहाँ कहतु बिधि जोरें हाथ। यातें समुझि कहौं ब्रजनाथ॥
कित हौं कित महिमा नाथ की। कहत हौं चींटी ह्यो साथ की॥
प्रकृति, महदहँकार, अकास। बायु, बारि, बसुमती, हुतास॥
सप्तावरन जु यह इक भौन। तुम हौं कहौ तहाँ हौं कौन॥
सप्त बितस्ति काइ कौं करयौ। रहत बहुरि कहाँ धौं परयौ॥
ऐसैं कोटि कोटि ब्रह्मंड। तुमरी एक रोम के खंड॥
उपजत भ्रमत फिरत नहिं चैनु। जैसैं जालरंध्र त्रिसरेनु॥

निपटहि तुच्छ, न काहू लाइक। कृपा करौ, न ठरौ ब्रजनाइक॥
हौं प्रभु जैसैं जननी-गर्भ। रहत है निपट अबुध यह अर्भ॥
कूखि विषै कर-चरनन तानै। तौ कहा मात बुरौ है मानै॥
तैसैं हौं तव कूखि के माहीं। करत कलोल कछू सुधि नाहीं॥
अब हौं कहत कि तुम्हरौ चेरौ। तुम तैं प्रगट जनम यह मेरौ॥
जब सब लोक चराचर जितौ। प्रलय-उदधि मधि मज्जत तितौ॥
तब हौं तुम्हरी नाभि-कमल तैं। निकस्यौ नहिं इहि उदर अमल तैं॥
'कमलज कमलज' मेरौ नाम। मृषा आहि जानै सब ग्राम॥
जौ कहहु कि ये तौ हम नाहीं। सो वह नारायन जल माहीं॥
हमरौ ब्रज-वृंदावन धाम। तहीं जाहु क्यौं नहिं कछु काम॥
तहां कहत विधि बुधि अवगाहि। मंदस्मित जुत आनन चाहि॥
तुम नहि नहिं नाराइन स्वामी। अखिल लोक के अंतर्जामी॥
नार कहावत जीव जितेक। बहुरि नार ये नीर तितेक॥
तिन मैं नाहिंन अयन रावरौ। हो प्रभु मोहि करत बावरौ॥
जल मैं तुम्हरिय मूरति आहि। हूँमत कहा हरि मो तन चाहि॥
जौ कहहु कि हम यौं करि पाये। अपरिछिन्न नित निगमन गाये॥
तुम परिछिन्न कहत हौ धात। तहाँ कहत विधि इहि विधि बात॥
जब हौं कमलनाल है गयौ। मन के वेग बरष सत भयौ॥
जौ तुम जल करि आवृत होते। रहते दुरे कितक लौं मों ते॥
पुनि जब तुमहिं दया करि कह्यौ। तब तप सौं मैं दृढ़ करि गह्यौ॥
तब रंचक तुम हिय मैं आइ। बहुरयौ गये चटपटी लाइ॥
ये तुम्हरी माया की गुरझैं। सब जन अरुझैं, नाहिंन सुरझैं॥
अरु अब ही येही अवतार। हो ईस्वर ब्रजराजकुमार॥
जननी कौं माया दिखराई। चकित भई अति विस्मय पाई॥
बिस्व चराचर है यह जितौ। जठर मध्य अवलोक्यो तितौ॥
सांगी तुम देखे इहि भाइ। साँट लिये डाँटति जसु माइ॥

प्रतिबिंब मैं बिंब दिखरावै। माया बिन यह नहिं बनि आवै॥
अरु मोहि कहहु कहा अब कियौ। अजहूँ थर थर कंपत हियौ॥
अबबहिं तुम मैं देखे एक। बहुरयौ बालक-बच्छ जितेक॥
बेनु, बिषान, बेत्र दल जिते। ह्वै रहे चारु चतुर्भुज तिते॥
पुनि इक इक ब्रह्मांड के नाइक। सेवत मो समेत सब लाइक॥
पुनि अति एक एक छबि बाढ़े। देखे मैं मनमोहन ठाढ़े॥
ऐसैं अस्तुति बहु बिधि कीनी। निर्गुन-सगुन रूप रंग भीनी॥
पुनि प्रार्थत सब सुरन की रानी। भक्ति-बिभौ जु देखि ललचानी॥
अहो नाथ! मो कहुँ यों करौ। जो तरुना करुना रस ढरौ॥
इहि जनम मैं, अमर जनम मैं। नर जनम मैं, तृजग जनम मैं॥
तुमरे भक्तन मैं कछु ह्वै कै। सेऊँ चरन-सरोजनि छ्वै कै॥
अब बिधि भक्त्यानंद जु पग्यौ। ब्रज को भाग सराहन लग्यौ॥
हो प्रभु धन्य, धन्य ये गोरी। धनि ये बेनु परम रस बोरी॥
बालक बच्छ भए प्रभु जिन के। पीवत भये पयोधर तिन के॥
बहुरयौ तनक स्तन-पय पाइ। बार बार तुम रहत अघाइ॥
क्रम के जग्य-भाग हो खात। तहँ तुम तनकौ नहिन अघात॥
इह ब्रजजन की भाग बड़ाई। हो प्रभु, मो पै नहिं कहि जाई॥
जा प्रभु के आनँद की लेस। बर्तत अज, सिव, सेस, सुरेस॥
सो तुम निरवधि परमानंद। जिन के मित्र सकल सुख-कंद॥
पुनि परिपूरि रहे जहँ-तहाँ। जाहु तो तब जब होहु न तहाँ॥
जगत बियापी ब्रह्म जु आहि। प्रभु की प्रभा कहत कवि ताहि॥
इत तें बहुरि अनत कहुँ जात न। यावैं नंदसुवन जु सनातन॥
इन की भाग महिम वो रहौ। हमरें भूरि भाग तन चहौ॥
जद्यपि इन की इंद्री जिती। हम करि नाहिन कीनी तिती॥
तदपि तनक अभिमान के साथ। हम सब कृत्य कृत्य भये नाथ॥
नेत्रादिक इंद्रियगन जिते। हमरे पानपात्र प्रभु तिते॥

तुम्हरे सुंदर सुंदर अंग। छिन छिन उठति जु अमृत तरंग॥
तिन करि पुनि पुनि पियत जथारथ। सूर्यादिक सब भये कृतारथ॥
बहुरयौ इक इक इंद्रिय केरे। धन्य भये हम से बहुतेरे॥
जिन की सब इंद्रिय रस पगी। सब ही बिधि ते तुम हीं लगी॥
तिन के भाग की महिमा जौन। हो प्रभु ताहि कहि सकै कौन॥
अब हौं यह प्रार्थत हौं नाथ। भूरि भाग जो मेरें माथ॥
मनुज-लोक में जनमु हमारौ। दीजै देव, दया बिचारौ॥
जौ कहहु सत्यलोक क्यौं तज्यौ। मर्त्यलोक काहे तें भज्यौ॥
लाभ कवन पैहो इत आइ। तहँ बिधि कहतु लिखाइ लिखाइ॥
हे सुंदर घर मो पर ढरौ। या ब्रज को मोहि अब कछु करौ॥
जासें इनके पगनि की रेनु। मोपर नित परसे सुख देनु॥
जिनके तुम ही जीवननाथ। जैसें दीन मीन के पाथ॥
तुम कैसें, जाकी पद-धूरि। ढूंढ़त श्रुति सो अजहूँ दूरि॥
इनके भक्ति तहलहति जैसी। देखी सुनी न कितहूँ ऐसी॥
हौं जानौ नित रिनी रहौगे। टकटक इनके बदन चहौगे॥
जो कहौ कि क्यौं रिनी रहैंगे। दैहैं सब ए जु कछु चहैंगे॥
तहँ तुम सुनहु बड़ो धन तुम्हरौ। एक मोक्षता पर सब झगरौ॥
इनके वेष मात्र पूतना। महापापिनी जगत धूतना॥
सो तहँ गई सकल कुल लैकें। मोहन लालहिं स्तनक बिषु दैकें॥
इनके तन मन नैन परान। तुमहीं करो जानमनि जान॥
जौ कहहु कि ये तौ सब रागी। सुत, बित, मित्र, बिषै-रति पागी॥
मोहि कोउ बीतराग भलें पावै। तहँ बिधि भक्ति बिभौ दिखरावै॥
हे सुंदर घर नंदकिसोर। रागादिक तबहिं लगि चोर॥
तबहिं लगि बंधन आगार। देह, गेह अरु नेह बिथार॥
तबहिं लगि दिढ़ जंजर जेरी। मोह-लोह की पाइनि बेरी॥
जब लगि जन नहिं भये तुम्हारे। हे ईस्वर ब्रजराज दुलारे॥

अब मो कौं अपनौ करि जानौ। मो कृत कछु अपराध न मानौ ॥
हमरौ ग्यान मोज सब जितौ। प्रभु तुम सम्यक जानहु तितौ ॥
इतनी माँगत अहो अनंत। बंदन करौं स्वप पर्जंत ॥
बार बार परिकर्मा दै कै। सुंदर बदन बिलोकन कै कै ॥
चल्यौ नाथ कौं माथ नवाइ। अधिकारी पैं रह्यौ न जाइ ॥
सब श्रीहरि से बालक बच्छ। बैठे सब पाए रहि कच्छ ॥
बीत्यौ जदपि बरष इक काल। बिछुरे सुंदर मोहनलाल ॥
तदपि सबहिं छिन मानत भये। अद्‌भुत प्रभु की माया छये ॥
कवन कवन माया नहिं भूले। जगत-हिंडोरे बहुडे फूले ॥
ये कछु माया करि नहिं मोहे। प्रभु की इच्छा करि अति सोहे ॥
मोहे से सब कहत हैं बाल। बेगि ही आये मोहनलाल ॥
एकौ कवल न पावन पायौ। भैया तो बिन जाइ न खायौ ॥
हौं हूँ तो तुम बिन नहिं खायौ। हाथ कवल वैसैं ही आयौ ॥
आवहु बैठहु भोजन करैं। इत ये बच्छ कच्छ मैं चरैं ॥
अब ऐसैं बोले ब्रजबाल। बिहँसन लागे नंद के लाल ॥
मंडल करि बैठे पुनि आछे। जैसैं प्रान बन्यौ हो पाछे ॥
अति रुचि सौं मिलि भोजन कर्‌यौ। इहि बिधि बा बिधि कौ मद हर्‌यौ ॥
सीथ जु परें दही रस भरे। सदन जाइ बिधि लालच खरे ॥
काक न भयौ फिर्‌यौ इतराती। पुनि पुनि सुंदर सीथन खातौ ॥

इति वत्सहरण लीला

चले घरन अजगर दरसते। हिय सरसते, सुखनि बरसते ॥
गावनि धातु के चित्र बनाये। सीसनि मोर के चंद सुहाये ॥
बेनु सृंग दल ललित बजावत। नव नव गीत पुनीतन गावत ॥
गोपी हगन के सरबस रूप। ब्रज आये नँद-सुवन अनूप ॥
बीत्यौ एक बरष जिहिं काल। ब्रज मैं कहत भये ब्रजबाल ॥

आजु जु एक नंद के लाल। मार्यो ब्याल महा विकराल॥
चित दै सुनै जो चतुर कोइ, चतुरदसौं अध्याइ।
सुनत चतुरदस भुवन तैं, परै परम गति जाइ॥८७॥

पंचदश अध्याय

अब सुनि लै पंद्रहौं अध्याइ। चलिहैं कान्ह चरावन गाइ॥
बन की स्तुति कछु श्रीमुख करिहैं। धेनुक हति ब्रज सुख विस्तरिहैं॥
मंडित बय पौगंड सुदेस। छिन छिन सचि लौं बढ़त सुवेस॥
खेलत लखित खेल बन महियाँ। चलत चहन लागे परछहियाँ॥
गोपालनि संमत सब जाने। द्विज वर पोलि नंद जू आने॥
भल मुहूर्त सौ दान दिवाइ। पठए कान्ह चरावन गाइ॥
जसु लगि मंगल गीत गवावत। नंद चले बन लौं अवरावत॥
सखा साथ, बल भैया साथ। राजत रुचिर मंगली- माथ॥
बीच अछत सु कचन छबि गनौं। मोती जमे चंद मधि मनौं॥
आगे करि दै गोधन वृंद। बदन चूमि ब्रज बगदे नंद॥
गाइन की छबि नहिं कहि परै। रूप अनूप सब के हिय हरै॥
कंचन भूषन सबनि के गरै। घनन घनन घंटागन करैं॥
उज्जल अंग सु को है हंस। कामधेनु सब जिन के अंस॥
दरपन सम तन अति दुति देत। जिन मधि हरि भाँई झकि लेत॥
वृंदावन छबि कहत बनै न। भूलि रहैं जहँ हरि के नैंन॥
जामैं सब दिन बसत बसंत। प्रफुलित नाना कुसुम अनंत॥
कंटक द्रुम एकौ नहिं जहाँ। चिदाभास भासत सब तहाँ॥
सुंदर तरु सुरतरु तहँ को है। जे मनमोहन के मन मोहै॥
अरुन अरुन नव पल्लव पात। जनु हरि के अनुराग चुचात॥
बटत बिहंगम रंगनि भरे। बाव कहत जनु द्रुम रस ढरे॥
कोकिल कल कूजति छबि पावति। जनु मधु-मधु सुमंगल गावति॥

कुसुम धूरि धूँधरी सुकुंज। गुंजत मंजु घोष अलि-पुंज॥
सुंदर सर निर्मल जल पेखैं। संतजननि के मानस लेखैं॥
तिन मधि अमल कमल अस लसैं। जनु आनंद भरे सर हँसैं॥
जल पर परी पराग जु सोहै। अचिर भरे नव दर्पन को है॥
सीतल मंद सुगंध जु पौन। ठौर ठौर सुख कहियै कौन॥
नये जु फल-फूलनि के भार। लगि लगि रही धरनि द्रुम-डार॥
बार बार हरि तिन तन चहैं। बल भैया सौं बातैं कहैं॥
देखहु हो ये द्रुम या बन के। सब सुख करने, हरने मन के॥
खिखा निकरि परसत तुव पाइ। जानत हो कछु इन को भाइ॥
कहत कि हो ईस्वर जगनाइक। हौ तौ तुम सबहिन सुखदाइक॥
ऐ पुनि हम पर बहुँते ढरे। जातैं या बन के द्रुम करे॥
अरु देखहु या बन के भृंग। डोलत डोलत तुम्हरे संग॥
जनु ये मुनिगन अति ह्वै आये। जद्यपि गुपत तदपि लखि पाये॥
धनि यह धर जा पर पग धरौ। धनि ये कुंज जहाँ संचरौ॥
धनि ये सर-सरिता जहँ खोरत। धनि ये कुसुम जिनहिं तुम तोरत॥
इहि बिधि बिहरत बृंदाबन मैं। छिन छिन अति रति उपजत मन मैं॥
कबहूँ निरखि मराल सुचाल। तिन सँग खेलत लाल गुपाल॥
कहुँ मत्त निरतत दिखि मोर। तैसैं ही निरतत नंदकिसोर[1]॥
कहूँ मदांध मधुप जहँ गावत। तिन सँग मिलि गावत छबि पावत॥
कबहूँ दूरि जाइ जब गाइ। लखित कदंबनि पर चढ़ि जाइ॥
आनँदघन सम सुंदर टेरनि। इत उत बहु हेरनि, पट-फेरनि॥
हे गंगे, हे हे गोदावरि। हे जमुने, हे भाँवरि, चाँवरि॥
हे मंजरि, हे कुंजरि, सीयरि। हे हे धौरी, धूमरि, पीयरि॥
कबहूँ मल्लजुद्ध मिलि खेलत। मत्त-गज ज्यौं ठेलत, पग पेलत॥
स्रमित होत आवत तरु तरें। किसलय सयन, सु पेसल करें॥

१. पाठा०—चित के चोर।

पौढ़त सखा जघनि सिर नाइ। केई बड़भाग पलोटत पाइ॥
केइ कोमल पद लै कर मींजत। केइ लै कुसुम बीजना बीजत॥
केइ अति मधुर मधुर सुर गावत। साँवरे कुँवरहि नींद मनावत॥
विहरत इहि परकार विहार। ज्यौं गाइन सँग ग्वार गँवार॥
जा कहुँ मुनि मन करत विचार। निगम अगम नहिं पावत पार॥
लक्ष्मी ललना ललित सु पाइ। लालति ज्यौं निधनी धन पाइ॥
बड़ी बेर आवत सिव मन में। सो प्रभु यौं विहरत या बन में॥

इति वनविहार लीला

खेलत खेलत खेल सुहाये। गोधन लै गिरि गोधन आये॥
सखा एक श्रीदामा नाम। कहन लग्यौ कि अहो बलराम॥
हो घनस्याम परम अभिराम। दुवौ अतुल बल छवि के धाम॥
इत तें निकट ताल बन महा। मिष्ट मिष्ट फल फहिये कहा॥
यह दिसि बन कौ परिमल आवत। चपन्यौ हमरे चितहि चुरावत॥
भारी भूख लगी है चलौ। भैया बहुत मानिहैं भलौ॥
पै परि तहँ इक धेनुक नाम। बड़ौ बाम ताकौ बिश्राम॥
जाके डर तहँ जात न कोई। खग्गिन मक्षन करि डारै सोई॥
सुनतहि चले सु लागत भले। ऐसे दुष्ट किते दलमले॥
आगे भये विहँसि बलराम। पाछे करि लये मोहन स्याम॥
धसे विसाल ताल बन जाइ। मत्त गयँद ज्यौं पैठत आइ॥
दिये जु ताल तनाल हलाइ। भूखे ग्वाल लिये सब खाइ॥
सुनि कैं आयौ धेनुक धाइ। धर डगमगत धरत यौं पाइ॥
गर्दभ सब्द करत इहि भाइ। सुर डरपे कि छिये हम आइ॥
अति बल सौं बल की ढिग गयौ। पछिले चरन चलावत भयौ॥
ते पद तबहिं पकरि हैं लये। पकरत प्रान निकसि हैं गये॥
फेरि फेरि ऐसें गहि डान्यौ। ऊँचे हुतौ सु ता करि झाऱ्यौ॥
औरौ खर आये रिस भीने। तेऊ सबै ढेल से कीने॥

परे सु ताल बिसाल सु ऐसैं । प्रबल पवन के मारे जैसैं ॥
खेलु सौं खेलि छिनक में चले । कहत हैं ग्वाल भले जू भले ॥
ब्रज पहुँ आवत अति छबि पावत । बालक-वृंद सु कीरति गावत ॥
ऊपर सुर सुमन सु बरषावत । मुदित भये दुंदुभी बजावत ॥
मंद मंद गति गाइन पाछैं । चलत ललन छबि पावत आछैं ॥
गोरज छुरित कुटिल कच बने । जनु मधुकर पराग रस सने ॥
मंजुल मोरमुकट की लटकनि । कंचन कुंडल गंडनि झलकनि ॥
उर बनमाल, सु नैन बिसाल । बाजत मोहन बेनु रसाल ॥
सुनि कै गोपबधू सब निकसीं । मुद्रित कमल-कली जनु बिकसीं ॥
हरि-मुख-कमल भरयौ रस-रंग । गोपी-लोचन लंपट भृंग ॥
पुनि पुनि करि कै पान अघाने । दगनि के बासर बिरह सिराने ॥
बच कछु नैनन पूजा कीनी । लज्जा सहित हँसनि रँग-भीनी ॥
ता पाछें बर कुटिल कटाछें । चली जु प्रेम रँगीली आछें ॥
यह बिन की पूजा अभिराम । लै घर आये मोहन[1] स्याम ॥
जसुमति द्वार आरती कियौ । पौंछि कै बदन सदन मैं लियौ ॥
उबटन उबटि फुलेल लगाइ । स्वच्छ सुगंध सलिल अन्हवाइ ॥
सुभग सुस्वाद सु बिंजन आनि । जननी बर्यौ अपने पानि ॥
रितु रितु के भोजन अनुकूल । रितु रितु के बर फूल दुकूल ॥
दुग्ध-फैन' सम सेज बनाइ । पौढ़े वहाँ कुँवर बर जाइ ॥

'नंद' नींद नँद-नंद की, कही जु इहि अध्याइ ।
गुनातीत कौ सोइबौ, सब भगतनि कै भाइ ॥४६॥

इति धेनुकमर्दन लीला

पुनि इक दिन बिन ही बलराम । सखनि सहित बन गवने स्याम ॥
पसु अरु पसुप तृषित अति भये । चले चले कालीदह गये ॥

---

१. पाठा०—सुंदर ।

बनमाली आवत है पाछैं। मन छबि देखत देखत आछैं॥
तब लगि ग्वाल-बाल अरु गाइ। महा गरल जल पीयौ जाइ॥
जौ पाछे आवहि नँदलाल। मरे परे सब गोधन-ग्वाल॥
अमृत-दृष्टि करि सींचि जिवाये। उठे सबै. अति विस्मय पाये॥
कहन लगे कि मरे हे सबै। इहि नँदलाल जिवाये अबै॥
सब बनमाली सब गुनसाली। काढ़ि दियौ तिहि दह तैं काली॥

षोडश अध्याय

अब सुनि लै षोडसौं अध्याइ। कीनी प्रश्न परीच्छित राइ॥
हो प्रभु वह दह महा अगाध। तरल गरल करि भरयौ असाध॥
कमल तें अति कोमल बनमाली। तहँ तें कैसें काढ्यौ काली॥
अरु वहँ बहुत जुगनि कौ कह्यौ। सर्प अजलचर क्यौं जल रह्यौ॥
गोप बेष श्रीकृष्न चरित्र। अति विचित्र अरु परम पवित्र॥
निरवधि मधु की धारा आहि। सु को जु तृपतै पीवत ताहि॥
हरिलीला-रससिंधु हिलोलें। मंद मुसकि तहँ श्री सुक बोले॥
जमुनहि मिल्यौ निकट ही महा। अति अगाध ह्रद कहियै कहा॥
बिष की आगि लागि जल जरै। उड़ते खग जहँ गिरि गिरि परै॥
इक जोजन के थिर चर जंत। जरि जरि मरि मरि गये अनंत॥
जे बृंदाबन जोग्य न हुते। ते सब विष-जल-ज्वाला हुते॥
ताही ढिग इक मृदुल कदंब। सो छूँ सक्यौ न विष कौ थंब॥
या पर कृष्न-चरन परसिहैं। इत तें अहि पुष्टहि करसिहैं॥
जा कदंब की भावी ऐसैं। विष-जल परसि सकै तिहि कैसैं॥
कान्ह कह्यौ कि हमारी जमुना। क्यौं पूछियै विष भरी अमुना॥
सारितहि सुद्ध करन कलमले। छवि सौं उहि कदंब ढिग चले॥
किंकिनि सौं कटि पटहि लपेटि। कुटिल अलक मुकट मैं समेटि॥
चट दै तिहि कदंब पर चढ़े। लाजत ता छिन अति छबि बढ़े॥

जिहिं जल छुवत जात जन जरे। तिहिं जल कुँवर कूदि ही परे॥
वर वारन ज्यौं जल मैं धसरे। सत सत धनु चहुँ दिसि पय पसरे॥
अति ऊधम सुनि काली डरयौ। यह परयौ कि गरुड़ बल करयौ॥
अरग अरग आयौ रिस भरयौ। कोमल कुँवर दृष्टि-पथ परयौ॥
नूतन घन सम सुंदर स्याम। तड़िदिव पीतबसन अभिराम॥
घन इव, तड़िदिव उपमा ऐसैं। सास्त्रा बिन सखि सुमै न जैसैं॥
बिहरत बिभु अपने रस-रंग। ईसवरता कछु नाहिंन संग॥
ताकौं कहा जानै यह नीच। लोचन भरे महा तम कीच॥
अरुन कमल से कोमल पाइ। डसत भयौ दुरात्मा आइ॥
लपटि गयौ पुनि सिगरे गात। रोष भरे दृग अनल चुचात॥
ऐसैं जब निरखे व्रजबाल। गाइ, वृषभ, बछ, बाछी, बाल॥
मुरछि परे ठाँ ठाँ सब ऐसैं। सुंदर तरु बिनु मूलहिं जैसैं॥
व्रज मैं होन लगे उतपात। असुभ सुचने फरकें गात॥
भूमिकंप, नभ तें उडु गिरे। अवर असगुन निरखि थरहरे॥
कहत कि आज राम बिनु स्याम। बन जु गये कछु बिगरयौ काम॥
अति कलमले बिरह दलमले। बाल-बिरध सब कानन चले॥
तिन सौं कछु न कहत बलदेव। जानत हरि भैया के भेव॥
चरन सरोज-खोज ही लगे। जिन मैं सुभ लच्छन जगमगे॥
अरि, दर, मीन, कमल,जव जहाँ। अंकुस, कुलिस,धुजा छबि तहाँ॥
जा रज कहँ स्रिव, अज नित बंछत। अनुदिन सनक, सनंदन इच्छत॥
तिहि सिर धारत अतिसय आरत। कृस्न कृस्न गोबिंद पुकारत॥
क्रम क्रम करि जमुना अनुसरे। निरखे ग्वाल-बाल, पसु परे॥
दह मैं दिष्टि परे बनमाली। लपटि रह्यौ तन कारौ काली॥
जौ बलभद्र बीच नहिं परे। तौ सब जन जल-ज्वाला जरे॥
तिन मैं गोपबधू भरि नेह। दृगनि मैं प्रान रहे तजि देह॥
जसुमति उमगि उमगि दह परे। छन छन संकर्षन भुज धरे॥

भ्रज अनन्य गति दिरि वनमाली। गहि डारयौ हव फारौ काली ॥
ठाढ़ो भयौ भयानक भारौ। इक सत फन, बरियारौ कारौ ॥
फन फन द्वै द्वै जीभ कराल। लपलप करैं निपट विकराल ॥
डारत धार धार फुंकार। छुटत जु गरल अनल की झार ॥
द्वै सत लोचन राते ऐसैं। माँड़े पकने भाँड़े जैसैं ॥
तिन तैं अगिनि की चिनगी परैं। ठाढ़े इहाँ तीर के जरैं ॥
ऐसैं काली सौं वनमाली। खेलन लगे सकल गुनशाली ॥
वाम भाग दिये तिहि पर मेलत। जैसैं गरुड़ सर्प सौं खेलत ॥
घुम्हि गयौ ओज उरग कौ ऐसैं। नागदवन के देखत जैसैं ॥
पुनि ताके फन पर चढ़ि गये। सकल कला गुरु निर्त्तत भये ॥
सोहैं नंद-सुवन तहँ ऐसैं। सेस ऊपर नाराइन जैसैं ॥
तिहि छन भ्रज गंधर्व जितेक। लै लै ताल मृदंग अनेक ॥
सुघर सुघर जे सुर लोक के। सिव लोक के, विष्णु लोक के ॥
अद्भुत नर्त्तक नहिं कछु कचे। सर्प फननि पर तांडव नचे ॥
फननि तैं निकसि निकसि मनि परैं। पगनि मैं झलमल झलमल करैं ॥
दैखिय हरि-नख-मनि की जोति। सव दिसि जगमग जगमग होति ॥
जोई फन अहि उन्नत करै। तहँ तहँ मान कान्ह कौ परै ॥
पगनि की कूटनि दुखित जु भयौ। सर्प कौ दर्प सबै गिरि गयौ ॥
कहतु कि यह बल नहिं न मनुज कौ। निरवधि ईस्वर वल जु अनुज कौ ॥
सापराध अहि निपटहि डरयौ। मन करि चरन सरन अनुसरयौ ॥
दुखित देखि ताकी सब तिया। आईं थर थर कंपत हिया ॥
नैननि तैं जलकन यौं परैं। कमलनि त जनु मुक्ता झरैं ॥
विगलित कच सु मदन छवि वढ़े। अहि-सिसु मनहुँ कि सीसनि चढ़े ॥
कछु मुद भरी कछू भय भरी। करि दंडवत स्तुती अनुसरी ॥
अहो नाथ अनुचित नहिं करयौ। अहि कहुँ दंड न्याय ही धरयौ ॥
दुष्ट-दमन तुम्हरौ अवतार। हो ईस्वर भ्रजराज-कुमार ॥

जो दिखियत यह बिस्व पसारौ। सो सब क्रीड़ा-भाँड तुम्हारौ॥
अहि कहुँ तुम जु दंड नहि धरयौ। या पर परम अनुग्रह करयौ॥
हो प्रभु तुम तें जितौ बड़ाई। इनि पाई सो किनहुँ न पाई॥
एक अंड कौ भार सु जितौ। गरबतु सेस धरे सिर तितौ॥
अमिय अंडमय बपु रस भरयौ। सो इन धरयौ बहुत हे करयौ॥
सुनतहि बचन दया रस भरे। तातें तुरत उतरि ही परे॥
हरें हरें उठि बोल्यौ काली। हो अद्भुत ईस्वर बनमाली॥
तुम हीं हम इहि बिधि के करे। गरल भरे अति तामस भरे॥
तब नहि सोचे इहि बिधि धानत। अब हो नाथ बुरौ क्यौं मानत॥
तब बोले ब्रजराज-कुमार। यह बन हमरौ नित्य बिहार॥
अब तू रमनक दीपहि जाहि। वा गरुड़ तें नैंकु न डराहि॥
मो पद चिह्ननि चिह्नित भयौ। करि आनंद, सबै भय गयौ॥

काली मर्दन बाल कौ, लीला सुनै जु कोइ।
महा ब्याल कलिकाल तें, तिहि न तनक भय होइ॥ ४२॥

सप्तदश अध्याय

अब सुनि लै सत्रहौं अध्याइ। सर्पहि रमनक दीप पठाइ॥
उठिहै निसि बन बन्हि अचान। पानी लौं हरि करिहैं पान॥
नृप सुनि पुनि मुनि पूछै ऐसें। हो प्रभु! मो सौं कहि यह कैसें॥
रमनक दीप अहिन कौ धाम। क्यौं छाँड्यौ इन कालौ बाम॥
गरुड़ कौ कहा कियौ अनभायौ। जातें यह इहि दह मैं आयौ॥
श्री सुक कह्यौ अहिनु के ठौर। परी रहति नित खगपति दौर॥
थोरे खाइ, बहुत हति जाइ। तब सर्पनि मिलि कियौ उपाइ॥
आवहु मास मास बलि दीजे। इहि बिधि भले कैऊ दिन जीजे॥
तब पर्वनि पर्वनि तरु तरे। अपनी अपनी बलि लै धरे॥
यह अति बिष-बीरज-मद भरयौ। गरुड़ तें रंचक नाहिन डरयौ॥

अपनौ भाग, अवर कौ भागु। खाइ जाइ यह काली नागु॥
सुनि कै कुपित भयौ द्विजराज। कद्रू-सुतहिं हतन कैं काज॥
महा बेग धरि रिस भरि धायौ। बल-आलय उरगालय आयौ॥
इत यह बली ब्याल बिदरानौ। मधु-रिपु-बाहन प्रति समुहानौ॥
इक सत फननि फुफात सु तातौ। द्वै सत लोचन अनल चुचातौ॥
अति बल गरुड़ नखायुध जाके। दूजो मधुसूदन बल ताके॥
बाम पच्छ नव कंचनमई। रदपट एक जु ताकौं दई॥
तहँ तें भज्यौ सु बिह्वल भयौ। धाइ आइ इहि दह दुरि गयौ॥
इहाँ गरुड़ की कछु न बसानी। फिरि गयौ सौभरि संका मानी॥
सुनि कै प्रश्न करी नृप ऐसैं। हो प्रभु! सौभरि संका कैसैं॥
तब राजा सौं श्री सुक कहै। सौभरि कौ तहँ आश्रम रहै॥
एक समै इहि दह मैं आइ। खगपति कीनौ बहुत उपाइ॥
तहँ के मीननि कहुँ दुख दीनौ। तिन कौं रात पकरि है लीनौ॥
जलचर दुखित देखि कै डरे। बोले रिषि अति करुना भरे॥
अब कैं जौ इहाँ खगपति आवै। प्रान सहित तौ जान न पावै॥
अकिलौ काली जानत याहि। और न कोउ जानत ताहि॥
सो यह काली, हरि बनमाली। काढ़ि दियौ करि कीर्त्ति बिसाली॥
सुत-कलत्र लै भरि अनुराग। रमनक गयौ नाग बड़भाग॥
तब नँद-नंदन दह तें निकसे। मुसकत नवल कमल से बिकसे॥
अहिपतिनिन करि पूजे स्याम। अद्भुत पट, अद्भुत मनि-दाम॥
बन्यौ जु बदन सु को छबि गनौं। दीनी ओप चंद मधि मनौं॥
धाइ घुरि गई जसुमति मैया। इत हँसि दौरि घुर्यौ बल भैया॥
गोपी गोप, गाइ, बछ जिते। घुरि गये सुंदर अंगनि तिते॥
चलत सबनि के नैननि नीर। जनु निकसी जल ह्वै उर पीर॥
आये ब्रज के द्विज अनुरागे। नंद सौं कहन सबै यौं लागे॥
जा कहुँ ऐसैं बिषधर खाइ। सो सुत बहुरि मिलैं तोहिं आइ॥

तातें दान देहु ब्रजराज। अपने कुल मंडन के काज॥
जु कछु जन्म-उत्सव में कीनौ। ब्रजपति तातें दूनौ दीनौ॥
दानिनि देत परि गई साँझ। रहि गये ताही कानन माँझ॥
सब दिन अति कलेस करि भरे। सोवत हुते महा निसि परे॥
तहँ अभिचार मंत्र करि प्रेर्‍यौ। उठ्यौ अगिनि, तिहि सब ब्रज घेर्‍यौ॥
दुष्ट पवन लगि उठति जु लपटैं। दूरि दूरि लगि अति झर झपटैं॥
जगे जु लोग कुलाहल पर्‍यौ। कहत कि अब कैं सब ब्रज जर्‍यौ॥
पौढ़े हुते साँवरे जहाँ। सब जन धाये आये तहाँ॥
अहो कृष्ण, श्री कृष्ण पियारे। जरत हैं सबै दवानल जारे॥
हमहिं कछू तौ डर न मरन कौ। नहिं सहि परत बियोग चरन कौ॥
सुनत जगे, अति नीके लगे। आलस पगे, उठे रँगमगे॥
बरनि नैंन मींजत छबि पावत। उठे कमल, मनु कमल मनावत॥
एक सकति कहुँ अग्या दई। कब धौं अगिनि पान करि गई॥
जे द्रुमलता दवानल जरे। अमी-दृष्टि करि तैसेई करे॥
भोर भयें अपने ब्रज आये। मिटे अमंगल, मंगल गाये॥

अगिनि पान, हरि-जान कौं, गान जु करिहै कोइ।
महा झार संसार-झर, बहुरि न परिहै सोइ॥ २६॥

अष्टादश अध्याय

अष्टादश अध्याय की कथा। बरनि सुनावौं मो मति जथा॥
ग्रीषम रितु आपने सुभाइक। प्रगट्यौ जगत सबनि दुखदाइक॥
अति निदाघ जहँ कछु सुधि नाहीं। दादुर दुरहिं फनी-फन छाँहीं॥
सो वृंदावन मधि जब आयौ। सरस बसंत समान सुहायौ॥
ठौं ठौं गिरि तें निर्झर झरैं। ते वै सलिल सिलनि पर परैं॥
तहँ तें उछलि उछलि जल कुदी। दिर हवि छितिहि सुभागति सुदी॥
तिन तें बहति जु सरिता गहिरी। दूरि दूरि लौं पसरति लहरी॥

बहुरि अनेक अगाध जु सरवर। रस झूमरे, घूमरे तरवर ॥
तिन कें तर घन-सीरध छिवे । हरित हरित रँग भरित सु छिवे ॥
तरनि किरनि जिन नैंकु न परसैं । छिन छिन में छवि तिन में सरसैं ॥
कुसुमित बनराजी अति राजी । ऐसी नदिन बसंत बिराजी ॥
ठौर ठौर सर सरसिज फूले । डोलत लंपट अलिकुल भूले ॥
कमल पवनु अरु चंदन पौन । मिलि जु बहत, सुख कहियै कौन ॥
बोलत सुक, जनु सुक मुनि पढ़ैं । सरसुति सम कल कोकिल रढ़ैं ॥
मधुर मधुर सुर बोलत मोर । नंद-सुवन के मन के चोर ॥
इहि बिधि बृंदाबन छबि पावत । तहँ मनमोहन धेनु चरावत ॥
बल समेत, ब्रजबाल समेत । श्रीनिकेत बपहिन सुख देत ॥
कहूँ अवधि बदि मेलत डेलनि । कहूँ परस्पर खेलत बेलनि ॥
कहूँ अँग छुपनि, कहूँ दृग बंधनि । कहुँ चढ़ि जात द्रुमनि के कंधनि ॥
कहूँ रचत भूषन बनमाळ । लै लै फल-दल-फूल, प्रवाल ॥
कबहूँ निर्तत मोहनलाल । ताल बजावत, गावत ग्वाल ॥
कबहूँ वर हिंडोर बनावत । झूलत मिलि, गावत छबि पावत ॥
कबहूँ राज सिंघासन ठानत । छत्र, चँवर फूलन के वानत ॥
राजा ह्वै रजई दिखरावत । ग्वाल बाल दुंदुभी बजावत ॥
लौकिक लरिकनि की सी नाँईं । खेलत खेल जगत के साँईं ॥
असुर प्रलंब गोप के वानक । आनि मिल्यौ तिन माँझ अचानक ॥
नंद-सुवन तब हीं पहिचान्यौ । दुष्ट न दुरै दई कौ हान्यौ ॥
ताकौं हनन हिये में आन्यौ । तब हरि और खेल इक ठान्यौ ॥
कहत कि सुनहु मिया ही हीरी । अमर खेल खेलहु बदि मीरी ॥
द्वै द्वै ह्वै है आवहु ऐसैं । बल अरु बयस जानि कै जैसैं ॥
जो हारै सो लेइ चढ़ाइ । बट भाँडीर तीर लै जाइ ॥
भले भले कहि किलके हँसे । ललित कटिनि फट दै पट कसे ॥
नाइक भये स्याम बलराम । आवन लागे धरि धरि नाम ॥

कोउ लेइ चंद, कोऊ लेइ सूर। कोउ खजूर, कोउ लेइ बघूर॥
श्रीदामा वृषभादिक ग्वाल। बल दिसि गये बछावत गाल॥
जमुना पुलिन ललित चौगान। खेलन लगे जान-मनि जान॥
लै गये मारि टोल बल प्यारे। कमल-नयन दिसि के सब हारे॥
तिन पर चढ़ि चढ़ि बल ओर के। चले चपल आपनी जोर के॥
श्रीदामा हरि पर चढ़ि चले। को ठाकुर जु खेल मैं रले॥
बट भंडीर तीर लगि पड़े। लै गये बालकेलि रस पड़े॥
कान्ह कुँवर की दृष्टि बचाइ। असुर अवधि तें आगे जाइ॥
अपने रूपहि आश्रित भयौ। तब ही अंबर लौं बढ़ि गयौ॥
ता छिन भयौ भयानक भारी। पहिरे कंचन-भूषन कारौ॥
ता पर संकर्षन अति सोहे। मजबालक बिलोकि सब मोहे॥
जो होइ कारी भारी घटा। बिच बिच चमकै-दमकै छटा॥
ऊपर सरद चंद होइ जैसें। सोहै रोहिनि-नंदन तैसें॥
बिकट बदन अरु बढ़े दंत। बिकट भृकुटि दृग अग्नि बमंत॥
तपत ताम्र से सिरव्ह लसे। तब दिखि हलधर रंचक त्रसे॥
पुनि सुधि आइ तनक मुसकाइ। दियौ जु मुठिका मूँड़ धनाइ॥
करच करच ह्वै गयौ लिलार। मुख तें चलो रुधिर की धार॥
पर्यो प्रलंब न कछु संभार्यौ। गिरि जस गिरत बज्र को मार्यो॥
घुरि घुरि मिले ग्वालगन ऐसें। मरि गयौ कोउ फिरि आवत जैसें॥
अमर निकर बर बिविधय हरषे। बल पर सुमन सु सुंदर बरषे॥

अष्टादस अध्याइ इह, सुनै तनक मन लाइ।
ताके पाप प्रलंब जिमि, सब मरि जाइ सुभाइ॥२७॥
अष्टादस अध्याइ कौ, फल न कछू कहि 'नंद'।
अपने ही हिय रहन दै, चरित सहित मजचंद॥२८॥

एकोनविंश अध्याय

अब सुनि उनइसवौं अध्याइ। स्याम-राम गुंजारन जाइ॥

गोप-गाइ-गन गह्वर डर तें। लैहैं राखि दवानल झर तें॥
वृंदावन सब छबि को धाम। सखन समेत स्याम बलराम॥
बिहरत अति आसक्त जु भये। गोधन निडरि बनांतर गये॥
मुंजारन्य नाम है जहाँ। अति गह्वर सुधि परत न तहाँ॥
पसु-सुभाव तें लुपथे लोभा। चलि गये चरत चरत बन गोभा॥
आगे कुंज मुंज अति भीर। नहिंन नीर परसै न समीर॥
मारग नहि जु उलटि इत परै। गोधन-वृंद सु क्रंदन करै॥
खेल छाँड़ि जो इत उत चहैं। गोधन कहूँ निकट नहि लहैं॥
बालक बिकल भये सब ऐसैं। धन गये होत कृपन जन जैसैं॥
तब द्रुमन पर चढ़ि चढ़ि हेरत। धौरी, धूमरि, पीयरि टेरत॥
टेर सुनहिं तब जब होंहि नियरी। दूरि गईं वे काजरि पियरी॥
तब जुरि खोज खोजहीं चले। जहँ तहँ तृन खुर-दंतन दले॥
आगें अति गह्वर दिखि चके। चलि न सके तित ही सब थके॥
तब हरि इक कदंब पर चढ़े। चढ़ि नहिं परति जु अति छबि बढ़े॥
जनु सब सुकृत को फल रस-पग्यौ। इहि कदंब पके यह लग्यौ॥
चंचल दृगनि की इत उत हेरनि। मधुर मधुर टेरनि, पट फेरनि॥
हरि-मुख तें सुनि अपने नाइनि। धायी उत तें चाइनि चाइनि॥
प्रेम सहित आवनिं, हुंकारनि। औंचत धरनि दूध की धारनि॥
आनि जु भई धेनु इकठौरी। धौरी धौरी, अति छबि बौरी॥
सब के कंठनि कंचन-माला। सोहति सुंदर, नयन बिसाला॥
घनन घनन घंटागन बजैं। अमरराज-गज की छबि लजैं॥

हरि सनमुख आवति उमहि, उज्जल गोधन-नार।
समुदहि मनहुँ मिलन चली, गंग भई सतधार॥१२॥

ऐसेहिं माँझ दवानल लग्यौ। तृप-रवि-रस्मि परसि जगमग्यौ॥
प्रबल पवन लगि धाति झर झरटै। लतनि सौं लपटि द्रुमनि सौं लपटै॥
जरि जरि ताल तमाल जु तटकैं। पटके बाँस, काँस-तृन चटकैं॥

डरे गोप-गोधनगन सबै। आये नंद-सुवन ढिग तबै॥
ज्यौं कोउ काल व्याल तें डरै। भजि हरि-चरन सरन अनुसरै॥
कहन लगे कि अहो बलराम। हो श्रीकृष्ण कृष्ण घनश्याम॥
राखि लेहु हम बंधु तुम्हारे। जरत हैं सबै दवानल जारे॥
तब हँसि बोले मोहनलाल। मूँदहु नैन धेनु, वच्छ, बाल॥
सुनतहिं नंदसुवन के बैन। झट है सबहिन मूँदे नैन॥
जौ देखहिं तौ वट भंडीर। ठाढ़े हैं सब ताके तीर॥
कहन लगे अति बिस्मय पाये। कित हम हुते, किते अब आये॥
यह जु नंद कौ नंदन आहि। मिथ्या मनुज जिनि जानहु याहि॥
देवनि में जु देव यह कोई। हम जानहिं कि आहि यह सोई॥
आगें धरि लै गोधनवृंद। चले सदन ब्रज कहन निकंद॥
मधुर मधुर धुनि बेनु बजावत। बालवृंद सु कीरति गावत॥
गोपीजन कौं परमानंद। भयौ निरखि ब्रजपति कौ चंद॥
जिन कहुँ जा बिनु इक छिन ऐसें। बीतत कोटि कोटि जुग जैसें॥

श्रीदामादि सखा जिते, जीवत खेलहिं लागि।
ऐसी ठौर न सुधि परै, पियौ जात क्यौं आगि॥२१॥
सुनै जु कोऊ हरि-चरित, इनविंसत अध्याइ।
पाप न परसे 'नंद' तिहि, पदमिनि-दल-जल न्याइ॥२२॥

विंश अध्याय

अब सुनि लै बिसवौं अध्याइ। वर्नित जहँ द्वै रितु के भाइ॥
इक बरषा अरु सरद सुहाइ। बिहरत जहँ ब्रजराज कुमार॥
प्रथमहिं प्रावृट प्रगटित तहाँ। सब जंतुनि कौ उद्भव जहाँ॥
छुभित जु गगन पवन संचरे। रवि अरु ससि कहुँ मंडल परे॥
नील बरन नीरद उनये। गरजि गरजि नभ छादित भये॥
लसैं सगुन ब्रह्म यह जीव। सत, रज, तम करि आवृत कीव॥

अष्ट मास धर कौ जल जितौ। रस्मिन करि रवि पीवत तितौ ॥
चारि मास पुनि निर्भर भरै। सब दुख हरैं, सुखन बिस्तरैं ॥
जैसे नृप अपनौ कर लेइ। समय पाइ पुनि परजहि देइ ॥
तड़ित-लतनि करि मेघ महंत। ऐसे ताप तपे सब जंत ॥
प्रेरे पवन सु जीवन बरषै। सबनि के दुख करषै, मन हरषै ॥
जैसैं करुन पुरुष पर हेत। अपने प्यारे प्राननि देत ॥
ग्रीष्म-ताप करि कृश हुति धरनी। सरस भई, सोहति पर बरनी ॥
ज्यौं सकाम कोउ फल कौं पाइ। भोगनि भुगति पुष्ट ह्वै जाइ ॥
साँझ समै पटबिजना चमकै। घन करि छपे नछत्रन दमकै ॥
ज्यौं कलि विषै पाप पाखंड। नहिन निगम के धरम प्रचंड ॥
घन-गरजनि सुनि मुदित जु भेक। बोले धरनि अनेक अनेक ॥
ज्यौं गुरु आग्या सुनि बटसार। पट पढ़ि उठत एक ही बार ॥
पाछे सुष्क हुतीं जे सरिता। उत्पथ चलीं बहुत जल भरिता ॥
अजितेंद्रिय नर ज्यौं इतराइ। देह, गेह, धन, संपति पाइ ॥
बुढ़ी लुढ़ी जु हरित भई धरनी। उच्छलित छबि फबि हियहरनी ॥
जनु कोउ भूपति उतर्‍यौ आइ। छत्र तनाइ, बिछौन बिछाइ ॥
निपजे क्षेत्र फाँगुनी धान। तिनहिं निरखि हरखे जु किसान ॥
धनी लोग उपतापहिं जाहीं। दैवाधीन सु जानत नाहीं ॥
जल के, थल के बासी जिते। जल-सेवा करि सोभित तिते ॥
जैसे हरि-सेवा करि कोई। रुचिर रूप अति राजत सोई ॥
सरित-संग करि क्षुभित सु सिंधु। उमगि ऊरमी, ह्वै गयौ अंधु ॥
ज्यौं अपक जोगी चित धाइ। विषयनि पाइ भ्रष्ट ह्वै जाइ ॥
गिरिगन पर जलधर बर बरसैं। पै परि गिरि कछु बिथा न परसै ॥
परसै पै निरसै नहिं ऐसें। कष्टनि पाइ कृष्णजन जैसें ॥
मारग ठौर ठौर तृन छये। पंथ चलत पथिकनि भ्रम भये ॥
ज्यौं अभ्यास बिनु बिप्र सु बेद। समुझि न परै अरथ-पद-भेद ॥

मेघनि बिषैं अखत जल परे। तहिं भई अकुर नेह परिहरे।
ज्यौं लंपट जुवती जग माहीं। निधन भये पुरुषहिं तजि जाहीं॥
घन घुमड़नि मधि चाप सुरेस। बिनु गुन सोभित भयो सुदेस॥
प्रगट प्रपंच जगत मैं जैसैं। निर्गुन पुरुष बिराजत तैसैं॥
गगन में सघन घनन करि छयौ। तहँ उडुराज बिराजत भयौ॥
लपटि अहंता ममता जैसैं। जग मैं जीव न सोहत तैसैं॥
सुनि कै सुंदर घन हर घोर। भरि आनँद बन कुहके मोर॥
जैसैं गृहनि बिषै दुख पाइ। रहत है गृही बिरागहिं आइ॥
तिन के जाहिं संत जन जैसैं। दुख हरने, सुख करने तैसैं॥
सरनि के तट, अहँ कटक कीच। चक्रवाक बसे तिन ही बीच॥
ज्यौं कुसील घरनि मैं गँवार। बसत हैं बिबस बहर ब्यवहार॥
इंद्र के बरषत जल भरि भारी। टूटि फूटि गई सब मिंडवारी॥
ज्यौं कलि बिषैं दम-रस-स्वाद। लोपहिं भई बेद - मरजाद॥
पके आँब, जामुन अरु दाख। मधुर खजूर सु लाखनि लाख॥
तहँ मनमोहन धेनु चरावत। बज बालक समेत छबि पावत॥
सीसनि सुंदर छतना दिये। कंचन लकुट करनि मैं लिये॥
सोभित सिरनि कसूँभी खोरी। लाल निचोइ मनहुँ रँग बोरी॥
मुरली मधुर मलार सु गावत। उघरे अंबुद फिरि फिरि आवत॥
भीजि बसन सुंदर तन लपटनि। हगनवंत कहुँ अति सुख दपटनि॥
जब हरि धेनु बुलावत बन मैं। फूली नहिं समात तन-मन मैं॥
चलि न सकति ओहनि के भार। आवति स्रवत दूध की धार॥
ठाँ ठाँ द्रुमन लये मधु नये। निरखि बनौकस प्रमुदित भये॥
गिरि तें गिरत जु जल की धार। तिन तें उठत नाद झंकार॥
बल समेत, मजपाल समेत। निरखत डोलत रमानिकेत॥
पवन सहित जब बरसत मेह। परसत सीत सु कोमल देह॥
तब कंदर, कदंब के मूलनि। दुरत हैं जाइ कलिंदी कूलनि॥

कबहुँ स्वच्छ सलिल तट जाइ। सिलनि कै पार, कचोर बनाइ ॥
दधि-ओदन, बिंजन बिस्तरैं। बैठि परस्पर भोजन करैं ॥
अवर अनेक बिहार उदार। करत बिपिन ब्रजराज-कुमार ॥

शरद वर्णन

सरद समै मनभायौ कानन। स्वच्छ सलिल अरु अनिल सुहावन ॥
पानी पहुने से चलि चले। सरनि मैं सरसिज छबि सौं लसे ॥
ज्यौं जोगीजन-मन महि परै। बहुरि जोग बल निर्मल करै ॥
गगन के घन जल मल भुव पंक। जंतन की संकीरन संक ॥
सरद हरत भयौ सहजहि ऐसैं। कृष्ण-भक्ति-आश्रय दुख जैसैं ॥
अपनौ सरबसु दै करि मेह। राजत भये सु उज्जल देह ॥
सुत-बित-इच्छा परिहरि जैसैं। सोहत मुनि गतकल्मष तैसैं ॥
गिरिधर निर्मल जल की धार। कहूँ स्रवत, कहुँ नहिं निज ढार ॥
जैसैं ग्यान-अमृत कहुँ ग्यानी। देहि न देहि, दया रस सानी ॥
अलप जलनि मैं जलचर रहे। छीन होत जल नाहिंन लहे ॥
ज्यौं नर मूढ़ छिनहि छिन माहीं। छीजत आयु सु जानत नाहीं ॥
तुच्छ सलिल के पुनि ते मीन। सरद ताप तपि भये जु दीन ॥
कृपन, दरिद्र कुटुंबी जैसैं। अजितेंद्रिय दुख भरत है तैसैं ॥
सनै सनै थल-पंक मिटाई। बीरुध-तृननि की गई कचाई ॥
ज्यौं मुनि धीर सरीरनि विषै। तजत अहंता ममता इषै ॥
सुंदर सरदागम जब भयौ। निश्चल जल समुद्र कौं गयौ ॥
आतम बिषै पक चित जैसैं। त्यक्त-क्रिया-मुनि राजत तैसैं ॥
क्यारिनु बिषै किसाननु बारि। ठाँ ठाँ रोके सुदिढ़ सुधारि ॥
ज्यौं इंद्रिनि करि स्रवत है ग्यान। रोकि लेत जोगीजन जान ॥
सरद अर्क दिन तपति जु दई। उडुप उदित है सब हरि लई ॥
ज्यौं देहाभिमान कौ ग्यान। ब्रज-जुवती-दुख कौं भगवान ॥
बिनु घन गगन सु सोभित तहाँ। उदित अमल तारागन जहाँ ॥

जैसैं सुद्ध चित्त अति सरसै। ब्रह्म-ज्ञान के अरथहि दरसै॥
ससि अखंड मंडल जु गगन मैं। राजत भयौ नछत्र-सगन मैं॥
ज्यौं जदुकुल धरि अवनी देन। राजत कृष्ण कमल-दल-नैन॥
गो, मृग, खग, जुवती रसमई। सरद समै पुहुपवती भई॥
तिन के संग फिरत पति वैसैं। कृष्ण क्रिपनि-पाछे फल जैसैं॥
रबि के उगत कमल-कुल लसै। कुमुदन हँसे, सकुचि मन त्रसै॥
नृप-प्रताप ज्यौं निर्भय साधु। दुरत चोर भये चोर असाधु॥

सुनै जु उपमा सरद पर, यह बिसर्यै अध्याइ।
सरद समै के नीर जिमि, मन निर्मल ह्वै जाइ॥४६॥
'नंद' देहरी दीप जिमि, करि बीसयौं अध्याइ।
नेह-तेल भरि कंठ धरि, दुहुँ दिसि कौ तम जाइ॥४७॥

एकविंश अध्याय

अब सुनि इकईसौं अध्याइ। सरद समै वृंदाबन जाइ॥
बेनु बजैहैं मोहनलाल। तिहिं सुनि सुंदर ब्रज की बाल॥
बरनन करिहैं परम पुनीत। अहो मीत ! सुनि गोपी-गीत॥

[श्रीशुक उवाच]

सरद स्वच्छ जल-कमल जितेक। प्रफुलित भये अनेक अनेक॥
तिन की बासु बायु लै गयौ। ता करि सब बन बासित भयौ॥
तिहिं बन अच्युत मोहनलाल। गवने बल-बालक-गोपाल॥
बौरे सुघम कुसुमगन फूले। मधुकर मत्त फिरत जहँ भूले॥
तरुवर, सरवर के खग जिते। सुर भरि करत कुलाहल तिते॥
जहँ गिरि गोधन सुभ छबि छये। नित बरसत, सघोष सुख नये॥
तहँ नँद-नंदन चारत धेनु। मधुर मधुर सुर बजवत बेनु॥
जो वह बेनु-गीत सु रसाल। सुनत भईं ब्रज मैं ब्रजबाल॥
बढ्यौ जु तन-मन प्रेम अनंग। मनु रत ही हैं हरि के संग॥

बरनति भईं सखिन प्रति ऐसैं। परतछ कान्ह कुँवर वर जैसैं ॥
हे सखि! लखि नटवर वपु धरैं। करननि कँवल करनिका करैं ॥
धरैं मुकुट पटकीलौ माथ। फेरत कमल दाहिने हाथ ॥
राजति उर बैजंती माल। चलत जु मत्त द्विरद की चाल ॥
अधर सुधा मुरली के रंध्रनि। निकसति मिलि सुर सप्त सुगंधनि ॥
ता करि सब बन धूनित कियो। काहू माँझ रह्यो नहि हियो ॥
निज पद अंकित, नित कमनीय। वृंदारन्य परम रमनीय ॥
तहाँ प्रवेस करत छबि पावत। गोपवृंद जस कीरति गावत ॥
मोहन-मंत्र सों मुरली राग। सुनि कै ब्रजतिय भरि अनुराग ॥
बरनन करत भईं मिलि ऐसैं। हरि परिरंभन देत है जैसैं ॥

गोपी कहति है

हे सखि! नैंननि कौ फल यहै। सुंदर प्रियतम-दरसन चहै ॥
तिन कहुँ फल पिय-दरसन करै। छिन छिन मदन विलोकन करै ॥
यातें अवर नहिन कछु परै। निसि-वासर अवलोकन करै ॥
सो फल सखिन सहित बन बन में। बल समेत डोलत गोगन में ॥
मधुर मधुर सुर वेनु बजावत। अनेक राग-रागिनि उपजावत ॥
तानिनि के सँग स्निग्ध कटाछैं। चलत जु मंद हँसनि के पाछैं ॥
जिन करि वह सुंदर मुख चह्यो। नैंननि कौ फल तिन हीं लह्यो ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि! अवर एक छबि कहौं। प्रिय घनस्याम-राम तन चहौं ॥
नूत प्रवाल पुहुप वर गुच्छ। मत्त मयूर चंद्रिका स्वच्छ ॥
छबि-पुंजा गुंजावलि पहिरैं। तिन मैं उठति जु छबि की लहरैं ॥
कमल-दलनि की काछनि काछैं। धातु विचित्र चित्र तन आछैं ॥
चटकीलो पट कटि-तट लसैं। नील-पीत दामिनि कहुँ हँसैं ॥
ग्वालन मध्य दिखि राजत। कैसें। रंगभूमि बिच नटवर जैसैं ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! यह जु बेनु रँगभीनो । इन धौं कवन पुन्य है कीनो ॥
अधर-सुधा सरबस जु हमारो । वाकौं निधरक पीवनहारो ॥
अरु दिखि जिन के जल करि पुष्ट । ते सरिता लखियत अति तुष्ट ॥
तिन मधि नहि बिकसे जलजात । जनु अनंग भरि पुलकित गात ॥
अरु दिखि या बन के द्रुम जिते । मधु-धारा धर बरसत तिते ॥
कहत कि धनि धनि हमरो बंस । जामें उपज्यो यह बर बंस ॥
मधुन स्रवत अति हरष जु भरे । दृगनि ते जनु आनँद-जल ढरे ॥
ज्यौं कुल वृद्ध अपने कुल महियाँ । निरखि निरखि हरि सेवक कहियाँ
अति प्रमोद भरि, दृग भरि नीर । सींचत जैसें सकल सरीर ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! बृंदावन सुचि-कीरति । स्वर्ग तें अधिक भई सुनि ईरति ॥
जसुमतिसुत-पदपंकज करि कै । पाई छबि संपति हिय भरि कै ॥
अरु दिखि नँद-नंदन पर कांति । परसत नील मेघ की भाँति ॥
ता कहुँ आगम घन मानि कै । मुरली-धुनि गरजनि जानि कै ॥
निरतत मत्त मोर छबि छये । अवर बिहंगम चित्र से भये ॥
अनत नहिन सुनियत यह बात । यातें सुचि कीरति बिख्यात ॥

अन्याहुः

हे सखि ! दिखि इहि बन की हरिनी । जदपि मूढ़मति इनकी बरनी ॥
बेनु-नाद सुनि अति सचु पावति । पतिनु सहित चलि इहिँ आवति ॥
सुंदर नंद-कुँवर बर बेष । निरखत लगत न नैंन निमेष ॥
प्रेम सहित अवलोकनि दूर्सें । आदर सहित हरिहि जनु पूजें ॥
हमरे पति जु गोप अति मंद । जब इत है निकसत नँद-नंद ॥
तब जौ हम अवलोकन करें । सहि नहि परें, कवर जिय मरें ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि ! अवर चित्र इक चाहौ । गगन में सुर-बनिता किन अहौ ॥

बैठी जदपि बिमाननि महियाँ। अपने पतिन सों दै गरबहियाँ॥
दृष्टि परे साँवरे अनूप। निपटहि मनिता स्त्रव रूप॥
पुनि सुनि बेनु-गीत-गति नई। कल नहि परत बिकल ह्वै गई॥
लगे जु उर सुमार मार के। स्रवत जु कुसुम कबरि भार के॥
धीरज हरे, हिये पुनि हरें। नीबी-बंधन खसि खसि परें॥

अन्याहुः

हे सखि! देव-बधुन की रहौ। तुम इन गाइनि तन किन चहौ॥
हरि मुख तें जु स्रवत है बास। बेनु-गीत-पीयूष रसाल॥
श्रवन उठाइ पियत हैं ऐसें। नैंक कहूँ ढरि जाइ न जैसें॥
अरु देखहु बछ-बछियन ओर। सुनि कै बेनु-गीत चितचोर॥
पियत थननि मुख भरि रह्यो छीर। चित्र सी रहि गई नैयन नीर॥
गाइ-बृषभ बछ-बाछी जिती। हरि तन इकटक चितवति तिती॥
दृगनि के मग लै मोहन कहियाँ। धरि कै अप अपने हिय महियाँ॥
पुनि पुनि तहँ परिरंभन करैं। अति सुख आनँद-अँसुवा ढरैं॥

अन्याहुः

हे सखि! बन बिहंग किन हेरो। सुनत जु बेनु-गीत पिय केरो॥
बैठे रुचिर द्रुमनि की डारें। इकटक मोहन बदन निहारें॥
छुवत न फल, न बदत कछु बात। अति सुख उमगत, घूमत जात॥
निपट चटपटी सों मुख चहैं। फल प्रबाल अंतर नहि लहैं॥
मुनि पुनि कर्म फलनि तजि जैसें। अप अपनी श्रुति-साषा बैसें॥
कमल-नयन अवलोकन करैं। फलनि के अंतर नहि लहि परैं॥
तैसेंई इह बन खगगन जिते। मुनि होन के जोग हैं तिते॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि! चेतन जन की रहौ। ये जु अचेतन ते किनि चहौ॥
बेनु गीत सुनि सरिता जिती। उमगि मनोभव बियकित तिती॥

शीश जु भ्रमत भँवर अभिराम। मारत मनहि मसूसे काम॥
लै लै अमल कमल उपहार। लहरि भुजनि करि ढारहि ढार॥
पकरें चहत स्याम के पाइ। जैसें काम-बिथा मिटि जाइ॥

अन्याहु, अवर बोली

बन में घन अरु सुंदर स्याम। पसु चारत, परसत दिखि घाम॥
निरखहु सजनि मेह को नेह। छत्र करि कियो अपुनो देह॥
छाँह किये डोलत दिन संग। फुही फूल बरषत बहु रंग॥
कनक-दंड जिमि दामिनि बनी। छाजति छबि कछु परत न गनी॥
सखा भयो घन घनस्याम को। नातो मानि एक नाम को॥
जग-आरति हरने, रस-सने। दोऊ आनि एक से बने॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि! मेह-नेह की रहो। भील-भामिनी तन किनि चहो॥
प्रमुदित इत जु फिरति हैं सखी। मैं इक इनके मन की लखी॥
प्रिया-चरन कुंकुम-रस पगे। ते कुंकुम हरि पिय-पद लगे॥
पदनि तें बन-तृन भूषित भये। ते तृन इन भीलनि लहि पये॥
तिहि कुंकुम दिखि बढ़ि गयो काम। बिकल भई भीलनि की भाम॥
सो कुंकुम मुख-कुचनि लगावति। ता करि मनमथ-बिथा बिरायति॥
यातें धनि भीलनि की तिया। इहनि कछू सरफति है हिया॥

अन्याहुः, अवर बोली

देखो सखी गोबर्धन कहियौं। परम श्रेष्ठ हरि-दासनि महियौं॥
राम-कृष्ण-पद परसन करि कै। रह्यो जु अति आनंदहि भरि कै॥
नव नव तृन अंकुर छबि छये। रोम रोम जनु हरषित भये॥
गोप-बृंद गोबृंद समेत। आदर सहित सयन सुख देत॥
सीतल जल सुंदर, तृन सुंदर। सीतल अति पवित्र गिरि-कंदर॥
कंद-मूल-फल, धातु बिचित्र। अपर अनेक अनेक पवित्र॥

तिन करि सेवित सब सुखदाइक । धन्य धन्य गोधन गिरिनाइक ॥

अन्याहुः, अवर बोली

हे सखि गिरि गोधन की रहो । सुंदर नंद-कुँवर वन चहो ॥
अद्भुत गोपवेष धर करें । बेठी कंध सु मुनिमन हरें ॥
ठाढ़े गाइ गहन के काज । किये फिरत ग्वालनि कौ साज ॥
त्रैलोक्य रूप-माधुरी सरसे । रंग-रली-मुरली मधु बरसे ॥
ता करि हरे सबनि के हिये । थर कीने थिर, थिर चर किये ॥
अहो मित्र ! इहिं बिधि ब्रजगोपी । परम पवित्र कृष्ण-रस-ओपी ॥
बैठि परस्पर बरनत भईं । प्रेम-बिवस तनमय ह्वै गईं ॥
ता करि बढ्यो जु प्रेम अनंग । रम्यो चहैं हरि पीतम संग ॥
तब कात्यायनि अर्चन कर्‍यो । पायो परम उदय रस भर्‍यो ॥

'नंद' इकीस अध्याइ यह, ऐसैं सुनि चित चाहि ।
प्रिया-बचन जिमि पीय के, सुनियौंई फलु आहि ॥५६॥

द्वाविंश अध्याय

थिति बिंसत अध्याइ सुनि मित्र । बसहरन मनहरन पवित्र ॥
'नंद' गोप ब्रज की दारिका । अद्भुत अद्भुत सुकुमारिका ॥
जदपि समस्त बिवाहित आहि । नंद-सुवन के रूपहि चाहि ॥
बिबस भई पति परिहरि परिहरि । करत भई ब्रत हिय हरि धरि धरि ॥
हिम रितु प्रथम मास अभिराम । देवी कात्यायनी जु नाम ॥
तिहि पूजन जमुना-तट जाहि । तहाँ न्हाइ हविषा कछु खाहि ॥

(ब्रत कौ पूर्व भाग कहत हैं)

उठैं बड़े तन चाहनि चाहनि । बोलत छबि सौं मधुरी भाहनि ॥

(कछूक आगमोक्त भक्त तिन के नाम कहत हैं)

प्रेमकला, बिमला, रतिकला । कामकला, नवला, चंचला ॥

चंद्रकला, चंद्रावलि, चंदिनि । जग-बंदनि बृषभान की नंदिनि ॥
कामलता, ललिता, रतिबेलि । रूपलता, चंपकलता एलि ॥
अवर अनेक नहिंन कहि परैं । चंचल नैंन मैन-मन हरैं ॥
सब दिसि तें आवति छबि पावति । नूतन मंगल गीतनि गावति ॥
अमुना बिधि जमुना-तट आवति । अतिसै करि मन मोद बढ़ावति ॥
करि संकल्प सलिल में न्हाहिं । मौन धरैं बिधि सहित अन्हाहिं ॥
बहुरि कलिंदी कूल अनुसरैं । बारू की बर प्रतिमा करैं ॥
दिव्य आभरन, दिव्य 'दुकूल । चंदन, बंदन, तंदुल, फूल ॥
प्रीति सहित तिहिं अर्चन करैं । पुनि पुनि ताके पाइनि परैं ॥
अये गवरि ! ईस्वरि सब लायक । महामाइ बरदाइ सुभायक ॥
देवि दया करि ऐसें ढरौ । नंद-सुवन हमरौ पति करौ ॥
बोली बचन देवि रस भारे । पूर्न मनोरथ होहु तुम्हारे ॥
कात्यायनि तें यौं बर पाइ । बहुरि चलीं जमुना-जल न्हाइ ॥
दुहकिनि बिहरति अतिछबि केलति । जनु नव घन गन दामिनि खेलति ॥
तदनंतर सुंदर नँद-नंदन । चित की पाइ, आइ जग-बंदन ॥
नीर तीर तें चीर चुराइ । चढ़े गोबिंद कदंबनि जाइ ॥
लज्जित ह्वै धसि गईं जल गहरैं । उठत जु तामें दुति की लहरैं ॥
बदन बदन छबि दिसि कै भूली । कनक-कमल कलिंदि जनु फूली ॥
चपल दृगंचल पिय-मन-रंजन । कमल कमल जनु जुग जुग खंजन ॥
लटनि तें चुवति जु जलकन जोती । जनु ससि छिदि छिदि डारत मोती ॥
तब बोले हरि तिन तन चितै । हे अबला अब आवहु इतै ॥
आनि कै अपने अंबर गहौ । कत कौं भीत, सीत तन सहौ ॥
सत्य कहत कछु करत न खेला । आवहु चलि न बिरंब की बेला ॥
पाछैं हूँ मैं अनृत न कयै । बोल्यौ है ये जानति सबै ॥
चितै परस्पर तब सब हँसीं । बढ़ी अँखियन अति छबि लसीं ॥
रूप-उदधि भरि भरि रस आछैं । मीन चलत जिमि मीन के पाछैं ॥

सीतल सलिल कंठ परजंत। रहँ ठाढ़ी थर थर बेपंत ॥
तिन मधि मुग्ध बैस की बाला। ऐड़ सौं कहति भई विहि काला ॥
अहो अहो कान्ह, अनीति न करौ। पलि पलि कछु दई तें डरौ ॥
नंद-महरि के पूत रावरे। जानि बूझि जिनि होहु बावरे ॥
देहु बसन, परि गई अस हँसी। मरति हैं सीत सलिल में धसी ॥
पुनि तिन मैं जे प्रौढ़ा आहि। ते बोलीं हँसि हरि तन चाहि ॥
हे सुंदर बर! करहु न हाँसी। हम तौ सबै तुम्हारी दासी ॥
जो तुम कहहु, सोइ हम करिहैं। देहु बसन, बिन काजहि मरिहैं ॥
जौ न देइहौ रस भाइ सौं। कहिहैं जाइ नंदराइ सौं ॥
तब बोले ब्रजराज दुलारे। मैं समझे संकल्प तिहारे ॥
इत आवहु, रंचक न लजाहु। ब्रत कौ फल लै लै घर जाहु ॥
नंद-सुवन कौ मन हो जैसैं। निकसी सब रस-बिकसी तैसैं ॥
परम प्रेम के फंदनि परी। नंद के नंदन सेवा की करी ॥
पुनि बोले ब्रजराज दुलारे। पूर्न मनोरथ होहु तुम्हारे ॥
पै आत्यंतिक नाहिंन है है। मन-अभिलाष पाइ पुनि ऐहै ॥
मेरे विषय जु मति अनुसरै। सु मति न बहुरि विषय संचरै ॥
भुंजत धान जगत मैं जैसैं। बीज के काम न आवहि तैसैं ॥
ऐं-परि जो मो इच्छा होई। भूँज्यौ बीज निपजि परै सोई ॥
आगामिनी जामिनी ऐहै। तिन मैं तुमहि बहुत सुख दैहैं ॥
इहि बिधि बरहि पाइ छबि छई। केसे हूँ कैसैं ब्रज लौं गई ॥
बसन पये, पै मन नहिं पये। मन मनमोहन गोहन गये ॥

ब्रजतिय कौं दै अपनपौ, कृष्ण कमल-दल-नैन।
जगपतिनी अपनी करन, चले अनुग्रह दैन ॥ २८ ॥

जिन के पति जु भक्ति-रति-हीन। करमनि विषय निपट लवलीन ॥
तिन तन दृष्टि दिये मुसकात। बन के द्रुमनि सराहत जात ॥
सखन सौं कहत कुँवर नँदलाल। अहो भोज, अहो ओज रसाल ॥

राजति कंचन पीढ़नि बैठी। सोहति सुंदर भौंह अमेठी॥
पहिरे अद्भुत मनिमय भूषन। अद्भुत बसन नहिन कछु दूषन॥
डहडहे बदन निरखि सिसु भूले। कंचन-जलज आँगन जनु फूले॥
द्विजपतिनिन के पाइनि परे। आवैं कहत महा मुद भरे॥
हे द्विजपतिनि! कान्ह मनमोहन। आये इतहि गाइ-गन-गोहन॥
छुधित आहि कछु भोजन दीजै। सखनि सहित अघाइ सो कीजै॥
जिन के दरसन हित अरबरती। पतिन सौं बिनती करती अरती॥
जुग जुग भरि निसि-बासर भरती। नैननि नींद नैंकु नहिं परती॥
ते अच्युत ब्रजराज दुलारे। निकटहिं पाये प्रानपियारे॥
चारि प्रकार बिचित्र सुब्यंजन। भक्ष्य, भोज्य, चुस, लिह, मनरंजन॥
लै चलीं कंचन भाजन भरि भरि। सुत-पति तिन सौं अरि अरि लरि लरि
रोकि रहे सुत-पति अपनो सौं। मानत भईं ताहि सपनो सौं॥
जैसें समगति सावन-सरिता। कौन पै रुकहि प्रेम-रस-भरिता॥
जमुना निकट सुभग इक बाग। सब असोक तरु अति बड़भाग॥
इक तरु तरे कुंवर घनस्याम। ठाढ़े कोटि काम अभिराम॥
पीतबसन बनमाल रसाल। मोरचंद्र छबि छाजति भाल॥
सखा कंध बाईं भुज दिये। केलि-कमल दच्छिन कर किये॥
अद्भुत गुनगन सुनि हिय धरि धरि। रही हुती उत्कंठा भरि भरि॥
सो साच्छात प्रगट रस भरे। अति रोचन लोचन-पथ परे॥
दृग-रंध्रनि करि अंतर लये। तहँ प्रभु कौं परिरंभन दये॥
सुखित भईं तिहि छिन सब ऐसें। सुरिय अवाध पाइ मुनि जैसें॥
तब बोले हरि हे बड़भागि! नीके आईं भरि अनुराग॥
ब्रतबंधन जे हुते तिहारे। ते तुम तिन से लघु करि डारे॥
मो दरसन हित इत अनुसरीं। उचित करी, अनुचित नहिं करी॥
जे जन निपुन जथारथ बेदी। स्वारथ अरु परमारथ भेदी॥
ते मो बिषे भक्ति-रति करैं। फल न कछू रंचक चित धरैं॥

हम सब ही के आतमा आहि। ततवेत्ता लोग है याहि ॥
प्रान, बुद्धि, मन इंद्री, देह। पुत्र, कलत्र, मित्र, धन, गेह ॥
जाके अध्यास तैं अचेत। प्रिय लागत अपनपे समेत ॥
सो तुम करि हम पाये सबै। धनि धनि धन्य भईं तुम अबै ॥
अब तुम देवि जजन प्रति जाहु। द्विज-अग्यनि कौं करहु निबाहु ॥
तुम करि यज्ञ समापति करिहैं। अवर न कछू तनक मन धरिहैं ॥
कहन लागीं तब सब द्विज तिया। सुनि यह बात बहकि गयौ हिया ॥
हे सुंदर बर सरसिज-नैन। जिनि बोलहु अस करकस बैन ॥
अपनि प्रतिग्या सत किन चहौ। बेद-पुराननि मैं बपौं कहौ ॥
मन-क्रम-बचन जु चेरी मेरौ। सो भव-भवन न करिहै फेरौ ॥
हम पद-पंकज प्रापत भईं। सहजहि सब उपाधि मिटि गईं ॥
पद अवसिष्ट जु परम रसाल। डारहुगे तुम तुलसी-माल ॥
सो नित अलक रलक मैं धरिहैं। सरन परी पद-अर्चन करिहैं ॥
अहो अरिंदम, नंद के तारक! काम, लोभ, मद, मोह बिदारक ॥
अब तो पति, सुत, बांधव जिते। हमहिं तौ तनक छुवहिं नहिं तिते ॥
तातैं अवर गति न हरि हमरी। दास्य देहु, दासी भईं तुम्हरी ॥
तब बोले ब्रजराज के नंदन। जग-बंदन, जग-फंद-निकंदन ॥
पति, सुत, मित्र, सुहृदजन जिते। नहिंन असूया करिहैं तिते ॥
लोक तौ सबै हमारे किये। रोकि रहे हम सब के हिये ॥
अरु देखहु ये देव जितेक। हमरी आग्या मध्य तितेक ॥
बुरो जु मानै सो वह कौन। सर्वबियापी हम जिमि पौन ॥
प्रेम बुद्धि जौ कीनी चहौ। तौ तुम मो तैं न्यारी रहौ ॥
बिरह मैं चित्त समाधि लाइहौ। तुरतहि तब मो कहूँ पाइहौ ॥
ऐसैं जब हित सौं हरि बरनी। घर आईं तब सब द्विज घरनी ॥
किनहूँ नहिंन असूया कीनी। सुत-पति सघन सुजन भरि लीनी ॥
तिन मैं इक जु हुती पति गही। जान न पाइ, बहुत पचि रही ॥

अहो सुबल, अर्जुन, अहो अंस। अहो श्रीदामा, बंस अवतंस॥
देखहु ये कैसें द्रुम बने। छत्र से तने, सबै गुन सने॥
जिन के तरहर सियरे सियरे। फल पियरे पियरे अरु नियरे॥
दल करि, फल करि, फूलनि करिकै। बक्कल करि, अरु मूलनि करिकै॥
पर काज ही सबै कछु जिन कौं। धनि है जग मैं जीवन तिन कौं॥
बात बरष अपने-तन सहैं। काहू सौं कछु दुख नहिं कहैं॥
बैठत आनि छाँह हम बरसे। घाम मैं सुंदर सीतल परसे॥
ऐसें कहत कहत छबि छये। बल समेत जमुना-तट गये॥
पहिले जल गाइनि कौं दियौ। ता पाछे आपुन पय पियौ॥
बिबि बिसति अध्याइ यह, सुनै जु हित चित लाइ।
धनु देखे खग-भवलि जिमि, पाप-मवलि उड़ि जाइ॥२२॥

त्रयोविंश अध्याय

अब सुनि त्रयबिंसत अध्याइ। द्विज अरु द्विजपतिनिन के भाइ॥
ठाढ़े हुते जमुन के तीर। बल-अरु सुंदर वर बलबीर॥
श्रीदामादि ग्वालगन जिते। आरत भये छुधा करि तिते॥
बलइरन हित हरि के संग। देखत गोरबधुन के रंग॥
भोर चढ़े देखन उठि आये। भोजन कछू लेन नहिं आये॥
यातें भूले हैं व्रजवाल। आये तहँ जहँ मोहनलाल॥
अहो बलराम अतुल बलधाम। हो घनस्याम, परम अभिराम॥
भूख लगी मिया उद्यम करौ। प्रान प्रहारनि पापिनि हरौ॥
जगपतिनीन अनुग्रह दैन। बोले तब हरि करुना-ऐन॥
इत ये जाग्यक जग्यहि करैं। स्वर्ग-काम-हित पचि पचि मरैं॥
तिन पै जाहु, न तनक डराहु। अरु आचरया तें न लजाहु॥
लीजहु जाइ हमारौ नाम। बल अरु, बल भैया घनस्याम॥
ये ठाढ़े दोऊ वट तरैं। तुम सौं कछू प्रार्थना करैं॥

जो न देहि, वे रिस मरि जाहिं । लाज तौ हमहि, तुमहिं तौ नाहिं ॥
यौं जब कान्ह कुँवर करि कह्यौ । ग्वालन यौं सुनि नाहीं गह्यौ ॥
गये जग्य जहँ थर थर डरते । बहुत भाँति दंडौवत करते ॥
अंजुलि जोरि हरात हरात । कहन लगे विप्रनि सौं बात ॥
हो भूदेव ! सुनहु इत हम पै । राम-कृष्ण करि पठये तुम पै ॥
ओर के आये गोधन संग । खेलत खेलत अपने रंग ॥
घर तैं कछु भोजन नहिं लाये । भूखे हैं, अब तुम पै आये ॥
श्रद्धा होइ तौ ओदन दीजै । धर्मविरुद्ध करम कत कीजै ॥
कहँ यह हरि ईश्वर कौ जचिवौ । कहँ यह द्विजनि कौ मद कर मचिवौ ।
सुनत न सुनैं, भरे अभिमान । जनु इन द्विजनि के नैन न कान ॥
पुनि जब भौंह अमेठन लागे । तब ये ग्वाल-बाल डरि भागे ॥
जिन कामनि करि अधिक कलेस । फल अति तुच्छ मिटै न अँदेस ॥
तिन मधि मूढ़ धरि रहे आस । छुवौ न अमृत पाइ अनयास ॥
ह्वै निरास बालक उठि आये । समाचार हरि प्रभुहि सुनाये ॥
नंद-कुँवर तब हर हर हँसे । हँसत जु रदन मदन मैं लसे ॥
अस कछु जगमग जगमग होइ । मानिक ओपि धरे जनु पोइ ॥
सखनि सौं बहुरि कहत रस-सने । रे भैया न होहु अनमने ॥
अरथी ह्वै बैरागहि आवै । सो अरथी अरथी न कहावै ॥
लाघव ह्वै जग में अब कौन । जचत अनादर भयौ न जौन ॥
ऐसैं लोक-रीति दिखराइ । पुनि बोले प्रभु मृदु मुसकाइ ॥
अहो मित्र इन की तिय जिती । हम कौं नीके जानत तिती ॥
देहमात्र वे बसति गेह मैं । सदा मगन अद्भुत सनेह मैं ॥
तिन पै जाहु, लजाहु न भिया । समझौंगे सब तिन को हिया ॥
सुभग-सुगंध, स्वच्छ बर-ब्यंजन । दधि-ओदन मोहन मन-रंजन ॥
देहैं जात, निसंक न लैहैं । अपने करनि लिये ही देहैं ॥
जगपतिनिन के गृह हैं जहाँ । सकुचत सकुचत गवने तहाँ ॥

सब नँद-सुवन सुने हे जैसें। अपने हिय मैं धरि के तैसें॥
बजति भई तिहि तन कहुँ ऐसें। जीरन पट कोउ डारत जैसें॥
रे पिय जहाँ ममत है तेरो। यह ले अब का करिहै मेरो॥
दिव्य देह धरि के वहि घरी। सबन त आगे सो अनुसरी॥
तिन सायुज्य परम गति पाई। इन के संग फिरि न घर आई॥
जगपतिनिन जे व्यंजन आने। जेंइ के गोप-गोविंद अघाने॥
द्विज जु कहावत हे अति बड़े। तियन की गतिहि देखि सब गड़े॥

'नंद' गोबिंद की भक्ति बिनु, बड़ौ कहावत कोइ।
बुझे दीप कहँ ज्यौं बड़ो, कहियत वह गति सोइ॥

तियनि की गतिहि निरखि द्विज जिते। पश्चाताप करत भये तिते॥
जो प्रभु निगम अगम करि गाये। जेंवन मिस ते हम पै आये॥
धिग धिग हम,धिग धिग ये क्रिया। धिग धिग विप्र-जन्म,धिग जिया॥
धिग बहुग्यता, धिग सब ह्पै। बिमुख जु कृष्ण अधोछज बिषै॥
यह प्रभु की माया मोहनी। जोगीजन-मन की जोहनी॥
जा करि हम द्विज हैं मद भरे। गुरु कहाइ सठ मठ मैं परे॥
जिन कें न कछु सोच आचार[1]। गुरुकुल सेव न तत्त्व बिचार॥
नहिं जप,नहिं तप,नहिं सुभक्रिया। कर्कस, कुटिल,जटिल नित हिया[2]॥
तिन कें भई भक्ति-रति जैसी। देखी-सुनी न कितहूँ ऐसी॥
सम्यक द्विज करमनि करि भरे। ते हम हैं भ्रम मारत परे॥
हम करि जदपि सुन्यौ अवतार। जदुकुल बिषैं हरन भू-भार॥
पुनि आये इत करुना-कंद। जाचन पूरन परमानंद॥
ओदन कहा चाहिये तिन के। कमला पाइ पलोवत जिन के॥
सुमिरि सुमिरि ग्वालनि की बात। करनि मींजि सब द्विज पछितात॥
पुनि कहैं हम हूँ उत्तम भये। बन के सब संसय मिटि गये॥
जिन की ऐसी तिय बड़भागि। तन-मन-रही कृष्ण-अनुराग॥

१. भक्ति न कीय। २. हीय।

जिहि अनुराग हमारे हिये। चपरि कै कमल-नैंन मैं किये ॥
अयविंसति अध्याइ यह, सुनि नीके सुख-कंद।
जप, तप, व्रत, संयम न कछु, कृष्ण-भक्ति बिनु 'नंद' ॥

चतुर्विंश अध्याय

चहुविंस अध्याइ अनूप। सुनि हो मित्र! परम सुख रूप ॥
जामैं गिरि गोवर्धन पूजा। अति पुनीत अस गीत न दूजा ॥
द्विजनि कौ किया गर्व सब हरयौ। चाहत इंद्रहि निर्मद करयौ ॥
इंद्र को जग्य करन जब लगे। गोपी-गोप महा मुद पगे ॥
पूछत हरि अजान से भये। मंद मुसकि सु नंद ढिग गये ॥
कहहु तात यह बात है कहा। भवन भवन आनँद है महा ॥
कवन सु फल, काके उद्देस। कवन देवता सेस-सुरेस ॥
मो मन अति अभिलाष है कहौ। लरिका जानि धाइ जिनि रहौ ॥
यह करनी तुम साख्र तैं पाई। पै किधौं परंपरा चलि आई ॥
कैधौं लौकहद है तात। मो सौं कहौ कहा यह बात ॥
नंद जु कहत मेघगन जिते। मघुवा के बसवर्त्ती तिते ॥
अपनौ जीवन जग मैं बरषै। दुख करषै, सब जंतुन हरषै ॥
तातैं यह जु पुरंदर आहि। जजत हैं जग्यनि करि नर ताहि ॥
हम हूँ सब यह विधि बरेस। करत हैं ज्यौं रस देइ सुरेस ॥
ता करि अर्थ, धर्म अरु काम। पावहिं सबै पुरुष विश्राम ॥
परंपरा चलि आयौ धर्म। अहो तात नहिं अब कौ कर्म ॥
जो नर याकौं नाहिन करै। लोभ-द्वेष-भय तैं परिहरै ॥
सो नर नहि पावै कल्यान। कहत हैं वेद पुरान सुजान ॥
महानंद, उपनंद, सुनंद। निजानंद अरु बाबा नंद ॥
ऐसैं करि जब सबहिन कह्यौ। सब के ईस्वर नाहिन गह्यौ।
सुरपति अति श्रीमद करि छयौ। महा गरब परबत चढ़ि गयौ ॥
तहँ तैं ता कहुँ डारयौ चहैं। करम की गति जिये बातैं कहैं ॥

पै परि नहिं समान ये तिन हो। सुरपति मान-भंग के हित हो॥
इंद्रहि दिये दिवाइ इंद सौं। बोले मंद मुसकि नंद सौं॥
अहो तात यह देव न कोई। करम की गति जु होइ सो होई॥
कर्महि करि उपजत ये जंत। कर्महि करि पुनि सब कौ अंत॥
कुसल-छेम, सुख-दुख, भै-अभै। होत हैं ये कर्मनि करि सबै॥
रज गुन करि बरसत हैं मेह। बरषत सब ठाँ नहिं संदेह॥
ऊसर पर, पर्वत पर परैं। ते सब कहाँ जाय हैं करै॥
हमरे नहिं पुर-पट्टन ग्राम। बन, गिरि, नदी, निकट बिस्राम॥
जहँ सुख तहँ हम बसहिं निसंक। करिहै कहा पुरंदर रंक॥
एक करहु जगपन कौं मितो। करते सुर सामग्री जितो॥
और कछू जिय मैं जिनि आनौ। मेरौ कह्यौ सत्य करि मानौ॥
सुनतहिं मोहन मुख की बानी। भले भले कहि सबहिन मानी॥
कुल-मंडन सपूत सुख-दैना। सब के जीवन, सब के नैना॥
रचहु बिबिध परकार सुब्यंजन। सुभग, सुगंध, स्वच्छ, मनरंजन॥
पुवा, सुहारी, मोदक भारी। गूझा, दल-मूँगा, दधि न्यारी॥
मिस्री-मिस्रित-पायस करी। बर संभार भात बिस्तरी॥
मुद्गा दाली, घृत की खाड़ी। रस के कंदर सुंदर-साली॥
जैसें नंद-सुवन उचर्यौ। प्रीति सहित तैसें ही कर्यौ॥
पूजन चले गोप गिरि गोधन। आगे करि लिये अपने गोधन॥
कंचन-सकटनि चढ़ि चढ़ि गोपी। चलीं जु तिनहूँ सबै बिधि ओपी॥
सुंदर नंद-कुँवर गुन गावति। भाग भरी सब राग रिझावति॥
हरि धरि गिरि कौ सुंदर रूप। बैठे बिकसि सु निकसि अनूप॥
गिरि के द्वै द्वै रूप बनाये। इक जड़, इक चैतन्य सुहाये॥
गोबरधन की मूरति दुसरी। श्री गोबिंदचंद हित कुसरी॥
दिखि कै गोप महा सुख भरे। नमो नमो कहि पाइनि परे॥
तिन के संग रंग हरि करैं। अपने पाइनि आप हि परैं॥

जेंविक भोजन मन तें आयौ। गिरि रूपी हरि खिगरौ खायौ॥
भई प्रतीति, भरे मुद भारी। देहिं प्रदच्छिन नर अरु नारी॥
फिरत जु छवि वाढ़ी तिहि काल। गिरिधर जनु मनि-कंचन-माल॥
कहन लगे देखौ तुम्हरे काजा। प्रगट भयौ यह गिरिन कौ राजा॥
यहैं मेघ है बरषा बरपै। कालरूप है यह आकापै॥
बिछी, ब्याल, वृक, केहरि जिते। याके डर छ्वै सकत न तिते॥
ऐसें करि पुनि पाइनि परे। घर आये अति आनँद भरे॥

चतुबिंस अध्याइ यह, कोउ चतुर सुनिहै जु।
जे दिन बीतें अनसुने, तिन कौं सिर धुनिहै जु॥२८॥

पंचविंश अध्याय

अब सुनि पंचबिंस अध्याइ। पंचबिंस निर्मल ह्वै जाइ॥
सुनि कै इंद्र भरयौ रिस भारी। लाग्यौ देन सबनि कौं गारी॥
घन-मद-अंध नंद को बेटा। सो भयौ हमरे मख को मेटा॥
ताके बल करि मो सौं घाती। रहिहैं गोप कहाँ किहि भाँती॥
ज्यौं कोउ तरन पूँछ कर धारे। तरयौ चहै सठ सिंधु अपारे॥
मूड़ की ज्यौं कोउ नाव बनावै। मूढ़ तहाँ लै कुटँब चढ़ावै॥
ऐसें गोपन कृष्ण भरोसें। महा बैर कीनौ है मो सें॥
अब देखौ कैसी बिललाऊँ। गोकुल गाँवहि खोदि बहाऊँ॥
बोले मेघन के गन सोइ। जिन के जल जग परलै होइ॥
परमातम पर पीर के नाइक। कृष्ण कमल-लोचन सुखदाइक॥
ठाइन कहत कि तिन की कुटी। इंद्र मूढ़ की चाख्यौ फुटी।
'नंद' कहत श्रीमद सब ऐसें। सुनें न सुत कुबेर के जैसें।
उमगे घन-गन रिस भरि भारे। ताते, राते, पियरे, कारे।
तड़तड़ाहिं तड़ि बज्र से परैं। घरहराहिं घन ऊधम करैं।
चली अपरबल बात बघात। बड़े जात कहि बनति न बात।

तब मजजन जित तित तें धाये। सुंदर नंद-कुँवर पै आये ॥
धौरी धौरी धेनु जु दौरी। बड़ी बूँदनि के दुख बौरी ॥
नमित सु ग्रीव, पुच्छ उच किये। दुबिकि छतिन तर बछरन लिये ॥
गोपिन पै कहि बनति न बात। थर थर कंपत कोमल गात ॥
हो श्रीकृष्ण कृष्ण, जगनाइक !। असुभहरन, सुभकरन सुभाइक ॥
गोकुल के तो तुम हीं नाथ। जैसें मीन दीन के पाथ ॥
कुपित भयो सुरपति मदवारौ। हमरो अवर कवन रखवारौ ॥
बोले हरि बिलोकि तिन माहीं। कत भय करत, इहाँ भय नाहीं ॥
मुसकत मुसकत स्याम सुहाये। छबि सों चलि गिरि गोधन आये ॥
झट दै उचकि लियो गिरि ऐसें। साँप बेठना को सिसु जैसें ॥
गोपी-गोप, गाइ-बछ जिते। अपने सुख रहे तिहि तर तिते ॥
बाम हस्त पर गिरि अस बन्यो। फूल को जनु कि छत्र है तन्यो ॥
ललित त्रिभंग अंग किये ठाढ़े। मुरली अधर धरें छबि बाढ़े ॥
गिरि-मूल तें जु गिरि की धात। गिरि गिरि परी साँवरे गात ॥
अरुन, पीत, सित अंग सुहाये। फागु खेलि जनु अब हीं आये ॥
मित्र कहत अचरिज मो हिये। ठाढ़े हरि त्रिभंग तनु किये ॥
दुहूँ कर बेनु बजावत नाथ। सखा-मंडली राजत साथ ॥
'नंद' कहत अचरिज जिनि मानि। गिरिवरधर अचरिज की खानि ॥
बाम हस्त लाघवता ऐसी। तरल अलात-चक्र-गति जैसी ॥
कृष्ण-कल्पतरु है जहँ बने। सब सुख बरसत, बर रस सने ॥
तब इक उपमा मो मन भई। कही कहत, किधौं उपजी नई ॥
परबत पर तरु होत हैं घने। तरु पर परबत होत न सुने ।
जलद जु बरषन लागे पानी। कह कहियै, कछु अकथ कहानी ॥
महा प्रलै को जल है जितो। गोबरधन पर बरस्यो तितो ॥
[illegible] नग खग अरु तरु बेली। तिन पर फुही न परी अकेली ॥
[illegible] बज्र चलाये। पावनि लगि तेऊ नहिं आये ॥

सात दिवस अद्भुत कर ठान्यौ । ब्रजबासिनि तन कौ नहिं जान्यौ ॥
सुंदर बदन बिलोकनि आगैं । भूख प्यास डर कौनहिं लागैं ॥
निकसे तब जब गिरिधर भाख्यौ । गोबरधन फिरि तहँई राख्यौ ॥
प्रेम-भरी बनिता जुरि आईं । बारहिं बारनि लेहिं बलाईं ॥
चूमति बदन जसोमति मैया । इत धुरि रह्यौ बड़ौ बल भैया ॥
नंद परम आनंदहि पाइ । पूतहि रह्यौ लगौ लपटाइ ॥
मुनिबर, सुरबर, सिवबर जिते । बरषत कुसुम भरे मुद तिते ॥
दुंदुभि-धुनि, दुख-धुनि हिय हरैं । जै जै धुनि पुनि मुनिबर करैं ॥
गावत गुन गंधर्ब सु गाइनि । नृत्त अपछरा चाइनि चाइनि ॥
तिन मधि यह अमरनि कौ रानौ । हो रानौ पै निपट खिसानौ ॥
हरि दिखि तकि, अपनी दिसि तकै । सुरनि मैं बदन दिखाइ न सकै ॥
करन मींडि पछितात है ऐसैं । सुरापान करि द्विजबर जैसैं ॥
तदनंतर गोपी अरु गोप । ओपे परम ओप की ओप ॥
लोकनि लै निज लोकनि चले । रंगनि रले, लगत अति भले ॥
तिन मैं गोप-बधू सुख बरसैं । नूतन गीतनि सरमन परसैं ॥
तिन आगें हरि अरु बलराम । आवत कर जोरैं छबि-धाम ॥
कछुक कहत सब के हिय हरतें । पुहुपनि पर पद-पंकज धरते ॥
खेल को खेलि कै इहिं परकार । ब्रज आये ब्रजराज-कुमार ॥

> बल अनुजहि जु मनुज किये, जानैं जग मैं कोइ ।
> अहो 'नंद' इहिं इंद्र जिमि, दई बिगारै सोइ ॥३१॥
> पंचबिंस अध्याइ यह, यौं हिय मैं धरि राखि ।
> रसिक भक्त बिन आन सौं, 'नंद' न कबहूँ भाखि ॥३२॥

षड्विंश अध्याय

अब सुनि षडबिंसवि अध्याइ । नंद गरग के बचन सुनाइ ॥
समाधान गोपनि को करिहैं । बाल-चरित-प्रभु पुनि बिस्तरिहैं ॥

अद्भुत कर्म कुँवर कान्ह के। निरखि गोप सब अति चकमके॥
बिसमय भये, महा छबि छये। मिलि कै नंद महर ढिग गये॥
अहो नंद यह तुम्हरौ तात। यामें सब अचरज की बात॥
क्यौं बूझियै जनम हम माहीं। हम गँवार या लाइक नाहीं॥
कहँ यह सात बरस को बारो। कहँ यह गिरि गोबरधन भारो॥
कर करि उचकि लियौ यह ऐसें। मद गजराज कमल कों जैसें॥
अरु जब प्रथम हैस बर बारे। आँखियौं नाहिन हुते उघारे॥
आई तब जु बकी तक तकी। देति भई विष, नहिं कछु सकी॥
पय सों ताके प्रान पिलाइ। जैसे काल पेन लै जाइ॥
पुनि वह सकट बिकट भर भरयो। तामैं आनि असुर इक अरयो॥
तनक चरन ऐसें करि करयो। तब वह सकट उलटि ही परयो॥
पुनि जब एक बरष को भयो। तृनावर्त्त उड़ि लै नभ गयो॥
ऐसें कठ घोटि के मारयो। बहुरयौ आनि सिला पर डारयो॥
अरु जब चोरी माखन खात। पकरे बाँधे जसुमति मात॥
जमलार्जुन मधि आइ झुमाइ। कैसे गिरि से दिये गिराइ॥
अरु वह बच्छरूप ह्वै आइ। कैसें पकरे पिछले पाइ॥
दियो फिराइ, उपर ही मरयो। कितक कपित्थ साथ लै परयो॥
बकी अनुज बक बछरन चारत। आयो सबनि सँघारत मारत॥
कर करि चोंच बिदारयो कैसें। चीरत कोउ पटेरहि जैसें॥
धेनुक खर अति बल कलमस्यो। बलदाऊ कैसें दलमस्यो॥
ताके बंधु हेत से करे। ऊँचे फल तिनहूँ करि झरे॥
गोप भेष करि असुर प्रलंब। कैसें गयो न लग्यो बिलंब॥
पसु अरु पसुप दवानल माहीं। चकित भये जित-कित ह्वै आहीं॥
कैसें राखि आपने लये। आगिनिहि तदन भच्छन करि गये॥
अरु यह काली गरल बिषाली। ताके फन पर चढ़ि बनमाली॥
तांडव नृत्य नचे सो कैसें। देखे सुने न कितहूँ ऐसें॥

जमुना कैसें निर्मल भई। मानों बहुरि नई करि छई।
अहो नंद! ब्रजजन हैं जिते। नर-नारी पसु-पंछी तिते।
तेरे सुत कौं सब की प्रीति। कोउ सुभाइ कछु पेखिय रीति।
संका उपजत इहि तन माहिं। जैसें सब कौ चेसा आहि।
कत यह सात बरस कौ सबै। फूल सौं उचकि लियौ गिरि तबै।
यातें संका उपजति महा। कहौ नंद सो कारन कहा।
तिन के समाधान ब्रजराइ। कहे गरग के बचन सुनाइ।
नामकरन मधि अच्छन लहे। अरग-अरग वे मो सौं कहे।
याके चरित परत नहिं बरने। हिय-हरने जग-मंगल-करने।
स्वजल बदन और इक पीत। अब श्री कृष्ण सु परम पुनीत।
पूरब जन्म कहूँ हुत तेरो। पूत भयौ है बसुदेव केरो।
तातें बासुदेव इक नाम। पूरन करिहैं सब के काम।
और बहुत हुव सुत के नाम। सब गुन-धाम परम अभिराम।
रूप अनँत, गुन-कर्म अनंत। गनत गनत कोउ लहै न अंत।
अरु यह बहुत श्रेय कौं करिहै। तुम्हरी सबै आपदा हरिहै।
जे यासौं करिहैं अनुराग। तिन सम अवर नहिन बड़भाग।
असि परिभव करि छिपनि कैसें। हरि अनुसरि नर सुर भयो जैसें।
नाराइन मधि गुन हैं जिते। तेरे सुत मैं झलकत तिते।
श्री, कीरति, संपति रसमई। नाराइन हू तें अधिकई।
यातें याके करमनि माहीं। रंचक बिसमै करिये नाहीं।
सुनि ये बचन नंद के नये। गोप सबै गत-बिस्मय भये।

षड्विंसत अध्याइ यह, षडबिंसत जु अनूप।
सो गिरिधर प्रभु 'नंद' के, हृदयें आश्रय रूप ॥२५॥

सप्तविंश अध्याय

अब सुनि सप्तविंश अध्याइ। जामें इंद्र मंद लजि आ॥

बिनती करि, परि हरि के पाइ। जैहै पर अपराध छिमाइ॥
अद्भुत कर्म कान्ह जब करयौ। छत्राकार महा गिरि धरयौ॥
ऐसें गाइ गोप ब्रज राखि। बोले सुर मुनि जै जै भाखि॥
तब वह सुररानौ बिलखानौ। भायो कितहूँ वे बिररानौ॥
लोकनि मुख दिखाइ नहिं सकै। नंददुलारेहि न्यारोहि तकै॥
तनक कहूँ एकांतहि पाइ। धाइ आइ हरि ले रह्यौ पाइ॥
रवि सम मुकुट चरन पर लुठै। पुनि पुनि पगनि घुरै नहिं उठै॥
देख्यौ-सुन्यौ प्रभाव जु प्रभु को। गिरि गयौ गर्व जु लोक तिहूँ को॥
क्रम क्रम छुट्यो सु धर धर धरै। अंजुलि जोरि स्तुती अनुसरै॥
हो प्रभु सुद्ध सत्वमय रूप। एवमेव पुनि नित्य अनूप॥
रज गुन, तम गुन, ये सब डरैं। तुम कहुँ दूरि परे ते परैं॥
हम रज गुन, तम गुन करि भरे। अंध दुरंध गर्व-मद-भरे॥
दुष्ट-दमन तुम्हरो अवतार। हे अद्भुत ब्रजराज-कुमार॥
परम धरम रच्छा लु करत हो। हम से खलन कौं दंड धरत हो॥
जो कहौ सक्तिवान अब कौन। तुम कौं दंड धरि सकै जौन॥
तुम तो त्रिभुवन-कारन, पालक। हम ब्रजजन गोपालक बालक॥
तहाँ कहत हँसि सुरपति बैन। हो श्रीकृष्ण कमल-दल नैन॥
जगत-जनक, गुरु-गुरु, तुम स्वामी। सब जंतुन के अंतरजामी॥
तुम ही महा दुराधद काल। धारे दंड प्रचंड कराल॥
तुम तो उचित दंड को धरयौ। मो से उन्मद को मद हरयौ॥
जौ कहौ तुम्हरो हम कहा कियो। ब्रज आपनो राखि है लियो॥
तहाँ कहत सुरपति हो नाथ। तुम्हरे तनक रोक के साथ॥
मोहेन कौं जु महा अभिमान। मर्दन होत जानि-मनि ज्ञान॥
नहिं जान्यो तुम्हरो परभाव। मद भयौ सुरराव कहाव॥
मंद बुद्धि हौं निपट अबाधु। छमा करहु मेरो अपराधु॥
अब प्रभु मो पै ऐसें ढरौ। पेखि अधम मति बहरि न घरौ॥

श्रीमद करि जु अंध ह्वै गयो। मनु अंजन रंजन तुम दयो॥
तुम ईश्वर गुरु आतम अपने। और सबै रजनी के सपने॥
ऐसें स्तुति सरसिज नैंन की। कीनी इंद्र अभय-पद-दैंन की॥
तब बोले हरि ढरि इहि भाइ। मधुर बचन, मधुरे मुसकाइ।
अहो अमर वर हो बड़भाग। मैं मेट्यौ जु रावरो जाग॥
ह्वै गयो हुतो निपट मतवारो। श्रीमद-मान-पान करि भारो॥
भूलि गये है हम तुम ऐसें। पुनरपि काज न ह्वैहै जैसें॥

गर्ब करो जिनि भूलि कोउ, गृह-जन-धन को पाइ।
'नंद' इंद्र तें को बड़ो, दीनो धूरि मिलाइ॥१८॥

तदनंतर सुरभी इक आइ। बंदे नंद-सुवन के पाइ॥
जग में कामधेनु हैं जिती। आईं ताके गोहन तिती॥
स्तुती करति हैं, नैंन भरति हैं। पुनि पुनि प्रभु के पाइ परति हैं॥
हो श्री कृष्ण अमित परभाव। बलि कीनो इहि सरल सुभाव॥
इंद्रहि मद तो तुम हीं करे। अजहूँ मत्त न डर उर धरे॥
हती हुती हरि बिन हरयारे। राखी सुंदर कान्हर बारे॥
बावरो हुतो रह्यो यह मंद। बलि बलि तुम कहुँ करिहैं इंद॥
गाइ-बिप्र देवता जितेक। तुव पद-पंकज परत तितेक॥
अब तें हमरी रच्छा करहु। ऐसें इंद्र बिना ही सरहु॥
अभिषेक कौं करन जगमगो। छोलति सुरभि प्रेम रँगमगो॥
अपने पै कंचन-घट भरे। सुभग सुगंध सरब सौं भरे॥
गगन गंग को जल नवरंग। आये कर करि अमर ते अंग॥
कंचन-आसन पर ब्रज-चंद। बैठारे जब सब सुख-कंद॥
तिहि छिन गन गंधर्ब जितेक। बिद्याधर चारन जु तितेक॥
लगे जु प्रेम बिमल जस गावन। जिन के सुनत होइ जग पावन॥
नचत अप्सरा अति मद भरी। जन नग-नरी छग्न की छरी॥

अमर नगर तें बरषत फूल। सब के हिये समात न मूल ॥
होन लग्यो अभिषेक जु महा। तिहि छिन की छबि कहियै कहा ॥
कुटिल अलक तें चुवत जलकनी। बदन की दुति पुनि परति न गनी ॥
मनु अंबुज-रस अलि अनियारे। मुख भरि भरि डारत मतवारे ॥
धरयो गोबिंद नाम अभिराम। पूरन भये सबनि के काम ॥
जब हीं इंद्र भये गोबिंद। ठाँ ठाँ उमगे परमानंद ॥
बूड़ि गई, कछु परति न बरनी। छाई रहति दूध करि धरनी ॥
सरितनि की कछु जात न कही। उमगि उमगि सब रस भरि बही ॥
जंतु सबै अति हर्षित भये। सहज प्रसन्न दुरमति मिटि गये ॥
फूले फूल-रहत द्रुम जिते। मधुर मधुर मधु बरषत तिते ॥
रत्न अनेक भाँति ही नये। उपजत भये बिना ही बये ॥
नगनि मध्य नग हुते जितेक। लै लै ऊपर बैठे तितेक ॥
मंद सुगंध पवन जित सरसै। करकस ह्वै कहुँ तनक न परसै ॥
स्वर्ग तें सुंदर सुंदर फूल। बरष्यौ करत सदा अनुकूल ॥
इंद्र-गोबिंदहिं दै अभिषेक। सुर, मुनिगन, गंधर्ब जितेक ॥
आग्या पाइ चले निज लोक। सुखित भये तब हीं सब लोक ॥

सप्तबिंस अध्याइ यह, इंद्र भये गोबिंद।
'नंद' नैंक इहि गाइ यौं, को है कलि-मल मंद ॥२५॥

अष्टविंश अध्याय

अब सुनि अष्टबिंस अध्याइ। पैहौ जहाँ निरोध के भाइ ॥
सुरपति तनमद कौ मद हरयो। अब पाहत बरुनहिं बस करयो ॥
परमानँद मूरति जो नंद। अरु घर में सुत सब सुख-कंद ॥
सो एकादसि ब्रत आचरै। हरि इच्छा बिन क्यों अनुसरै ॥
एक समै द्वादसि दिसि थोरी। उठे नंद कछु मति भई भोरी ॥
साख के बल तें अति कलमले। अरुनोदय तें पहिले चले ॥

आइ जमुन निर्मल जल धसे। तहाँ अन्हात नंद कछु लसे॥
उज्ज्वल अंग सु को छवि गनौं। छीरस इंदु कलिंदि में मनौं॥
जप-तप कछू करन नहिं पये। बरुन के लोक पकरि ले गये॥
ब्रजराज के सँग जन जिते। कूकत भये जमुन-तट तिते॥
सुनत उठे मनमोहन लाल। आंसु-रस भरे नैन बिसाल॥
पितु के हित आतुर गति भये। करुनालय बरुनालय गये॥
बरुन निरखि जु उठ्यो अकुलाइ। पगन में लोट-पोट ह्वै जाइ॥
पाछें प्रभु-पूजा अनुसर्यो। षोडस बरन परम रँग भर्यो॥
उत्तम उत्तम रिधि-निधि जिती। आनि धरी हरि चरननि तिती॥
दुर्लभ दरसन दिखि धर्यो हेत। अरप्यौ सब अपनपौ समेत॥
पुनि पुनि माथ नाथ-पग, धरै। अंजुलि जोरि बिनति कछु करै॥
हो प्रभु! यह जु देह मैं धर्यो। अब सब अरथ परापति कर्यो॥
सब पद-पंकज दरसे-परसे। कौन पुन्य धौं मेरे सरसे॥
अरु संसार असार अपार। सहजहि भयो जु ताके पार॥
तुम अपने परमातम स्वामी। ब्रह्मरूप सब अंतरजामी॥
लोक सृष्टि बिरजति यह माया। तुम तें दूरि मलमई काया॥
हे सरवग्य, अग्य जन मेरे। जाने नाहिंन धर्म प्रभु केरे॥
तुम्हरे पितहि जु इत लै आये। कछु भाये, कछु मोहि न भाये॥
पुनि पुनि धरत पगनि पर सीस। अति प्रसन्न कीने जगदीस॥
इहिबिधि भाँति अपन घर आये। ब्रज में घर घर मंगल गाये॥
नंद जु जब बरुनालय गयो। निरखि बिभूति चकृत अति भयो॥
पुनि जब सुत के पाइनि पर्यो। तब ब्रजराज अचंभे भर्यो॥
कहन लग्यो हिय में यह बात। ईस्वर है यह मेरो तात॥
स्वच्छ मुक्ति जो ब्रह्म है कोई। हम कौं सहजहि दैहै सोई॥
ऐसे जब बिस्मय करि लसे। तब गोबिंदचंद्र मृदु हँसे॥
भक्त मनोरथ पूरन करने। जैसें बेद-पुरानन बरने॥

जिहि गति प्रेरे जोगीजन-मन । जात है क्रम क्रम करि तब के पन ॥
संसारी-जन तहँ को गने । काम-कर्म जु अविद्या सने ॥
तिहि गति बैठे सब ब्रज लोइ । पूरन बदन, कौतिमय होइ ॥
प्रथमहि ब्रह्म विषै अनुसरे । इनहि ब्रह्म पर ता मधि धरे ॥
देह सहित ब्रह्म देखन गये । तहँ के सुख ते सब अनमये ॥
तातें पुनि बैकुंठ सिधारे । तहँ के सुख नीके अवधारे ॥
मूर्तिवंत जहँ चारो वेद । बरनत प्रभु के नाना भेद ॥
अरु कौतुक जे कान्ह ब्रज करे । गिरिवर-धरन अवर रँग भरे ॥
ते सब गान करत श्रुति जहाँ । नंदादिक मुनि चकि रहे तहाँ ॥
परी चटपटी सब के मन में । कब देखें इहि बृंदावन में ॥
मधुर मूर्ति दिन जब अकुलाने । तब फिरि बहुरयो ब्रज ही आने ॥
मित्र कहत कि ब्रह्म में जाइ । पुनि अकुंठ बैकुंठहि पाइ ॥
बहुरि जु लोकनि में फिरि आवें । यह संदेह मोहि भरमावें ॥
'नंद' कहत कछु जिनि करि चित्र । जिन के मनमोहन से मित्र ॥
नंद-सुवन दिनमनि सम रूप । ब्रह्म-बियापी जाको धूप ॥
बैकुंठ मधि सुख्ख हैं जिते । सब बृंदावन ठाँ ठाँ तिते ॥

अट्ठाइसवें अध्याइ की, लीला सब सुख-कंद ॥
मुक्ति न मन-मानी जहाँ, फिरि आये ब्रजचंद ॥२८॥

परिशिष्ट

एकोनत्रिंश अध्याय[१]

उनतीसौं अध्याइ सुनि मित्र । जामें रास उपक्रम चित्र ॥
ब्रह्मादिकन जीति कंदर्प । बाढ्यो हुतो ताके अति दर्प ॥

१. यह अध्याय सं० १८५७ की प्रति में नहीं है और इसकी कथा रासपंचाध्यायी के अंतर्गत है । इस अध्याय की भाषा भी संदिग्ध है, इसलिये परिशिष्टरूप में दे दिया गया है ।

कियौ चहत अब ताकौ खंडन। जय जय गोपी-मंडल-मंडन ॥
आगामिनी जामिनी जु ही। ब्रजभामिनीन सौं जे कही ॥
ते आई जब परम सुहाई। नंद सुवन दिखि अति मनभाई ॥
प्रफुलित सरद मल्लिका जहाँ। रुचर अनेक कुसुम छवि तहाँ ॥
जब हीं नँद-नंदन मन भयौ। तब हीं उडुप उदय है गयौ ॥
अरुन बरन तहँ सोभित ऐसौ। प्राची दिसि तिय को मुख जैसौ ॥
दीरघ काल मिल्यौ है पीय। तिन मनु कुंकुम रंजित कीय ॥
लसत अखंडल मंडल जाकौ। पै किधौं है इह बदन रमा कौ ॥
उमकत कौतुक अपने रवन कौ। अधिकार न जनु इतहि अवनकौ ॥
कोमल किरन, अरुनिमा नई। कुंजनि कुंजनि प्रसरित भई ॥
हरिप्रिय-हिय-अनुराग जु भर्‍यौ। सोई जनु निकसि बाहिरे पर्‍यौ ॥

स्याम रंग सिंगार कौ, अरुन रंग अनुराग।
पीत रंग है प्रेम कौ, ओढ़ै कोउ बड़भाग ॥

तब लीनी कर-कंजनि मुरली। खर्जादिक जु सप्त सुर जुरली ॥
सोइ जोग माया गुन-भरी। लीला-हित हरि आश्रित करी ॥
जिय मोहनी जु यह मोहिनी। वा तैं मुरली सरस सोहिनी ॥
बहुरयौ अधर-सुधासव रली। मधुर मधुर गति ब्रज कहुँ चली ॥
सुनी श्रवन पै तेई आई। जे हरि मुरली माँझ बुलाई ॥
प्रीतम-सूचक सब्द सुढारक। सुनतहि इतर राग बिस्मारक ॥
दुहत चली जु दुह्यौ तजि चली। सिद्ध वस्तु तेऊ दशमली ॥
या करि अर्थ, धर्म अरु काम। परिहरि चलति भई सब बाम ॥
मात-तात-भ्रातन करि बरजी। पतिन अनेक भाँति कै तरजी ॥
तदपि न रही सबै पचि रहे। जिन के मन मनमोहन गहे ॥
प्रेम-बिबस जु बिकल ब्रज-बहूँ। भूषन-बसन कहूँ के कहूँ ॥
घरे हुते जे परम सुहाये। जहाँ के तहाँ आप ह्वो धाये ॥
मन-बच-कंम जु हरिहि अनुसरै। कवन बिघन जु बिघन कौ करै ॥

श्रवनंनि मनि-कुंडल झलमले। वेगि श्रमन कहुँ जनु कलमले ॥
कुंडल संकित बने जु नैंन। नैन के मनहि देत नहि चैन ॥
एक जु तिय घर मैं घिरि गई। विवस भई, निकसन नहिं पई ॥
देखे-सुने हुते हरि जैसें। ध्यान धरे हिरदे मैं तैसें ॥
तजि तजि तिहि छिन गुनमय देह। जाइ मिली करि परम सनेह ॥
जदपि जार-बुद्धि अनुसरी। परमानंद-कंद-रस भरी ॥
मित्र कहत यौं बनत है कैसें। मो मन मैं आवत नहिं तैसें ॥
'नंद' कहत यह जिय जनि धरौ। अमृत-पान कोउ कैसें करौ ॥
बहुरि कहत यह गुनमय देह। पाप-पुन्य, प्रारब्ध के गेह ॥
भुगते बिन न घटि है जाही। कब भुगतै यह मो मन माही ॥
दुसह बिरह जु कमल-नैन कौ। अनेक भाँति के दुक्ख दैन कौ ॥
सो दुख मानि परयौ जब इन मैं। कोटि नरक-दुख भुगये छिन मैं ॥
ता करि पापन कौ फल जितौ। जरि बरि मरि खरि गयौ है तितौ ॥
पुनि रंचक धरि हिय मैं ध्यान। कीने परिरंभन, रस-पान ॥
कोटि सुरग सुख छिनक मैं लिये। मंगल सकल बिदा करि दिये ॥
तब यह परम परीछित करी। हो प्रभु! मो मन संका परी ॥
नंदकिसोरहि सुंदर जानि। भजति भई न ब्रह्म पहिचानि ॥
गुन प्रवाह ऊपर भयौ कैसें। यह हौं नाहिन समझत तैसें ॥
श्री सुक कही कि हम तौ पाछें। कहि आये नृप तो सौं आछें ॥
दुष्टन कौ नृप, नृप सिसुपाल। निंदत ही बीत्यौ सब काल ॥
पूछ्यौ-गान्यौ न ताकौ हियौ। लै बैकुंठ पारषद कियौ ॥
ये हरि-प्रिया परम रस ओपी। जिनहुँ सबै बिधि इहि बिधि कोपी ॥
आवृत ब्रह्म जियन मैं गानि। कृष्ण अनावृत ब्रह्म है जानि ॥
नरन के श्रेय करन हित तेही। दिखियत आतमा परम सनेही ॥
कौनहि भाँति कोउ अनुसरौ। काम-क्रोध-भय क्यौं, हठ करौ ॥
हे नृप! यौं कछु चित्र न मानि। ते सब हरिहि मिलेई जानि ॥

नूपुर-धुनि जब श्रवननि परी। सब अँग श्रवन भये छहि घरी॥
दिष्टि परी जब तब सब अंग। द्गन मैं भरे, रहे रस-रंग॥
कुंजन तें निकसत मुख लसैं। चहुँ दिसि उदित चंदगन जैसैं॥
आसपास ठाढ़ी भई आइ। ता छिन की छवि नहिं कहि जाइ॥
इकहि बेस, समकंध सुदेसे। ऊपर-बने जु मदन बिसेस॥
कंचन कोटि काम जनु करयो। चंद को हूँद कँगूरनि धरयो॥
छवि सौं चितये सबन की ओर। बोले, नागर नंदकिसोर॥
प्रथमहि बचन धर्म नेम को। कहन लगे जु परम प्रेम को॥
हे बड़भाग भले ही आई। क्यों आई कछु संभ्रम पाई॥
ब्रज मैं कुसल-छेम तौ आहि। कारन कवन कहहु किन ताहि॥
तब सब मंद परस्पर हँसी। लाज-लपेटी अँखियाँ लसीं॥
या छवि की कछु उपमा नहीं। लसी-बसी तित जहँ की तहीं॥
पुनि बोले दिखि तिन की ओर। यह सजनी यह रजनी घोर॥
तियन की नहिन निकसनी बेर। बेग जाहु घर, होति अबेर॥
मात, तात, पति भ्रात तुम्हारे। हूँढ़त ह्वैहैं बंधु पियारे॥
चटपटी परी होइहै सब हीं। कहिहैं कित गईं इत ही अब हीं॥
तब कछु प्रनय-कोप-रस-पगी। छुभित ह्वै इत-उत चितवन लगीं॥
तब बोले तिन सौं मनमोहन। हौं जानौं आई बन जोहन॥
देखहु बन कुसुमित छवि छयौ। राका ससि करि रंजित भयौ॥
अरु इत यह कलिंद-नंदिनी। बहति सरस आनंद-कंदिनी॥
इत यह ललित लतन की फूलनि। फूलि फूलि जमुना जल भूलनि॥
देख्यौ बन, अब गृह अनुसरौ। हे सति पतिन की सेवा करौ॥
अरु जौ बन देखन नहिं आई। मो हित करि आईं मोहि भाई॥
जुगति करी, न करी अनरीति। मो सौं सबै करत हैं प्रीति॥
ऐसैं बहुतै बिप्रिय बैन। कहे जु प्रीतम पंकज-नैन॥
भग्न-मनोरथ चिंता परी। रहि गईं जनु कि चित्र है करी॥

दृगन तें अंजन जुत जलधार। बही सु थन पर इहि आकार॥
कनक बरन जनु ढार सुढार। दीने सूत बिरह सुत धार॥
भरत उसास हुतासन ररे। सुरकत अधर-बिंब मधु भरे॥
चरननि धरति लिखनि इमि गनौ। अवनि तें मारग माँगति मनौ॥
सुनि कै प्रिय के अप्रिय बैन। ज्यौं कोउ इतर कहै दुख दैन॥
जल गँभीर नैनन की कोर। पोंछि कै छबिले पटन के छोर॥
गद्गद गरन कहति भई ऐसैं। काँपाजुत सुर पिकगन जैसैं॥
अहो अहो सुंदर बर ब्रजनाइक। क्रूर बचन नहिं तुम्हरी लाइक॥
जिनि बोलहु बलि अति दुख दैन। तुम वरुना करुना-रस-ऐन॥
सब परिहरि हरि चरननि आई। बलि अब भजौ तजौ निठुराई॥
जैसैं आदि पुरुष वह कोई। मुमुक्षन भजत सुन्यौ हम सोई॥
अरु जु अपति पति सुहृद सुभूषन। तियन कौ धरम कह्यौ जु अदूषन॥
हे ब्रजभूषन नहिं अब इवै। सो सब होत तुम्हारे विषै॥
तुम अपने आतमा नित नित के। सुत पति अति दुखदाइक कित के॥
करम-धरम कौ फल जुग जुग ही। निगम कहत जिहिं सो तौ तुही॥
फल फिरि बहुरि सिखावै धर्म। चपाये रहौ, दहौ जिनि मर्म॥
अरु जे साख निपुन जन जिते। चरन-कमल-रज बाँछत तिते॥
रमा रमनि कै चहियतु कहा। तुम करि दियौ उरथल महा॥
जाकी चितवन हित सुर सब के। ब्रह्मादिक तप करत हैं कब के॥
तिन तन कबहूँ नैंक न चहैं। चित तौ तुव पद-पंकज रहैं॥
अरु यह तुलसी हसी रस भरी। अनुदिन रहति पगन पर परी॥
यातैं तुम्हरे चरन चेइहैं। सुख देइहैं कछु न लेइहैं॥
अरु जो कहत कि जाहु ब्रज माहीं। जाहि कहाँ अब कहँ लै जाहीं॥
चित तौ तुमहिं चोरि है लियौ। चरन न चलै कहा धौं कियौ॥
हियौ नहीं अब हाथ हमारे। करिहैं कहा ब्रज जाइ बिहारे॥
हो पिय! यह कस गीत बिहारी। महा अनिल के बान अनियारी॥

अधर-अमृत करि काहे न सींचत। मुसकि मुसकि चलि क्यौं दृग मींचत॥
जौ न सींचिहौ पिय ब्रजनाथ। तौ इह बिरह अगिनि के साथ॥
धरि धरि ध्यानहि जरि बरि अबै। ह्वैहैं ध्यानि के दासी सबै॥
जौ कहौ क्यौं भई दासी हमारी। तजि तजि गृह ठकुराइत भारी॥
तहाँ कहत अहो पिय मनमोहन। आवत तुम जब गोगन गोहन॥
बदन-कमल परि घूँघर केस। देखि के गोरज छुरित सुबेस॥
तैसेई मनि-कुंडल छबि बढ़े। दुहूँ दिसि जात मीन से चढ़े॥
मृदुल मुकुर से कोल कपोल। मंद हसनि मिलि करत कलोल॥
अरु अधरन मधि मधु कलमली। दिखि दिखि उपजत हिय कलमली॥
अरु यह छबिली छती साँवरी। भुज - रावरी रूप बावरी॥
इन करि सुधि बुधि गई हमारी। यातैं भई पिय दासी तुम्हारी॥
जौ कहौ उपपति-रस नहि स्वच्छ। सब कोउ निंदत अरु अति तुच्छ॥
तहाँ कहति हैं ब्रजभामिनी। लहलहाति जनु नव दामिनी॥
तुम्हरी यह कलगी तजि पीय। त्रिभुवन माँझ कवन अस तीय॥
सुनतहि आरज-पथ नहि तजै। सुंदर नंद-सुवन नहिं भजै॥
सुनि खग-मृग जु रहैं कोर तें। जमुना चलि न सकति ठौर तें॥
पुरुषहु चले जु हैं दृढ़ हिया। हो पिय कवन आहि ये तिया॥
जैसैं आदि पुरुष सुर लोक। दूरि करत हैं तियन को सोक॥
तैसैं ब्रजजन दुख के हरता। तुम कीने पिय जो-कोउ करता॥
रंचक कर-पंकज सिर धरौ। जरत है तन-मन सीतल करौ॥
ऐसैं बिरह बिकल हत बैन। सुनि के तरुना करुना ऐन॥
जोगीस्वरन के ईस्वर स्याम। बहुरयौ जदपि आतमाराम॥
रमत भये तिन सौं रस पावैं। केवल एक प्रेम के नावैं॥

ग्यान तुलित, बिग्यान पुनि, तुलित तुलित जम-नेम।
सबै बस्तु जग मैं तुलित, अतुलित एकै प्रेम॥

ऐसैं प्रभु बस होत जिहिं, सुनहु प्रेम की बात।
तप करि मेरे मुनिन के, मन जहँ लगि नहिं जात॥
बिहरत बिपिन बिहार उदार। ब्रजरमनी ब्रजराज-कुमार॥
पियहिं पाइ तिय के सुख लसैं। सरद मैं सरसिज होत न असैं॥
बीरी खात, दिये गरबाँहीं। डोलत फूले कुंजन माँहीं॥
तिन मधि बने कुँवर नँद-नंद। बढ़े बदन सौं बरौं घन चंद॥
बिलुलित उर बैजंती माल। लटकत चलत सु मंद गज चाल॥
इहि परकार कुँवर रस भरे। छबि सौं जमुन पुलिन अनुसरे॥
कोमल उज्जल बालुका जहाँ। मलय समीर धीर नित तहाँ॥
सु कर तरंगन करि कै जमुना। रच्यौ रुचिर जहँ और की गमु ना॥
सीतल मंद सुगंध बयारि। पंखा करति बनिता बपु धारि॥
भृंगन सहित भृंगन की धरनी। मौन सी प्रबति महा सुखकरनी॥
कमल अमोद, कुमुद आमोद। सब परिमल जहँ देत बिनोद॥
तहाँ बैठि सुख सुख गरमेलनि। परिरंभन, चुंबन, कच केलनि॥
कच-लट गहि बदनन की चूमनि। नख नाराचन पायल घूमनि॥
कुचन की परसनि, नीबी करषनि। सुखन की बरषनि मन की सरसनि॥
ताही के सरन मैन जब हर्यौ। दुखित भयौ धूमत जिमि मर्यौ॥
भरम करहिं जिनि इह डर डर्यौ। तब उठि प्रभु के पाइनि पर्यौ॥
कोटि अनंग अंग के भौन। इक अनंग जीतिबौ सु कौन॥
सिव से जीतत कैसेंहूँ कैसैं। इह बैराग जोग बल तैसैं॥
ऐसैं पिय बिमोहन कामहिं। को जानहिं बिन मोहन स्यामहिं॥
अपने रस बस देखि पाँवरे। ह्वै गये तियन के मन बावरे॥
कहति भई भरि हिय अभिमान। इन सम तियन तिहूँ पुर आन॥
यहै मान बढ़ि सैल समान। ओट परि गये पिय भगवान॥
सुनै जो कोउ मन-क्रम-बचन, छतीसौं अध्याइ।
ध्वंसनि कलि-मल-पुंज कहुँ, 'नंद' न अपर-उपाइ॥

पदावली

मंगलाचरण

वेद रटत, ब्रह्मा रटत, संभु रटत, सेस रटत,
नारद-सुक-व्यास रटत पावत नहिं पार री।
ध्रुव-जन, प्रह्लाद रटत, कुंती के कुँवर रटत,
द्रुपद-सुता रटत नाथ, नाथन प्रतिपार री॥
गनिका-गज-गीध रटत, गौतम की नारि रटत,
राजन की रमनी रटत सुतन दै-दै प्यार री।
"नंददास" श्रीगुपाल गिरिवर-धर रूप-जाल
जसुदा कौ कुँवर लाल, राधा-उर-हार री॥१॥

राग भैरव

रामकृष्ण कहियै उठि भोर।
वे अवधेस धनुष कर धारें, ए ब्रज-जीवन माखनचोर।
उनकैं छत्र, चँवर, सिंहासन, भरत, सत्रुहन, लछमन जोर;
इनकैं लकुट, मुकुट, पीताम्बर, नित गायन सँग नंदकिसोर।
उन सागर में सिला तराई, इन राख्यौ गिरि नख की कोर;
'नंददास' प्रभु सब तजि भजियै, जैसै निरखत चंद-चकोर॥२॥

रामकृष्ण कहिये उठि भोर।
ओहि अवधेश ओही ब्रज जीवन,
धनुष धरन अरु माखनचोर।
इतमें अयोध्या निमल सरजू,
उत यमुना जल करत किलोल॥

इतमें दशरथ-पुत्र कहाये,
उतमें कहाये (बाबा) नंद किशोर।
इतमें कौशल्या (मैया) गोद खेलावे,
उतमें यशोदा (जी) झुलावे हिंडोर॥
इतमें धनुष बान कर राजे,
उतमें मोर मुकुट की ओर।
इतमें धनुष बान कर राजे,
उत मुरली धरे मुख की कोर॥
इतमें परस्यो अहल्या तारी,
उत कुब्जा को कियो है फलोर।
इतमें जानकी बाँये बिराजे,
उत राधे सँग युगल किशोर॥
इतमें सागर शिला तरानी,
उत गिरिवर धरे नख की कोर।
रावण के दश मस्तक छेदे,
कंस को मारि किये झकझोर।
इतमें राज बिभीषन दीनो,
उग्रसेन कियो अपनी ओर।
"नंददास" के ये दोउ ठाकुर,
दशरथ-सुत बाबा नंद-किशोर॥३॥

फूलन की माला हाथ, फूली फिरे आली साथ,
झाँकत झरोखे ठाढ़ी नंदिनी जनक की।
कुँवर कोमल गात को कहै पिता सों बात,
छाँड़ि दे यह पन तोरन धनुक की॥
"नंददास" प्रभु जानि तोर्यो है पिनाक तानि
बाँस की धनैया जैसे बालक तनक की॥४॥

श्रीगुरु-विट्ठलनाथ-स्तव

राग विभास

प्रात समैं श्रीवल्लभ-सुत के, मदन-कमल कौं दरसन कीजे ।
तीन लोक-बंदित, परसोतम, उपमा कहा जो पटतर दीजे ॥
श्रीवल्लभ-कुल उदित चंद्रमा, लखि छबि नैनि चकोरन दीजे ।
"नंददास" श्रीवल्लभ-सुत पै, तन-मन-धन नौछावर कीजे ॥४॥

राग राम-कली

श्रीवल्लभ-सुत के चरन भजौं ।
अति सुकुमार[1], भजन-सुख-दायक,पतितन-पावन-करन भजौं ॥
दूरि किये कलि-कपट वेद-बिधि, मत प्रचंड बिप्रवरन भजौं ॥
अतुल प्रताप महामदि सोभा[2], ताप-सोक-अघ-हरन भजौं ॥
पुष्टि-मजाद, भजन-सुख-सीमा, निजजन पोषन भरन भजौं ।
"नंददास" प्रभु प्रगट भये दोउ, श्रीविट्ठल[3], गिरिधरन,भजौं ॥६॥

राग सारंग

जयति रुक्मिनी-नाथ पद्‍मावती,
प्रानपति विप्र-कुल-छत्र आनंदकारी ।
दीप-वल्लभ-वंस, जगत-निस्तार-करन,
कोटि-उडुराज-सम तापहारी ।
मुक्ति-कांक्षीय जन भक्तिदायक प्रभू,
सकल सामर्थ गुन-गनन भारी;
जयति पति भक्त-जन, पतित-पावन-करन,
कामिजन-कामना पूर्न चारी ।

---

१. पाठा०—नंदकुमार । २. पाठा०—अतुल प्रताप स्याम महिमा-यश । ३. पाठा०—विट्ठलेश ।

जयति सकल-तीरथ फलित नाम सुमिरन मात्र,
बास ब्रज नित्त गोकुल बिहारी।
"नंद" दासनि नाथ, पिता गिरिधर आदि
प्रगट अवतार गिरिराज धारी ॥७॥

राग हमीर

भजौं श्री वल्लभ-सुत के चरन।
नंद-कुमार भजन सुखदाइक, पतितन-पावन करन ॥
दूरि किए कलि-कपट बेद-बिधि मत-प्रचंड बिस्तरन।
अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन ॥
पुष्टि प्रजाद भजन, रस, सेवा, निज-जन पोषन भरन।
"नंददास" प्रभु प्रगट रूप धरि श्रीबिट्ठल गिरिधरन ॥८॥

राग—देव गंधार

श्री लछमन-घर बाजत आजु बधाई।
पूरन ब्रह्म प्रगटि पुरुषोतम श्री वल्लभ सुखदाई।
नाचत तरुन बृद्ध औ बालक उर आनँद न समाई;
जै-जै जस बंदी-जन बोलत बिप्रन बेद पढ़ाई।
द्रव, दूब, अच्छत, दधि, कुंकुम आँगनि कीच मचाई;
बंदन-वार सुमालिन बाँधति मोतिन चौक पुराई।
फूले द्विज बरदान देत हैं पट भूषन पहिराई;
मिटि गए द्वंद्व 'नंद दासन' के मन-बांछित फल पाई ॥ ६ ॥

प्रकटित सकल सृष्टि-आधार। श्री मद्वल्लभ राजकुमार ॥
-धेय सदा पद-अंबुज सार। अगणित गुण महिमा जु अपार ॥
धर्म्मादिक द्वारे प्रतिहार। पुष्टि भक्ति को अंगीकार ॥
श्रीबिट्ठल गिरिधर-अवतार। 'नंददास' कीन्हो बलिहार ॥१०॥

राग बिभास

प्रात समैं श्री वल्लभ-सुत को उठतहि रसना लीजे नाम।
आनंदकारी मंगलकारी, अशुभहरन जन पूरन काम॥
इहलोक परलोक के बंधु, को कहि सकत तिहारो गुनग्राम।
'नंददास' प्रभु रसिक-सिरोमनि, राज करौ श्री गोकुल धाम[1]॥११॥

प्रात समै श्री वल्लभ-सुत को पुण्य पवित्र बिमल जस गाऊँ।
सुंदर सुभग बदन गिरिधर को निरखि निरखि के दृगन सिराऊँ॥
मोहन मधुर बचन श्रीमुख के स्रवननि सुनि सुनि हृदय बसाऊँ।
तन मन प्रान निवेदन करिकै सकल अपुन पौ सुफल कराऊँ[2]॥
रहौं सदा चरनन के आगें महा प्रसाद सो जूठन पाऊँ।
'नंददास' इहि माँगत हौं श्री वल्लभकुल को दास कहाऊँ॥१२॥

देव गांधार

श्रीगोकुल जुग जुग राज करौ।
या सुख,भजन-प्रताप तजे तें छिन इत उत न टरौ[3]॥
पावन रूप दिखाइ प्रानपति[4] पतितन पाप हरौ।
विश्वविदित तुम दीनन-पालक निज गति दै उधरौ[5]॥
श्रीवल्लभ-कुल-कमल अमल रवि[6] जस मकरंद भरौ।
"नंददास" प्रभु षट्गुन-संपन श्रीविठलेश वरौ॥१३॥

---

१. पाठा०—गोकुल सुखधाम। २. पाठा०—तन मन प्रान निवेदि वेद विधि यह अपुनपौ हौं सुफल कराऊँ। ३. पाठा०—या सुख भजन-प्रताप तें इक छिन दुरि इत उत न टरौ। ४. पाठा०—महाप्रभु। ५. पाठा०—विश्वविदित दीनी गति चेतन क्यों न जगत उद्धरो। ६. पाठा०—कुल-कमलनि दीपक।

श्रीयमुनाजी के पद

भक्त पै करी कृपा श्रीजमुना जू ऐसी।
छाँड़ि निज-धाम बिस्राम भूतल कियो,
प्रगट लीला दिखाई जो तैसी॥
परम परमारथ करत हैं सबन कौं,
देति अद्भुत-रूप आप जैसी।
"नंददास" जो जन दृढ़ करि चरन गहै,
एक रसना कहा कहै बिसेषी॥१४॥

तातैं श्रीजमुना, जमुना जू गावौं।
सेष सहस मुख निसि-दिन गावत
पार नहिं पावत ताहि पावौं॥
सकल-सुख-दैन-हार, तातैं करौं उचार,
कहत हौं बार बार जिनि भुलावौं।
"नंददास" की आस, श्रीजमुना पूरन,
करी तातैं घरी-घरी-चित आवौं॥१५॥

भाग, सुहाग श्रीजमुना जू दैई[1]।
बात लौकिक तजौं, पुष्टि जमुना (जू) भजौं,
लाल गिरिधरन बर तब मिलैई[2]॥
भगवदीन संग करि, बात उनकी लै सदाँ,
सानिधि इहि देति भैई[3]।
"नंददास" जा पैं कृपा श्रीवल्लभ करैं,
ताकौं श्रीजमुना जू सरबस जो दैई[4]॥१६॥

---

१. जमुने जो दे री। २. ताहि बर मिलै री। ३. रहे केलि मैं री।
४. जमुने सदा बस जो है री।

नेह कारनै जमुना जू प्रथम आई।
भक्त की चित्त-वृत्ति सब जान कै ही ताहितें अति ही आतुर धाई॥
जैसी जाके मन हती इच्छा ताकी तैसी साध जो पुजाई।
"नंददास" प्रभु ताहि पै रीझत जमुना जू के जस जो गाई॥१७॥

श्रीगंगाजी के पद

राग बिलावल

आगे आगे रथ भगीरथ जू को चल्यो जात,
पाछे पाछे आवति तरंग रंग भरी गंग।
झलमलात अति उज्ज्वल जल की जोति,
अवनि दिपत मानो सीस भरे मोती मंग॥
जाय परसे हैं भूप कबके भसम रूप,
ठौर ठौर जागि उठे होत सलिल संग।
"नंददास" मानों अगिन के जंत्र छूटे ऐसे
तुरत सुरपुर चले धरे देव अंग॥१८॥

हनुमानजी के पद

राग मारू

जब कूद्यो हनुमान उदधि जानकी सुधि लेन को।
देखन दसमाथ[1] अपने नाथ कों सुख देन को॥
जा गिर तें चढ़ि कुलांच लीनी उचकैयाँ।
सो गिरि दस जोजन धसि गयो धरनी महियाँ॥
धरनी धसि गई पताल भार परे जाग्यो।
सेसहू को सीस जाय कमठ पीठ लाग्यो॥
बदन सदन तेज सदन पीत बसन गात है।
उत्तर तें दच्छिन मानों मेरु उड़्यो जात है॥

---

१. पाठा०—सोरन दस मस्तक।

जा प्रभु को नाम लेत भव जल तरि जात है।
सत जोजन सिंधु कूद्यो सो किती एक बात है[1]॥
श्रीरामचन्द्र पद प्रताप जग में जस जाको।
"नंददास" सुनत मुनि कौतुक भूले ताको॥१६॥
सिंधु पार पहुँच्यो पवनपूत दूत श्रीरघुनाथ को।
छुट्यो मानो धनुख तें सर परम सुभट हाथ को॥
थर थर जहाँ करत भीच ऐसी राजधानी।
पैठत तिहि लंक बंक कपि न संक मानी॥
पुर मंदिर कंदरा सुंदर बनराई।
रावल रस बास ढूँढ़ो सीता कहूँ न पाई॥
तब कह्यो यह लंकापुरी बचकि लीजिये।
कहाँ ले के जाऊँ जानकी ढूँढ़ि कीजिये॥
के किधौं दसकंध याहि हँकार के मारौं।
के किधौं रघुबीर आगे बाँधि रिपुहि डारौं॥
यहि बिधि बल अपनों कपि सोचत जिय माँहीं।
"नंददास" प्रभु की मौकों ऐसी आग्या नाहीं॥२०॥

ब्रज महिमा

राग बिलावल

नँद-गाउँ नीकों लागत री।
प्रात समैं दधि मथत ग्वालिनी, बिपुल मधुर-धुनि गाजत री॥
बन गोपी, धन ग्वाल सँग ब्रज के, जिनके मोहन उर लागत री।
हलधर संग सखा सब राजत, गिरिधर लै दधि भागत री॥
जहाँ बसत सुर, देव, महा-मुनि, एकौं पल नहिं त्यागत री।
"नंददास" प्रभु-कृपा कौं इहि फल, गिरिधर देखि मन जागत री[2]॥२१

१. यह पंक्ति किसी किसी प्रति में नहीं है।

२. पाठा०—नंददास के जीवन गिरिधर मोहन देखे भ्रम भागत है।

जो गिरि रुचे तो बसो श्री गोवर्द्धन, गाम रुचे तो बसो नंद गाम।
नगर रुचे तो बसो श्री मधुपुरी, शोभा सागर अति अभिराम॥
सरिता रुचे तो बसो श्री जमुन तट, सकल मनोरथ पूरण काम।
"नंददास" कानन रुचे तो, बसो भूमि वृंदावन धाम॥२२॥

श्रीकृष्ण-जन्म तथा बधाई के पद

राग मारू

श्री गुपाल गोकुल चाले हो, बलि-बलि-बलि विधि काज।
मोद-भरे बसुदेव गोद तैं, अखिल-लोक प्रतिपाल॥
अरुन उदय तैं ज्यों तम फूटत, खुलि गये कुटिल कपाट।
महा बेग चल छाँड़ि आपुनों दीनी जमुना बाट॥
भोर भयें जैसें कुमोदिनी मुँदति, कंस भय मोहे।
संत-जनन के मन-अंबुज वर फूलि डह-डहे सोहे॥
धार-धार फुही बरखावति अंबुद अंबर छायो।
अपुनो निज बपु सेस जानिकैं बूँद बचावन आयो॥
परम-धाम, जग-धाम स्याम अभिराम श्री गोकुल आए।
"नंददास" आनंद भयो ब्रज हरखित मंगल गाए॥२३॥

राग धनाश्री

ब्रज की नारि सबै मिलि आई आजु बधाई री माई।
सुंदर नंद महरि के मंदिर प्रगट्यो पुत्र सकल सुखदाई॥
होतहि ढोटा ब्रज की सोभा, देखो सखि कछु औरहि ओभा।
मालिनि सी जहँ लछमी डोले, बंदन माला बाँधति डोले॥
बगर बोहारति अष्ट महासिधि, द्वारे सथिया पूरति नौ निधि॥
कंचन कलस जगमगे नगके, भागे सबै अमंगल जग के।
हाथनि कंचन थार रही लसि, कँवलन चढ़ि आये मानो ससि।
बीथी प्रेम-नदी छबि पावै, नंद-सदन-सागर कूँ धावै।

फुले गुवाल मनो रन जीते, भये सबन के मन के चीते।
मह मह ते गोपी गवनीं जब, रँगी(छी) गलिन में भीर भई तब।
कामधेनु ते नेक न हीनी, द्वै लछि धेनु द्विजन कूँ दीनी।
नंदराय तहँ अति रस भीने, परबत धात रतन के दीने।
नंदराय गृह मांगन आये, बहुरि फेर मंगन न कहाये।
घर के ठाकुर के सुत जायो, 'नंददास' तहँ सरबस पायो ॥१४॥

राग मलार

बधाई री बाजति आजु सोहाई श्रीगोकुलराज के धाम।
रानि जसोमति ढोटा जायो मोहन सुंदर स्याम ॥
सुनि सब गोप घोष के बासी चले बर बेस बनाय।
या पुर की मंगल ब्रज-बीथिन भीर न निकस्यो जाय ॥
आईं गोपवधू,सँग मिलि मिलि हाथन कंचन थार।
कमल-बदनि सिगरी कमला सी झमकत कुंडल हार ॥
नाचत गोप[1] करत कौतूहल दधि घृत खोरें गात।
रीझें[2] देत पटंबर अंबर फूले अँग न समात ॥
जो जाकें मन हती कामना सो दीनी[3] नंदराय।
'नंददास' कूँ दई कृपा करि अपने लला की बलाय ॥१५॥

राग आसावरी

जुरि चली हैं बधावन नंद महर-घर सुंदर ब्रज की बाला।
कंचन-थार हाथ चंचल छबि, कही न परत तिहि काला ॥
डहडहे मुख कुमकुम-रँग रंजित राजत रस के ऐना;
कंजन पै खेलत मनों खंजन अंजन जुत नव नैना।

---

१ पाठा०—ग्वालि । २. पाठा०—देत मँगाइ बसन बर भूषन।
३. पाठा०—पुजई।

दमकत कंठ पदिक-मनि कुंडल, नवल प्रेम-रँग बोरी;
आतुर-गति मनों चंद उदै भये धावत त्रिषित चकोरी।
खसि, खसि परत सुमन सीसन तें उपमा कहा बखानों;
चरन परसन पै रीझि चिकुर-घर बरषत फूलन मानों।
गावत गीत पुनीत करन जग, जसुमति-मंदिर आँईं;
बदन बिलोकि बलैयाँ लै-लै देत असीस सुहाँईं।
मंगल-कलस निकट दीपावलि, देखि देखि मन भूल्यो;
मानों आगम नंद-सुवन के सुवरन-फूल भ्रज फूल्यो।
ता पाछें गन गोप ओपसों आवत अतिसै सोहैं;
परम अनंद-कंद रस-भीने, निकर पुरंदर को हैं।
आनँद घन ज्यों गाजत राजत बाजत दुंदुभि भेरी;
राग-रागनी गावत हरखत, बरखत सुख की ढेरी।
परम धाम जग-धाम स्याम अभिराम श्री गोकुल आए;
मिटि गये द्वंद 'नंद' दासन के भए मनोरथ भाए ॥२६॥

राग काफी-

एरी सखी, प्रगटे कृष्ण मुरारी, भ्रज आनँद भयो,
दधि काँदो आँगन नंद के।

एरी सखी ! बाजत ताल, मृदंग बहु बाजे सब साजि कै।
भवन भीर भ्रज-नारि, पूत भयों भ्रज-राज कैं॥
ठनगन तें सब धाम, बसनन सजि सजि कें गईं।
रोहिनि अति बड़ भाग, आदर दै भीतर लईं॥
बिछुवन की झनकार, गलिन-गलिन अति ह्वै रही।
हाथन कंचन-थार, उर पर झमकत ज्वै रही॥
ग्वाल गोपिका जाय, रावरो झगरो भरि रह्यो।
फूले अँग न समात, सबन कौं भाग उघरि रह्यो॥

जहँ ब्रज-रानी आय, हैन करति ढोटा भयें।
तहँ कौतुक अति होत, मिलि जुवती-जूथन गयें॥
निरखि कमल-मुख चारु, आनँद-मय मूरति भई।
अंचल चंचल छोर, मन-भाई आसिस दई॥
राइ चौक में घोरि, छिरकत दधि हरदी सकल।
पकरि पकरि कैं ग्वाल, बोरत भुज सों भुजन बल॥
काँवरि, मथना, माँट, अगनित गने न जात हैं।
भरे धरे सब-ठौर, कहँ लौं सदन समात हैं॥
होत परस्पर मार, माखन के गेंदुक करे।
एक-एक कौं ताकि, सुभग बदन छेपत खरे॥
ऊपर तें दधि-दूध, सीसन गागरि-गन ढरें।
घोंटुन लौं भई कीच, रपटि रपटि सगरे परें॥
ब्रज बधुवन के चीर, भींजि लगे अँग-अंग सौं।
गावति हैं जुरि झुंड, अपने अपने रंग सौं॥
हो हो बोलैं ग्वाल, हेरी दै-दै गावहीं।
जोरि-जोरि सब बाँह, बाबा नंद नचावहीं॥
नंदराय बड़ भाग, नाचत में देखत बनैं।
फिरत मंडलाकार, अंग-अंग सुख में सनैं॥
चिबुक-केस सब सेत, उर पै सगरे छै रहे।
रंग कुमकुमा गारि, दधि दूधन उरझै रहे॥
भाल-बिसाल रसाल, फैंटा पीत सुहावनो।
थोंद थलकि पर चाल, मनों मृदंग मिलावनो॥
गहि-गहि कै भुज-मूल, रहे गोप सुख मानि कैं।
रपटि परैं जिनि नंद, सावधान इहि जानि कैं॥
आँगन उदधि अनंद-पंक, बढ्यो कटि लौं भयो।
दई पनारि खुलाइ, सरिता ज्यौं बीथिन गयो॥

भानु-सुता में जाई, मिस्यों सु रंग अनंद में।
कलिंद-नंदनी आइ, सुख लूटति इहि फंद में॥
इहि औसर सब साथि, घोष-नृपति जू न्हाई यों।
जे बरसोंदी खात, ते सब बिप्र बुलाइयो॥
पूजा पितर कराइ, दान करत अति भाय सों।
घर के मागध सूत, झगरत हैं ब्रज-राय सों॥
मॅंटत सगरी रारि, मनि-धन देत मघाइ कैं।
करत बहुत सनमान, भूषन पट पहिराइ कैं॥
बिधि सों गाय सिंगारि, दई द्विजन करि ठाट सों।
जो माँगत सोइ देइ, करै अजाचक भाट सों॥
अभरन अंबर छाइ, सहस-पाँच दस आइयों।
हँसि हँसि रोहिनि आप, ब्रज-सहनिन पहिराइयो॥
घर घर घुरत निसान, कहि न जात कछु आज की।
मंगलमय ब्रज-देस, फिरति दुहाई गाज की॥
बिरज-दसा कौ रूप, कहा कहौं सखि या समैं।
निरखि-निरखि 'नंददास' निरत करति हैं ता समैं॥२७॥

राग—जैजैवंती

माई आजु तो गोकुल गाँव कैसो रह्यो फूलि कैं।
घर फूले दीसैं सब जैसैं संपति समूलि कैं।
फूली-फूली घटा आईं घहरि-घहरि घूमि कैं।
फूली-फूली बरखा होति, झर लावति भूमि कैं।
कमल कुमोदिनी फूलीं जमुना के कूल कैं।
द्रुम बेलि फूलि फूलि झुकि आईं भूमि कैं।
फूलो-फूलो पुत्र देखि, लयो उर लूमि कैं।
फूली है जसोदा-माय, ढोटा मुख चूमि कैं।

देवता अगिन फूले धूत लाँड होमि कैं।
फूल्यो धीसै दधि-काँदो ऊपर लौं भूमि कैं।
मालिन बाँधि बंदनवार घर-घर डोलि कैं।
फूले हैं भँडार सब द्वार दये खोलि कैं।
पाटंबर पहिराव कै अधिक अमोलि कैं।
नंदराय देव फूले 'नंददास' बोलि कैं ॥२८॥

राग रायसौ

श्री ब्रजराज जू के आँगन बाजत रंग-बधाई;
स्रवन सुनति सब गोपिका आतुर देखनि धाई।
बदि-भादौं, आठैं दिना, अरध-निसा बुध बार;
कौसल-करन सु रोहिनी, जनमे नंद-कुमार ॥
गोप ओप सौं राजियैं, आए हैं तिहि काल;
नाचत-करत कुलाहलैं, वारत मुक्ता-माल ॥
बाजत दुन्दुभि भेरियाँ, पटह निसान सुहाए;
दधि हरदी छिरकत सबैं, आनँद मंगल गाइ ॥
धुजा, पताका, तोरनैं द्वारहि द्वार बँधाइ;
कनक-कलस सुभ मांगलिक, भुवनन बीच धराइ ॥
जाचक जुरि मिलि आवते करत सबद-उचार;
पुहुप वृष्टि सुर-पति करै बोलै जै-जैकार ॥
देव असीस सबै मिलि मन मैं, लहिकै मोद अपार;
श्रीजसुमति-सुत पै तन मन सौं "नंददास" बलिहार ॥२६॥

राग मारु

कृष्ण-जनम सुनि अपने पति सौं, हँसि ढाढिन यौं बोली जू;
जाउ-जाउ तुम नंद-नृपति कैं दान कोठरी खोली जू।
तुमहि मिलैगो बागो बीरा दछिना भरि-भरि झोरी जू;
हमकौं लैयो नख-सिख गहिनो जेहरि सहित सु जोरी जू।

लैयो नंद, जुगति सों लैयो हम पढ़िबे कों झोली जू।
छोट सी भैंस सोहने सींगनि टहलि करनि कों गोली जू।
साज सहित इक घुरिला लैयो, गैया दूध अतोली जू।
सुंदर सों इक हाथी लैयो, हथनी संग अमोली जू।
सज्जा सहित इक दुलिया लैयो औ पानन की ढोली जू।
बीरी करि-करि मोहि खवावै लैयो संग चमोली जू।
जनम-जनम अनते नहिं राँचों फिर नहिं माँडौं झोली जू।
'नंददास' श्री नंदराय ने कियो अजाचक ढोली जू ॥३०॥

बाल क्रीड़ा

राग रामकली

जगावति अपने सुत को रानी।
उठो मेरे लाल, मनोहर सुंदर, कहि कहि मधुरी बानी॥
माखन, मिश्री और मिठाई दूध मलाई आनी।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ मेरे सब सुखदानी॥
जननि-बचन सुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी।
'नंददास' प्रभु मैं बलिहारी जसुमति मन हरषानी॥३१॥

राग भैरव

चिरैया-चुहचाँनी, सुन चकई की बानी,
कहत-जसोदा-रानी जागो मेरे लाला।
रबि की किरन जानी, कुमुदनी सकुचानी,
कमल बिकसे दधि मथत बाला॥
सुबल, श्रीदाम, तोक-उज्जल-बसन पहिरें,
द्वारें ठाढ़े टेरत हैं बाल गुपाला।
'नंददास' बलिहारी उठो, बैठो गिरिधारी,
सब मुख देखन चाहैं लोचन बिसाला॥३२॥

राग पूरवी

छोटो सो कन्हैया, मुख मुरली मधुर छोटी,
छोटे छोटे ग्वाल-बाल, छोटी पाग सिर (न) की।
छोटे छोटे कुंडल कान, मुनिन हू के छूटे ध्यान,
छोटे पट छोटी लट छुटी अलकन की॥
छोटी सी लकुट हाथ, छोटे छोटे बछवा साथ,
छोटे से कान्हैं देखनि गोपी आई घरन की।
'नंददास' प्रभु छोटे, भेद-भाव मोटे मोटे,
आयो है माखन सो सोभा देखि बदन की॥३३॥

राग रामकली

नंद कौ लाल, ब्रज पालनैं झूलैं।
कुटिल अलकावली, तिलक गोरोचन,
चरन-अँगूठा मुख किलक-किलक फूलैं।
नैननि अंजन सुरेख, भेष अभिराम सुचि,
कंठ के हरि-नख, किंकिनि कटि मूलैं।
'नंददास' के प्रभु नंद-नंदन,
कुँवर निरखि नागरि देह, गेह भूलैं॥३४॥

राग टोड़ी

बिन्न बराइव चितवत मुरि-मुरि, गोपी अधिक सयानी।
टक-टक सौं झुकि बदन निहारत,
अलक सँवारत पलक न मारत, जान गई नँद-रानी।
पारे परवा ललित-बिचारी, बलि बलि प्यारी,
कनक-थार जब आनी।
'नंददास' प्रभु सूनौं भोजन-घर लखि,
हर पै कर धरत तबै वो छवैं मुखिकानी॥३५॥

राग ईमन

छगन-मगन बारे, कन्हैया ! नैंकु उरैयों आइ रे ।
बन में खेलन जात, है रहे सब मलिन गात,
अपने लाला की लैंहु बलाइ रे ।
संग के लरिका सब बनि-ठनि आए,
यों कहिहैं कैसी है तब माइ रे ।
जसुदा गहति धाइ बैयां, मोहन करत
न्हैयों-न्हैयों "नंददास" बलि जाइ रे ॥३६॥

राग केदारो

सिर सोने कौ सूर सु सोहत, पगिया-पेंचन ऊपर नग लगे ।
रतनारे भारे ढरारे नैननि देखि मूरछित भई कोऊ न जगे ॥
मुख की मंजुलताई बरनी न जाई, चंचलताई लखि दूरि भगे ;
"नंददास" नँद-रानी छबि निरखि वारि पीवत पानी,
काहू जिन डीठि लगे ॥३७॥

गाइ खिलावत सोभा भारी ;
गो-रज-रंजित बदन-कमल पै, बिलक अलक घुँघरारी ।
नख-सिख बनि बहु मोल के भूषन, पहिरत सदा दिवारी ;
फैलि रही है तिलक-प्रभा पै नगन-रंग उजियारी ।
चमत्कार राजैं भाल-गंडन हृदि छबि पै बलिहारी ;
स्रवन हेरि नव, पांवड चंचल, चढ़ति सु अटा-अटारी ।
भीर बहुत सुभई आत की महलन पै ब्रजनारी ;
सैननि में समुझावत सगरी बनि-बनि निरखनहारी ।
रहे खिलाइ धूमरी धौरी, गाय गुनन कजरारी ;
"नंददास" प्रभु चले सदन जब एक बार हुँकारी ॥३८॥

राग—कल्याण

अति आछी तनक कनक की दोहनी दोहनी गढ़ाइ दै री मैया;
जाइ दुहौंगो नंद-बबा सौं, आछे पाट की नई दुहन सिखाइ दै गैया।
मेरी दाँई के छोटा सब छोटे, तेऊ सीखें री करत बन धैया;
"नंददास" प्रभु हँसत, लोटत अरु भरत
नैनि-जल जसुमति लेति बलैया ॥३९॥

राग—बिलावल

माधो जू! तनिक सो बदन सदन-सोभा कौं
तनिक भ्रकुटि पै तनिक दिठौना;
तनिक लटूरी मुनि मन मोहै
मनौं कमल ढिग बैठे अलि-छौना।
तनिक सी रज लागी निरखति बड़-भागी
कंठ-कठुला सोहै त्यौं बघनखना।
"नंददास" प्रभु जसुदा-आँगन खेलैं
जाकी जस गाइ गाइ मुनि भए मगना ॥४०॥

राग—टोड़ी

निरंजन अंजन दियें सोहै नंद के आँगन माहीं?
सबन के नैन भान परकासिक ताके ढिग
रच्यौं जसोदा छाजै, छबि कही न जाई।
निगम आगम जाकौं बोलैं सो
अलपल-कल कछु कहति बनाई;
"नंददास" जाकी माया जग भूल्यौ
सो भूल्यो अपनी परछाई ॥४१॥

नंदराय जू के द्वारे भोरहि हौं उठि धाऊँ।
त्रिबिधि कनक निरखि मुख बिहसौं आऊँ नैन सिराऊँ ॥

उज्ज्वल तन, थोरी सी थोंदिया राते अम्बर सोहै।
अरुन घन तें निकसि पूरन चन्द की छबि कोहै॥
प्रगट प्रेम-घनीभूत पूत की पकरि अँगुरिया आये।
मंद मंद हँसि चलन सिखवति लोचन लखि फल पाये॥
रिद्धि सिद्धि नव-निधि सँग कमला टहल करति जहँ फिरे।
अरथ धरम औ काम मोक्ष की भीख भिखारिन परे॥
नन्द जू कहत कहा माँगत हरि टेर सुनन ललचाऊँ।
"नंददास" नँदलाल को उत्तर कान सुने सुख पाऊँ॥४२॥

राग—अड़ानो

भावरी भावरी ऊपरी पाग में मेलिकै बाँध्यो है मंजुल चोटा।
चंचल लोचन चारु मनोहर अबही गहि आन्यो है खंजन जोटा॥
देखत रूप ठगौरी सी लागत नैननि चैन निमेख की ओटा।
"नंददास" रितुराज कोटि वारौं आज बन्यो ब्रजराज को ढोटा॥४३॥

माई ! जे दोऊ, कौन गोप के ढोटा।
इनकी बात कहा कहौं तोसौं, गुनन बड़े, देखन के छोटा॥
अग्रज-अनुज सहोदर जोरी, गौर, स्याम गूँथे सिर चोटा।
"नंददास" बलि बलि इहि मूरति,
लीला-ललित सबही बिधि मोटा॥४४॥

राग—केदार

इहि काहू को ढोटा, स्याम-सलौने-गात है।
आई हौं देखि खिरक ढिग ठाढ़ो, न कछु कहन की बात है॥
कमल फिरावत, नैन नचावत,[1] मो तन मुरि मुसिक्यात है।
छबि के बल जग जीति गरब भरि मैन मनों इतरात है॥
नख[2]-सिख-रूप अनूप रूप छबि, कबि पै बरनि न जात है।
"नंददास" चातक की चोंच-पुट बड़ घन नाहिं समात है॥४५॥

---

१. डुलावत मुरि मुरि मृदु। २. अंग अंग प्रति अमित माधुरी।

ठाढ़ी री खिरक माँई, कौन को किसोर।
साँवरे बरन मनहरन बंसी धरें, काछ बरन कैसी गति चोर॥
पौन परसि जात होत चपल देखि पियरो पट को चटकीलो छोर।
सुरंग साँवरी छोटी घटा ते निकसि आवे
छबीली छटा को जैसो छबीलो छोर॥
पूछति आतुलि ग्वारि हा हा हो मेरी आली,
कहा नाउँ, को है चितचित को चोर।
"नंददास" जाहि चाहि चकचौंधी आइ जाइ,
भूल्यौ री भवन-गवन भूल्यौ रजनी भोर॥४६॥

ताल—चौताल

प्रातकाल नंददास पाग बनावत बाल दिखावत दर्पन रह्यो लसि।
सुंदर करनि मैं मंजु मुकुर की छबि रही फबि
मानौ बिधि कमलनि गहि आन्यो ससि॥
बीच बीच चित के चोर मोर-चँदवा दियें
तापर रतन-पेंच बाँधत है कसि।
"नंददास" ललितादिक ओट भयें अवलोकत,
अतुलित छबि रही फबि फूल डारि हँसि॥४७॥

राग—बिभास

जमुना-पुलिन, सुभग-वृन्दावन, नवल-लाल गोबरधन-धारी;
नवल-निकुंज, नवल कुसुमित-द्रुम, नवल-परम वृषभानु-दुलारी।
नवल-धाम, नव रूप छबि क्रीड़त, नवल बिलास करत सुखकारी;
नवल-श्रीविट्ठलनाथ कृपा बलि, "नंददास" निरखत बलिहारी॥४८

राग—नट

कुरँग दुरँग लोइन पाग बाँध कैं, कुरँग कैसे लोचन अति लोने;
कपोल बिलोलत मलकें चल कानन कुंडल कुसुमित कोने।

रंग रँगीले ढंग सबै नव, रँग-रँगे ऐसे पाछैं भए न आगैं होंने ;
"नंददास" बलि मेरी कहाँ बस, काम के आए रटावक टौंने ॥४९॥

राग–पूर्वी

हाँके हटक-हटक, गाय ठठक-ठठक-रहीं,
गोकुल की गली सब साँकरी ;
झारी-अटारी, झरोखन, मोखन झाँकत
दुरि-दुरि ठौर-ठौर तें परत काँक री ।
चंप-कली, कुंद-कली, बरसत रस-भरी,
तामें पुनि देखियतु लिखे हैं आँकरी ;
"नंददास" प्रभु जहाँ-जहाँ ठाढ़े होत तहाँ-तहाँ,
लटक-लटक काहू सौं हाँ करी औ ना करी ॥५०॥

राग–बिलावल

नंदभवन को भूषन माई ।
जसुदा को लाल बीर हलधर को राधारमन सदा सुखदाई ॥
इंद्र को इंद्र, देव देवन को, ब्रह्मा को ब्रह्म महा बरदाई ।
काल को काल, ईस ईसन को, बरुन को बरुन महाबरदाई ॥
सिव को धन, संतन को सर्बस, महिमा बेद पुरानन गाई ।
"नंददास" को जीवन गिरिधर गोकुल-मंडन कुँवर कन्हाई ॥५१॥

श्री राधा जन्म के पद

राग आसावरी

बरसाने तें दौरि नारि इक नंद-भवन में आई ।
आजु सखी, मंगल में मंगल कीरति कन्या जाई ॥
सुनि जसुमति मन हरख भयो अति, बोलि लई ब्रज-बाला ।
मुक्ता, मनि माला भूषन-भर पठए साज रसाला ॥
चलि गज-गामिनि साधन छायन कंचन-थार सुहाए ।
कमलन के ऊपर केशव मनों अगनित-चंद जु धाए ॥

बड़-बड़े सुरस-छवि छाजत राजत, लाजत कोटिक-मैना।
कंजन पै खेलत मनों खंजन अंजन-रंजित नैना॥
कुंडल मंडित आनन राजत उपमा अधिक बिराजै।
हार सुढार उरन बर सोहत निरखि सबो मन लाजै॥
गावति गीत करति जग पावन भामिनि मंदिर आईं।
नंददास जू के आँगन में आनंद बजति बधाईं॥
देखि सुदिन वृषभानु भए अति, भट सुरुचि सों कीनी।
गद गद कंठ स्रवन सों बोलत बीथिन पावन कीनी॥
कीरति ढिग निरखी सुठि कन्या, धन्या अधिक अपारा।
कौतुक में कौतुक रस मोनों परसत सोभन धारा॥
सब जग धाम धाम-धुनि जाकों, खेल-धाम जिहि मानैं।
'नंददास' सुख कौं सुखसागर प्रगटी है बरषानैं॥५२॥

श्री वृषभानु नृपति के आँगनि बाजति आजु बधाई।
कीरति दै रानी सुख सानो सुता सुलच्छिन जाई॥
सखि सबै दासी हैं जाकी, तातैं अधिक सुहाई।
निरमल-नेह, भवति अति प्रगटी मूरति सब सुखदाई॥
ब्रह्मादिक सनकादिक, नारद, आनँद उर न समाई।
'नंददास' प्रभु पलना पौढे किलकत कुँवर-कन्हाई॥५३॥

पूर्वानुराग तथा राधाकृष्ण विवाह

कृष्ण नाम जब तें स्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चितहूँ[1] न परै चैन,
मुखहू न आवै बैन, तन की दसा कछु और भई री॥

---

[1] पाठा०—रंचक न चित चैन।

जेवक नेम धरम किए री मैं बहु बिधि,
अंग अंग भई हौं तो स्रवन मई री।
'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति,
माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री ॥५४॥

राग रामकली

नंद-सदन गुरुजन की भीर, यामैं,
मोहन को मुख नीकें देखि नहिं पाऊँ।
बिनु देखैं रह्यौ न जाइ जिय अकुलाइ,
दुख पाइ जदपि मढ़रे छिन उठि धाऊँ॥
लै चलि री सखी, मोहि जमुना-तीर, जहाँ
हेरैं बलबीर देखि दृगन सिराऊँ।
'नंददास' प्यासे को पानी पिवाइ लै जिवाइ,
जियकी आरति तू तोसौं कहाँ लगि दुराऊँ ॥५५॥

राग विभास

चंचल, लै चली री चित चोर।
मोहन को मन यौं बस कीनो ज्यौं पकई सँग डोर॥
जौ लौं नहिं देखत वह मूरति तौ लौं पलक न लागत ओर।
'नंददास' प्रभु प्रेम मगन भये नागर नंदकिशोर ॥५६।

प्यारी तेरे लोचन लोने-लोने, जिन वश कीने स्याम-सलोने।
रस के रास सुवास रंगीले पाछैं भए न आगे होने॥
रूप रिझौने मुसकि पढ़तिजय काम अहेरी के टटावक टोने।
'नंददास' नँदनंदन नैननि नैकु नाहिंने ऐसे होने ॥५७॥

राग बिलावल

सजनी, आनँद उर न समाऊँ।
बरसानैं वृषभानु लगन लिखि पठई है नँद-गाऊँ॥

धौरी धूमरि धेनु बिबिधि रँग सोभित ठाऊँ-ठाऊँ।
भूषन मनि-गन पारु नाहिंनै सो धन देखि लुभाऊँ॥
गोप-सभा करि लगन जु लीनी मगन होइ गुन गाऊँ।
'नंददास' लाल-गिरिधर की दुलहिन पै बलि जाऊँ॥५८॥

राग नट

अरी! चलि दूलह देखनि जाँय।
सुंदर-स्याम माधुरी मूरति, अँखियाँ निरखि सिराँय॥
जुरि आईं ब्रज-नारि नवेली मोहन दिसि मुसिक्याँय।
मौर बँध्यौ सिर कानन कुंडल मरवट मुखहि सुभायँ॥
पहरें जरकसि पट आभूषन अँग अँग नैनि रिझायँ।
दैदीप बनी बरात छबीली जग-मग रंग चुचायँ॥
गोप-सभा सरवर में फूले कमल परम भपटायँ।
'नंददास' गोपिन के दृग-अलि लपटनि को अकुलायँ॥५९॥

राग बिहाग

दूलह गिरिधर लाल छबीलो दुलहिन राधा गोरी।
जिन देखी मन में अति लाजी ऐसी बनी यह जोरी॥
रतन-जटित कौ बन्यो सेहरो उर मोतिन की माला।
देखत बदन स्याम सुंदर को मोहि रहीं ब्रज-बाला॥
मदनमोहन राजत घोड़ा पै और बराती संगा;
बाजत ढोल, दमामा चहुँ-दिसि ताल-मृदंग उपंगा॥
जाय जुरे बृषभानु सु पौरी बतहू सब मिलि आए;
टीको करि आरती उतारी मंडप मैं पधराए॥
पढ़त वेद चहुँ-दिसि ते बिप्र-जन, सप्तपन मन भाए;
हथलेवा करि हरि-राधा सों मंगल-चार गवाए॥
ब्याह भयौ मोहन कौ जबहीं जसुमति देति बधाई;
चिरजीवो भूतल इहि जोरी "नंददास" बलि जाई॥६०॥

लाल बने रँग-भीने, गिरिधर लाल बने रँग भीने।
पिय के पाग केसरी सोहै देखत रति-पति कौ मन मोहै।
तापै एकु चन्द्रिका धारी प्यारी जू निज हाथ सँवारी।
पिय के अरुन नैन मन भाए, प्यारी बहु बिधि लाड़ लड़ाए।
पिय के पीक कपोल बिराजे, अधरन अंजन-रेखा छाजे।
पिय के उरसी मरगजि-माला, पोढ़त सिथिल बसन नँदलाला।
छबि पै "नंददास" बलिहारी, अँग-अँग रांचे कुंज बिहारी ॥६१॥

प्रेम लीला

राग बिहाग, ताल चपक

अरी प्यारी कैं लाल लागे देन महावर पाय।
जब भरि लीकहि चहत स्यामघन कीजै चित्र बिचित्र बनाय॥
रहत लुभाय चरन लखि इक टक बिवस होत रँग भर्यो न जाय।
"नंददास" लिखि चहत लाडिली रही, रही सब पगनि दुराय॥६२॥

चिबुक-कूप गधि पिय मन पर्यौ अधर-सुधा रस-आस;
कुटिल अलकें लटकत काढ़न कौं, फंदक डारि बाँधि प्रेम के पास।
चंचल लोचन ऊपर ठाढ़े, ऐंचन कौं मानौं मधु-हास।
"नंददास" प्रभु प्यारी छबि निरखैं, बाढ़ी अधिक पियास॥६३॥

चलियै कुँवर-कान्ह! सखी-भेष कीजै;
देखन चही लाड़ली तौं अबहिं देखि लीजै॥
ठाढ़ी है मंजन कियैं, आँगन नव अपने;
देखी न सुनी हारे, संपत अति सपने॥
बदन पै सलिल-कन जगमगात जोती;
इन्दु-सुधा तामें मनौं, अमी-मय मोती॥
मोती-हार आधौं चारु, उर रह्यो लसी;
कनक-लता उदय होत, मानौं सुभ-ससी।

राग अड़ानो ताल चौताला

तेरी भौंह की मरोर तैं ललित त्रिभंगी भए,
अंजन दै चितए चलै भये स्याम, बाम री।
तेरी मुसकनि हिये लागिनी सी कौंधि जात,
दीन ह्वै है जात राधे आधो लीने नाम री॥
ज्यों ही ज्यों नचावै बाल त्यौंही त्यौंही नाचै लाल
अब तौ मया करि चलि निकुंज सुखधाम री।
"नंददास" प्रभु तुम बोलौ तौ बुलाइ लेहुँ
उनको तौ कलप बीतै तेरे घरी जाम री॥७२॥

राधिका तजि मान मया कर तेरे आधीन भए सुंदर।
बर बेलि कलप बन होहिं कलप-तर॥
वे नागर तू नव नागरि बर, वे सुंदर तू श्री सुंदरि बर।
वे हरि हरत सकल त्रिभुवन दुख तू वृषभान सुता हरि को हर॥
क्यों कछु तू उन सों कह्यौ चाहै उनहिं जानि सखी मोसों अर।
"नंददास" तब रही निरखि तन माधव पर लाल ललिता छर॥७३॥

ब्रजबालाओं का प्रेम

धरैं टेढ़ी-पाग, चंद्रिका टेढ़ी टेढ़े लसैं त्रिभंगी लाल।
कुंडल-किरनि मनौं कोटि रवि उदय होत उर राजत बनमाल॥
सुंदर-बदन पीतांबर सोहै, बजवत मुरली मधुर रसाल।
'नंददास' बनतैं ब्रज आवत, संग लियैं ब्रज-बाल॥७४॥

धरैं बाँकी पाग, चंद्रिका-बाँकी, बाँके बने बिहारीलाल।
बाँकी चाल चलत बाँकी गति सौं, बाँके बोलत बचन रसाल॥
बाँकौ तिलक, बंक भृगु-रेखा, बाँकी पहिरें गुंजन (की) माल।
गोबरधन अपुने कर धरिकैं, बाँके भये श्री मदन-गुपाल॥

बाँकी-खोर, खोर साँकरी बाँकी, हम सूधी हैं गिरिधर-लाल।
'नंददास' प्रभु सूधे किन बोलौ, सब सूधी बरसाने की ग्वालि ॥७५॥

केलि-कला कमनीय किसोर, उभय रस-पुंजन कुंजन नेरैं।
हास, विनोद कियौं चलि आली, कियो सुख होतु है हरि हेरैं॥
बेली के फूल प्रिया ले पिय पैं, डारे की उपमा यौं होत मन मेरैं।
'नंददास' मनों साँझ समै, घन-माल तमाल कौं आव बसेरैं ॥७६॥

राग गौरी

साँझ समैं बनतैं हरि आवत, चंद मनौं नट-नृत्य करन।
उडुगन मानौं पुहुप-अंजुली, अंबर अरुन बरन॥
नंदी-मुख सनमुख ह्वै बामैं, देव मनावन बिघन-हरन।
'नंददास' प्रभु गोपिन के हित, बंसी धरी श्री गिरिधरन ॥७७॥

राग गौड़ी

साँवरे पीतम जहाँ बसे सो कित है वोहि गाँव री।
पंख नहीं तन बिधना दई नातरु अब उड़ि जाँव री॥
अब उड़ि जाउँ उड़ाउँ न काहू मोहन मुख देख आऊँ।
ससि तें सहस गुन सखी सीतल वप तें नैन सिराऊँ री॥
जसुमति-नंदन त्रिभुवन-वंदन दुख-कंदन सनमावँरो।
काहे री वे गाँव ठाँव तेरो जहाँ बसे पीय साँवरो॥
सुधि आवे बनतें आवन की नासा झलके मोती।
लटकनि मंजुल मुकुट लटक की कुंडल जगमग जोती॥
नासा मोती जगमग जोती लोचन बंक बँकारो।
कच घुँघरारे मनु मतवारे अंबुज पर अलिआरे॥
छुटो परे है या मेरी मैया जीवरो बहु दुख पावै।
'नंददास' प्रभु की या आवनि छबि देखत ही बनी आवे ॥७८॥

सोई पुनि सुरसरी सी मोतिन के हारा;
रोमावलि मिली मनो जमुना की धारा।
पीक-लीक-झलक सोहै सरसुति सी पैनी;
पावन परम देखि, मदन मद-हरैनी॥
चंपक बदन छवि, कहियै किमि, भाँति कवन;
रूप-दीप-सिखा मनौं, परसै अति दुलति पवन॥
सिव मोहे जिनसैं, वह मोहनी जु कोई;
प्यारी के पाँव आजु आन परी सोई॥
देखत ही बनै लाल चलि कै लखि लीजै;
"नंददास" और छवि कहाँ लौं कहीजै॥६४॥

देखे री नव-जोबन के अँग-रँग सुभ लागत परम सुहाए।
जगमग जगमग होत मनौं मृदु कनक-खंड पै ललित नग लगाए॥
तामैं तू कुँवरि कठोर हर जन की प्रीति निरखि अति कोमल भाए।
"नंददास" प्रभु प्यारी के अंतर ठौर पै बाहर निकसि जु आए॥६५॥

सुंदर-मुख पै वारौं टौंना, बैनी बारन की मृदु-लौंना।
खंजन-नैननि अंजन सोहै, भौंह सु बंक, लोचन अति लौंना;
तिरछी-चितवन यौं छबि लागी, कंज-बदन पाये अलि-छौंना।
जो छबि है वृष-भानु-सुता में, सो छबि नाँहि हती मैं सोना;
"नंददास" अविचल इहि जोरी, राधा स्याम-सलोना॥६६॥

दंपति, पौढ़ैं करत रस बतियाँ, डोलत नैना लाग गए;
सेज रूअरी, चंद तैं निरमल, तापै कमल छए।
फूँकत दग वृषभानु-नंदनी, झरत, खुलत सु नए;
कमल मध्य अलि-सुत जब पैठे, चाँकि उमैं मनौं सकुच गए।
आलस जानि आप सँग पौढ़ी, पिय हिय लाइ लए;
"नंददास" ज्यों स्याम-तमालहिं, कनक-लता लहलए॥६७॥

राग धनाश्री

अरी, तेरी सेज की सुचिक्यान, मोहन मोहि लीनों;
जाकों जस रटत सकल जग सजनी सो तेरों आधीनों।
और सदा घर फिरें रहत है, आपुन पौ तजि दीनों;
"नंददास" प्रभु बाँकी-चितवन नैं, टौंना सौं कछु कीनों ॥६८॥

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ॥
न्याय परौं ललिता के आगें कौन सरस, को फीकी।
"नंददास" प्रभु बिलगि जिन मानो कछु इक सरस लली की ॥६९॥

राग बिहाग

केलि करि प्यारी-पिय, पौंढे चारु-चाँदनी में,
नेह सौं छिपट गए जोबन के जोस में ॥
अंगिया दरक गई मानों प्रात देखिबे कों,
चोंच काढ़ि चक्रवाक काम-हर रोस सें।
आरस सौं मोर बाँह दोऊ कुच गहे पिय,
रति के खिलौना मनौं ढाँपि दिए कोस में;
रूप के सरोवर में "नंददास" देखे आछी;
चकई के छौना बँधे कंचन के कोस में ॥७०॥

ताल चपक

सरद निसा को चंद्रमा री तेरे पाँयनि बाँध्यो सोहै।
वह रितु दासी तू ठकुराइनि क्यों न स्याम मन मोहै ॥
या मुख परतर दैबे कूँ तिय या त्रिभुवन मैं कोहै।
"नंददास" स्वामिनि चलि री तूँ मनमोहन मग जोहै ॥७१॥

देखन दै मेरी बैरन पलकैं।
नँदनंदन मुख तें आलि बीच परत मानों बज्र की सलकैं॥
बन तें आवत बेनु बजावत गो-रज-मंडित राजत अलकैं।
कानन कुंडल चलत अँगुरि दल ललित कपोलन में कछु झलकैं॥
ऐसो मुख निरखन कों आली कौन रची बिधि पूत कमल कैं।
'नंददास' सब जड़न की इहि गति मीन मरत भायें नहिं जल कैं॥७९॥

राग अड़ानो

जल कों गई सुधि बिसराई, नेह भर लाई,
परी है चटपटी दरस की।
इत मोहन गाँव, उत गुरु-जन त्रास,
चित्र सी लिखी ठाढ़ी नाँव धरत सखि अरस की॥
टूटे हार, फाटे चीर, नैननि बहत नीर,
पनघट भई भीर, सुधि न कलस की।
'नंददास' प्रभु सों ऐसी प्रीति गाढ़ी बाढ़ी,
फैल परी चरचा चायन सरस की॥८०॥

जर जाओ री लाज, मेरो ऐसो कौन काज,
आवत कमल-नैन नीकें देखन न दीने।
बन तें जु आवत मारग में भई भेंट,
सकुच रही री हौं इन लोगन के लीने॥
कोटि जतन करि हारी मोहन निहारिबेकों,
अँचरा की ओट दै-दै कोट स्रम कीने।
'नंददास' प्रभु प्यारी वा दिन तें मेरे नैन,
उनही के अंग संग, रँग रस भीने॥८१॥

नंद-महरि घर, मिलि ही मिस आवत, गोकुल की नारि;
कल न परत, कमल-मुख देखें, भूल्यौ काम, धाम आली बदन निहारि।

दीपक जोर लै चली घाट मैं, छबि सौं यहाँ करि देति गारि ;
'नंददास' लगे नैन लाल सौं, पलक-ओट मएँ मित्त जुग-चारि ॥८२॥

गोकुल की पनिहारी, पनिया भरन चाली,
बड़े-बड़े नैन तामें खुभि रह्यो कजरा ।
पहिरें कसूमी-सारी, अँग-अँग छवि भारी,
गोरी-गोरी बाहन में मोतिन के गजरा ॥
सखी संग लियें जात, हँसि हँसि करत बात,
तन हूँ की सुधि भूली सीस धरैं गगरा ;
'नंददास' बलिहारी, बीच मिले गिरिधारी,
नैननि की सैननि में भूलि गई डगरा ॥८३॥

आवत ही जमुना भरि पानी ।
स्याम रूप काहू को ढोटा, बाँकी-चितवन मेरी गैल भुलानी ॥
मोहन कह्यो तुमको या ब्रज में, नहि जानी पहिचानी ।
ठगि सी रही, चेटक सौं लाग्यो, तब तैं व्याकुल फुरत न बानी ॥
जादिन तें चितयो री मो तन, तादिन तें उन हाथ बिकानी ।
'नंददास' प्रभु यौं मन मिलि गयो, ज्यों सारँग में पानी ॥८४॥

राग बिलावल

आजु अरुन-अरुन डोरे, दृगन लाल के लागत हैं जु भले ;
मंदी परे पगन अलि मानौं, कंज-दलनि पर चले ।
कुटिल-अलक समात नहि पगिया, आलस सौं झल-मले ;
'नंददास' पुहुपन मधि मानौं, मधुप पुंज सोवत कलमले ॥८५॥

तुम रँगभीने सुनतही गई मेरे पाय की नहीं ।
सुनि हो कुँवर और काहि लगाऊँ आधी रैन गई, इहाँ हम तुम ही ॥
सुनि कै ब्रज उपहास चलैगो गुरुजन-डर धरकत उर नित ही ।
'नंददास' प्रभु ऐसी सही न परेगी जिय जो सहैगी सो परबस ही ॥८६॥

आजु मेरे आए माई नागर नन्दकिसोर।
चंदा रे तू थिर ह्वै रहियो, होन न पावै भोर॥
दादुर मोर, पपैया बोलौ, बोलौ और चकोर;
'नंददास' प्रभु जिन वे बोलौ, निरवारौं तम-चोर ॥८७॥

राग गौरी

बन तें आवत, गावत गौरी।
हाथ लकुटिया, गायन पाछें, ढोटा जसुमति को री।
मुरली धरैं अधर नँदनंदन, मानौं ठगी ठगौरी;
याही नें कुल-कानि हरी है, ओढ़ें पीत पिछौरी।
चढ़ि चढ़ि अटनि लखति ब्रजबाला, रूप निरखि भई बौरी।
'नंददास' जिन हरि-मुख निरख्यौ तिनकौ भाग बड़ौरी ॥८८॥

बनहूँ से आवत गावत गौरी।
आगे आगे धेनु पीछे नंदनंदन, लाला जसुमति को री॥
अटा चढ़ी ब्रजबधू निहारें निरखि परम पद पावो री।
आवत देखे श्याम मनोहर पुष्पमाल लै दौरी॥
अधरन मुरली धरे मनमोहन, सब ब्रजनारि ठगो री॥
आज को शोभा मोपे बरनि न जाई, ओढ़े पीत पिछौरी॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै, भाल तिलक सिर खोरी॥
'नंददास' प्रभु की छवि निरखें, भाग बड़ो तिनको री ॥८९॥

राग गौड़ी

मिलही मिल हो आवे गोकुल की नार।
नंद महर के आँगन मोहन सुरति बिना देखहुँ न परे
फल मुक्ति काम धाम आछो बदन निहार॥
दीपक ले अलि बार बाट में बरो कर हार
फेरि आवे नंद द्वार वारेरे कूँ देवि गार।

'नंददास' नंदनँदन सुँ हो लागे नयनों
पलक की ओट मानु री बिते जुग चार ॥९०॥

खंडिता ब्रजबाला

राग पंचम

जागे हौ रैन सब तुम, नैना अरुन हमारे।
तुम कियो मधुपान, घूमत हमारौ मन, काहे तें जु नंददुलारे॥
उर नख-चिन्ह बिहारै, पीर हमारैं, को कारन कहु कौन बिचारे;
'नंददास' प्रभु न्याय स्यामघन,
बरसत अनत जाय हम पै झूम झूमारै॥९१॥

राग बिलावल

आलस उनींदे नयन लाल बिहारे कहाँ तुम रैन बिताए।
पीक कपोल देखियत अति हैं प्रिय अधरनि अंजन-रेख लखाए॥
जावक भाल, माल उर बिन गुन हृदि नख-चिन्ह दिखाए।
'नंददास' प्रभु बोल निबाहे भोर होत उठि धाए॥९२॥

आजु मेरे धाम आए री नागर नंद किशोर।
धन्य दिवस धन घरी री सजनी, धन्य भाग सखि मोर॥
मंगल गावौं चौक पुरावौं बंदनवार सजावौं पौर।
'नंददास' प्रभु कहुँ रस बस करि भागन आवत कबहूँ मोर॥९३॥

राग देवगंधार

उपरना वाही पै जु रह्यो।
जाही के उर बसे स्याम-घन, निशि कौं जँह सुख लह्यो॥
छबि-तरंग अमित अंग अँग में, दृगन भेद नहिं जात कह्यो।
'नंददास' प्रभु चले सैन दै, अब दाँव न दौर रह्यो॥९४॥

पीताम्बर काजर कहाँ लग्यो हो लाला, कौन के पीके नैन।
कौन के घर नेह रस पागे, वे गोरी कछु ओर।
देहु बताय कान राखति हौं ऐसे भये चित-चोर ॥ ध्रुव ॥
अंजन अधर, ललाट महावर, राजत पीक कपोल।
घूम रहे रजनी जागे से, दुरत न काम-कलोल ॥
नख निसान राजत छतियन पै, निरखौं नैन निहार।
झूम रहीं अलकैं अलबेली, पाग के पेंच सँवार ॥
इम डरपैं यसुदा के आनन, नागर नंद किसोर।
पायँ परौं फगुआ नव देहौं मुरली देहु अँकोर ॥
घर घर गोकुल की गोपी, जिन हरि रूप दुराय।
'नंददास' प्रभु किये कनौंडे, छाँड़े नाच नचाय ॥९५॥

ढीले ढाले पग धरत, ढोली पाग ढरकि रही,
ढीले से ढप से फिरत ऐसे कौन पै ढहे हौ।
गाढ़े जु पिय हिय के, पाह ऐसी गाढ़ी कौन तिया,
गाढ़े-गाढ़े भुजन बीच गाढ़े करि गहे हौ ॥
लाल-लाल कोमल कनौंड़े लागि-लागि जात,
बाँची कहो प्रान-पति कौने लाल लहे हौ।
'नंददास' प्रभु प्यारे निसि के कनौंके आप भये प्रात,
कहौं मलि बात रात कहाँ रहे हौ ॥९६॥

राग ललित

भले भोर आए, नैना लाल।
अपुनौ पट पीत छाँड़ि, नीलांबर लै बिलसे
उर लाइ नई रसिक, रसीली माल ॥
रति जय-पत्र सु लिख दीनों उर,
सोभित स्याम-घन बिनु गुन माल।

'नंददास' प्रभु साँची कहिये,
फिर-फिर प्यारे हमारे नँदलाल ॥९७॥

तुम कौन के बस हे खेले रंगीले हो, हो हो होरियाँ।
अंजन अधरनु पीक महावर नैननि रँग रंगे रँग रोरियाँ ॥
बार-बार जँभात परसपर, निकसि रहीं सब चोरियाँ।
'नंददास' प्रभु उहाईं बसौ किन, जहाँ बसें वे गोरियाँ ॥९८॥

ध्रुव-पद

आवत रवि मान आप हो जू मेरे गृह,
अरसीले-नैन, बैन तोतरात।
अंजन अधर धरैं, पीक-लीक सोहै आछी,
काहे कौं लजात मूँठी-सौंह खात ॥
पेंचहू सँवारत, पै पेंचहू न आवत,
पते पै तिरछी-भौंह करि चितै गात।
'नंददास' प्रभु जो हिय में बसत प्यारी,
ताही तैं भूलि नाम वाही कौं निकसि जात ॥९९॥

राग ईमन

भलैं जू भलैं आए, मो-मन भाए,
प्यारे ! रति के चिन्ह दुराएँ।
सरबस दै आए, अंजन-लीक लाए,
अधरन रंग लाए कहाँ जाइ ठगाए ॥
हौं हीं जानत, और नाहिं पहिचानत,
घर छोरि युवतियाँ बनाइ तुम लाए।
'नंददास' प्रभु तुम बहु नाइक,
हम गँवारि, तुम चतुर कहाए ॥१००॥

राग टोडी

लाल संग रति मानी, इम जानी, कहूँ देखि नैना रँग मोप।
चंचल-अंचल मैन समात, इतरात,
रूप-उदधि मानौं मीन, महावर मोप॥
पलक पीक जग-मगात, दृग मानिक
मनौं जराइ लीने प्रेम-डोर पोप।
'नंददास' प्रभु पिय-मुख सुख के लोभ,
लालची हो जानत नियां न नैंकु वोप॥१०१॥

आगतपतिका

राग ईमन

मेरे री मगर आवत, छबि सौं दमक फिरावत।
औरन सौं बतरावत, मो तन चितवत,
चतुर परोसिन देखि-देखि मुसिक्यावत॥
नैननि मनुहारि करत, बैनन समझावत,
निपट-नेह जनावत, भौंह चढ़ावत।
'नंददास' प्रभु अति लोक-लाज इत
कहु कैसैं के धीरज आवत॥१०२॥

अभिसार

रंग-महल रंग-राग, तहँ बैठे दूलह-लाल,
तू चलि चतुर रँगीली राधे!
अति विचित्र कियो साज तो सौं रँग रहैगो आज,
दादुर, मोर, पपैया बोलत फूले फूल द्रुम बाग॥
नव सत अंग साजि, पहिरि कसूँमी-सारी,
तापर रीझे लाल दये बीच सोंधे दाग।
दूती के बचन सुनि उठि चली पिय पै वह
छबि निरखि गावै 'नंददास' बड़ भाग॥१०३॥

प्रौढ़ा अधीरा

छन-छन कहाँ चले ऐसी को मन-भाई साँवरे कुँवर कन्हाई।
मुख सोहे जैसे द्वैज को चंदा, छिप-छिप देति दिखाई॥
भले ही जाउ, नैकु ठाढ़े रहौ, किन ऐसी सीख सिखाई।
'नंददास' प्रभु अब न बनैगी, निकसि जाइ ठकुराई॥१०४॥

प्रेम गर्विता

राग बिहाग

चाँपत चरन मोहन-लाल।
पलिका पौंढ़ी कुँवरि राधिका, सुंदरि, नयन बिसाल॥
कबहूँ कर गहि नैन सिरावत, कबहुँ छुवावत भाल।
'नंददास' प्रभु छबि निरखति अति प्रीति पीयें प्रतिपाल॥१०५॥

विरहिणी

राग मालकोस

जानन लागे री, लालन मिलि, बिछुरन की बेदन।
दग भरि आए री, मैं कहीरी कछुक तेरी प्रीति की रीति,
आना-कानी में भई घुमराई में गए दिन॥
नंद-कनौंदे की रूप-माधुरी, अँग-अँग
लागी री दरस हियें बेदन।
'नंददास' प्रभु रसिक-मुकुट-मनि, कर पै कपोल धरें,
ररकत ढरकत री तिलक मृग नैदन॥१०६॥

चोरी लीला

काहे आइ न देखियें रानी जू, अपने सुत के करम।
भाजन, भवन एकु नहिं राख्यौं, कहीं लौं
आगें हूँधि धरे हैं ऐसैं जाने का कोऊ मरम।

दिन-दिन की हानि, बूझैं रावरे न नैकों कानि,
कहो जू बधिबे कौं कौन सौं धरम ;
'नंददास' प्रभु मैया के आगैं साधु से बैठे
नहिं जानत चोरी कौं का मरम ॥१०७॥

छाक लीला

राग सारंग

लला भरि हो लाल ! कैसें कै पठाऊँ,
पठवो ग्वाल छाक ले आवैं ।
गिन देखो गाँठि ना जानों कौन-कौन मेवा बँधी,
बसन सुरंग हा-हा करि पाँयन परि पठावैं ॥
आपु ब्रज-रानी न विचारैं मेरे लला पै घरें,
कनक-थार ओदन भर्यो सो बेला न समावै ।
'नंददास' प्रेमी स्याम परसि पद-पंकज कही,
कालिंदी तैं जु काँवरि भरि ठिकरि बुलावै ॥१०८॥

सब ब्रज-गोपी रहीं तक-ताक ।
कर कर गाँठ लावत सब दिन कें, मन कौं पठत जब छाक ॥
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई, घर घर तें ले निकसीं थाक ।
'नंददास' प्रभु कौं अति भावत, प्रेम-प्रीति के पोखे पाक ॥१०९॥

चहुँ दिसि टपकन लागीं बूँदें ।
ब्यौहारन पिजन भींजैगो, द्वार पिछोरी मूँदैं ।
भोजन करत सोच परि ललना याही सुख हित मूँदै ;
है सुचेत सब 'नंददास' प्रभु कौन कौप अब खूँदै ॥११०॥

मोहन जीमत छाक, ग्वाल-मंडली माँहि ।
लूम झूम रही देखि राधिका, सघ कदंब की छाँहि ॥

बिंजन देति निहोरे करि-करि, कोऊ लेत सु कोऊ नाँहि।
'नंददास' आस जूठन की, फूले अँग न समाँहि ॥१११॥

भोजन भए लाल, नीको विधि सघन-कुंज के छाँहि।
गरजि गरजि घन बरस्यो प्रबल अति कछु हम जानी नाँहि॥
करि अचँवन देखौं ब्रज सोभा, कदम-खंड बन माँहि।
'नंददास' प्रभु तुम चिरजीवो हम नित जूठन खाँहि ॥११२॥

दधि दानलीला

राग विलावल

ऐसो को है जो छुवै मेरी मटुकी, अछूती दहेंड़ी जमी;
बिन माँगै दियो न जाइ, माँगे तें गारी खाइ,
केतिक करौं उपाइ मेरे घर गोरस की कहा है कमी।
औरन कों दह्यो छिक-छिलो लागत,
मैंने तो औटाइ जमायो रुचि रुचि भरि कै तमी;
'नंददास' प्रभु बड़ोई खबैया नंद कौ छैया,
मेरी ही गोरस में बहुत ही अमी ॥११३॥

राग टोड़ी

कहो जू ! दान लैहो कैसैं हम तो देव-गोबरधन पूजन आईं;
कोऊ दह्यो, कोऊ मह्यो, कोऊ माखन जोरि-जोरि
भली विधि सौं आछो अछूतो लाईं।
तुम्हैं पहिलै कैसे दीजै कान्हर जू?
तुम तो सबै करत अपनी मन-भाई;
'नंददास' प्रभु तुमहीं परमेसुर भए अब,
भली कछु नई बात चलाई ॥११४॥

कहो तो बौं नंद-लाडिले कारौंगी।
मेरे सँग की दूरि जाति हैं मटुकी पटकि कै डारौंगी॥

मोरहिं ठाढ़ी कित करी मोकों, तुम जानों कछु काज न करौंगी।
सँग के सकल सखान पे देखत, अबहीं लाइ उतारि धरौंगी॥
सूधे दान लेहु किन मोपे और कहा कछु पाइँ परौंगी।
"नंददास" प्रभु कछु न रहैगो, जब बातन उघरौंगी॥११५॥

गोवर्द्धन लीला

राग कान्हरो

राजै गिरिराज आज, गाय गोप जाके तर,
नैंकुही बानकि बने घरैं भेख नटवर।
लयो उठाय ब्रजराज-कुँवर बर कर पै,
थरग थरग राख्यो मुरली की फूँक पर॥
बरसै प्रलय कौं पानी, न जात काहू पै बखानी,
ब्रज हू तैं भारी टूटत है तरें तर।
ता पर के खग, मृग, चातक, चकोर, मोर,
बूँद न काहू परी भयो है कौतुक भर॥
प्रभुजी की प्रभुताई, इन्द्र हू की जड़ताई,
मुनि हँसैं हेरि हेरि हरि हँसे हर हर।
'नंददास' प्रभु गिरिधर की हाँसी, खेल,
इंद्र को गरब गयो भयो है दूरि घर॥११६॥

अब नैंकु हमहिं देहु कान्ह, गिरिधर।
तुम्हैं धर्यें बहि बार भई है, दुखि उठे है हैं कोमल कर॥
अति हिग परे दयें सब ब्रज-जन भयो है हाथ पै अति-भर।
तब कैसैं इहि बदन देखिहैं तातैं जिय में बड़ो यही डर॥
जानि सखनि कों हेत सु मोहन दयो नवाय नैंकु अपनो कर।
'नंददास' प्रभु भुजा लटकि गई' तबै हँसे नागर नगधर बर॥११७॥

राग नट

कान्ह कुँवर के कर पल्लव पैं मनो गोवरधन नृत्य करै।
ज्यौं ज्यौं तान उठति मुरली की, त्यौं त्यौं लालन अधर धरै॥
मेघ मृदंगी मृदंग बजावत दामिनि दमकि मनौं दीप जरै।
ग्वाल बाल दै नीकै गावत गायन के संग सुर सो भरै॥
देति असीस सकल गोपी जन बरखा को जल अमित झरै।
अति अद्भुत अवसरि गिरिधर कौ 'नंददास' के दुःख हरै॥११८॥

रासलीला

राग केदारा

देखो री नागर नट निरतत कलिंदी-तट,
गोपिन के मध्य राजै मुकट की लटक।
काछनी किंकनी कटि पीतांबर की चटक (मटक)
कुंडल-किरन रवि-रथ की अटक॥
तत थेई तत थेई सबद सकल घट
उरप तिरप मानो पद की पटक।
रास मध्य राधे राधे मुरली में येई रट
'नंददास' गावै तहाँ निपट निकट॥११९॥

राग बिहाग, इकताला

खेलत रास रसिक रस नागर।
मंडित नव नागरी निकर पर परम रूप को आगर॥
बिकच बदन बनिता वृंद अतिसै अमल सरद सी राजत।
राका सुभग सरोवर मैं जस फूले कमल बिराजत॥
नवकिसोर सुंदर साँवर अँग ललित ललित मजमाला।
मानौं कंचन खचित नील मनि मंजुल पहिरी माला॥

या छबि की उपमा कहिये को ऐसो कौन पढ्यो है।
'नंददास' प्रभु को कौतुक लखि कामहि काम बढ्यो है ॥१२०॥

साँवरे प्रीतम संग राजत रंगभीनी भामिनी।
निरतत चंचल गति दुति न कही परति
लहलहनि लौली जहाँ दामिनी ॥
जुवति-मंडल मधि रूप गुन की अवधि
पावैं पाम सब सिद्धि संगीत की स्वामिनी।
राग रागिनी तत थेई कल बानी
कछुक सीखी कोकिला की कामिनी ॥
उरप तिरप मान अति ही अद्भुत गान--
मोहे नग खग मृग अरु चंदा जामिनी।
'नंददास' रीझे जहाँ अपनपौ वारयौ वहाँ
रवनि मनिर माँ अभिरामिनी ॥१२१॥

राग जै-जैवंती

वृंदावन, बंसीबट, जमुना तट बंसी रट[1],
रास में रसिक प्यारो खेल रच्यो मन में।
राधा-माधो कर जोरैं, रवि-ससि होत मोरैं,
मंडल में निरतत दोऊ सरस सघन में ॥
मधुर मृदंग बाजै, मुरली की धुनि गाजै,
सुधि न रही री कछु सुर, मुनि, जन में।
'नंददास' प्रभु प्यारो रूप-उजियारो अति,
कृष्ण-क्रीड़ा देखि भये थकित-जन मन में ॥१२२॥

राग केदारो

रीझी हो, प्यारे-हरि कौ रास देखि
याही तें अधिक बढ़ गई रैन।

---

१. पाठा०—कुंवन मों जमुना तट।

चलि न सकति हरि-रूप बिमोही,
रहि इक-टक आछे नखवनैन ॥
छबि सौं छूटति बिच बिच तारे,
हीरन के अभूषन पै वारौं जग-ऐन ।
चंदा हू थकित भयो देखि कैं
ललचि रह्यो पाइ परम चैन ॥
इच्छा भई जब लौं नाचे गोपी-गुपाल,
अद्भुत-गति मोप कहो न परति बैन ।
'नंददास' प्रभु कों बिलास रास
देखति ही मनमथ हू कौं मन-मथ्यो री मैन ॥१२३॥

राग भैरो

निरतत गिरिधरन संग रंग भरी नागरी।
वृंदावन रम्य जहाँ बिहरत पिय प्यारी
तहाँ मंडल रचि रास रसिक जुवती मन भाग री ।
बाजत अनहद मृदंग ताल बिना गति सुगध
अंग अंग लग्यो निरखि जग्यो रंग राग री ॥
तत्थेई शब्द करत सकल नृत्य भेद सहित
सुलफ सबी उरप तिरप लेत नागरी ॥
याहा जोड़ी करी कुँवारी नवल पिय सों नवल प्यारी
दामिनी सी दरसे रूप गुन आगरी ।
प्रेम पुंज गोकुलनारी सखि सो सुभग प्यारी
बिहरत बिपिन बिलास बड़े जू भाग री ॥
खग मृग पसु पंछी निरख मोहन भए चर अचर
थियकि रह्यो चंद्र नलिन सकल भाग री ।
मास पट बिहार सेवतने निमिख ह न जाने रस
'नंददास' प्रभु संग रैन रंग जाग री ॥१२४॥

राग ईमन

आली मंद मंद मुरली धुनि बाजत निरतत कुँअर कन्हैया।
जैसोइ सरद चाँदनी निर्मल तैसोई बनी है दुलहिया॥
चंदन खौर बनमाल हिये मानों कंचन बेलि बलहिया।
'नंददास' प्रभु की छबि निरखत दुहु की लेत बलैया॥१२४॥

रास में रसिक दोऊ आनँद भरि नाचत,
गताद्रिम द्रि ता तत्थेइ तत्थेइ गति बोले।
अंग अंग चित्रित किये लाल काछनी कटि सुदेस
कुंडल झलक कपोल सीस मुकुट डोले॥
जुवति-जूथ नृत्य करत स्याम ग्रीव भुजा धरे
स्यामहि मीत, रसना सम बोले।
'नंददास' पिय प्यारी की छबि पर त्रिभुवन की
सोभा वारौं बिनु मोले॥१२५॥

मान लीला

प तुम, पहिलैं तौ देखौ आइ, मानिनी की सोभा लाल,
पाछैं त मनाइ लीजौ प्यारे हो गोविंदा।
कर प धरि कपोल रही री प्रिय नैन मूँदि,
कमल बिछाइ मानों सोयो सुख चंदा॥
रिस भरी भौंह तापे भँवर बैठे थरथरात
इंदु तर आयौ मकरंद-हित अरविंदा।
'नंददास' प्रभु ऐसी काहे कौं बसए बलि
जाके मुख देखें त मिटत दुख दंदा॥१२७॥

सारंग-नैनी री काहे कियो एतो मान।
गोरी गहरु छाँड़ि मिल लालहि, मन क्रम, बचन होत कल्यान॥

जिन हठ करि री नट नागर सौं, भैरौं ही है देव-गान।
मुरली-तान कान्हरो गावत, सुनले री दै कान॥
रंग-रंगीली सुघर-नाइका तू जिन जिय अरयान।
'नंददास' केदारौं करिकै यों ही बिहाइ गयो मान॥१२८॥

दौरी-दौरी आवत, मोहि मनावत,
दाम खरचि मनों मोल लई री।
अँचरा पसारि कै मोहि खिजावत,
तेरे बबा की का हौं चेरी भई री॥
जा री जा सखि भवन आपुने,
छाख बात की एकु कई री।
'नंददास' प्रभु क्यौं नहि आवत,
उन पाँयन कछु मेंहदी दई री॥१२९॥

राग नायकी

प्यारे, पयौं परन न दीनी।
जोइ जोइ बिथा हुती मेरे मन, एकु छिनक में दूरि जु कीनी॥
जो जौविन मो सौं अनख करत ही, देखत आनँद-भीनी।
'नंददास' प्रभु चतुर-सिरोमनि, प्रीति छाप[1] कर लीनी॥१३०॥

राग बिहागडो

तेरोई मान न घट्यो आली री घटि जु गई रजनी।
बोलन लागे ठौर ठौर तमचूर[1]
तुहि नहि बोली री पिक-बैनी॥
कमल-कली बिकसी तुहि न तनक हँसी
होन टेव करी मृग सावक-नैनी।

---

१. पाठा०—छाप।

'नंददास' प्रभु को नेह देखि हाँसी आवै
ये बैठे री रचि रचि सैनी ॥१३१॥

राग बिहागड़ो

आपुन चलिये जु लालन कीजिये ना लाज।
मोसी सखि तुम कोटिक पठवौ प्यारि न मानै आज॥
हूँ ही बिहारी अग्याकारिनि सौं चि बात मोसौं कहा कहौ महराज।
'नंददास' प्रभु बड़ेइ कहि गए हैं आप काज महा काज ॥१३२॥

राग केदार

तू नहिं मानन देति आली री, मन तेरौ मानबे कौं करत।
पिय की आरति देखि मेरे जिय दया होत
पै तेरी दीठ देखि-देखि डरत॥
मोसौं कहत कहा, मेरौ न दोष कछू,
निपट हठीली धाइ क्यौं न अंक भरत।
'नंददास' प्रभु दूती के बचन सुनि,
ऐसैं अँग ढरे जैसैं आगि लागैं लाग ढरत ॥१३३॥

राग बिहाग

लाड़ली न मानै लाल, आपु पग धारो।
जैसैं हठ तजै प्यारी, सोई जतन अब विचारो॥
तातैं सौं सुनाइ कहौं, जैसी मति मेरी।
एक हू न मानै लाल, ऐसी है अनेरी॥
आपुनो चौप काज, सखी-भेष कीनौं।
भूषन, बसन साज, बीना- कर लीनौं॥
तब तैं आवत जु देखि, चकित है निहारी।
कौन गाँव बसत हौ, रूप की उज्यारी॥

गाम तो है नंद-गाम, तहाँ की हौं प्यारी ;
नाम है स्याम-सखी, तेरी हितकारी।
कर सौं कर जोरि बाम, निकट ही बिठाई ;
सात-सुरन साज बैनु, सुलप ही बजाई।
रीझि मोती हारु, चारु उर तैं पहिरावै ;
ऐसैं ही हमारौं गटू, साँवरो बजावै।
जोई-जोई इच्छा होइ, सोई माँग लीजै ;
माँगत हौं बीर कबहुँ नाहि मान कीजै।
मुख सौं मुख जोरि स्यामा दरपन दिखरावै ;
निरखि कैं छबीली छबि, प्रतिबिम्बहि लजावै।
छल तो सब उघरि गयो, हँसि जु पीठ दीनी ;
'नंददास' भजि-भजि पिय अंक तुरत लीनीं ॥१३४॥
काहे कौं प्यारे, तुम सखी-भेष कीनौं ;
भूषन बसन साजि, बीना कर लीनौं।
मोतिन तैं माँग गुही, कैसैं तुम प्यारे ;
नहिं हौं पहिचान सकी, कौन के बुलारे ?
रूठिवे कौ नैम नित, प्यारी तुम लीनौं ;
ताही के कारन हम सखी-भेष कीनौं।
देखति सब दुरि-दुरि सखि कुंजन की गलियाँ ;
'नंददास' प्रभु-प्यारे माँडि लई रलियाँ ॥१३५॥
रैनि तो घटत जात, सुन री सयानी बात,
मेरो पह्यौ नैंकु तोहि नाहिन सुहात री।
सुख की सुहाग-भरी ऐसी का टेब परी,
घटत न मान ओ दया हू न आत री॥
जाके नित दरस कौं सब जग तरसत रहैं,
सोई बिनु देखे तेरे नेंकु न रह्यो जात री।

'नंददास' नंदलाल बैठे अतिसै बिहाल,
मुरली की धुनि सुनि तेरो नाम गाव री ॥१३६॥

आजु छबि देखि आय मानिनी की सोभा धाय,
चाँदनी में पौढ़ी तातें रह्यो है चंद लजाय।
मंजुल पुहुपमाल नील अमरन नभ
नासिका के मोती देखें उडुगन सकुचाय॥
आये हैं निकट स्याम रीझि रहे ललचाय
तेती बार तेती बार मुख की लेत बलाय।
'नंददास' प्रभु अधरनि मोरी लाई जब
रसिक बिहारी प्यारी चौंकि परी मुसिकाय॥१३७॥

आइ क्यों न देखौ लाल! अपनी प्यारी की छबि,
चाँदनी में पौढ़ी यातें चन्दहु रह्यो लजाइ;
मंडल पुहुप माल नीलाम्बर अति ही सुहाइ,
नासिका को मोती देखि उडुगन सकुचाइ।
आए तब निकट लाल रीझि रहे ललचाइ,
बार-बार देखि-देखि लेत मुख की बलाइ।
'नंददास' प्रभु पिय अधरन सौं अधर लाइ,
रसिक बिहारी प्यारी चौंक परी मुसिक्याइ॥१३८॥

राग अड़ानो

पहिले तो देखौ आइ मानिनी की सोभा लाल,
ता पाछें लीजिए मनाइ, प्यारे हो गोविन्द।
कर पै दियें कपोल रही है नयन मूँदि,
कमल बिछाय मानों सोयौ अहै पूरन चंद॥
रिस-भरी भौंहैं मानों भौंर बैठे अरबराय,
इन्दु तरे आयौ मकरन्द भरयो अरविंद।

'नंददास' प्रभु ऐसो प्यारो कौ हँसैए मलि,
जाके मुख देखे तें मिटत सबै दुख द्वंद ॥१३९॥

राग केदारो

तेरे ही मनायवे तें नोकौं री लागत मान
तौं लौं रहि प्यारी जौं लौं लाल ही लै आऊँ।
औरनु को हँसौहौं मुख तेरी सौ रुखाई आली
सोरह कला को पूरो चंद बलि जाऊँ॥
चलि न सकत उत, पग न परत इत तैं
ऐसी सोभा छाँड़ि फिरि पाऊँ कौं न पाऊँ।
'नंददास' प्रभु दोऊ बिधि ही कठिन परी
देखियौ करौं, किधौं लाल ही दिखाऊँ ॥१४०॥

तेहवार

राग कान्हरा

अक्षय-तृतिया, अक्षय सुखनिधि, पिय कौं प्यारी चढ़ावै चंदन।
तब ही पिया पिया़री नारी, घोरि अरगजा सुघर-नँद-नंदन॥
लै दरपन निरखैं जु परसपर, रीझि रीझि रहे श्री जग-बंदन।
'नंददास' प्रभु पिय रस भींजे
जुवतिन सुखद बिरह-दुख-कंदन ॥१४१॥

राग सारंग

राखी बाँधत गरग स्याम-कर।
हीरा रतनन बिच-बिच मानिक पुनि-पुनि मुकत भर॥
दच्छिना देत नंद पग लागत आसिष देत गरग सब द्विज-बर।
'नंददास' प्रभु जियौ यहाँ लौं जौं लौं चंद सूरज मातऊ घर ॥१४२॥

राखी नंदलाल-कर सोहै।
पँच-रँग पाट के फुँदना राजत देखत मन्मथ मोहै॥

आभूषन हीरा के पहिरैं लाल-पाट ते पोहे।
'नंददास' वारत तन, मन, धन गिरिधर-मुख पै ओहे ॥१४३॥

राग बिलावल

बलि, बामन हो जग-पावन-करन।
कहि न परत सोभा तीछ मनिन सी गगन गयो जब सुंदर चरन ॥
धन्यों है भेद अति छत तें गंगा धार, धसी है धरनि उज्जल वरन।
इन पद-जोति मनों कालिंदी-धार चढ़ी अमर-पुर पाप-हरन ॥
रहे हैं चकृत चकि सुर-नर मुनि-वर,
दुहूँ दिसि नेह आन किये वरन।
'नंददास' जाके चरित दुरत नहिं रंचक
सुनत मिटैं जनम मरन ॥१४४॥

राग कान्हरो

दीप-दान दै हटरी बैठे नंद बाबा के साथ।
नाना बिधि के मेवा आये, बाँटत अपुने हाथ ॥
सोभित सब सिंगार बिराजत, अरु चंदन दियें माथ।
'नंददास' प्रभु सिगरन आगें गिरि गोबरधन नाथ ॥१४५॥

वर्षा

राग मल्हार

जहँ तहँ बोलत मोर सुहाए।
सावन रमन भवन वृंदा-वन, घुमड़ि-घुमड़ि-घन धाए ॥
नैंन्हीं-नैंन्हीं-बूँदन बरसन लागे मज-मंडल पै छाए।
'नंददास' प्रभु सखा संग लियें मुरली कुंज बजाए ॥१४६॥

लाल सिर पाग लहरिया सोहै।
तापर सुभग-चंद्रिका राजत, निरखि सखी-मन मोहैं ॥
तैसोई चीर-लहरिया पहिरें सोभित राधा-प्यारी।
तैसेई घन उमड़े चहुँ-दिसि तें, 'नंददास' बलिहारी ॥१४७॥

नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि-हरियारी,
नवल दूलह प्यारो, नवल दुलहैया।
नवल चातक, मोर, कोकिला करत रोर,
नवल जुगल भौंर, नवल उलहैया॥
नवल कसूँमी सारी पहिरैं ओढ़िनी के
अँग सँग प्यारी सरस सुलहैया।
'नंददास' बलिहारी छबि पै वारी
नवल पाग बनी नवल कन्हैया ॥१४८॥

आगम गहरि, गहरि गरजन सुनि, चौंकत चौंकत बाल सलौनी;
प्यारी अंक दुरि रही ऐसैं, जैसैं केहरि-क्रंदन सुनि मृग-छौनी।
धरत न धीर, करत हिय थर-थर सोचत मन में है सुख मौनी;
'नंददास' प्रभु बेगि चलौ किन, भई कहा धौं आगैं हौंनी ॥१४९॥

आयो आगम नरेस देस देसन में आनँद भयौ
अति मनमथ सहाय को बुलायो।
मोहन के रोर सुनि, कोकिल कुलाहल करि ठैठोई
दादुर हिलमिल सुर गायो।
चढ़यो घन-मत्त-हाथी, पवन-महावत साथी,
चपला को अंकुस दै मंकुस चलायो।
बसन धुजा-पताका अति फरफरात गरजि-गरजि
घौं घौं दमामो री बजायौ॥
आगैं आगैं धाय धाय बादर बरखत जाय,
ब्यारन तैं जलकन ठौर ठौर छिरकायौ॥
हरी हरी भूमि पै सु बूँदन की सोभा बढ़ी,
बरन बरन रंग बिछौना सौं बिछायौ।
बाँधे हैं बिरही-चोर, कीने हैं जतन रोर,
संजोगी साधन मिलि अति सचु पायौ॥

'नंददास' प्रभु नँदनंदन कौं आज्ञाकारी
औ सुखकारी ब्रजबासिन मन भायौं ॥१५०॥

निकसि ठाढ़ी भईं री चढ़ि नवल धवल
महल रँगीली अलिन माँझ;
तैसीय अमन, तैसीय बूँदन, तैसीय कसूँमी
सारी, तैसीय फूली है साँझ।
कोऊ प्रवीन लै बीन बजावत, कोऊ सुर झीने
सौं झनकावत हैं झाँझ;
'नंददास' लटकत पिय-प्यारी, छबि रची बिरंचि
मनो निपुनता भई बाँझ ॥१५१॥

अली फूल को हिंडोलो बनो फूल रही जमुना।
फूलन को खंभा दोऊ फूलन के डाँडी चारु
फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना ॥
फूली सखी चहुँ ओरें, फूल रहे गगना
'नंददास' ठाकुर फूले फूल भयो अँगना ॥१५२॥

आई है बड़ी मूलें झलके चंदा मोर के।
लसत बिरनि तें फूल दिए झकझोर के ॥
झकझोर झपटें सुगध लपटें उठै कर घनघोर से।
फरकाती अँचल-ओर चंचल दामिनी के छोर से ॥
बारति जसोमति भूखननि अवलोकि सुतसोभा भली।
बलि 'नंददास' गोबिंद-सँग मूले सबै बड़ी चली ॥१५३॥

राग मलार

गोकुलराय की पौरि रच्यो है हिंडोरना।
कंचन-खंभ बनाए चित के चोरना ॥

चित्र चोरना विवि खंभ मानक रतन डाँडी सोहनी।
पटुली कनक की लिह्वी मानक की बनी मनमोहनी॥
आई' झूलन सबै ब्रजवधु सबै एक बनाय की।
बलि 'नंद' सुन्यो बन्यो हिंडोरो पौरि गोकुलराय की॥१५४॥

गावत चढ़ी हैं हिंडोरे सूही सारी सोहै।
डहडहे मुख रंगभीने रसनि दस बिलोहै॥
कोहै सरद ससि मुख रहे लखि चपल नैना सोहना।
हँसि चलत कोने कछु सजाने मैन मनके मोहना॥
सीतल मधुर सुर गान सुनि घनए सघन घुरि आवई।
बलि 'नंद' अति आनंद बाढ्यो चढ़ि हिंडोरे गावई॥१५५॥

आए वहाँ नँदलाल पहिरे फूलमाला।
चढ़िय रंगीले हिंडोरे कहा कहौं तिहिं काला॥
तिहिं काल घनि ब्रजबाल मदनगुपाल बर छबि अनगनी।
सिंगार सुंदर तरुनि के ढिग मनहुँ छबि-बेली बनी॥
देखत बनै कहत न बनै भए दगनि के मनभाए।
बलि 'नंददास' बिलास निधि नँदलाल जब तें आए॥१५६॥

झूलत मोहन रंग-भरे गोप बधू चहुँ-ओर।
श्रीजमुना के पुलिन सुहावन वृंदावन सुभ ठौर॥
राधा दीन सु-मुख किलकारी, ज्यौं गरजत घनघोर;
ता पाछें सब सखियाँ मिलजुल करत महा री सोर।
हैसोई रटत पपैया पिउ-पिउ बोलत दादुर, मोर;
'नंददास' आनंद-भरे अति निरखति जुगल-किसोर॥१५७॥

झूलत राधा-मोहन कालिन्दी के कूल।
सघन-लता · सुहावनी चहुँ-दिसि फूले फूल।
सखी सबै चहुँ-दिसि तें आईं कमल-नैन की ओर;
बोलत बचन सुहावने 'नंददास' चित-चोर॥१५८॥

माई फूलन कौ हिंडोरा बन्यो फूलि रही जमुना।
फूलन के खंभ दोऊ, डाँडी चारु फूलन की,
फूलन बनी मयार फूल रही बलना॥
तामैं झूलैं नंदलाल, सखी सब गावैं ख्याल,
चोंप अँग राधा-प्यारी फूल भई मगना।
फूले पसु पंच्छी सब, देखि ताप कटे सब,
फूले सब ग्वाल-बाल कटे दुख दंदना।
फूली घन-घटाघोर, कोकिला करत रोर,
छबि पै वारि डारौं कोटन अनंगना;
फूले सब देव, मुनि, ब्रह्मा करैं वेद-धुनि
'नंददास' फूले तहाँ करैं बहु रंगना॥१५९॥

फूलन लागे हो पिय, लाल लाल सुविख्यात जात,
नख-सिख सोभा-सदन अति गौर-स्याम गात;
लोचन बिलोच पोच ललिता की ओटन सौं हाव-
भाव भरी करत झोंटन मैं ललित बात।
दरपन में देखति दृगनि मैं न अघात दोऊ,
मुरलीधर मुरली धरैं करैं त्रिभंगी-गात;
रमकन मैं गान करत सुघे सुर 'नंददास'
भुव-बिलास, मंद-हास मदन-मद चुवात॥१६०

राग अड़ाना

आली, सावन की प-यो हरियारी, हरी भूमि
सोहत पिय सँग झूलौंगी नवल हिंडोरैं;
बरखत मेह मंद्र, लागत प्यारो मोहि,
सखी आजु प्रीतम कौं प्रेम-रँग बोरैं।

पीत कुलह राजै, चूनरी सुपीत भ्राजै,
लहँगा पीत, कंचुकी पीत ओढ़े तन गोरे ;
झूलत में लोट-पोट होत दोऊ रंग-भरे,
निरखि छवि 'नंददास' बलि बलि तृन तोरे ॥१६१

राग नट

रँगीले हिंडोलें दोउ मिलि झूलत, रसरंग भरे किसोर अति।
नंदकुँवर वृषभानु-कुँवरि बर
निरखि छबीली भाँति भूलि ही मति॥
साँवरे बरन पिय गौर बरन तिय
झिलमिलाति झाँई अंग अंग प्रति।
गुन रूप छाँह बाढ़ी, तेऊ ढिग ढिग ठाढ़ी,
गावति झुलावति सुमंद मंद गति॥
छिनु छिनु बाढ़ै छवि, कैसे कहै कोउ कवि
तन के छिलर मानों मद हैं काम-रहित।
'नंददास' हष्टि जासों तनु की ततनि पर
ता ऊपर चंद वारौ करति आरति नित ॥१६२॥

राग मारू

हिंडोरें झूलत गिरिधर लाल[1]।
मधुवन सघन कदंब की डारें झूलत झुकत गुपाल॥
कंचन खंभ सुभग चहूँ डाँडी पटुली परम रसाल।
सेत बिछौना बिछौ सु तापर बैठे मदन-गोपाल[2]॥
ताल मृदंग बजावत जुवती गावत गीत रसाल[3]।
'नंददास' नँदसुवन-मुरलि-सुर मगन होति ब्रजबाल॥१६३॥

---

१. पाठा०—हिंडोरें माई झूलत बंसीवाला। २ मोहनलाला।
३. झूलन को माईं ब्रजवनिता बोलत बचन सुमाला।

राग सारंग

हिंडोरे माई, झूलत गिरिधर लाल।
सँग राजत वृषभानु-नंदिनी अंग अंग रूप रसाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल गल मुक्तन की माल।
रमक रमक झूमत पिय-प्यारी सुख बरषत तिहिं काल॥
हँसत परसपर इत उत चितवत चंचल नैन बिसाल।
'नंददास' प्रभु की छबि निरखत बिबस भई ब्रजबाल॥१६४॥

दूलह, दुलहिन सुरँग-हिंडोरैं झूलत प्रथम समागम सौं गठ जोरैं;
चरन खंभ, भुज मृनाल की डाँडी, रमक हुलस दोऊ ओरैं।
सुभग सेज पटुली सुख माढ्यो, गरुवा, बेलिन आषी कोरैं;
'नंददास' प्रभु रस बरषत जहाँ नव घन दामिन के अनुहोरैं॥१६५॥

राग जै जै वन्ती

माई ! आजु तो हिंडोर झूलैं छैयाँ-कदम की,
गोपी सब ठाढ़ी मानो चित्रधी सदन की।
देखत रँगीले नैन, बोलत मधुरे बैन
मोहे सब कोटि काम छबीले मदन की;
गावत मधुर धुनि, मोहे सुर, नर, मुनि,
संकर से जोगी की तारी छूटी तन की।
त्रिविध समीर जहाँ, बंसी-बट मूले वहाँ
मंद-मंद गावैं सखी राधा के रमन की;
'नंददास' प्रभु जहाँ, ललिता झुलावैं वहाँ,
मगन भई बिधु सोभा देखि स्याम घन की॥१६६॥

माई झूलत नवल लाल, झुलावत ब्रज की बाला,
कालिन्दी के तीर माई रच्यो है हिंडोरनौं;
तैसेई बोलैं मोर, क्रीड़ा करैं चहूँ-ओर,
तैसीई मधुर-धुनि लाग्यो घनघोरनौं।

तैसेई फूले फूल, हरत री मन के सूल,
अलि-गन गुंजे माई, मन के चलोहनों;
'नंददास' प्रभु-प्यारी जोरी अद्भुत वारी,
देखिबोई कीजिये चंद ज्यों चकोरनों ॥१६७॥

फूलमंडली

माई फूलन को हिंडोरा बन्यो फूल रही जमना;
फूलन के खंभ दोऊ फूलन के डाँडी चार,
फूलन की चौकी मनी हीरा जगमगाना।
फूल्यो अति बंसीवट, फूल्यो श्रीजमुना-तट,
सब सखी मिलि गावें मन भयो मगना।
फूलीं सखी चहूँ ओर झुलवत सु थोर-थोर
'नंददास' फूले जहाँ वानी को गम ना ॥१६८॥

राग मालकौंस

महकनि लागी बसंत बहार सखि! त्यौं त्यौं बनवारी छाग्यौ महकनि;
फूले पलास नल-नाहर कैसे, तैसोई कानन लाग्यो री महकनि।
कोकिल, मोर, सुक, सारस, खंजन,
भ्रमर देखि अँखियाँ लगीं ललकनि;
'नंददास' प्रभु पिय-अगवानी,
गिरिधर-पियकों निरखि भयीं चमकनि ॥१६९॥

राग सारंग

फूलन को मुकट बन्यौं, फूलन कौं पिछौरा तन
सोहति अति प्यारो बर फूलन कौं सिंगार;
कंठ, फूल बागो, फेंटा फूल, फूल-गादी, गेंदुवा फूल,
हँसि बैठे हैं स्यामा-स्याम सोभा कौं नहिं पार।

फूलन के आभूषन, फूलन के बसन बिराजत,
फूलन के फौंदा, फूलन के बर-हार ।
'नंददास' प्रभु फूलन निरखति सुधि-बुधि भूले
सुक, सारद, नारद रटति बार-बार ॥१७०॥

फूलन के महल बने फूलन बितान तने,
फूलन के छज्जे, झरोखा, फूलन किवार हैं ।
फूलन की गादी गुँदी, तकिया सु फूलन के
बैठे स्यामा-स्याम तहाँ सोभा अपार है ॥
फूलन के बसन औ अभूषन सु फूलन के,
फूलन के फौंदा, औ फूलन उर हार हैं ।
'नंददास' प्रभु फूले, निरखति सुधि-बुधि भूले,
सुकदेव, सारद, नारद रटति बार-बार हैं ॥१७१॥

फूलन की बेनी गुही, फूलन की अँगिया,
फूलन की सारी मानौं फूली फुलवारी ।
फूलन की दुलरी, हुमेल हार फूलन के,
फूलन की चंपमाल, फूलन गजरा री ॥
फूलन के तरौंना, कुंडल लसैं फूलन के,
फूलन की किंकिनी सरस सँवारी ।
फूल-महल में फूली थी राधा,
फूलन फवीं 'नंददास' जाय बलिहारी ॥१७२॥

फागलीला

राग बसंत

निरखन चलीं गिरिधरन-लाल कौं, बनि बनि ब्रज-गन गोपी ।
चपटी उबटन, नवल, चपल-तन, मानौं दामिनि ओपी ॥

पहिरैं बसन बिबिध-रँग भूषन, करन कनक-पिचकाई ।
चंचल, चपल, बड़ी-बड़ी-अँखियन, मानौं आगि लगाई ॥
छिरकति चलीं गली गोकुल की, कहि न जात छबि भारी ।
उड़ि-उड़ि केसर, चूका, चंदन, अट गए अटा-अटारी ॥
सखन सहित सजि सुघर साँवरो, सुनतहि सनमुख आए ।
मनु अंबुज बन-बास बिबसु ह्वै, अलि-संपट चढ़ि धाए ॥
हरि-कर पिचका निरखि तियन के नैना छबि हि ठराईं ।
खंजन से मानौं उड़ि बिचले, टरकि मीन ह्वै जाईं ॥
पहिलैं कान्ह-कुँवर पिचका भरि सकल तियन पै मेली ।
मानौं सोम सुधाकर सींचत, नवल प्रेम की बेली ॥
पियके अंग, तियन के लोचन, लिपटे छबि की लोभा ।
मानौं हरि, कमलन करि पूजे, बनी अनूपम-सोभा ॥
दुरि, मुरि, भगन, बचावन, छबि सौं आवन, उलटन सोहैं ।
घुमड़्यौ अबिर, गुलाल गगन में, जो देखैं सो मोहैं ॥
बिच-बिच छुटैं कटाच्छ कुटिल सर, उचटि हूल सौं लागी ।
मुरछि पर्‌यौ लखि मैन महा-भट, रति भुज-भरि लै भागी ॥
कहँलौं कहौं कहत नहिं आवै, छबि बाढ़ी तिहि काला ।
'नंददास' प्रभु नित चिरजीवो, बाल नंद के लाला ॥१७३॥

राग ललित

कुंज-कुटीर, मिलि जमुना-तीर, खेलत होरी रस-भरे बीर ।
एकु ओरि बल-बीर धीर हरि, एकु ओरि जुबतिन की भीर ॥
केकी, कीर, कल गुन-गंभीर पिक, डफ, मृदंग, धुनि कर मँजीर ।
पग मंजीर, करलै अबीर, केसर के नीर, छिरकत हैं चीर ॥
ह्वै गए अधीर, रति-पथ के तीर, आनँद-समीर परसत सरीर ।
'नंददास' प्रभु पहिरैं हीर-नग, मिटत पीर गहि सुख कौ सीर ॥१७४॥

राग टोड़ी

हो, हो होरी खेलें नँद कौ नव-रंगी लाला।
अबीर भरि-भरि झोरिन, हाथन पिचकारी रंगन बोरी,
तैसीये रँगीली ब्रज की बाला॥
मूरति धरैं अनंग, गावत अति तान-तरंग,
ताल, मृदंग बजावैं मिलि बीना बेनु रसाला।
'नंददास' प्रभु प्यारी खेलत, रंग रह्यौ छवि बाढ़ी,
छुटी है अलक, टूटी है माला॥१७५॥

राग धनाश्री

हरि सँग, होरी खेलन आजु, अरी, चलि बेगि छबीली।
निकस्यो मोहन-साँवरौ हो, फागु खेलन ब्रज माँझ।
घुमड्यो अबीर, गुलाल गगन में, मानौं फूली साँझ॥
बाजत ताल, मृदंग, मुरज, डफ कही न परत कछु बात।
रँग सौं सनि ग्वाल-बाल सब, मानौं मदन-बरात॥
जुरि आईं ब्रज-सुंदरी हो करि-करि अपुनौं ठाट।
खेलति नहिं कोऊ कुँवर कान्ह सौं निरखति तुमरी बाट॥
बिनु राधा इह कौन काम कौं, चलि उठौ छाँड़ि कै ऐंड़।
उमग्यो निधि ज्यौं नवल-नंद कौं, रुकत रावरी मैंड़॥
उठी बिहँसि वृषभानु-कुँवरि अब, कर पिचकारी लेत।
चहि न सकत ज्यौं महा-सुभट कोउ सुनत समर-संकेत॥
आईं रूप-अगाधा राधा, छबि बरनी नहिं जाइ।
नवल-किशोर अमल-चंद मनु मिली चंद्रिका आइ॥
खेल मच्यौ ब्रज-बीथिनि महियाँ, बरखति प्रेम-अनंद।
दमकत भाल गुलाल भरौ मनु बंदन मुरको चंद॥
मुरि, मुरि मरत, नचावन छवि सौं, बाढ्यौ रंग अपार।
सैन-सुनी सी बोलत, डोलत पग-नूपुर झनकार॥

सुरँग-रंग पिचकारी भरि-भरि, छिरकत हरि-तन तीय।
कुटिल कटाच्छ प्रेम-रंग तकि तकि मारत पिय के हीय॥
सिव सनकादिक, नारद, सारद, बोलत जै-जै सेइ।
'नंददास' अपुने ठाकुर की हरख बलैया लेइ॥१७६॥

राग काफी

निकसि कुँवर खेलन चले, मोहन नंद के लाल,
रंगन-रंग हो-हो होरी।
संगहै रंग-भीने ग्वाल, सब गुनरूप-रसाल,
रंगन-रंग हो-हो होरी॥[1]
कंचन-माट भराइ सौंधे भरीं कमोरी।
रतन-जटित-पिचका करन, अबीर भरें झोरी॥ रंगन-रंग०॥
सुर-मंडल, डफ, झाँझ, ताल बाजत मधुर मृदंग।
तिन में परम सुहावनी हो महुरि, बाँसुरी, चंग॥ रंगन-रंग०॥
खेलत-खेलत जब लला गयो वृषभानुहि पौरि।
नवल-किसोरी भोरी आईं देखति आगें दौरि॥ रंगन-रंग०॥
सुनि निकसी नव-लाडिली श्रीराधा राज-किसोरि।
ओलिन पुहुप-पराग भरी रूप अनूपम गोरि॥ रंगन-रंग०॥
सँग अली, रँग-रली कनक की लै पिचकारी।
मोहन मन की मोहनी, देति रँगीली-गारी॥ रंगन रंग०॥
तिन कौं छिरकत छबीलो लाल, राजत रूप गहेलि।
मनौं चंद सींचत सुधा, आप प्रेम की बेलि॥ रंगन-रंग०॥
नवल वधुन के वदन-रँगीले, घुमड़ि अबीर में डोलैं।
छुटहिं निसंक अरुन घन में जनु, हिम-कर निकर किलोलैं॥रंगन-रंग०
इतने माँझ छिपि कुँवरि छबीली, पकरे मोहन आन।
छबि सौं परसपर झकझोरति हो का पै परत बखान॥रंगन-रंग०॥

गुपत-प्रीति परगट भई, लाज-तिनका सी तोरि।
ज्यों मदमाते चोर भोर मधु करत सनक सी चोरि ॥ रंगन-रंग० ॥
सखियन सुख देखन काज, गाँठ दुहुँन की जोरी।
निरखि बलैयां लेति सबै अति छवि न बढ़ी कछु थोरी ॥रंगन-रंग०॥
कोऊ छकी छबीले लालहि छिरकति रंग अमोल।
कोऊ कमल कर लै पराग, परसत रुचिर-कपोल ॥ रंगन-रंग० ॥
खिले पिया के कमल से लोचन, गहि-गहि आँजे अंजन।
जनु अकुलात कमल-संपुट में फँदे फँदन जुग-खंजन ॥रंगन-रंग०॥
देखि बिबस वृषभानु-घरनि यों, हँसति हँसति तहँ आई।
बरजी आन सुधि नवल-बधुन कों, भुज भरि लिये कन्हाई॥रंगन०॥
पोंछति मुख अपुने अंचल सों, पुनि-पुनि लेति बलाइ।
मुसकि-मुसकि छोरति सु गाँठ कों, छबि बरनी नहिं जाइ ॥रंगन०॥
छोरनि देहिं नहिं नवल-बधू पै माँगत कुँवर हि फागु।
जोपै फगुवा देति बनै नहिं, राधा पाँइन लागु ॥रंगन-रंग०॥
औरु कहाँ लौं बरनियैं बढ़्यो सुख सिंधु अपार।
प्रेम-किलोल हिलोर किनहूँ नाहिं, सँभार ॥ रंगन रंग० ॥
रंग-रंगीली ब्रज-बधू खेलेहिं गिरिधर पीय।
इहि रंग-भीने नित बसौ 'नंददास' के हीय ॥
॥ रंगन रंग हो-हो होरी ॥१७७॥

राग काफी

परी सखी, निकसे मोहन लाल, खेलन ब्रज में फागुरी।
॥रंग हो, हो होरी।
परी सखी, घुमड़्यो अबीर, गुलाल मनु उनयों अनुरागुरी॥
सखि सोभित मदन-गुपाल, कटि बाँधे पट सोंहनो।
सखि कछनी काछैं लाल, छाड निचोयों रँग मनों॥

सखि मोर-मुकुट छवि देति, चंक दगन हँसि देखनों।
सखि सबको मन हरि लेति, पैन मैन मनो पेखनों॥
सखि चँग, आवज, सुर-बीन, अनाघात-गति बाजहीं।
सखि ताल, मृदंग उपंग, रुंज, मुरज, डफ गाजहीं॥
सखि घिरि आईं ब्रज नारि, मृग-नैनी, गज-गामिनी।
सखि रोके साँवर-लाल[1], घन घेर्यौ मनो दामिनी॥
सखि छिरकति पिय नँद-नंद, पिय पट-ओट बचावहीं।
सखि मनो घन पूरन[2]-चंद, दुरि, निकसे पुनि आवहीं॥
सखि बने तियन के अंग, छिरकि छींट छवि छैल की।
सखि मनो पुली रंग-रंग ललित लता जनु प्रेम की॥
सखि बढ्यौ परस्पर रंग उमँगि-उमँगि रस भरन में।
सखि निरखि भई मति पंगु, पीतांबर फर-हरन में॥
सखि लख गहि रंगन भरे, मोहन, मूरति-साँवरी।
सखि हरि-हरि हँसि परे, मुनि-मन ह्वै गई बावरी॥
सखि भइ सरसुति-मति थोरि, और खेल कहा लोक हो।
सखि रस-भरे साँवरे-गौर, 'नंददास' के हिय रहो॥१७८॥

बरसाने की सीम, खेलत रंग रह्यौ हैं।
इत-बल वानिक बान, ललिता लाल गह्यौ हैं॥
सखा श्रीदामा आदि, हलधर माजि गये हैं।
गहि पिचकारी हाथ जुरी, चहुँ कोद भये हैं॥
कोऊ न आवै पास, उत बल बहुत भयौ हैं।
अधिक भयो अँधियारि, गगन गुलाल छयौ हैं॥
ता मधि दमकति अंग, ब्रज-जन रूप-छटा री।
बारी भरी सुरंग, सोहै कनक-घटा री॥

---

१. पाठा०—घेरे हे मदन गोपाल। २. पाठा०—न्यो।

रोरी, चंदन घूरि, अबीर मिलाइ लियो है;
छिरकि-छिरकि घनस्याम, सब इक-रंग कियो है।
लिपट परीं बिहल ज्यौं, तरुन तमालहि हेली;
पुहुप-लता बिरवाज, कौंवत ऊपर बेली।
करत मनोरथ घेरि, गिरिधर सुघर सलोनों;
लग्यौं अरगजा गाल, श्रीमुख लगत रिझौनों।
पाग सवारत आय, श्री वृषभानु-कुमारी;
केस खोल निरवार, बैनी सरस सँवारी।
माँग भरी मोतिन सौं, पटियाँ नीकें पारी;
झबी-जराऊ जोरि, अमित गूँथननि सँवारी।
सीस-फूल सीमंत किसोरी, आपुन दीनों;
समझवार समझाइ, सु नैननि अंजन कीनों।
मृग-मद आइ सुदेस करी चन्द्रावलि नीकी;
चन्द्रभगा लै बीच लगावत पिय कै टीकी।
पद्मावति झकझोरि, बेसरि निरमोली है;
चारु किसोरी साजि, पँचरंग नव चोली है।
जेहर, केहर पाँय, त्रिभुवन छबि उपजायक;
नूपुर, चूरा रतन खचित, है पायल-आयल।
नख-सिख लौं इहि भाँति, आभरन भीर भई है;
निरखि-निरखि इहि काँति, ब्रज आँनंदमई है।
बाजन लागे ढोल और डफ, ताल मृदंगा;
गोमुख, किन्नरि, झाँझ, बीच-बिच मधुर उपंगा।
सहचरि भई अनंद, गावत गारि सुहाई;
दस-दिसि मोहन और चलत, सुन्दर पिचकाई।
एक सखी पिय आइ अरगजा डार गई है;
देखि पकर पै रोलि, पीत जू गारि दई है।

लै-लै अंचल आप, पोंछत अंगुरिन-दल सों;
मुठियन भरत गुलाल, आगें पाछें छल सों।
तेइ बातन मधु पाइ, प्रान-पिया कों पोखत;
प्रेम बिबस ह्वै दूरी, सु भरि अँकवारी झोखत।
हो-हो होरी बोलत ललिता, आँगन नाचत;
करें प्रेम को टोक, टोक पको नहिं माँचत।
'नंददास' खिलवार, खिलारी खेलनहारे;
मयों तेह मन माँहि, टोल दुहूँ दिसि भारे ॥१७८॥

राग सारंग

बड़े खिरकि में धूमरि खेलत;
मोहनलाल खिलावत रँग-भरि, गगन गरजि घंटा धुनि पेलत।
बवरि जात ब्रजराज-लाडिले धेनु बाद जब मेलत;
'नंददास' प्रभु मुदित नँदरानी हो-हो रस-सागर में झेलत ॥१८०॥

राग सारंग

आजु हरि खेलत फागु बनी;
इत गोरी रोरी भरि मोरी, उत गोकुल को धनी।
चोवा कों ढोवा भरि राखयो केसर-कीच घनी;
अबिर, गुलाल उड़ावत गावत, सारी जात सनी।
हाथन लसत कनक पिचकारी, ग्वालन छूट छनी;
"नंददास" प्रभु होरी खेलत, मुरि मुरि जात अनी ॥१८१॥

राग-मारू

खेलत नंद कों नंदन होरी अपुने रँगीले ब्रज में।
बन ठन ठाढ़े ग्वाल-पाल सँग जनु अनेक से मैन;
आपु मदन-मोहन अति सोहन, कहा कहौं छबि ऐन।
उत तैं आईं नव-जुवती-वृंद, चंद्रमुखी इक ठाँईं;
चंचल-तन की दमकत आभा, जनु दामिन पर झाँईं।

जुरे हैं कंचन-चौहटे, अपुने-अपुने टोल;
आनँद-घन ज्यौं गाजत राजत बाजत दुन्दुभि ढोल।
सुर-मडल, किन्नरी, झाँझ, डफ, बाजत अति रँग भीने;
बिच-बिच बजत बँसुरिया सबकों नेह पाग बस कीने।
गाजत घट सौं पटरी तारन ग्वारन गावत संग;
नाचत हैं मधुं मंगल हँसि-हँसि सुंदर माच्यो रंग।
कुंकुम, चंदन बंदन, केसर सारस, मृग-मद घोरी;
छबिसौं छबिसौं छोरत छोलत, बोलत हो हो होरी।
रँग रँग की छींटन सौं भरि भरि सोहत तिया नवेली;
बरन बरन के फूलन मानौं फूली आनँद-बेली।
घुमड़यो गगन गुलाल सु तामैं घूँघरि मैं दुरि पावै;
भरि भरि भागत हरि कौं भामिनि दामिनि सी छबि पावै।
घेरि लए हैं नवल-तियन सब सुघर-स्याम सिरमौर।
भ्रमत भए या छबि सौं मोहन, ज्यौं कमल-कोस कौं भौंर।
पकरे छबि सौं आन राधिका, मोहन करि बरजोरी;
कही न परै प्रेम की छाई छबि झकझोरा झोरी।
ठाढ़े भए बिवस बसि सबही काहु न रही सँभार;
छूटी छबि सौं अलक सु टूटे गर मुक्तन के हार।
ज्यौं हू लुकत न लाज निगोड़ी बिवस सु प्रेम घरैंड़;
"नंददास" प्रभु निधि न रुकति री वा यारू की मैंड़ ॥१८२॥

राग गौरी

अरी चलि नवल-किशोरी गोरी, भोरी, होरी खेलन जाँइ;
ऐसी नव जामिनि लखि कै भामिनि, कैसैं भवन सुहाइ।
अहँ ब्रज-घर-नर-नारिन के जूथ जुरे हैं आइ;
श्री नँद-नंदन हूँ तहँ आए, रसिक-सिरोमनि-राइ।
आली, जिन मैं तू नहिं निरखी, तब रहि गए नैना नाइ;

फिर इत उत लखि मोहन-पिय-प्रिय सो तन बदि अरगाइ ।
तब वे नैननि में कही, मैं कही ग्रीव डुराइ ;
तबहि रँगीले-कुँवर तोहि पै, सैननि दई पठाइ ।
तू जिन करि री गहर नवल-तिय, आन बन्यो अति दाइ ;
इहि सुनि नागरि नवल-नवेली मुसिकी नैन दुराइ ।
इतनोंई कहि परम निपुन सखि मुख-मरि लई उठाइ ;
गहि तब कंचुकि खींचें छोरी, पीरी दई खवाइ ।
पुनि पट-पीत पटोरन पोंछत, धरि आगे समुहाइ ;
चली नवल सजि स्वामिनि कामिनि, सखी अंस-भुज लाइ ।
नव-गुन, नवल रूप, नव-जोबन, नवल-नेह हुलसाइ ;
मानों कनक-धातु-परबत पै, तड़ित-लता लपटाइ ।
झूमक स्यारी, सारी पहिरैं, चकत छु कटि सन्धाइ ;
जनु नव रूप-जोति जग-मग सी लगत पवन झुकि जाइ ।
ललितादिक सखियन सँग सुंदरि सोभित है इहि भाइ ;
जनु नव-कुमुदिन के मंडल में, इंदु बगन चलि जाइ ।
कमल फिरावत कर पर माला माला उरसि सराइ ;
मंजुल मुकुर मरीचिन सी मनु छिन-छिन छबि अधिकाइ ।
कबहूँ बदन दुराइ उघारत, पुनि हँसि लेति दुराइ ;
झूमति चलति मद-मत्त गयँद ज्यों, मलकत बाँह डुलाइ ।
लट छुरि लटकि छबीली छबि सों, बेसरि रहि अरुझाइ ;
जनु पीतम-मन-मीन-गहन कों बँसरी दई लटकाइ ।
सोभित स्रवननि जड़ित सु कुंडल, स्वेद बुंद चुचआइ ;
चंचल अंचल-छोर छिपा सों चमकि चलैं जब धाइ ।
नीबी-बंधन, फुँदना, घंटा, किंकिनि घन घहराइ ;
नूपुर ऊपर चूरा-रूरा, जनु सुंसबद झनकाइ ।
सखियन के कर कुसुम-झरिन तें, अगर बने बहुँ घाइ ;

मदन-महावत कौं बस नाहिंन, अंकुस देत डराइ।
सखियन में अति हितू बिसाखा, जनु तन की परछाँइ;
सो नँद-नंदन नेरे निरखि कैं, सहज उठी कछु गाइ।
जानी सब श्रीराधा आईं, भयौ चौगुनौं-चाइ;
जे हीं नवल किसोरी साथी, ते दौरीं समुहाइ।
तिन सँग मोहन आए-आए, (ज्यौं) रंक महा-निधि पाइ;
प्रथमहिं लाल जुहार कियौ मृदु मुरली माँझ बजाइ।
इततैं कुटिल कटाच्छन पिय-तन चितई मृदु मुसिक्याइ;
चाँचर दैन लगी ब्रज-बीथिन, सुभग रंग उपजाइ।
गावन लागीं ग्वालिन गारी, सुंदर लाल लगाइ;
राधा गारि सुनत हँसि-हँसि कै हेरति हरिहिं लजाइ।
ललकि अबीर, रोरि भरि झोरी, प्रान-पियहि पै जाइ;
सो सुख पिय-नैननि पहिचाने मो मन में न समाइ।
औरहु प्रेम बिबस रस कौं सुख कहत कह्यो नहिं जाइ;
इहि सुख कहिबे कौं नित सरसुति कोटिक मति सु-हराइ।
सेस, सुरेस, महेस न जानैं, अज अजहूँ पछिताइ;
इहि सुख रमा सनक नहिं पावत, जदपि पलोटत पाँइ।
श्री बृषभानु-सुता-पद-अंबुज, जिनके सदा सहाइ;
सो रस मगन रहति अति तिनपै 'नंददास' बलि जाइ॥१८३॥

राधा बनी रँग-भरि होरी खेलैं, अपुने प्रीतम के संग।
पहुँ तो पहिलैं ही हुती रँग-मँगी पुनि भीनी अति रंग॥
रँग-रँग की (बनी) सहचरी, बनी छबीली साथ।
पहिरैं बिबिध-बसन रँग-रँग के रँग-भरे भाजन हाथ॥
रँग-भरी कनक-पिचकारी सोहत कर कर एक समान।
मानहु मैन सु हिय पै साध्यो लैकर रूप-कमान॥

काहू पै कुसुमन-गूँथी-छरि काहू पै नये-नये नीर।
काहू पै कुसुम-गंध अति सोहत, काहू पै नूतन-मोर॥
काहू पै अरगजा रंग कौं, काहू पै केसर-रंग।
काहू पै मृग-मद अति राजत, होत भ्रमर जहँ पंग॥
तिन मैं मुकुट-मनि लाडिली, सोहत अति सुकमार।
लटक चलत ज्यौं पवन तैं कोमल-कंचन-डार॥
पिय-कर पिचका देखि कैं, छवि सौं नैंन डराइ।
खंजन से मनु चढ़ि चले औ ढरकि मीन ह्वै जाइ॥
छिरकति रँग पिय तियन पैं उपजे अति आँनंद।
मानौं इंदु सुधाकर सींचत, नव-कुमुदिन के वृंद॥
भींजे-बसन सुतन लपटाने, बरनति बरन न जाइ।
उपमा दैन न देति नयन तब राखे हा हा खाइ॥
रंग-रँगीली-राधिका, रंग-रँगीलो पीय।
इहि रँग-भीने नित बसौ 'नंददास' के हीय॥१८४॥

राग बिहाग

चली है कुँवरि-राधिका खेलन होरी।
पंकज पराग भरि लई नव-मोरी॥
रँग-रली बहु सोहैं अली।
सुफल करी सब गोकुल-गली॥
गावत सरस आछी मीठी धुनि।
हरि जो जारयौ मनोज जियौं चाहै पुनि॥
बाजत ताल मृदंग सुहाए।
मदन-सदन मनु बजत बधाए॥
सोहत मुख कछु अंबरन दुराएँ।
आयौ बिधु मनु नव-घन छाएँ॥

अबीर धुँधरि में राजत-रँग भीनी।
मनहु चीठ पर सु मार ढकि लीनी॥
इत तें आए मोहन रँगे-रंग।
धरन पलोटत कोटि अनंग॥
सुभग गलिन बिच खेल भयौ भारी।
इत हरि, उत वृषभानु-दुलारी॥
कनक खंभ मिलि सोभा भारी।
छबि सौं छुटत मनु मैन फुहारी॥
छिरकति आइ छबीली तिय-गन।
रँग बरसे मनौं नूतन अति घन॥
तियन-अंग रंग-कन सोहैं।
कंचन-छरी जरी छबि को हैं॥
इत उत चलत धार रँग-मेली।
आतुर उलहीं प्रेम-नवेली॥
अबिर, गुलाल सु मंडित गगन।
मनहुँ प्रेम-रबि चाहत उगन॥
घेरे कामिनि स्यामहि ऐसैं।
दामिनि-निकर मनौं घन जैसैं॥
लिपटि साँवरे अँग सोहैं ऐसी।
मनु सिंगार-तरु छबि-लता सु जैसी॥
हँसत-हँसत चंद्रावलि उत गई।
लालहि कही हौं बिहारी दिखि भई॥
छल करि मुरली लई किसोरी।
हँसि वारी है थोरी थोरी॥
बाँसुरी राधा-अधर बिराजी।
ऐसी कबहुँ न पिय पै बाजी॥

बंसी देन मिसि राधिका बुलाए।
हँसत सुलाल अकेले धाए॥
गावत ब्रज-मधु कीर्ति तिहारी।
चिरजिओ प्यारो अटल-बिहारी॥
फगुआ कुँवरि कान्ह बहु दीनों।
प्रेम-प्रीति करि माँथें लीनों॥
'नंददास' सुख कहा बखानै।
बिधि हू कहाँ जानै सोइ जानै॥१८५॥

इक दिसि बर-ब्रजबाला, इक दिसि मोहन-मदन-गुपाला;
चाँचर देति परसपर छबि सों, कहि न परत तिहि काला।
कुसुम-धूरि धूँधरि मधि चाँदनि, चंद-किरनि रही छाइ;
तैसोई बन्यों गुलाल गगन कछु बरनत बरनि न जाइ।
सुर-मंडल, डफ, बीना-झीना, बाजत रस के ऐन;
चाँचर में चाँचर सो चितवत, नवल-तियन के नैन।
बजत चटक कठताल, तार अरु मृदुल-मुरज-टंकार;
तिन सँग रंग रँगीली-मुरली, बिष अमृत सी धार।
मढ्यों दुहूँ-दिसि गुन बितान रस-गान सुनत रस-भूले;
मंद मंद आवन, बगदन, मनों प्रेम हिंडोरें झूले।
छटकि-छटकि आवत छबि पावत, भावत नारि नवेली;
प्रेम-पवन अरु डोलत मानों रूप अनूपम बेली।
चारु चलन में मनिमय-नूपुर, किंकिनि कलरव राजै;
मनहुँ भेद-गति पाछें आछें मधुर मधुर धुनि छाजै।
चमकि चमकि दसनावलि द्युति फिरि बदरन माँझ दुराइ;
दमकि-दमकि दामिनि छबि पावत, चाँदन में दुरि जाई।
भाँति अनेक, राग रागिनी, अति अनुराग उपजावै;
रस उमंग में गोरी छोरी नित उठि खेलन आवै।

सुनि थाके नारद, सिव, सारद, तनकहु पार न पावै;
'नंददास' जाके भूरि भाग जे बिमल बिमल जस गावै ॥१८६॥

राग कान्हरा

आजु साँवरे-सलौने कौं होरी खेलन दैये;
बड़े-बड़े माट भराइ रंग सौं, पिचकारिन छिरकैये।
खेलत-खेलत रंग रह्यो अति, अबीर गुलाल उड़ैये;
'नंददास' प्रभु होरी गावत आनँद-सिंधु बढ़ैये ॥१८७॥

राग नायकी

ब्रज में खेलत होरी मोहन-प्यारो री नंद कौं।
संग बनी रस ओपी गोपी, कह्यो न परत
कछु जो बाढ़्यो सुख-सिन्धु इंदु-चंद कौं।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझि, डफ बाढ़्यो
सरस सुर अति अनंद कौं;
'नंददास' प्रभु प्यारे कौ कौतुक देखति थकित भई
सोभा सरस गिरिधर मैन फंद कौं ॥१८८॥

सब अँग छींटै लागी नीकी बन्यौ बान।
गोरा अगर अरगजा छिरकति खेलत गोपी कान्ह ॥
हाथन भरे कनक पिचकाई भरि भरि देति सुजान।
सुर नर मुनि जन कौतुक भूले जय जय जदुकुल भान ॥
ताल पखावज बेनु बाँसुरी राग रागिनी तान।
बिमल 'नंददास' बलि बंदित नहि उपमा कौ आन ॥१८६॥

राग काफी

हाँ हाँ निकसे हैं मोहनलाल,
ब्रज में खेलन फाग री, रँग हो हो हो रंग हो री ॥

घुमड़यो है अबिर गुलाल, मनु ऊनयो अनुराग री।
काछनि काछे लाल, लालन चोली रँग बनी॥
सोभित मदनगोपाल, कटि बाँधे पट ओढ़नुँ।
मोर मुकुट छबि देत, मंद हँसनि, दृग देखनुँ॥
सबहि को मन हरि लेत, पैन मैन मनु पेखनुँ।
जुरि आईं ब्रजबाल मृगनैनिन गजगवनि॥
छक्यो है साँवरलाल, घन घेरयो जनु दामिनि।
छिरकत पिया नँदलाल, प्यारी पट ओट बचावहिं।
मनु घन .पूरनचंद, दूर निकट पुनि आवहिं॥
बने त्रियन को अंग छिरकि छिट छबि छैल की।
मनु फूली अंग अंग, ललित लता मनु प्रेम की॥
बाढ़यो है परसपर रंग, उमगि उमगि रँग भरनि में।
निरखि भईं सब पंगु, पितांबर-फहरनि में॥
जब हरि रंगनि भरे, मोहनि मूरति साँवरे।
हरि हरि हरि हँसि परे, मुनि के मन गए बावरे॥
भईं सब श्रुति-मति बौर और खेल कैसे कहूँ।
रंग मिले साँवर गौर, 'नंददास' के हिये बसौ॥११०॥

राग मारू

निकसो नंद-दुलारो आज बनि ठनि ब्रज खेलन फाग।
अरुन अति ललित भाल जटित लाल टेपारो।
बड़े बड़े बंक बिसाल नैना छबि भरे इतराईं।
बन्यो है मंजुल मोर चंद्र चलत देखत छाँईं।
इत बनी नव ब्रज-किसोरी गोरी रूप भोरी,
बोरी प्रेम रंग में मनु एकहि सार की तोरी।
बन्यो है जलज-सनी खेलत छुटी है रंग की धार।

जनु घनुघर सपनि करत भारत घार सों धाइ।
ब्रज की धाल लै गुलाल मोहन ब्याल छायो।
मनु नील घन के उपर अरुन अंबुद आयो।
वाही घुँघर मत्त गत भ्रमर भ्रमरत देसो।
बनी है छवि बिसाल प्रेम जाल गोलक जैसो।
और कहाँ लौं कहीयेक वेली प्रेम रस की मूले।
थके हे सुर नारद सारद सिव समाधि भूले।
ज्योंही हिये हरि-चरित्र अमृत-सिंधु सौं रति मानी।
"नँददास" वाही कुं भुल्यी लोन को सो पानी ॥१६१॥

दोलोत्सव

राग-बसंत

डोल-झुलावति सब ब्रज-सुन्दरि; झूलत मदन-गुपाल;
गावत फागु धमार हरखि भरि, हलधर औ सब ग्वाल।
फूले कमल, केतकी कुंजन गुंजत मधुप रसाल;
चंदन बंदन चोवा छिरकति बहुत अबीर गुलाल।
बाजत बेनु, बिषान, बाँसुरी, डफ, मृदंग अठ ताल।
"नंददास" प्रभु के सँग बिलसति, पुन्न-पुंज ब्रज-बाल ॥१६२॥

राग कल्यान

डोल झूलत हैं श्रीगिरिधरन, झुलावत बाल;
निरखि निरखि फूलत ललितादिक, राधावर नँदलाल।
चोवा, चंदन छिरकति भामिनि, बहुत अबीर, गुलाल;
कमल-नैन कों गान सुनावत, पहरावत उर माल।
बाजत ताल, मृदंग, अघौटी झूलत बेनु-रसाल;
"नंददास" जुवती मिलि गावत, रिझवत श्री गोपाल ॥१६३॥

रँग रँगीलो नंद कौ लाल रँगीली प्यारी ब्रज की
बीथनि मैं खेलति फागु।
रँग रँगीले सँग सखी गन रँगीली नव बधू तैसोई
जम्यौ रँगीलौ बसंत रागु॥
रंग रंग की ओमट छिरकति हरखि हरखि
बरखि अनुराग।
"नंददास" प्रभु कहाँलौं बरनूं वेदहू आपुन मुख
कह्यौ यह माननि बड़भाग ॥१९४॥

राग सारंग

ब्रज की नारी डोल झुलावैं।
सुख निरखत मन मैं सचु पावैं मधुर मधुर कल गावैं॥
रतन खचित सिंघासन सोभित मनों काम की डोरी।
बैठे स्यामा स्याम झुलत हैं नील-कमल पिय राधा गोरी॥
सूरत मूरत दोऊ रसीली उपमा नहिं सम तोल।
'नंददास' प्रभु को सुख निरखत दंपति झूलत डोल॥१९५॥

टिप्पणी

रास पंचाध्यायी

प्रथम अध्याय

१—जोतिमय—ज्योतिमय, प्रकाशमान।

२—नीलोत्पलदल—नीले कमल का पत्ता।

जोबन—यौवन।

अलक—घुँघराले बाल।

अवलि—पाँति, माला।

४—निकर निशाकर—चन्द्रमा के झुंड।

प्रतिबंध—रुकावट, बाधा।

दिवाकर—सूर्य।

५—ऐन—गृह, घर।

रतनारे—लाल।

कृष्णारसासव—कृष्णजी के प्रति प्रेम रूपी मदिरा।

६—उन्नत—ऊँची।

अधर-बिंब—कुंदरू के समान लाल ओंठ।

मसि भीनी—कुछ कुछ निकलती हुई मूँछ।

७—गंड-मंडल—कपोल, कनपटी।

मधु—मिठास।

८—कंबु-कंठ—शंख के समान गला।

१०—हिय-सरवर—हृदय रूपी सरोवर।

११—कुंडिका—पथरी, पत्थर का कटोरा।

त्रिवली—पेट में जो एकाधिक बल पड़ जाते हैं, उन्हें ही त्रिवली कहते हैं।

१२—गूढ़ जानु—कठोर दृढ़ जंघा।

आजानुबाहु—घुटे तक पहुँचनेवाली लंबी भुजा।

१३—दिनमनि—सूर्य।

दुरि—छिपकर।

घुमड़ि घुरि—चारों ओर से घिरकर।

१४—लोक-ओक—कुल संसार।

दिवाकर—सूर्य।

१६—रहस्य—गुप्त, गोपनीय, सहज समझ के परे।
पंच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान।
१७—चिद्घन—चेतनता संयुक्त, चैतन्य।
१८—नग—पर्वत।
वीरुध—वृक्ष।
काल-गुन-प्रभा—समय के गुणों का प्रभाव, असर।
१९—अविरुद्ध—बिना किसी रुकावट के।
हरि—सिंह, शेर।
२१—भ्रू विलसति—भृकुटि के खेल मात्र से।
२२—श्री—शोभा।
अनंत—बहुत, असीम।
संकरषन—संकर्षण, बलरामजी।
२३—रमा-रमन—श्रीविष्णु भगवान।
२४—मानिक—शोभा।
२५—चिंतामनि—एक रत्न जो इच्छित फल देता है।
२७—लुब्ध—लोभी, ललचाए हुए।
३०—धर—धरा, पृथ्वी।
३१—अंक-चित्र—रोम्मा के चित्र सहित।
चक्राकृति—चक्र के आकार का गोल।
३२—करनिका—कर्णिका, कर्णफूल।
पुरंदर—इंद्र।
३३—कौस्तुममनि—समुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक।
उडु—नक्षत्र।
३६—पौगंड—कैशोर, दस से सोलह वर्ष तक की अवस्था।
४०—मुकुलित—कली।
बाल सी—कुमारी।
४१—उषा—रात्रि।
४२—उडुराज—चंद्रमा।
नागर—चतुर।
४३—अरुणिमा—लाली।
४४—फटिक—स्फटिक, बिल्लौर।
वितनु—अति सूक्ष्म, अशरीरी।
वितान—चंदवा।
४६—अघटित—जिसकी आशा न हो
अधरासव—ओष्ठ का रस।
छुरली—जुड़ा हुआ।
४७—नाद—ध्वनि, शब्द।
४८—कलगान—सुंदर गाना।
वाम विलोचन—तिरछे कटाक्ष पूर्ण नेत्रोंवाली।

४९–गीत-धुनि को मारग गहि—मुरली के गान के शब्द पर सीधे उसी ओर चली।

५०–अमृत को पंथ—अमरत्व पाने का मार्ग।

५१–अधीर—धैर्य छूट गया है, घबड़ाई हुई।

गुनमय—सत्व-रज-तम गुणों से युक्त।

राँच्यो—संचित किया।

५२–दुसह—असह्य, न सहने योग्य।

अघ—पाप, कष्ट।

५४–इतर—अन्य, दूसरे, यहाँ लोहे से तात्पर्य।

पाहन—पारसमणि।

५५–पिंजरनि—पिंजड़े।

संगम—संबंध।

विहंगम—पक्षी।

५७–पाँच भौतिक–पंचतत्व (जल, तेज, वायु, पृथ्वी तथा आकाश)

५९–भागवत—वैष्णव भक्त।

६०–उदर दरी—पेट के भीतर।

६३–सर्वभाव—सभी प्रकार की भावना।

६५–ओपी—मग्न, सनी हुई।

६८–सुभग—सुंदर।

अरबरे—टकटकी लगाए हुए।

७२–ढगरी—चली आई।

सर्वरी—रात्रि।

७३–बंक—टेढ़ा, व्यंग्य।

माल—झुंड, समूह।

७६–छवि सींव—शोभा की सीमा, अत्यंत सुंदर।

नाल—कमल की डंडी।

अलक-अलिन–बाल तथा भौंरे।

७७–हुताशन—अग्नि, आग।

सासन—उच्छ्वास, साँस।

भर—भड़ी, झरना।

७८–अनुरागी—प्रेमिका, अनुरक्त।

८२–धरमि—धार्मिक, धर्म करनेवाला।

८५–नवनीत-मीत—माखन चाखनहार, श्रीकृष्ण।

८७–कुमकुम - केसर।

घनसार—कपूर।

चरचित—लगाया हुआ।

८८–गोहन—साथ, संग।

८९–चोप—उत्साह।

९०–धूँधरी—धुँधला।

अलिद—भौंरे।

९२–तुसार—तुषार, ठंढा।

मंदार—स्वर्ग का एक वृक्ष।

९३—एलि—इलायची।
कुरवक—कटसरैया।
९४—परिमल—सुवास, सुगंध।
कमोद—लाल कमल, कोईं।
९६—बिलसत—आनंद करना।
बिलास—हावभाव, अंगों की सुंदर चेष्टाएँ।
नीबी—धाघी की गाँठ।
९७—मैन—कामदेव।
पंचसर—कामदेव तथा उसके फूल के पाँच बाण।
९८—हरि-मनमथ वा मनमथ को मन उलटि करि मथ्यो।
१००—अलिंगति—गले लगाती है।
१०३—छिलछिल—उथला, कम पानी।
१०४—बरधन—बर्द्धन, बढ़ाना।

दूसरा अध्याय

१—अम्ल—खट्टा।
रुचिकारी—आनंद देनेवाली।
२—पटु—चतुर।
पुट—साफ करना, माँजी देना।
३—निमेष—पलक गिरने तथा उठने के बीच का समय।
४—निधन—निर्धन, दरिद्र।
जाइ—नष्ट हो जाय, न मिले।
६—जाति—एक पुष्प जो चमेली की जाति का होता है।
जूथिके—जूही का फूल।
मान-हरन—मान को घीम दूर कर देनेवाला।
७—पितहि—पैदा।
रूसे—रुठ, क्रुद्ध।
मुसकि—मुस्किराकर।
मन मूसे—मन को चुराया है।
८—मुकतामल बेलि—मोतिया की लता।
९—मंदार—मदार, आक।
करवीर—कनैर।
१०—थिरावहु—ठढा करो।
१२—अनुसरि—पीछा करके।
हहरे—हरे मरे।
१३—तुंग—ऊँचा।
उलहे—प्रसन्नता, आनंद।
१४—अवनी—पृथ्वी।
१६—कल्यानि—कल्याणी, मंगल देनेवाली।
१७—चाँदने—प्रकाश।

तम-पुंज—अंधकार ।
गहवर—गंभीर, घना ।
१८—मन-हरन-लाल—श्रीकृष्ण ।
२०—भृंगी—भ्रमरी, बिलनी ।
२१—जव—यव, जो ।
गद—गदा ।
२४—सैनी—श्रेणी, पंक्ति ।
सुघम—सुंदर ।
सुकर—सहज सुंदर ।
२५—मुकर—ऐना, दर्पण ।
बिलोलै—हिलता हुआ ।

२६—अपमाहि—अपने में, आपस में ।
२७—अँवर—अंबर, आकाश ।
२६—निरमत्सर—निर्मत्सर, द्वेष-रहित, ईर्ष्याहीन ।
३२—जोति—प्रकाश ।
३३—पाछें—पाश ।
३५—कासि कासि—(सं०) कहाँ हो, कहाँ हो ।
वदति—(सं०) कहती है ।
३७—बहुरि बहुरि—घूम फिर कर ।

तीसरा अध्याय

१—अवधि-भूत—निर्धारित समय तक रहनेवाले ।
२—नैन-मूँदिबो—आँख मिचौनी ।
सुहथ—अपने हाथ ।
५—अपननि—अपने लोगों को ।
६—सिल—शिला, यहाँ कड़ाप से तात्पर्य है ।
७—मनत-मनोरथ—अधीनों की इच्छा ।

सरसीरुह—कमल ।
८—फनी फनन—सर्प के फनों पर, कालिय नाग के सौ फनों पर ।
अरपें—नृत्य किया ।
धरत—(पैर) रखते हुए ।
१०—हरें हरें—धीरे धीरे ।
अटवी—पृथ्वी ।
भ्रमत—टहलते हो ।
कूट—कोना, नौका ।

चौथा अध्याय

१—प्रेम-सुधानिधि—प्रेम का अमृत-सिंधु ।
अटपटा—टेढ़ा मेढ़ा, व्यंग्य ।

२—दृष्टि-बंध—नजरबंद ।
नटवर—जादू दिखलानेवाला, श्रीकृष्ण ।

३—हथ—हाथ।
मनमथ के मनमथ—कामदेव के कामदेव, कामदेव का मन मथनेवाले।
४—घट—शरीर।
५—असन—भोजन सामग्री।
७—पटुकी—कमर में बाँधने का वस्त्र, कमरबंद।
छटा—शोभा।
८—छादन—ओढ़नी, चादर।
१४—भजते को भजै—अपने को जो याद करे अर्थात् प्रेम करे उससे प्रेम करते हैं, उसका मनन करते हैं, पारस्परिक प्रेम।
अनभजतनि भजहीं—जो अपने से प्रेम न करे उससे प्रेम करता है, एकांगी प्रेम।
दुहुँनि तजहीं—दोनों को छोड़ देता है, न अपनी प्रेमिका के प्रेम को सार्थक करता है और न निष्काम प्रेमिकाओं के प्रेम का प्रतिदान देता है अर्थात् अत्यंत निष्ठुर है।
१६—ऋनी—ऋणी, ऋणग्रस्त।
१७—उऋन—उऋण, ऋणमुक्त।
१८—अप बस—अपने वश में।

पाँचवाँ अध्याय

१—गँसि—मनोमालिन्य।
२—बिलुठत—लोटती है।
३—तुल—(तुल्य) समान, बराबर।
निरवधि—निरवधि, आधाररहित, निरवधि, सर्वदा।
४—रास—प्राचीनकाल में गोपों में प्रचलित नृत्यक्रीड़ा, जिसमें स्त्री-पुरुष एक साथ घेरा बाँधकर नाचते गाते थे।
५—मर्कतमनि—नीलम।
६—उपंग—नसतरंग, एक बाजा।
पग—डफ की चाल का छोटा बाजा।
७—मुरज—पखावज।
रलो—मिल गई, सम्मिलित हो गई।
८—करतारनि—करताल, ताली बजाना।
१०—बिलुलित—झूलती है।
अलि-सैनी—भ्रमरों की पंक्ति।

११–मसकनि–आँखों की तिरछी अदा।

१२–तिरप–नृत्य की एक गति।
थाँ इ–गति बनाकर।
करतल–हथेली।
लट्ट होत–हर्ष के मारे लोट लोट जाना।

१४–चाहि–देखकर।
प्रतिबिंब–छाया।

१६–छेंकि–रोक कर।

१७–सुख-सदन–आनंद का घर, अत्यंत आनंददायक।
रारि–रीझ कर, आकृष्ट होकर।

१८–गवन–गमन, चाल।
आगम–वेद।

२१–औइन–लजाना।

२४–उरसि–वक्षस्थल पर।
भरगजी–दला-मला हुआ।

२७–करनी–हथिनी।

२९–मकरंद–पराग धूलि।

३२–अब–अभी, आज।

३३–कमला–लक्ष्मी।
अमला–निर्मल, शुद्ध।

३५–विषय-विदूषित–विषय दोष से ग्रस्त।

३७–हीन प्रबर्ग–भक्तिहीन।
बहिर्मुख–पराङ्मुख।

३९–सत-निधि–सातों समुद्र।
भेदक–तोड़नेवाली।
बारहि बार–ऊपर ही ऊपर।

४१–सार–तत्व।

परिशिष्ट

१—सुदेस—सुंदर।

७—थलज—स्थल से उत्पन्न।

११–रविकांत मणि—वह रत्न जो सूर्य की किरणों के पड़ने से अग्नि उत्पन्न करता है।

१६–आनि—अन्य, दूसरा।
विभचारि—व्यभिचार।

१७—राका—रात्रि।
मयंक—चंद्रमा।

१८–कैक—कई एक।

२४–लुबधी—लोभित हुई, मोहित हुई।

२५–मंडन करत—सजाते हुए, शोभा बढ़ाते हुए।

३१–नौक–नोक।

१५-लोकमनि—लोकमणि, संसार के रत्न।
पनस—कटहल।
१६-गेंदुक—कंदुक, गेंद।
त्रिभंगी—गले, कमर तथा पैरों से टेढ़े होकर बाँसुरी बजाने की चाल।
४६-दृगंचल—नेत्र की कोर।
रद-छद—दाँत लगने के चिन्ह।
५६-कंद-कंदर्प-दर्प-हर—कामदेव के घमंड को नष्ट करनेवाले शिवजी को आनंददायक।
६१-अकृतज्ञी—कृतघ्नी, किसी के उपकार को न माननेवाला।
६४-चितनि—चिंतित कार्य, इच्छानुसार वस्तु।
६६-बिथुरनि—छितराया हुआ।
झाईं—झलक, छाया।
६७-आलात—एक सिरे पर जलती हुई लकड़ी।
६९-अविकल—ज्यों का त्यों, हूबहू, वही।
७३-त्रिगुन—तीनों गुण युक्त।
पवन—हवा।
७४-आवग—पुरानी चाल का बना ताया बाजा।
७९-कुहुकि—पक्षियों की मीठी बोली।
८९-सैनी—थैया।
उसेसी—तकिया।
९१-अंथनि—अरथ, कथा।
९७-निसैनी—सीढ़ी।
१११-उन—ओर।
निरमोलक—अमूल्य।
११४-अन अन भाँति—दूसरी दूसरी प्रकार।
११६-रसावधि—रस की सीमा।

श्रीकृष्णसिद्धांत पंचाध्यायी

१—अभिराम—मनोहर, सुंदर।
२—उसासा—श्वास, साँस।
३—महाभूत—पाँच तत्व वायु, जल, तेज, आकाश और पृथ्वी।
४—इंद्रिय—पाँच ज्ञानेंद्रिय और पाँच कर्मेंद्रिय।
तत्व—सार, यथार्थ वस्तु।
परमहंस—पूर्ण ज्ञानी संन्यासी।

५—प्रमद—उत्पत्ति ।

६—सुषुप्ति—निद्रा ।
मासैं—प्रत्यक्ष रहे, दिखाई दें।

८—पौगंड—प्रौढ़, यौवन पार करने के बाद की अवस्था ।
मलित—युक्त, मिला हुआ ।
ललित—मनोहर, सुंदर ।
नित्य किशोर—सदा सोलह वर्ष का बने रहना ।

९—निरोध—चित्त वृत्तियों को रोकना।

१०—त्रिशूली—महादेव जी ।

११—हरि—इंद्र ।

१२—दर्पदलन—घमंड को चूर्ण करने वाले ।

१३—अवधि-भूत—सीमा तक पहुँचा हुआ, उत्कृष्ट ।
निर्यास—निचोड़, सार ।

१४-ननु—ठीक, निश्चय के साथ ।
अनुसरै—अनुगमन करता है ।

१५—विधि—जिसे करने के लिए शास्त्र की आज्ञा हो, विधेय ।
निषेध—जिसे न करने की शास्त्र की आज्ञा हो ।

१७—अनिमादि—अणिमा आदि ।
कीटांत—कीड़े मकोड़े तक ।

सर्वांतरयामी—सब के अंतःकरण का जाननेवाला ।

१८—फंदे—फँसे हुए ।

१९—सच्चिदानंद—सत् + चित् + आनंद तीनों से युक्त, परमात्मा ।

२०-चिद्घन-ज्ञानमय ।
नित्य—सदा सर्वदा ।

२१—अखंड-मंडल—पूर्ण शिव ।

२२-बलबीर—श्रीकृष्ण ।
रमिबे—रमण करने का, क्रीड़ा करने का ।

२३-उडुराज—चंद्रमा ।
कुंकुम-मंडित-गुलाल से रँगा हुआ ।

२५-विकस्यो—खिला, प्रकाशित हुआ ।

२६ शब्द-ब्रह्म—वेद ।

२७—ब्रज जुब—ब्रज की युवती बाला ।

२९—नगधर-गिरिधारी, श्रीकृष्ण ।

३०—मोहन-शोभन, पवि ।
निषेवा-सेवा ।

३१—निगम—वेद ।
निदेशा-आज्ञा ।
परिहरि-त्यागकर, छोड़कर ।

३२—प्रीतम-सूचक—प्रीतम शब्द के यावत् पर्याय।
कचुकि—केंचुल।
३३—भ्रमरन—भ्रामरण, गहने।
आनि—आकर।
३४—सुष्ट—प्रसन्न।
बिमचार—उलटा।
३५—रस पुकी—भक्ति रस से ओत प्रोत।
३६—बिघनेस—विघ्नों के राजा।
३७—अरबर—अड़स, रुकावट।
गुनमय—पंचतत्व की बनी हुई।
चित्स्वरूप—आत्मा।
३८—प्रेम-पंथ—प्रेम से ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग।
न्यारोइ—निराला, अलग, भिन्न।
आतमगामी—आत्मा को जानने वाला ज्ञानी।
३९—अनावृत—जो आच्छादित न हो।
४०—निरवृत—न ढँकी हुई, स्पष्ट।
परा—ब्रह्म विद्या।
४१—ब्रह्मानंद—परब्रह्म के ज्ञान से उत्पन्न आनंद।
४२—छिहैं—चाहते हैं।
इछैं—इच्छा करते हैं।
४३—गावत—गाते रहते हैं।
४४—घन घन—क्षण क्षण।
घन वृधि—बहुत बढ़ना।
४५—त्रिगुन—तीनों गुणों युक्त।
४६—नूपुर—घुँघुरू।
४८—काम विषै—रति शास्त्र।
४९—विषई—व्यभिचारी, भोग-लोलुप।
५०—अनाकृष्ट—आकर्षित न होने-वाला।
५३—अग्यारै—अलगाव के, दूसरा-पन का।
५४—धर्मेहि रत—धर्म को सब कुछ माननेवाला, धर्मात्मा।
समल—दूषित, सदोष।
५५—बिज्ञान—विशिष्ट ज्ञान।
आभासै—प्रगट हो।
५६—प्रेम-भगति—प्रेम के आधारपर किसी में भक्ति रखना।
५८—रति—आसक्ति, भक्ति।
नित्य-प्रिय—सदा प्रिय रहने-वाले।
५९—दार—स्त्री।
गार—आगार, घर।
६१—विहरत—भ्रमण करते हैं।

विपिन—वन।

६४-पारस—वह पत्थर जिसके छूने से लोहा सोना हो जाता है।

सौभग—सौभाग्य।

६५-गर्व—घमंड, एक भाव।

प्राकृत—प्रकृति के विद्वान्।

६६-रम्भो—रमण करना, क्रीड़ा करना।

समसरि—बराबर।

६७-दृढ़िबंध—नजरबंद, जादू।

दुरे—छिपे।

६८-प्रलय पलक की ओट—पलक के नीचे गिर कर आँख बंद कर लेने से।

६९-निगम-सार—वेद का तत्व।

अलबल—अंट संट।

७७-पौगंड—प्रौढ़।

कलित—युक्त।

प्रापति—प्राप्ति, पाना।

७८-अभेद—कृष्ण तथा जीव में भेद नहीं है।

८१-ललना—स्त्री।

८२-जीवनमूरि-सञ्जीवनी औषधि।

८३-अज—ब्रह्मा।

रमा-रमन—विष्णु।

८५-आराधे—पूजन किया।

८७-उद्गार—आविष्य।

विध्वंसक—नष्ट करनेवाला।

निरोध—रोक।

वतंसक—बढ़ानेवाले।

८८-इंद्रियगामी—व्यभिचारी।

८९-प्रेम सुगम्य—प्रेम ही से जो मिलने वाले हैं।

९१-चिद्रूप—ब्रह्म।

९२-मधु—मीठा मीठा।

९३-अंबुध—बादल।

९४-न्यारी—अलग, दूर।

९७-निकदन—नाश करनेवाले।

९८-विलोलित—लटकती हुई।

मनमथ—कामदेव।

९९-उठीं—उठीं।

१०१-सुषुप्ति—घोर निद्रा।

तुरीय—चौथी, अंतिम।

१०३-अखंडानंद-सदा आनंदमय।

१०४-आवृत—घिरा हुआ।

१०५-रस बोरी—रस से भरी हुई।

१०६-श्रुति—वेद।

१०७-कर्मकांड—तप आदि कर्मों का विवरण।

परमानैं—प्रमाणित करैं या मानैं।

१०८-काम्य—इच्छित फल।

१०९–रसीं—मग्न हुईं।
निःसीम—सीमारहित।
११०–जेनकेन—येन केन, किसी।
अनाकर्ण-अश्रुत, न सुनी हुईं।
११२–श्रुवा-होम में घृताहुति डालने की लकड़ी की कलछी।
११३–अष्टांग—योग के आठ अंग।
११४–उत्कट—तीव्र, प्रबल।
११५–सुलास—सु-लास्य, नृत्य।
अमल—निर्मल, निर्दोष।
११६–करनिका—कर्णिका, मध्य।
बिबि—दो
११७–आलात—जिस लकड़ी का एक छोर जलाकर चक्र सा घुमाया जाय।
११८–वक्षस्थल-वक्षःस्थल, छाती।
१२०–अनागत—अज्ञात।
१३२–उडुप—चंद्र।
उडुगन—तारे।
१३७–ढिपा—बिनौनी वस्तु।

रूप मंजरी

१—रूपक-रूप भी।
३—सरसै-रस-सिक्त हो, विहस हो।
रस-वस्तु-रस का आधार।
४—अलि-भ्रमर।
६—छाँही-छाया, प्रतिबिंब।
९—तरनि-सूर्य।
११–जोवन-यौवन, जवानी।
१२–सुरंग-लाल।
१४–दपैन-पैना, सूर्यकांत मणि, आतिशी शीशा।
बिरचै-बिरचा।
१५–जराय-कुंदन से जड़े जानेवर।
काच करकचन—शीशे के टुकड़े।
१६–मग—मार्ग, पंथ।
१७–सुछिम-सूक्ष्म, पतला।
१८–नाद-गान, भजन।
अमृत-अमर कर देनेवाला।
रूप-सौंदर्य, प्रेम।
अमीकर-अमृत देनेवाला।
१९–इकंग-एकांग, मिलाकर।
२०–निरवारि-अलग अलग करके।

२१-अगोचर-अनदेखा।
२२-निबहति-निबहते, निर्वाह पावे।
नगधर-गिरिधर, श्रीकृष्ण।
२५ उघरे-स्पष्ट।
गूढ़-अस्पष्ट, गहन, न समझने योग्य।
मरहठ-महाराष्ट्र।
२६-नीरस—हृदयहीन।
२७ रसविहीन जिनके हृदय में सरसता न हो, रूखे।
२८-स्मित-मुस्कराहट।
२९-सिठकारा-सीत्कार, आनंद के कारण उत्पन्न आवाज़।
३०-सुहाग-भाग, आकर्षक।
३१-भिदै-भीजे, रसक्ति हो।
३२-पखान—पाषाण, पत्थर उपा-ख्यान, कथा।
३८-धौरहर-प्रासाद।
४०-सिखंड-मोर की पूँछ।
४२-अमराय-बाग़।
४४-चातक-पोत-चकवा का बच्चा।
सारिका-मैना।
४५-चटसार-पाठशाला।
४७-कासार-जलाशय, तालाब।
निकाई-सौंदर्य।
४९-कुसेसे-कुशेशय, कमल।
५०-फुटक-शीशे के भीतर वायु के रह जाने से कण के समान बुलबुले।
५१-दुलावे-दिखावे।
५२-ननुकारति-अस्वीकार करती है, नहीं नहीं करती है।
५५-पनिच-प्रत्यंचा, धनुष की डोरी।
५७-धार—धार, भाग, पराजित, सिर।
६१-हिमगिरिधर—हिमालय पर्वत।
हिमवद्-धारी—पार्वतीजी।
६२-लरिक सनैं—लड़काई में।
६५-समुद्र की बेटी—लक्ष्मीजी।
६६-दिपत—प्रकाश करती है।
६७-सहज—स्वाभाविक।
उजेल—चमकती वस्तु।
६८-व्याल-बाल—नागिन।
७०-खुमी-कान की लौंग, तरकी।
सुमी—सुंदर।
७५-वैसंधि—वय संधि, अवस्था का संधि-काल, यौवन का आगम।
७६-उसहे-उमड़े हुए, निकले हुए।
८२-सुढारा—सुडौल।
८७-अहित—शत्रु।

९२-जुबन राव—यौवन का राजा, कुच।
सैसव राव-बाल्यावस्था का राजा।
. पवन—निठव। ·
९३-मधि-देसा—बीच का अंग, कमर।
९५—उघराने-उघले हुए, कम हुए।
९७-अमल-निर्मल, सुंदर।
१०४-छैकारा-क्षयकारी, नष्ट करनेवाला। -
१०५-औटे—तपाए हुए।
१०७-दोपी-घोपी, चमकती हुई।
११२-छनक-क्षण।
११४-चहनि-देखना।
११६-मृगज—हरिण का बचा।
११७-पासी—पाश, फाँस।
११९-पुइ-पोई, एक लता जिसकी पत्ती लाल होती है।
अहन—लाल।
पाट—रेशे, तंतु।
१२१-उभकै—देखे।
१२३-निबोरी—एक गहना।
१२६-नमसि—आकाश में।
१२७-बिदि—दो।
१२९-परवाने—प्रमाण माना, ठीक समझा।
१३६-लीह—भूमि।
धरती—पृथ्वी, रखती।
बीह—जिह्वा।
१४५-सुमिल—सुडौल, एक मेल का।
सुठौनि—अच्छी, सुष्टु, सुंदर।
१५१-सति—सत्य।
१५३-उपपति-रस—परकीया भाव।
१६७-प्रतिमा—चिन्ह, मूर्ति।
१७०-छनहारी-छाया।
१७३-तरि—नाव।
१७८-तनमन—शरीर तथा मन दोनों से।
खंडन—चुंबन।
१८९-बूझनी—प्रश्न।
१९२-उपनी—उलझन, शंका।
१९५-वारी—बाग।
१९९-बानें—समबस बनाया।
चखौंडे—चँदवा, चद्रातप।
२००-सुपेसल—गुलगुली।
थालवाल—वृक्ष के नीचे का थाला।
२०१-नीली नदिया—यमुना।
२०२-हूँ—मैं।

अली—भ्रमर, सखी।
२०९-अबोली—मौन, चुपचाप।
२१०-सुखम—सुडौल, छोटा।
२१५-वारि फेरि—निछावर करके।
२१८-बिजननि—पंखे।
२२१-बारा—देर।
२२५-सूछिम—सूक्ष्म, गुप्त।
२२८-पजारि—प्रज्वलित होना।
२३७-टटावक—काला टीका।
लौनो—लावण्यमय।
२४१-औटी—तीव्र।
२४१-लालनि-चोप—माणिक्य रत्न की आभा।
२४८-कुचील—मलिन।
२५१-निरबधि—असीम।
२५४-व्रजजुवतिन को दर्पन—जिनका मुख सबवाला देखा करती थी, श्रीकृष्ण।
२६१-दर्पन—सूर्यकांत मणि। पुट पागि—बत्ती बनाकर तथा घी में डुबोकर।
२७२-आलय—घर।
२८०-अराव वरी—अराव कार्य जिसमें जला हुआ है।
२८२-धुंवराहार—कैशावलि, बालों।
२९१-बिवरन—रंग फीका पड़ना।
२९४-रहसि—एकांत में।
२९५-परिछाई—प्रतिबिंब, परछाईं।
२९६-बाल अर्क—प्रातःकाल का सूर्य।
३०१-आनंद-नाव—समुद्री पोत।
३०९-घूंघरि—बादलों का घेर।
३१५-सरावे—बहलाकर व्यतीत करती है।
३१७-पटबिजना—जुगनू।
छटनि—शोभा।
उछटि—अलग होकर, उड़कर।
३३९-सकुनि—शकुन पक्षी।
मचक—कपटी।
३२५-सौंधो—सुगंधि, बाल धोने का मसाला।
३३७-उवानी—उदय हुआ।
तन—ओर (देखकर)।
३४४-उसास—साँस।
३४५-उघी—सपट।
कसार—ताल, तालाब।
३४८-चीत्यो—चैतन्य हुआ।
३५०-बगाये—फैलाये, बिखेरे।
छवावे—छूते।
३५१-परी—गोल छोटी टाल।
३५४-गिलि—निगल कर।

३५७—जरा—यह राक्षसी जिसने जरासंध के दो टुकड़ों को जोड़कर पूरा मनुष्य बना दिया था।

३५८—अहरनि-लोहे का बड़ा टोंका जिस पर किसी वस्तु को रखकर घन से पीटते हैं, निहाई।

३५९—वदन—प्रबल।

३६२—अनावै—बुलावै।

३६४—सिसु-जोबन—नया यौवन, नई जवानी।

३७०—चितन—कामदेव।

नाट—लोहे की नोक।

३७१—बिधि—ब्रह्मा, कमल से उत्पन्न।

३७५—मुलकि—प्रसन्न होकर, नेत्रों की हँसी।

३७७—समीती—समेत, साथ।

३८२—चाँचरि—चर्चरी राग, एक गान।

३८३—पट-साड़ी, वस्त्र। पटपटिया—उपद्रवी, झगड़ालू।

३९०—सुरमण्डल—एक प्रकार का बाजा।

ताल—मँजीरा।

आवज—एक प्रकार का बाजा।

३९९—कनाधन—कनखियों से, तिर्छी आँखें कर।

४०४—साइरि—सागर, समुद्र।

४१२—बैर—निंदा फैलना, चर्चा।

४३२—नौहरि—शरीर को तानना।

४४५—उनसोहीं—अनखाई हुई।

४५१—नृपाई—राजत्व।

४५२—नहुरै—एक रोग।

४५३—राती—लाल।

४५७—तर—धनाढ्य, लक्ष्मी के वाहन।

४५८—अखेटक—शिकार।

४६०—सोखन—शोषण।

छोभन—हृदय में क्षोभ पैदा करना, घबराहट।

सम्मोहन—मुग्ध कर देना।

४६५—कुसुम धूरि—पराग।

घूरि—फैली हुई।

४६६—भीषम—भयानक।

४६९—बाल—बाला, स्त्री।

दुकोय—छिपाए हुए।

४७०—निदाघ—ग्रीष्म, गर्मी।

४७३—मृगीवत—मृगतृष्णा।

४७४—झर—आग।

लवा—लावा।

४७५—अरबरै—घबराती है।

४७१-समोध—समाधान, समझाना।
४८४-ग्रीव गोई—गला लटका दिया।
४९१-उघमानी—बँभाई लिया।
उसीसी—तकिया।
५०१-वारि बालुका-न्याय-जल तथा बालु के न्याय से।
निपीड़—दबाने पर।
चलरार—गिरने पर।
रदाय—रस दे, जल दे।
५०२-मादक—मोहनेवाली।
मधु—मीठी।
निहोरि—मनाकर।
निझाई—सुदरता।
५०४ सुपेसल-गुलगुला, मुलायम।
आलबाल-थाला।
५०५-मनुहारि—समझा बुझाकर।
५०९-सिरावति—ठंडा करती है, बुझाती है।
५१०-उरसि—हृदय में।
५११-विवधान—व्यवधान, भेद, दूरी।
रसमोई—रस से भरी हुई।
५१८-पलाने—विकसित हुए।
परछिय-परछाँहीं, परछों।
५१९-कुरकुट-कुक्कुट, मुर्गा।
चुरकुट—घबराना, सहमना।
उससि—घबराकर।
५२० करोत—आरा।
बिबि—दो खंड।
५२१-गौने—गए।
५२२-तन—की ओर देखकर।
५२३-सगबगि—बिथुरी हुई।
श्रमकन—पसीना।
पगी—रँगी हुई।
५२७-औनू—पृथ्वी पर।
५३३-त्रिस्तरी—मुक्त भई।
५३४-अगम—वेद, न समझने योग्य।
निगम—वेद।

रसमंजरी

१—आनंदघन—आनंद के बादल, आनंद की वर्षा करनेवाले अर्थात् देनेवाले।
रस-मय—रस से भरे हुए।
रस-कारण—रस को पैदा करनेवाले।

रसिक—रस का आनंद लेनेवाले।

५—जल-घर—बादल, समुद्र।

चले—अवसर, इच्छा।

६—अनगन—अगणित।

रैं—रले, मिले।

१२-पिछानैं—पहचाने।

१४—मधुलिह—शहद की मक्खी।

१५—निरमोलिक—अमूल्य, बहुत दाम का।

१६-दूतर—दुस्तर, कठिन।

१७-दुखै—दुःखी करें।

१६-कर करि—हाथ से।

२०-पायधि—समुद्र।

२४—वनिता-भेद—नायका-भेद।

२६—स्वकीया—अपनी निवाहिता स्त्री।

परकीया—दूसरे की स्त्री।

सामान्या—साधारण वेश्या आदि।

२७-मुग्धा—कैशोर अवस्था की स्त्री, युवती।

मध्या—पूर्ण युवती जिसमें पति के प्रति लज्जा तथा वासना समान हो।

प्रौढ़ विहार—प्रौढ़ा, प्रगल्भा, कामकेलि में दक्ष।

२९-नऊढ़ा—(नवोढ़ा) तुरंत की ब्याही हुई, पति समागम से संकोच करनेवाली।

विश्रब्ध नऊढ़ा—पति पर कुछ प्रेम तथा विश्वास रखनेवाली।

३०-अंकुरै—अंकुरित हो, स्पष्ट हो।

संकुरै—संकुचित हो, सिकुड़ी रहै।

३१-आलि—सखी।

३२-निर्वासित करै—बैठावे।

३३-कोरी करि—गोद में लेकर।

३४-वैसंधि—वयः संधि, बाल्य तथा कैशोर का मिलनकाल।

३५-पारिदि—पारा।

३६-ढरी—ढाली हुई।

३८-मुक्ताफल—मोती।

पानिप—पानी, चमक।

४०-जमल—यमल, युग्म।

४१-औंध—ऊँघना।

४६-वलि—वलि, बल, पेट की सिकुड़न।

५२-चंद्रचूड़—शिव।

सुकृती—पुण्यात्मा।

५६-सोहन—शोभन, सुंदर।

मध्याख्य—मध्याः + स्व, मध्या।

५८-गहगोरी-गह + गोरी, प्रसन्नता के कारण जिसका गोरेवर्ण खूब खिला हुआ है।
५९-कोविदा—दक्ष, कुशल।
६१-प्रगल्भ बैनी—बोलने में तेज़।
रसरैनी-रस + रमणी, रसिका।
६१-विचक्षिन—विचक्षण, चतुर।
६(?)-सापराध—दोष सहित।
विंगि—व्यंग्य, टेढ़ा भेद।
६८-नलिनी-दल—कमल के फूल का पत्ता।
बिजना—पंखा।
बीजौ—पत्ता हाँको, हवा करो।
६६-रंचक—थोड़ा।
करेरी—टेढ़ा।
७४-अभ्यगि—अभ्यग्य, स्वच्छ।
रिस भौंह—क्रोध मिश्रित।
७५-सागस—सामने, पास।
८१-कुश—काँटा।
प्रगोरी—अत्यंत गोरी।
८५-अवधारे—विचार करें।
प्रतिबिंब—छाया, चित्र।
९१-अंतर—भीतर।
सुतंतर—स्वतंत्र, अकेली।
९१-आँसु—धूरा।
मंजारी—बिल्ली।

उचरि परी—उछलकर दूर पड़ी।
दइमारी—देव की मारी, अभागी।
९५-दुवनि—मार।
सुरतिगोपना—पर-पुरुष के समागम को छिपानेवाली।
९८-बलि—हवा।
१००-वाक्‌विदग्धा—बात करने में चतुरा।
१०१-लच्छितापी—प्रकट हो गया, छिप न सकी।
खवर—टेढ़ी।
१०४-पेट पावरें—हलके पेट में।
लच्छिता—लक्षिता, जिसका रहस्य छिप न सका।
१०९-देशांतर—दूसरे देश में, विदेश।
विरह-जुर—विरह का ताप।
प्रोषितपतिका, प्रोषिता-जिसका पति विदेश गया हो।
११५-वसै—वस्त्र, कपड़ा।
आधि—चिंता, दौर्बल्य।
१२१-याहु की बजाय—बरेली, जोशन आदि।
नायिका—नारी।

जीति है— जीती है।
१२८-अँवा-अगिनि—मिट्टी के बर्तनों को पकाने की आँवा की आग।
१२६-चकमक—चक्माक़, एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर लोहा रगड़ने से चिनगारी निकलती है।
१३१-खंडिता—जिसका पति परस्त्री के पास रात्रि बिताकर सबेरे गृह लौटे।
१४०-ऐवरि—इस पर।
१४८-दुसासन—उसास का उल्टा, स्वाँस खींचना।
१५४-कलहंतरिता—प्रिय से पहिले लड़ बैठे और फिर पछताकर रोवे।
१५६—घुरि—घुसकर, चिपककर।
१५८-रवन—रमण, पति।
१६२-तरारे—टेढ़ा।
अनखि—क्रोध करना।
१६६-हरुए—हलके।
गुर—गुण।
बिरराई—भगा दिया।
१६६-अवमानें—अपमान किया।
बिकूल—प्रतिकूल, उलटा।
१७१-ऊनी करे—छोटा करे, हानि पहुँचावे।
१७४-हरकण्ठिता—संकेत स्थान में प्रिय को न पाकर व्यग्र।
१७५-बिरमाये—बहला लिया, रोक रखा।
१७६-कुम्है—मुर्झाय, कष्ट पावे।
१६१-भौंरे लये—बहला लिया, रोक लिया।
१६५-विप्रलब्धा—विरहिणी।
२०४-वामदेव—महादेव।
२०५-शूलिन्, हिमकर-धर— महादेव।
२०६-मृड्—शिव।
२०७-त्रिनैन—शिव।
२०८-तरंगिनि—नदी।
२१३-गैवर—गजवर, बड़ा हाथी।
कबर पेखों का गुच्छा।
२१४-सुरति—प्रेम-समागम।
वासकसज्जा—पति-आगमन जानकर उसके सत्कार की तैयारी करनेवाली स्त्री।
२२६—सिरावे—ठंढा करे, बुझावे।
२३१-जोन्ह—चाँदनी।
२३६-अभिसारिका—प्रिय से मिलने के लिए जाती हुई नायिका।

२४०–श्रपा—लज्जा।
मुच—छोड़ो, त्याग करो।
श्रभिसर—चलो।
२४३–सोट—श्रोट, श्राड़।
२५३–भंगुर—शिथिल, टेढ़ी मेढ़ी।
त्रुटि—टूटि।
लटी—पतली।
२५५–बगावै—सैर करावै; घुमावै।
२५९–पारिस—एक किल्पत पत्थर जिसके छू जाने से लोहा सोना हो जाय।
२६१–स्वाधीन पतिका, स्वाधीन-बल्लभा—जिसका पति उसके श्रधीन हो।
२६१–गरिमता—भारीपन।
२६४–वक्रिमा—बाँकपन, तिरछापन।
२७१–श्ररत-श्ररग—श्रलग-श्रलग, छिपा कर।
२७४–रस मोदा–रसिका, रसमयी।
२८२–प्रीतम गवनी—जिसका पति विदेश जानेवाला हो।
२८८–घोरै—मलै, सहलावै।
श्रधर टरौरै—श्रपने कर्म का लिखा पकड़ी हो।
२९०–श्रीपति—विष्णु भगवान।

२९२–बधीर—चंदन।
२९६–दुकृत—दुष्कर्म, पाप।
जीवत—बँचते हुए।
३०४–प्रमदा—सुंदरी स्त्री।
३०५–धृष्ट—लज्जाहीन, वेश्या।
शठ—दुष्ट, धरारती।
दक्षिण—श्रनेक नायिकाश्रों का प्रिय।
श्रनुकूल—एक स्त्री पर श्रनुरक्त।
३०९–कनक—सोना, सनक।
बहनावै—दया श्रावे।
३१२–मावते—प्रिय, प्रसन्न करनेवाला।
३१६–श्रनगन—श्रगणित, बहुत।
बिबि—दो, युगल।
३१७-निवेसि-निवेश, प्रवेश, गृह।
तकौबे—देखे।
३२१–करकस—कर्कश, कड़ा।
३२३–तरनि—गर्मी, तपन।
३२७–भाव—प्रिय को देखने से मन में जो विकार उत्पन्न होता है उसे भाव कहते हैं।
३२९–हाव—मन का विकार जब नेत्र श्रादि से प्रकट होता है तब उसे हाव कहते हैं। हाव

ग्यारह प्रकार के कहे गए हैं।
२११–हेला—नायिका की मिलन के समय विनोदमय क्रीड़ा।
२१२–रति—अनुराग, प्रीति।
२१६–स्तंभ—एक सात्विक भाव, जड़ता।
स्वेद—पसीना हो जाना।
पुलकित अंग—अंगों में रोमांच होना।
स्वरभग—आनंद के कारण स्वर का बिगड़ जाना।
२१७–विवरन—रंग का बदल जाना, एक भाव।
कंप—प्रेमानंद में अंगों का काँपना।

विरह मंजरी

१—उच्छलन—उमड़ना।
मैन—कामदेव, प्रेम।
५—समोधत—सांत्वना देते हैं।
६—प्रतच्छ—प्रत्यक्ष, सामने रहते।
पलकांतर—अप्रत्यक्ष, आँखों की ओट।
९—संभ्रम—भ्रमवश।
बलिता—भरी हुई, युक्त।
१०-छिए—छूने पर, लगने पर।
११–अरविंद-सुत–कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा।
१५–पुतरी—पुतली।
१८–तदाकार—उसी रूप का, वैसा ही।
२१–गैन—गगन।
२३–अटपटी—गूढ़।
२४–प्रबल—प्रसाधु, दुष्ट।
मयमत—मत्त।
२५–कुहुक—मीठी बोली।
२६–किलकार—हर्षध्वनि।
२७–तति—ताँत की डोरी।
२८–नूत—(सं० नूत) शहतूत।
पचबान—कामदेव।
३२–धूँधरी—धूमिल, छाई हुई।
३३–लवगलता—एक प्रकार की बेल।
३४–सुपेसल—मुलायम।
उसीसा—तकिया।
३५–परिरमन—आलिंगन।
३८–प्रमेठ—ऐंठ।

बहुवलि—बहुओं को।
३९-तपति—ताप, गर्मी।
बई—बढ़ा दी।
४०-छिवो—ठढा।
४१-रतबाहि—दौंका।
४२-घुरवा—बादल।
पटा—बिना धार की तलवार का खेल।
४३-नकनींबी—लदाना।
अवधि—आने का दिया हुआ समय।
४४-होलनि—बाधी लगाकर।
४८-बीत्र—बिजली।
४२-उड़ुप—चन्द्रमा।
६४-चंदव—चन्द्रयुक्त पद।
६६-जुर—ज्वर, ताप।
६९-अरगाई—एक एक बात समझाकर।

७०-जाती—मालती पुष्प।
७१-कलिद नदिनी—यमुना।
सुभर—सुदर।
७४-प्रजरि—प्रज्वलित।
७५-उगहन—उमर छुटकारा।
७६-दाय—दाँव।
७७-निर्दुंद—राहु।
इकसारा—एक समान, बराबर।
८२-महावकी—पूतना राक्षसी।
८३-गिलि चाह—निगल जाब।
८६-मकर—एक राशि, शीतकाल।
रहसि—प्रसन्न होकर।
८७-मानमनि—मानी।
८९-अनैये—जाती हूँ।
९१-दाघे—जले।
१००-अरबरे—चपल हो गए।

भ्रमरगीत

१—नागरी-नगर निवासिनी, सुदरी युवती।
आगरी—(सं० आकर) खान, समूह।
प्रेम धुजा— प्रेम + ध्वजा) प्रेम करनेवालियों में अग्रगण्या।
रस-रूपिनी—रस की अवतार, रसीली।
२—औसर—अवसर, समय।

एक ठाऊँ—एकांत स्थान, उपेत।
मधुपुरी—मथुरा।
३—बाम—(सं० वामा) स्त्री।
बेली—(बेलि) लता।
द्रुम—वृक्ष।
पुलक—प्रेम, हर्ष आदि के उद्रेक में रोमकूपों का प्रफुल्लित होना, रोमांच।
कंठ घुटे—गला भर आना।
विवस्था—व्यवस्था, ढंग, नियम।
४—अर्घासन—(अर्घ + आसन) पूजा कर आसन देना।
नीके—भले, अच्छे।
बलबीर—बलदेवजी के भाई श्रीकृष्ण।
रसाल—रस भरी, मीठी।
५—तीर—पास, समीप।
६—आनन—मुख।
आवेस—आवेश, उद्वेग।
प्रबोधहीं—समझाते हैं।
७—अखिल—समस्त, सब।
दारु—लकड़ी।
सचर—चर, चलनेवाला।
छवि—ज्योति, तेज।

८—स्रुति—कान।
दिखाइ—दिखलाई देता है, भान होता है।
ठगौरी—ठगों की सी माया, मोहनी शक्ति।
९—सगुन—सगुण, साकार, सत्व-रज-तम तीनों गुणों से युक्त।
उपाधि—कपट, छल, विकार।
निर्गुन—तीनों गुणों से रहित।
निराकार—जिसका कोई स्वरूप नहीं है।
निर्लेप—जो सभी विषयों से दूर है।
अच्युत—जो च्युत न हो, दृढ़, अविनाशी।
११—अंड—पिंड, लोक, मंडल।
जाता—क्षय होता है।
जुगुत—युक्ति, उपाय।
परब्रह्म-पद-धाम—परमेश्वर के चरणों में स्थान।
१२—जोग—योग, योग्य।
पियूषै—पीयूष अमृत।
धूरि—धूलि, कर्म-योग के लिए यह शब्द आया है।
१३—ईस—महादेवजी।
धूरि-छेत्र—संसार, पृथ्वी।

१४–दव—दवन।

विरुद्ध—उल्टे, विरुद्ध।

१५–उदूर्गति—ऊपरकी गति।

१६–पचि मुदे—पच कर मर जाते हैं।

१७–पद्मासन—योग की साधना में पलथी मारकर बैठने का एक ढंग।

सिद्धि—योग के पूरे होनेपर प्राप्त फल, अणिमादि आठ सिद्धि।

समाधि—योग का श्रेष्ठ फल, सांसारिक सुखदुःख से मुक्ति।

साजुज्ज—(सायुज्य) ब्रह्म में लीन होना, चार प्रकार की मुक्ति में से एक।

१८–निर्गुन गुन—जिस गुण में कोई भी गुण न हो।

१९–नेति—(न+इति) जिसका अंत न हो।

उपनिषद्—वेद की शाखा ब्राह्मणों के अंतिम भाग, जिनमें आत्मा, परमात्मा आदि का निरूपण है।

टेक—सहारा, आश्रय।

२०–दरपन—दर्पण, ऐना।

अमल—निर्मल, स्वच्छ।

२१–और—अन्य, दूसरे।

२२–आसक्ति—प्रेम।

२३–लौ लागे—स्नेह उत्पन्न हो।

वस्तु-दृष्टि—प्रत्यक्ष वस्तु, चीज को देखने पर।

तरनि—सूर्य।

गुनातीत—(गुण+अतीत) गुणों से परे, निर्गुण।

२५–निरकर्म—भले बुरे कर्मों का भोग कर लेने पर उनसे छुटकारा मिलना, कर्म से परे।

२६–परमान—प्रमाण, प्रतीति, सत्यता, दृढ़ता।

अतीत—पृथक्, न्यारा।

२७—नस्वर—नश्वर, नाश होनेवाले।

अधोक्षज—अधोक्षज, कृष्ण या विष्णु का एक नाम।

२८–नास्तिक—अनीश्वरवादी, ईश्वर को न माननेवाला।

करतल आमलक—जिनसे ब्रह्मांड हथेली पर के आँवले के समान है, भारी महाज्ञानी।

२९–बीरी—पान।

बागे—पहिरने के वस्त्र।

उमगात—जल भर आना।
तरक—तर्क, वाद।
३०—बिहरात फिरत—मारी मारी फिरना।
कर-अवलंबन—हाथ का सहारा।
३१—दुरि दुरि—छिप छिप कर।
कोरि—करोड़।
बहुनायक—बहुतों के, अनेक प्रेयसियों के।
३३—बुध—बुद्धि।
३४—व्याल—सर्प, अघासुर।
अनल—आग, दावाग्नि।
विष-ज्वाल—विष की जलन, कालिय नाग।
३५-करनहार-करनेवाले, बनानेवाले।
चित्र—विचित्र, आश्चर्यजनक।
३७—स्त्री-जित—(स्त्रीजित्) स्त्री द्वारा जीते गए, स्त्री के वश में।
लछ—लक्ष्य, लक्ष्मण।
लाघव—हाथ की फुर्ती।
संधान—निशान लगाना, लक्ष्य पर मारना।
बिरूप—कुरूप, रूप बिगाड़ देना।

३६ ७ पदों में रामवतार पर उपालम है।
३८—बनमाली—श्रीविष्णु, श्रीकृष्ण।
आकार—शरीर।
सत्त—सत्य, सचाई।
इस पद में वामनावतार पर उपालम है।
३९—पोषे-तर्पण किया, तृप्त किया।
परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से माता रेणुका को मारा था और पिता का बदला लेने को पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन कर दिया था।
४०—दङ—यहाँ खमे से तात्पर्य है।
नृसिंह अवतार के प्रति उपालम। प्रह्लाद ने पिता के प्रति द्रोह कर भगवान की भक्ति प्राप्त की थी।
४१—छुधित—भूखा।
रुक्मिणीहरण का उल्लेख कर उपालम।
४२—अवेस—आवेश, चित्त की आतुरता।
परम—अत्यंत बड़ा हुआ, उत्कृष्ट।
४३—नेम—नियम, धर्म।

तिमिर—अंधकार।
आतेप—ख्याति, संचार।
वारि—निछावर करके।

४४–दुविधा-ज्ञान—ज्ञान में साकार निराकार आदि भेद रूपी शंकाएँ।

४५–पुंज—झुंड, समूह।
अरुन—प्रबल, लाल।

४८–मधुकारी—मधूकरी माँगने-वाला।
मघकारी—यज्ञ करनेवाला।
पातकी—पापी।

४९–बापुर—बापुरो, बेचारा।
गोरस—दूध।

५१–रस—समान।
छंद—छल की बातें।

५२–सत्त—दुग्ध।
बादि—व्यर्थ।

५४–चतुरंगी—चार रंग की, बहुत प्रकार की।
सुरारि—सुर असुर को मारने-वाले श्रीकृष्ण।
त्रिभंगी—श्रीकृष्ण, जो बाँसुरी बजाते समय पैर, कमर और गर्दन टेढ़ी कर खड़े होते थे, तीन स्थान से टेढ़ी हुआ।

५५–मथुन—मथुरा।

५७–संथा—पाठ, एक दिन का पढ़ा हुआ भाग।
चटसार—चटशाला, पाठ-शाला।

५८–विषवारे–विषैले, कपटी।
भुअंग—विषधर, सर्प।

५९–जग-निंद—संसार भर में निंदित।
अलिंद–(अलि + इंद्र) भौंरा।

६०–*मृग सम्या करि—भ्रमर नाम रखकर।*
लोपी—मिटाकर।
फाटि हिय दग चल्यौ—हृदय फटकर आँखों से बह चला।

६१–मेंड—मर्यादा, सीमा।
कूल—किनारा।
तृन—तिनका।

६२–कृतकृत—कृतकृत्य, सफल मनोर्थ।
आनि–आन।
निहरि—विवेचन करके।

६४–परमानंद—लोकोत्तर उत्कृष्ट आनंद।

पटवर—समानता।

विषमता–विरोध, असमानता।

६६–व्याधि—रोग, विकार।

आधि—चिंता।

६७–गुल्म—छोटा पौधा।

६८–मधुकर—भ्रमर।

६९–जीवनमूलि—संजीवनी बूटी, अति प्रिय वस्तु।

७०–प्रबलंबहं—जिन्होंने तुम्हें अपना आश्रय सर्वस्व मान रखा है।

मेलौ—गिराते हो, डालते हो।

७२–नावत—नहीं तो।

७३–कामतरोवर—कल्पवृक्ष, इच्छानुसार फल देनेवाला वृक्ष।

उलहि—निकलकर, प्रस्फुटित होकर।

७४–तरंगिनि—नदी।

७५—व्यामोहक—मोह उत्पन्न करनेवाली।

चारी—चाल।

बिहार—लीला।

घुंघनी—ढेर।

गोवरधन लीला

२—कलोसे—इच्छा किया, उत्साह हुआ।

४—मघवा—इंद्र।

उद्दिम—उद्यम, कार्य।

तिन—तृण।

५—उमाहे—प्रेरित होकर, उत्साहित होकर।

बराक—बेचारा।

६—सकट—छकड़ा, गाड़ी।

बिंजन—खाद्य पदार्थ, भोजन का सामान।

११—सुरपति-रवनी—इंद्रपत्नी शची।

१२–गोधन—गायें।

१३–बिगसे—विकसित हुए, प्रसन्न हुए।

१६–जग—संसार, राज्य।

१७–रारी—रार, बैर।

बाती—बात, औकात।

पछ—पक्ष।

२१–उरगन—साँपगण।

२९–अनु अनु—अनेक प्रकार के।

१७—धार बेधना—फँसुली ।
२१—तरहि—ताप कर ।
३१—पाँच पेड—पंखों को तोड़ मरोड़ ।
३४—झर—वर्षा ।
३६—धुरि—गले मिलना ।
३७—नमधर—गिरिधारी ।
सींव—सीमा ।
३८—कुटक—कडुवा ।

श्याम सगाई

२—गोद पसारि—आँचल फैला कर ।
सोहनी—शोभायमान ।
३—पौरि—द्वार, फाटक ।
अरदास—प्रार्थना ।
५—चरबाई—चंचल, दुष्ट ।
अचपलो—चंचल ।
७—नाकैं आई—हैरान हो गई ।
बात—विवाह की बातचीत ।
८—व्याउ—विवाह ।
११—लड़ैती—प्यारी, स्नेहवाली ।
ठैंकु—ठिठक कर, घबराकर ।
१४—कारे—काला साँप ।
१५—गारुड़ी—साँप के विष को उतारनेवाला ।
१७—पाँव लगौ—प्रणाम ।
२०—बाइगी—व्यर्थ की बात, बकवाद ।
२३—डोल—झूला, हिंडोला ।
झोटा—पेंग, झोंका ।

रुक्मिणी मंगल

३—दई—दैव, ईश्वर ।
४—बहति—बैठती है ।
माल—छत्र, घमूह ।
गलित नाल—डंडी से टूट कर अलग हुई ।
५—ऐन—घर ।
अरबिंद—कमल ।
६—अलि—सखी ।
पुहुपरेनु—पुष्परेणु, फूल की धूलि, पराग ।
८—तरल उसास—तप्त साँस, गर्म साँस ।

कन्या-विरह-दुःख—कुमारी रहते हुए कैसा विरह और उसका कष्ट कैसा, जो कहा जा सके और वह भी एक कुमारिका द्वारा।

९—सुभग—सुंदर।

अरसों—हठ से।

१०—तातैं—गर्म, तप्त।

मति—नहीं।

१२—दुरी—छिपी।

रति—प्रेम।

सुर-भंग—स्वरभंग, कष्ट के कारण आवाज़ का बिगड़ना।

स्वेद—पसीना।

जरताई—जड़ता, कष्टाधिक्य से चेतनता का लोप।

१३—टकी लगि जाई—अन्यमनस्कता से किसी एक ही ओर देखते रह जाना।

मुरझाई—मूर्च्छा।

१४—बिबरन तन—शरीर का रंग बिगड़ जाना।

१६—टरहीं—गिरते हैं।

१७—दवा—अग्नि।

आँवा—मिट्टी के वे कच्चे बर्तन जिन्हें सजाकर तथा चारों ओर से आग लगाकर पकाते हैं।

दवि—गरम कर।

१८—मोचत—छोड़ती है, रोती है।

ढरारे—ढुलकनेवाले।

१९—कुलकानि—वंश की मर्यादा।

छीजै—नष्ट होती है।

२०—ज्यों—जिस प्रकार।

अनुसरौं—अनुगामिनी हो सकूँ, पत्नी हो सकूँ।

मट—ठप।

२१—नगधर—गिरिधारी।

अंतर पारै—दूर रखे, मिलने न दे।

२२—परिहरि—छोड़कर।

ओरी—भरी हुई, भींगी हुई।

२३—बाँछन लागे—चाहते हैं, इच्छा करते हैं।

२४—सिरायकै—पोंछकर।

२५—छोछि—साफ साफ, स्पष्ट।

जदु-देव—श्रीकृष्ण।

२६—पतीजो—विश्वास करिएगा।

२७—पवन-गति—वायु के समान वेगवान श्वास से

आरति—आर्ति, दुःख।

९-रूख—वृक्ष, पेड़ ।
१०-अलि—भ्रमर ।
जंत्र—वाद्य-यंत्र, बाजा ।
११-मार—कामदेव ।
चटा—शिष्य ।
१२-विहंगम—पक्षी ।
१४-बारे—बालक ।
१६-अरक—अर्क, सूर्य ।
३७-आगारध—मकान की जाली ।
घुरवा—छा जाना ।
उरवा—उर, हृदय ।
मुरवा—मोर ।
३८-अगर—आँगन ।
४०-भावती—अच्छी लगे, पसंद ।
४१-सिंहपौरि—सिंहद्वार, फाटक ।
४२-परिचार—सेवक ।
४४-छिप्र—वेग से ।
प्रभु—स्वामी ।
ब्रह्मन्य—ब्राह्मण ।
पौरिया—द्वारपाल, दौवारिक ।
४५-बधु—मुख ।
उडुमंडल—आकाश ।
४६-दिनेस—सूर्य ।
किंकिनि—करधनी ।
४९-सैन—शैया, पलंग ।
५०-उसनोदक—(उष्ण + उदक) गर्म जल ।
५२-कागर—कागज, पत्र ।
नवीनो—नया ।
श्रीधर—श्रीकृष्ण ।
५३-आँचे—लग गए ।
५४-सिरावत—ठंडा करती है ।
५९-बिलगु—अलग, दूसरी ।
उधरो—उद्धार करो ।
६१-परिचारि—दासी ।
६२-पुरंदर—इंद्र ।
६३—कालकूट—विष, हलाहल ।
परतंतर—परतंत्र, पराधीन ।
६४-पानिप—जल ।
धौरे—घुसे हुए ।
ओरे—ओला ।
६५-सिसुपाल—चेदि देश का राजा ।
रुक्म—रुक्म, विदर्भ नरेश भीष्मक का पुत्र तथा रुक्मिणी का बड़ा भाई ।
६६-वारन-वृंद—हाथियों का झुंड ।
गोमायन—शृगाल ।
६७—बिडारो—नष्ट कर दो ।
६८-परेवा—कबूतर ।
६९—धरिहौं—पकड़ लूँगी ।
७०-ख्याल—विचार ।

७२-बानक—बनावट, शोभा।
हरबर—जल्दी में।
७४-दारु—लकड़ी।
सार—तत्व।
७५-अरबर—फुर्ती से।
कुडिनपुर—विदर्भ की राजधानी।
७६—तरफरै—तड़प रही है, घबराती है।
७७-पिपित—प्यासी।
चकोरी—एक पक्षी, जो चंद्र को निरंतर देखती रहती है।
७८-तरकत—टूटना।
७९-उहटल्यो—पलटा।
८१-बहुरयो पायँ—लौटा हुआ पाया।
८३-काम-लावन्य—कामदेव के समान सौंदर्य।
८६-अलकन—बाल की लटें।
पाग—पगड़ी।
८८-मद-गज—मस्त हाथी।
चहले—कीचड़, दलदल।
मटकै—हिले।
९०-श्रीवत्स—विष्णु भगवान।
९१-छटा—बिजली की चमक।
९२-मरे मयन के चोर—बड़ चोर जो बहुत सामान देख कर क्या ले जायँ क्या न ले जायँ के फेर में पड़ गया है।
९५-मुख धूरि जु परिहैं—असफल हो चले जाएँगे।
९६-मद-मथन—गर्वप्रहारी।
पिखाद—विषाद, दुःख।
ओज—दर्प, अहंकार।
९८-ऊपन—विशाल, दृढ़।
अंबिका—गौरीजी।
९९-नभ-धन—आकाश के बादल।
भरम—वर्म, कवच।
परम—चर्म, ढाल।
१०१-पखारि—धोकर।
देवालय—गौरीजी का मंदिर।
१०२-अरचि—अर्चा, पूजन करके।
चरचि—चंदन लगाकर।
१०३-बरदाय—वरदान देनेवाली।
१०६-बिकसी—प्रसन्न होकर।
मठ—यहाँ मंदिर से तात्पर्य है।
मर्कै—भरावें।
१०७-मनमथ—कामदेव।
१०८-प्रतिबिंब—छाया।
तनमात्री—अनुमान किया।
धर—धरा, पृथ्वी।
११०-अंबर—आकाश।

गदगदौ—प्रेमयुक्त।
१११-रदन—दाँत।
११२-लुर्री—कान का एक गहना।
काम-कलभ—कामदेव रूपी हाथी का बच्चा।
११४-उरेहा—खींच।
बेझा—वेध्य, निशाना।
११७-हरैं हरैं—धीरे धीरे।
ठग-मूरी—जड़ी जिसे ठग खिलाकर पागल बना देते हैं।
११९-मड़हा—शब्द निकालने वाले।
१२१-आभासी—ज्ञात हुई, मालूम पड़ी।
नीरद—बादल।
१२२-जूप—यज्ञ का खंभा।
बज्रमारे—वज्र से हत।
१२३-कूकत—भौं भौं करते हैं।
१२५-मागध—मगधनरेश जरासंध।
१२७-कुलही—टोपी।

सुदामा चरित

१—दुजबर—द्विजवर, ब्राह्मण-श्रेष्ठ।
अलिपति—भ्रमर, कोयल।
सरसीरुह—कमल।
२—अकिंचन—तुच्छ, दरिद्र।
संसार-बयार—दुनियादारी की हवा।
३—विषम बगर—विकट घर, भयानक स्थान।
४—उपशम—वासनाओं का दमन, शांति।
५—तिसा—तृषा, प्यास।
प्रतिपारै—पालन करे।
७—लट्यौ—कृश हुआ, दुर्बल हुआ।
८—कमलाकांत—लक्ष्मीपति, श्रीकृष्ण।
अरस—आलस्य।
१०—चक्रपानि—चक्रपाणि, विष्णु भगवान।
परसहु—स्पर्श करना।
१४—ऐना—ठीक, यथोचित।
१५—सुथरी—स्वच्छ, साफ।
बंदन—रोली, रोचन।

दुरकी—छिपकी हुई।
१६-ढोरत—हिलाती है।
२२-ग्रटक—पैरों में बिवाई फटने से कड़े नोक से बन जाते हैं, जिनमें वस्त्र फँस जाता था।
२३-पाइ—मोचन कर लेने पर।
२८-रमन—रमण, श्रीकृष्ण।

३०-चबाव—विचार।
३२-बधिर—बहरा।
मुदित—प्रसन्न।
३४-संभ्रम—शंका, सहम।
भ्रमरनि—देवताओं।
३८-विभूति—ऐश्वर्य, संपत्ति।
४१-तुरन—तूण, शीघ्र।

भाषा दशम स्कंध

प्रथम अध्याय

नव-शच्छन—श्रीमद्भागवत में सृष्टि की उत्पत्ति तथा लय के संबंध में जो वर्णन है उसके दस भेद हैं, जिनमें दश में लक्षण तथा दसवाँ लक्ष्य माना गया है।

आश्रय—परमेश्वर श्रीकृष्ण दसवें विषय लक्ष्य हैं, जिन्हें अच्छी प्रकार मनोगत करने के लिए अन्य नौ विषय हैं।

कृष्णाख्य—श्रीकृष्ण की कीर्ति।

सुख जीजे—सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कीजिए।

श्रीधर स्वामी—श्रीमद्भागवत की प्राचीनतम टीका इन्हीं की बनाई हुई है।

दरेर—धका, वेग।

महदादिक—महत् या महत्तत्त्व आदि जैसे पंचमहाभूत आदि। सृष्टि के कारण रूप प्रकृति के विकार। ये ही सृष्टि के कारण हैं जिन्हें सर्ग कहते हैं।

विदुष—विद्वान्।

विसर्ग—कारणों से जो स्थूल सृष्टि होती है।

वितान—विस्तार।

स्थान—सूर्य आदि की अपनी मर्यादा में स्थिति।

पोषन—पोषण, भक्तों पर दया।

वृंदारक-वृंद—देव समूह।

तृतीय अध्याय

वनराजी—वन का समूह।
अम्बुद—बादल।
छवि-छटी—शोभायुक्त।
कौस्तुभ—विष्णु भगवान के गले की मणि।
तरुन—प्रबल।
भू-भर—पृथ्वी का भार।
अवदेरे—रेखा।
उपसंहरो—समाप्त करो।
मुतरिपु—कंस।
दुख घूमि—व्यथित होकर।
कुसर—कुशल।

चतुर्थ अध्याय

संस—संशय, शंका।
रोर—कोलाहल।
तलपते—तड़पकर, शीघ्रता से।
भ्रमुटत—लड़खड़ाते हुए।
भनैजी—मांजी, बहिन की पुत्री।
राजिवदल—कमल का पत्र।
गारो—गर्व।
ब्रह्महा—ब्राह्मण का हत्याकारी।
सौनक—कसाई।
बलगन—बढ़कर बातें करना।
इच्छाकृत बन—जिस वन में जाते ही पुरुष स्त्री हो जाता था।
वृकन—भेड़िए।
अजन—बकरे।

पंचम अध्याय

दूधी—दूध देनेवाली।
प्रथम प्रसूता—पहिले बिग्रान की, तरुणी।
मागध—भाट।
अजिर—आँगन।
पद्दिक—पुखराज।
समोधत—समझाते हैं।
अदिष्ट—अदृष्ट, भाग्य।
कलपतो—घबड़ाए।

षष्ठ अध्याय

चित्र—विचित्र, आश्चर्यजनक।
बकी—बकासुर की बहिन पूतना।
बनक—चाल, बन बट।
मुटनी—छोटा सा।
करतार—(कर्तरी) कटार।
बिथकित—व्यथित।
कटोरि—घसीट कर।

सप्तम अध्याय

बरहैं—बाहर खेत आदि में।
अभिचार—मंत्र द्वारा प्रेरित।
कूट—कूटाचल, पर्वतशृंग।
भावती—इच्छित बात

वातचक्र—घूमती हुई आँधी।
दाँवरी—रस्सी।
धुरि—लिपट।
करष करष—टुकड़े टुकड़े।

अष्टम अध्याय

अति इंद्री ज्ञान—जो ज्ञान इंद्रियों के परे है।
सम्यक—पूर्ण, अच्छी प्रकार।
अरग—एकांत में, चुपके से।
चखौड़ा—डिठौना।
नथूली—बेसर, बुलाक।
झँगूली—बिना बाँह का कुरता, झबरा।
बघनखा—सोने में मढ़ा बघनखा।
गोहन गोहन—साथ साथ।
खरिक—गोशाला।
खोरि—गली।
छीर—दूध।
छिलो—रहता था।
माखन मों सानि—मक्खन में लपेट कर।
हरें हरें—धीरे धीरे।

नवम अध्याय

औंटे—तपे हुए।
पृथु—चौड़ी।
विलुलित—लहराती हुई।
कबरी—चोटी।
नेत—डोरी जिससे मथानी चलाई जाती है।
लटिक—प्यार।
श्रोणी-भर—नितंबों का भार।
नोई—डोरी।
जेवरी—डोरी, दाम।
परिवाने—मानते हैं।
मायक—माया संबंधी।
दरवी—कलछुल, चमचा।

दशम अध्याय

भवपारद—संसार सागर से पार करनेवाला।
खेह—मिट्टी।
अलका—कुबेरजी की पुरी का नाम।
अव्यय—नित्य, विकार शून्य।
बीय—दूसरा।
उरुक—लुक, उल्का।
निधूम—धूएँ से रहित।
बिवि—दो।
गुह्यक—यक्ष।

एकादश अध्याय

दारन—कुल्हाड़ा।
पाँवरी—खड़ाऊँ।
भाख्यो—शाप दिया।

श्राद्ध—टीका।
निर्जर—देवता।
पटेरहि—पानी में होनेवाली एक घास।
अगदराज—ओषधियों का राजा।

द्वादश अध्याय

प्रमोद—आनंद, प्रसन्नता।
मणि नायक—बीच का बड़ा टिकड़ा का रत्न।
मदुखरि—मुख से बजाने का यंत्र।
नर-दारक—मनुष्य का पुत्र।
काकोदर—सर्प।
तिलोदक—मृतकों को तिल मिलाकर जल दिया जाता है।
चके—चकित हुए।
दरी—पहाड़ के बीच का नीचा स्थान, गुफा।
सति—सत्य।
तुंड—मुख।
निरोध—रुकावट।
चित्र—आश्चर्य।
दुरित-निकंदन—पापनाशक।
अनघ—निष्पाप।

त्रयोदश अध्याय

परिमल—सुगंध।
करनिका—कमल पुष्प के बीच का डंठल।
गह्वर—गह्वर।
निरवधि—असीम।
ओक—लोक।
अजा—माया।
यवनिका—पर्दा।
क्षुध—क्षुधा, भूख।
जग दंगल—सांसारिक झंझट।

चतुर्दश अध्याय

ईड्य—स्तुति-योग्य।
तड़िदिव—बिजली के समान।
दुस्तर—दुस्तर, अपार।
रीते—खाली।
फोटक—फुटका।
अनासक्त—निर्लिप्त, लोभ रहित।
अगरनि—आगे।
पटविसना—वुगनूँ।
चारयो फुटी—दो बाह्य तथा दो अंतर के नेत्र फुट गए हैं।
विरहित—विना।
त्रिसरेनु—अत्यंत सूक्ष्म कण।
नार—जल।
परिछिन्न—प्रकट।
गुल्फें—गुत्थियाँ।
पदना—नई, पूर्ण।

वीतराग—विरक्त ।
अधर सेरी—जंजाल की डोरी ।
पावन पायौ—पाने पाए ।

पंचदश अध्याय

अबरावन—पहुँचाने ।
मगली—मंगल टीका ।
बीजना—पंखा ।
बनावत—बुलाते हैं ।
ढेला—ढेला ।
ताड़—तालवृक्ष, जिसके फल से मादक द्रव्य ताड़ी निकलती है ।
गुनातीत—सब गुणों से परे ।

षोडश अध्याय

अथलचर—जो थल में न रह सके ।
हृद—झील ।
हुवे—चले गए ।
इमुना—इस प्रकार ।
दह—नदी में जहाँ पानी गहरा हो ।
व रबारी—बलवान ।
माँडे—गूँथे हुए, कच्चे तैयार ।
नागदवन—एक जड़ी जिससे सर्प-विष दूर हो जाता है ।

सप्तदश अध्याय

अचान—एकाएक ।

मधुरिपु आसन—मधु दैत्य के शत्रु विष्णु के वाहन गरुड़ ।
सौभरि—एक ऋषि ।
लेलिह—सर्प ।
झार—झार, लपट, ज्वाला ।

अष्टादश अध्याय

निदाघ—ताप, गर्मी ।
दई कौ दाम्यौ—दैव का मारा ।
हीर—पात ।
सिरवह—बाल, केश ।
दरच—टुकड़ा ।

एकोनविंश अध्याय

बनांतर—दूसरे वन में ।
बगरी—लौटी ।
वृष-रवि रश्मि—वृष राशि के सूर्य की किरणें ।
मिया—माई ।

विंश अध्याय

प्रावृट्—वर्षाकाल ।
उतपथ—मार्ग से हटकर ।
बुटी—बीरबहूटी ।
उच्छलित—कुकुरमुत्ता ।
निपजे—पैदा हुए हैं
कारमि—बाहर ।
वहि—वक्रित, बिजली ।
लतना—लता ।

वनौकस—वन के निवासी।
कचोर—कठोर।
पुहुपवती—रजस्वला।

एकविंश अध्याय

धुनित—ध्वनित, गुंजायमान।
ईरति—रति, प्रेम।
कबरि—केशपाश।
प्रवाल—कोमल पत्ता।

द्वाविंश अध्याय

दारिका—स्त्री।
हविषा—हवन की सामग्री।
वेपत—काँपती हैं।
आत्यन्तिक—जो अविकृत से हो।
आगामिनी—आनेवाली।
तरहर—नीचे का भाग।
जगरविनी—यशस्वी, यज्ञ करनेवाले की स्त्री।

त्रयोविंश अध्याय

याजक—यज्ञ करनेवाले।
याच्या—याचना, माँगना।
ओदन—भात।
मद करि मचिबौ—मस्त होना।
चुष—चूसनेवाले पदार्थ।
लिह—चटनी आदि।
रोचन—मनमोहक।
दुरिय—दरीब, चौथा, अंतिम अवस्था।
अध्यास—भ्रांति, झूठा ज्ञान।
यजन—यजन, यज्ञकार्य।
सत्र—यज्ञ।
असूया—ईर्ष्या, द्वेष।
ममत—अहमत्व, ममता।
सायुज्य—जीवात्मा का परमात्मा में मिल जाना।
अधोक्षज—श्रीकृष्ण।

चतुर्विंश अध्याय

जीवन—जल।
गोधन—गोवर्द्धन।

पचविंश अध्याय

पचविष—पञ्चतत्त्व की पाँच पाँच प्रकृतियाँ।
घाती—दुष्टता, कपट।
उरन—ऊर्ण, मेष।
थाँमनि—खंभे।
साँप वेठना—केंचुलि।
रानो—राणा, राजा।

सप्तविंश अध्याय

दुरासद—कठोर।

एकोनत्रिंश अध्याय

सप्तादिक—षड्ज आदि सात स्वर।
पारखद—पार्षद, पार्श्ववर्ती।
मारजपद—आर्यों की मर्यादा।

पदावली

१—छुटी पै घुँघर—पाँवों पटिय ।

नायक-प्रतिपाल—युधिष्ठिर आदि स्वामियों के पालनेवाले ।

सुतन—सुंदर शरीर ।

२—अवधेश—रामचंद्र, अवध के राजा ।

३—झकोल—हिलोर मारना, खेल ।

४—परशोत्तम—उत्तम पुरुष, श्रेष्ठ ।

सरवर—समानता, बराबरी ।

६—विसतरन—फैलानेवाले ।

अतुल—जिसकी तुलना न हो सके ।

पुष्टि प्रसाद—पुष्टि मार्ग की मर्यादा । वल्लभ-संप्रदाय पुष्टि मार्ग भी कहलाता है ।

पोषन भरन—पालन पोषण करनेवाले ।

८—रुक्मिनीनाथ—श्रीकृष्णजी ।

पद्मावती-प्राणपति—श्री विट्ठलनाथ जी ।

उडुराज—चंद्रमा ।

मुक्तिकांछीन—मुक्ति की इच्छा रखनेवाले ।

सकल तीरथ फलित—सभी तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है ।

९—लछमन—वल्लभाचार्य के पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था ।

पुरुषोत्तम-श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु ।

चौक पुराई—आँगन के बीच में चित्रकारी बनाना ।

द्वंद्व—दुःख, कष्ट ।

१०—ध्येय—ध्यान करने योग्य ।

प्रतिहार—द्वार रक्षक ।

११—रसना—जिह्वा, जीभ ।

दंभ—मिस, पापी ।

१२—सिराऊँ—ठंडा करूँ ।

१३—पद-मकरंद—पदरूपी पराग ।

षटगुन-संपन्न—छः गुणों से भरे पूरे ।

१४—परमारथ—दूसरों का हित ।

विसेखी—विशेष, अधिक ।

१५—पुष्टि—पोषण, दृढ़ता ।

भागवदीन—भागवतगण, भक्तगण ।

सन्निधि—सान्निध्य, सामीप्य ।

१८—तरंग-रंग-भरी—लहरों से भरी, जिसमें लहरें उठ रही हैं ।

मंग-माँग।
१९-कुलाँच—कुदान।
२०-घनराई—घनों का समूह।
रावल—अंतःपुर।
२१-हलधर—बलभद्रजी।
२२-मोद भरे—प्रसन्न चित्त।
अखिल-लोक-प्रतिपाल—समग्र विश्व के पालक।
कुटिल—टेढ़े, अत्यंत दृढ़।
अम्बुद—बादल।
२४-ढोटा—बालक, पुत्र।
ओमा—कांति।
लोले—टहले।
अष्ट महासिद्धि—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व।
सथिया—स्वस्तिक का चित्र।
जगमगे नग के—रत्नों के जड़े जाने से चमक रहे हैं।
लसि—शोभा पा रही है।
२५-खोरैं—लगाए हुए।
२६-पदिक मनि—पुखराज।
घन गोर-बहुत से गोप, झुंड।
२७—निकर पुरंदर—इंद्रों का समूह।

२८-दधिकांदो—जन्माष्टमी के दूसरे दिन का उत्सव।
ठनगन—प्रसन्नता के समय हठकर कुछ माँगना।
गेंदुक—गेंद, कंदुक।
भानुसुता—कालिंदी, यमुना।
कलिंद नंदिनी—यमुना।
छुरत—फहरा रहे हैं।
२९-फूलिकै—प्रफुल्लित होकर, प्रसन्न।
समूलि कै—एकत्र करके।
कूल—किनारा।
२९—कौलव करन—ज्योतिष के ग्यारह करणों में तीसरा। इसमें जन्म लेनेवाले गुणी विद्वान पर कृतघ्न होते हैं।
रासियैं—समूह।
पटह—नगाड़ा।
३०-ढाढिन—पुत्र जन्म के समय गानेवाले।
बागा—पहिरने के वस्त्र।
जेहरि—पैर का आभूषण, पैंजेब।
गोली—(पु० गोला) दासी।
अतोली—जिसका तौल न हो सके।

दुलिया—दोलनी, बच्चों का पालना।

दोली—दो सौ पान के पत्तों का एक परिमाण, ढाँढिन, ढोल बजाकर गानेवाला।

माँडौ म्होलो—याचना करें।

३४–गोरोचन—एक सुगंधि द्रव्य, जिसके तिलक से बच्चों को दृष्टि नहीं लगती।

केहरि-नख—बघनहा, सोने में मढ़ा हुआ शेर का नख।

३५–छिआरी—विनकुमारी, कमरा।

३६–उरंघो—हृदय पर, गोद में।

बैयाँ—बाँह, हाथ।

३७–वारि पीवत पानी—उतार कर पानी पीती है।

पाईं—बराबर।

धैया—थन से मुख में रोपकर दूध दुहना।

४०–लटूरी—बाल की घुँघराली लट।

४१–बलोना—दिठौना।

४२–बोंदिया—बच्चों का निकला पेट।

ब्रह्म-घनीभूत—विशाल ब्रह्म छोटे बच्चे के रूप में।

४९–सुरंग—लाल।

दुरंग—दो रंगा, दो रंग का।

कुरंग—हरिण।

५२–मैना—मदन, कामदेव।

सची—शची, इन्द्र-पत्नी।

कौतुक—खेल, विचित्र बात।

५३–निरवत—निर्वाह।

५५–बलवीर—श्रीकृष्ण।

दुराऊँ—छिपाऊँ।

६०–डपंगा—एक प्रकार का बाजा।

द्यखेवा—शशिमदन।

६१–उरसि—वक्षस्थल पर।

६६–बैनी—जूड़ा, चोटी।

६९–न्याव परो—विचार करना पड़ा।

७०–केलि—क्रीड़ा, खेल।

दरक गई—फट गई।

आरस—आलस्य।

७२–चौंधि आत—चमक आती है।

मया—स्नेह, दया।

७५–पाग—पगड़ी।

भृगुरेखा—श्रीविष्णु के वक्षस्थल पर भृगु ऋषि द्वारा बनाया गया चिह्न।

खौर—चंदन का बिन्द।

खोर—गली।

७६-हेरैं—देखे।
बगमाल—बगुलों की पाँत।
७८-अलिआरो—भ्रमरावलि।
७९-ससफै—शाखाएँ, रेखाएँ।
८०-गाँस—प्रेम का फंदा।
अरस—रसहीन।
च्यावन—चवाइन, प्रेम की बात।
८७-तमचोर—कुक्कुट।
९२-उनींदे—निद्रा न आने से।
गुन—डोरी, सूत्र।
९४-दाँव—अवसर।
१००-बहु-नायक—कई स्त्रियों का प्रेमी।
१०४-निछुरि जाइ—छिन जायगी, न रहेगी।
१०६-मृग-मेदन—कस्तूरी।
१०७-भाजन—बर्तन।
१०८-छाक—पकवान, मिठाई।
ढका—चोरी, चोरा।
गाँठ—गठरी।
ओदन—भात।
चाँमरि—बहँगी।
११३-दहेड़ी—जिस पात्र में दही जमाई जाती है।

छिलछिलो—जल के आधिक्य से पतली।
तमी—पात्र।
छैया—छैना, पुत्र।
११५-डगरौंगी—चल दूंगी।
११७-अति भर—अधिक भार, बोझ।
११९-ततथेई—नृत्य के बोल।
उरप तिरप—नृत्य की गति।
१२०-अमल—निर्मल, स्वच्छ।
घलित—घिरे हुए।
१२१-नग—पर्वत।
अपनपो—अहंता।
१२८-सारंग—हरिण।
गहरु—गंभीरता, मान।
इस पद में सारंग, कल्याण, भैरो, कान्हरा आदि रागों के नाम लाए गए हैं।
१२९-कई—कही।
१३१-सैनी—सेंया।
१३३-आप काज महाकाज-अपना कार्य आप ही देखने से पूरा होता है।
१३३-आरति—दुःख, कष्ट।
राग—अनुराग।

१४४-अमेरी—हटीली।
सुलफ—कोमल।
१४८-वल्हैया—उल्लास, प्रसन्नता।
कुल्हैया—टोपी।
१५०-बंकुल—टेढ़ी-मेढ़ी चाल।
दमामो—बड़ा नगाड़ा।
मधु—फूल।
१५५-सिहोहैं—शोभा बढ़ाते हैं।
कोनै—नेत्रों के कोने।
बाप्यो—फैला।
१५९-मयार—हिंडोले के खम्भों के बीच का भाग जिसमें डाँडी या रस्सी लटकती है।
अनगना—अंगना, स्त्रियाँ।
१६०-झोटन—हिंडोले का झोंका।
रमकन—पेंग मारने में।
१६५-मरुवा—मयार, वह लकड़ी जिस पर हिंडोले की रस्सी रहती है।
प्राची कोरैं—पूर्व के कोने।
अनुहोरैं—समान हो गए।
१६६-तारी—समाधि।
वंशी-बट—ब्रज में एक स्थान है, जहाँ वट-वृक्ष के नीचे कृष्णजी ने बंशी बजाई थी।

१६९-वहन लागी—बहने लगी।
श्रमकनि—पसीने की बूँदें।
१७०-पिछोरा—दुपट्टा।
गैंदुवा—तकिया।
फौंदा—फुंदा।
१७२—दुमेल—गले का गहना।
तरौना—तरकी, कर्णफूल।
फबो—शोभित होना।
१७३—अनगन-अगणित, असंख्य।
बंदन—चोवा।
अट गए—भर गए।
ठराईं—ठहर गईं, रुक गईं।
१७५—नवरंगी- नए रंग या नौ रंग से युक्त।
१७६—मुरज—एक बाजा।
ऐंड—हठ।
मैंड—मर्यादा।
१७७-ओलिन—ओलियों।
गहेलि-गंभीर, मान से युक्त।
१७८ ठनयो—पैदा, छाया।
निचोयो—निचोड़ कर निकाला हुआ।
धनाधार—निरंतर।
१७९-कोद—धूम।
कौंधन—चमकती है।
हेली—हे सखी।

अरगजा—सुगंधि द्रव्य।
सीमंत—माँग।
अँकवरी—गले लगाना, दोनों
हाथ से बीच लेना।
१८१-धनी—स्वामी।
अनी—समूह, भीड़।
१८२-ऐन—गृह, भंडार।
चौहटा—बजार।

टोल—मुहल्ला, झुंड।
नारद—पुरुष।
१८३-नाइ—नवाकर, नीचेकर।
डरगाई—अलग होकर।
कुराई—हिलाकर।
गहर—देर।
सौंधे—सुगंध।
पटोरन—रेशमी वस्त्र।

सहायक ग्रंथ-सूची

जिन ग्रंथों से इस संग्रह के संपादन, भूमिका तथा कवि-चरित्र के लिखने में सहायता ली गई है, उनके लेखकों तथा संपादकों के प्रति आभार मानते हुए कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ उन सभी की सूची यहाँ दी जाती है। अन्य हस्तलिखित तथा छपी पुस्तकों का उल्लेख भूमिका में किया गया है, जिनसे पाठ ठीक करने में सहायता मिली है।

१—भक्तनामावली—ध्रुवदासजी कृत तथा बा० राधाकृष्णदास द्वारा संपादित संस्करण।

२—भक्तमाल—नाभादास कृत तथा प्रियादासजी कृत 'भक्ति रस-बोधिनी' टीका। निजी हस्तलिखित प्रति।

३—दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता—डाकोर का संस्करण पृ० २८-३५, ३८६-७।

४—उत्तरार्द्ध भक्तमाल—भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत।

५—भक्तकल्पद्रुम—राजा प्रतापसिंह पंडरौना कृत भक्तमाल की गद्य टीका।

६—भक्तनामावली—भगवतरसिक कृत।

७—श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता।

८—शिवसिंह सरोज—उन्नाव-निवासी शिवसिंह सेंगर कृत, सन् १८७८ ई० का लखनऊ का संस्करण।

९—सुकवि सरोज—टीकमगढ़ सनाढ्योदय ग्रंथमाला।

१०—नवरत्न—मिश्रबंधु कृत।

११—मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु-त्रय कृत पुराना तथा नया संस्करण।

१२—तुलसीदासजी की जीवनी—पं० रामचंद्र शुक्ल कृत।

१३—तुलसीदासजी की जीवनी—बा० श्यामसुंदरदास तथा पं० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल कृत।

१४—हिंदी साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल।

१५—हिंदी भाषा और साहित्य—रायबहादुर बा० श्यामसुंदरदास बी० ए० कृत।

१६—मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान—डा० सर जॉर्ज ग्रियर्सन कृत।

१७—इस्त्वार दलालितरेत्यारे हंदीन—गार्सिन द तासी कृत, द्वितीय भा० २ पृ० ४४५-७।

१८—हिंदी का आलोचनात्मक इतिहास—प्रो० रामकुमार वर्मा एम० ए० कृत।

१९—हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की रिपोर्टें—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

२०—रत्नावली दोहा संग्रह।

२१—रत्नावली चरित—मुरलीधर चतुर्वेदी कृत।

२२—शूकरक्षेत्र माहात्म्य—कृष्णदास कृत।

२३—वर्षफल—कृष्णदास कृत।

२४—अष्टसखामृत—प्राणेश कवि कृत।

२५—मूल गोसाईं चरित—बाबा बेनीमाधवदास कृत।

पत्र-पत्रिकादि में लेख

१—'नंददास'—हिन्दुस्तानी भा० ५ सन् १९३५ पृ० ३७९-८९

२—'रुक्मिणी मंगल का परिचय'—माधुरी व—८ भा० २ पृ० सं० ६३४–८, पं० जवाहिरलाल चतुर्वेदी लिखित।

३—'महाकवि नंददास'—माधुरी व० ९ सं० १ पृ० २०१–१०, पं० जवाहिरलाल चतुर्वेदी लिखित।

४—'महाकवि नंददास और उनका काव्य'—विशाल भारत दिसंबर सन् १९३१, पृ० ७२९–३५, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित।

५—'पंचाध्यायी'—हरिश्चंद्र चंद्रिका ख० ६ सं० ६-७ दिसं० जन० सन् १८७८-९ ई०। पद संख्या १-११८ ३३१-२८४। इसमें पंचाध्यायी के साथ रास शब्द नहीं है और न अध्याय दिए गए हैं। भूमिका भी नहीं दी गई है, जिससे संपादक के आधारों का पता लग सके।

६—'स्याम सगाई'—विशाल भारत। सन् १९३१, पृ० ६५४-६।

७—'रुक्मिणी मंगल' " जून सन् १९२९, पृ० १२६-४०।

८—'सिद्धांत पंचाध्यायी' " जुलाई सन् १९३३, पृ० २२-४।

९—'महाकवि नंददास' " जून सन् १९३९।

रामदत्त भारद्वाज एम० ए०, एल-एल० बी० लिखित।

१०—माधुरी 'कवि चर्चा' आश्विन २०६ तु० सं०।

'गोस्वामीजी का जन्मस्थान'—गोविंदवल्लभ भट्ट (एटा)

११—'तुलसीदास और नंददास के जीवन पर नया प्रकाश'—हिंदुस्तानी जुलाई सन् १९३९ ले० मंजुर दीनदयालु गुप्त एम० ए०।

१२—'नंददास'—ना० प्र० पत्रिका व० ४४ सं० १९९६।

१३—'महाकवि नंददास का जीवन चरित'—हिंदुस्तानी जुलाई १९४७।

१४—'अष्टछाप पर मुसलमानी प्रभाव'—वीणा, ज्येष्ठ १९९२।

१५—'हिंदी काव्य में अश्लीलता'—वीणा, भादो १९९२।

१६—सुधाकर, लाहौर, जन० १९३६, मुरलीधर खन्ना का लेख—'महाकवि नंददास संबंधी एक नई खोज'।

पदानुक्रमणिका

अ

आ

ज

झ

ठ

ड

ढ

त

र

ल

व

श